

प्रकाश-दीप

परम पूज्य श्री १०८ घाताचाय श्री कृष्णसागर जी महाराज की महती अनुकंपा से, सम्मग्यान शिरोमणि श्री १०५ विजयमति माता जी, सिद्धांत विशारद द्वारा लिखित यह “आत्म चिन्तन” घाताचाय जी श्री के शुभाशीर्वादपूर्ण आदेश से प्रकाशित कराके उन्हीं के कर-कर्मलों में सविनय समर्पित करती हूँ। परम-पूज्य माताजी के तप-स्वाग, साधना, के साध-साध अध्यात्मिक चिन्तन की यह महत्वपूर्ण कृति व्याख्यान-पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

—वसुधरा जन



धो १०५ विजयमति माता जो
सिद्धान्त विहार

1

2

3

4

5

6

प्रथम खण्ड आत्म - चिन्तन

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्री धीतरावाय नमः श्री सरस्वतीदेव्य नमः श्री परमगुरुवे नमः श्री आ०
मो० स० स० स० १०८ श्री आ० महावीरजीति महाराज श्री गुरुवे नमः
सब श्री १०८ आ० मो० स० श्री आशाय शिरोमणि श्री सभतिसागर
जी महाराजाय नमो नमः ॥

अपना-वचन

हे आरमन् देख सत्सार की बिडम्बना जो पण्य अनन्ता बार पा लिए,
जिनका अनेको बार भोग कर लिया उन्हें पर्याप्त बदलने पर पुन पुन नया समझकर हृष
वन्ता है कभी उन्हीं को पुराना कहकर शोक। स्वयं का भेष बदल रहा है पर
वस्तु का भी हैं वे वही इसे अनानवश भूत रहा है। यह है ससारी-अज्ञानी आरमर का
ग्रहसन। यही है राग-द्वेष का बीज यही है सत्सार बद्धि का मूल। नया साल आया।
अरे कितने बप बाय और चल गये जाते हैं और पात हैं आयेगे और जायेंगे यह
कोई नयी बात नहीं है, यह सब कान द्रव्य का स्वाग है। इसे तू अनादि से देखता
आया है, यही नहीं इसके साथ भगी कर स्वयं अपने की भूल माना रूप धरता इसके
साथ भटकता आ रहा है। हे भाई, आरमन् नया यह नहीं है नया तो वह है जिसे
आज तक तूने कभी नहीं दखा नहीं पाया नहीं सोया। बल है सौकातिक देवा की
निवास भूमि ब्रह्मलोक दक्षिणेन्द्रपद्म इन्द्रपद शशिपदवी साकपात मीधर्मोदके सर्वाय
सिद्धि के अहमिन्द्र आनि। इनको पाने का प्रयास कर। इनके भिन्न ही फिर वह
अन्तिम अभूतपूर्व नवीन स्थान मिलेगा, जहाँ से इन स्थानों का भी नवीनत्व समाप्त
हो जायगा। अर्थात् मोक्ष शिवमुख स्वानुभव आत्मत्व, मुख शान्ति निराकुलता।
प्रतिवर्ष जीवन में आने वाले समय में क्या नवीनता है? हाँ इसकी क्षणिक चाल के
माध्यम से तू विरक्त हो मयम धारण कर तपाराधन कर अपने चिरस्थायी आत्मवचन
की ओर से जुट जाये तो अवश्य यह तुझे नूतनता में पञ्चाने वाला मित्र होगा।
सयम धर धन फल, बराब्र अपना यह है नयापन का सार।

हे भगवन ! आप कृतकृत्य हैं। यह पूरा सत्य है। कारण आप अनाकुल हैं।
जहाँ कुछ भी करना है वहाँ आकुलता है बेचनी है चबलता है। आकुलता जीवन
वस्थिर है दुखी है। दुख है तो फिर अयाबाध सुख कैसे हो सकता है? आपका
मुख निराबाध-साधन है अत आकुलता नहीं है। कुछ करना है यदि यह रह जाये
तो सफलता नही बन सकेगी। आप स्वज्ञ हैं कुछ जानना बाकी नहीं। सब
जान ही लिया तो कुछ करने की शेष कैसे रह सकता है? अर्थात् नही रह सकती।
अनन्त ज्ञानी का शेष ही क्या रहा। फिर आप अनन्त शक्ति युक्त हैं। जहाँ अनन्त

धाय है वहाँ काम कैसे बाँधी रह सकता है। कार्य उसी का अवशेष करने को रहेगा
 त्रिगम उसे करने की विलसता है। आप मयह शक्तिहीनत्व है ही नहीं, फिर कुछ भी
 करना नस रह सकता है। अतः कृतकृत्य विशेषण यथाथ साधक ही है। श्रीभगवान्
 कृतकृत्य है क्योंकि भक्तार्थी है। अनन्त दशन के समर्थ कुछ भी अदृश्य नहा एव साध
 सब दृश्य लिया फिर उस अधूरा क्या छोड़ा जा सकता है? कभी नहीं। हे प्रभो !
 धायक अनन्त धनुष्य आरम्भ कृतकृत्यपने के साधक हैं। मार यहाँ है कि जो भगवान्
 है वही तू है। हे आत्मन् तू जनाति कान से करता धरता फिर रहा है न यह करना
 पूरा हुआ है न हाँगा। ध्यय परेशान हो रहा है जहाँ अप्रगता है वहाँ इच्छा है इच्छा
 आकुलता की कारण है आकुलता दुःख की जननी है। अतएव हे माधो ! तू कृतकृत्य
 भाव को समझ कर। जो कर्त्ता हाता है वही भीता। कर्त्ता भीता की कभी क्षुब्ध
 ही नहीं कदापि आत्मा पर का कर्त्ता भीता है ही नहीं। असत्य सत्य कस ही
 गचना है। कभी नहीं। अस्तु तू जानी ध्यानी परम बीनपागी ह कृतकृत्य अपने
 का समस्त उमा रूप मर्याद म स्थिर हो। वही परमात्मा धन जायगा।

[illegible]

ससार रमणीक नाट्यशाला है कम सूत्रधार है जीव अभिनेता है। मान राजा भेष-यापण है नोभ राजा आभूषण। ममता का जामा पहनकर राग-द्वेष का सूत्र पर नृत्य करता है। आज तब अनानि कान से इसी उतार चढ़ाव में झूम रहा है। है भाई, अब इस नकली रूप को छोड़ अपने असली रूप को मभास। यह कर्मा श्रम का द्वार जब तक खुला रहेगा तब तक दशका की भीड़ आती रहेगी कोई भाई बनकर, कोई ताई ब माई तो कोई लुगाई जपाई कभी बाप चाचा ताऊ, कभी मास समुर ठकुराई आनि। इनका ताता लगा है आत हैं कुछ कहते हैं कुछ सुनते हैं कोई कुछ अता है ता कोई कुछ देता है। परंतु यह सब मान बाह्य दिखावा है पर ह आत्म स्वरूप के घातक हैं। तू लुभाना है फसना है इनस प्रेम में अंधा हो रहा है तभी तो अपने में छुपे अपने खजाने का भूल पन पर पण्यों का अपना बंधन मान रहा है। जो माना सो माना अब अस्तन को छोड़ मत को पा। इस ही अपना। धय तरा बिना है क्षमा जननी है मनाप घाता है दया भगिना है दीक्षा रमणी है रतु धय आभूषण है तप तरा हितपी मित्र है। इनस प्रीति गया। शीत वस्त्र है उसे आपात्मस्तर ओढ़। दया धम की सदय है समय सनिव और वराध्य रतु को साव ले ले। सबग की विस्तीर्ण में निर्वे की गापीभर कर निवध पद निभय होकर। बिषय तुटेरे आयग मजघन क कभी हसते कभी रोते कभी भोले बनकर कभी चालाक से तू न्धर दखना ही मन। अपने अस्त्र शस्त्र और भाग को छोड़ना मत। स्वयं धक जायेंग रह जायेंग जैसे दून के साथ लीचे वाले पे पीछ धर मकानानि। निभय बनो विश्वस्त रहो शिव द्वार पर अवश्य पदुष पाबयोग निविघ्न एक निन। ज्ञान की रीसनी में देख नेना अपना पराया। अपने का अपनाओ सो पर स्वयं छू जायगा। तू पुण्य पाप के समने में मत उलझ ये दाता तुझ से भिन्न है पर त्यागने का धर्म है पाप त्यागा जाता है पुण्य स्वयं छू जाता है अपने शुद्ध स्वभाव में आन आत यही लभ्य बना।

हे आत्मन मनाविकारा को रोक्ने का सर्वोत्तम साधन पहला स्वाध्याय है। तत्प्राप्तोक्त तत्त्वचिन्तन में सदावचित्त निविकल्प हो जाता है। चिन्तु स्वाध्याय का रम तभी आवेगा जब हम सामारिक उन्नतनों से हट कर उसी में तल्लीन होंग। स्वाध्याय करना मात्र शास्त्र का पटना ही नहीं है अपितु उसका अर्थावगम करना जय समझकर अनुसार चित्तवन करना चिन्तन क अनुसार आचरण करना। धूमरा, सरल और सहज उपाय त्रिन गुण सत्त्व है। जिनेद्र प्रभु की भक्ति में सत्त्व मन एकाग्र होता है। बीतराग क चरणाभ्युज में मस्त मन मधकर डूब कर समाहित हो जाता है। बाह्याभ्यन्तर अन्य विकल्प न जाने कहीं विलीन हो जात हैं। त्रिन गुण गान में संगीत होता है, लय होती है उसी ध्वनि में हृदय बीणा क तार झट्ट हो ठठ हैं तब वह अपने में अपना ही स्वर सुनता है सुनत-सुनते तदगुण रूप परि णमित हो जाता है यह है चमत्कार भक्ति का भक्त बन जाता है भगवान। तीसरा

१. इस देश का नाम भारत है। इसमें हिन्दू, मुसलमान और अन्य लोग रहते हैं।
 २. इस देश का राजधानी नयी दिल्ली है।
 ३. इस देश का सबसे बड़ा शहर मुम्बई है।
 ४. इस देश का सबसे लंबा नदी गंगा है।
 ५. इस देश का सबसे ऊँचा पर्वत हिमालय है।
 ६. इस देश का सबसे बड़ा द्वीप लक्षद्वीप है।
 ७. इस देश का सबसे बड़ा जल संचयन योजना नर्मदा नदी पर है।
 ८. इस देश का सबसे बड़ा जल संचयन योजना नर्मदा नदी पर है।
 ९. इस देश का सबसे बड़ा जल संचयन योजना नर्मदा नदी पर है।
 १०. इस देश का सबसे बड़ा जल संचयन योजना नर्मदा नदी पर है।

[illegible][illegible]

第一、二、三、四、五、六、七、八、九、十、十一、十二、十三、十四、十五、十六、十七、十八、十九、二十、二十一、二十二、二十三、二十四、二十五、二十六、二十七、二十八、二十九、三十、三十一、三十二、三十三、三十四、三十五、三十六、三十七、三十八、三十九、四十、四十一、四十二、四十三、四十四、四十五、四十六、四十七、四十八、四十九、五十、五十一、五十二、五十三、五十四、五十五、五十六、五十七、五十八、五十九、六十、六十一、六十二、六十三、六十四、六十五、六十六、六十七、六十八、六十九、七十、七十一、七十二、七十三、七十四、七十五、七十六、七十七、七十八、七十九、八十、八十一、八十二、八十三、八十四、八十五、八十六、八十七、八十八、八十九、九十、九十一、九十二、九十三、九十四、九十五、九十六、九十七、九十八、九十九、一百。

प्रसन्न होता है यही नहीं दूसरे को इसमें फँसाने के लिए मास्टरी करता है। गवाही देता है परवी करता है। इतना ही नहीं अपना मन मन, धन धन भी करने से नहीं छूटता। निज स्वरूप को भूलकर इसे ही अपना कसब मानता है। उबिनामुचित का ध्यान न कर मनमाना आचरण करता है। सज्जातिस्व का परिहारा कर देता है। अनाति काल से यही इसकी दुर्नीति चली आ रही है। इसी में अपना गौरव समझता है महत्ता मानता है। उत्तम वत की उपेक्षा कर देता है। कामाध जानि सज्जाति कुजाति क भ्रम को भी भूल जाता है। नीच ऊँच का विचार नहीं करता। यह अध से भी अग्रिम महा अधा है। इस ही विषय से विमूढ़ रावण को घोर नरक में जाना पड़ा अमना राता को उभय लोक में दुःशा सहनी पड़ी। अनका उपाहरण है इससे कुफल के। किसी पुण्य विषय से जीव स्वशर सनाप व स्व पनि सतोप वन धारण किया, कभी-कभी अतिचार सगाया था कभी निरतिचार पालन किया। दोनों में कुफल गुफल को भोगा। हे भाई आत्माराम अब तू सब अच्छा बुरा देख सुन भोग चुका। अब यथाय को समझ। उत्तरात्तर स्वयं सुख की ध्वज या ब्रह्मचर्य के आनन्द का प्रयत्न कर लिखाती है। स्वयंविषय का विषय का सबधा त्याग ही ब्रह्मचर्य महाव्रत है। यह व्रत आज तुम परे अनन्य पुण्य का फलस्वरूप मिला है। इसे अमूल्य निधि समझ। इससे रक्षण का सतत प्रयत्न कर। नव कोति से १००० भी को धान का सतत प्रयत्न कर। इसमें तेरा अपना सुख निहित है। नील की नव वाशा का ध्यानकर। अनिचारों का परिहार कर।

हे आत्मन रमना इन्द्रिय के बस होकर तू अनन्य दुखों को उठाता आया है। रमना का विषय मात्र चार अंगुल में है। देखो सास मेंह में डाला कि बिह्ला का अग्र भाग पर लगते हा छट्टा मीठा घारा, चरपरा आत्म आनि रस का स्वाद आना है। गले में उतरते ही स्वाद नीचे ग्यारह हो जाता है। कि तू इस अंगिक सुख के लिए जीव अहनिश हिमादि पापों को करता है। भक्ष्य और अभक्ष्य के विचार से शूय हो जाता है। हीटन बाजार आनि का अमर्यादित भोजन करता है। हे साधा ! तुम विचार करो तुमने रसना इन्द्रिय विषय महाव्रत धारण किया है। अब रसा का विकल्प क्या ? शाक मत्ता मेवा मिष्टान्न की चर्चा क्या ? चारे ताते में राप ताप किसलिए ? रने मुख का विचार क्यों करना ? पर पर में एक बार निर्दोष शुद्ध पाणिपात्र में गाथरी करने का तरा प्रण है अयाचक वृत्ति तरा गुण है फिर आवक के प्रति रागद्वेष हान का क्या कारण ? काई दे न दे जसा चाह वसा दे जब चाह तब दे। तुम्हें तो जानमानुसार विधिपूर्वक उचित समय पर जो कुछ मिल उभा में से सताप पूर्वक यथावश्यक ले लेना है। सभी तो रसत्रिय विषय होगा। जो इस व्रत का निरतिचार शुद्ध मीन से अयाचक वृत्ति से पालन करता है उसका कमाना वरणा कम का विषय उत्तरोत्तर सदापन्नम बढ़ता जाता है। भाव का पुटि हाती है। सतोप प्रकट होता है। ओनुपता का नाश भेदा और भक्ति

का पात्र बनता है। अवश्य इंद्रियाँ और मन उमड़े आधीन हो जाते हैं। विषयों की उत्तमता निस्तब्ध हो जाती है। भवग और वराम्य का पोषण होता है। उपमग परीपह महन की शक्ति आती है। कम निजरा रूप बन्नी हो जाता है। कपामो का निग्रह होता है। अतः हे विजयाभिषापी तू महानापी चतुर है। रगता के वस न हुआ तो समार का किनारा निकट है।

देखो एक एक इंद्रिय के विषयासक्त जीव भयकर कष्ट उठाते हैं। यहाँ तब कि मरण को भी प्राप्त हो जाते हैं। रमना का वगवर्नी मुभीम चक्रवर्ती सातवें मरक म पहुँचा। स्वयं इंद्रिय के विषय प्राप्तता मात्र से त्रिजगत्त्राधिपति रावण अभी तीसरे नरक में बिराजमान है। धूर्ण इंद्रिय के वस हो भौरा कमन म गंधी क लिए व हो जाता है और प्राण बचा देना है। दमो प्रकार पनग चक्र इंद्रिय के वस में अपनी जीवन लाला समाप्त कर देता है और हिरण्योर्ध्व इंद्रिय के विषयासक्त है अपना जीवन समाप्त कर देता है। मनुष्य के पाँचा इंद्रिय द्वार खोल रहे हैं। प्रत्येक इंद्रिय स्वतन्त्र अपने अपने विषय में दौलती रहती है। कहा भी उह स्थिरता नग है। फिर भना परमाण कैसे हा? अरे भाई सबका सार मही तो निवर्तता है कि इंद्रियाँ को विषया से यावत्त करो। जितना विषया से वराम्य होगा, उतना ही जाव सुगी होगा भाति पायगा। आनन्द विषय सेवन में नहीं है उनका त्याग में है। भाति राग में नहीं है किन्तु वराम्य में है। सुख भोग में नहीं, विराग में है। कारण पराधिन सुख नहीं होता। पराधानता सतत दुष्प्रमाण है। स्त्री पयाव पराधीन होने से दुष्प्रमाण है पति विधि नारि सखी जग माँहि पराधीन मयन, सुख नानी उक्ति प्रसिद्ध है हमसे स्पष्ट हो जाता है छूने से चखने से मूषन दण्डन सुनने से होने कासा मुख पराधिन है यथाय नहा क्षणिक है सच्चा नहीं मुष्मास है मृगमृणा है। प्रत्येक के भोग के अनन्तर प्रमाद आयास धम आकुलता और चिन्ता लगी है। अतः हे आत्मन तू सावधान हो। अतः बन्ती स्तम्भ सेमर के कूप और द्वापण पन की भाति का त्याग कर। अपने में अपने अतीन्द्रिय सुख का अवगण कर। घाण के वगवर्नी हो अपने विज स्वस्व को धून अनाल का धून फिर पर मन चक्र।

हे आत्मन तू बार-बार सम्बाधित किया जा रहा है। तब अन्तर यह समझ में आ रहा है कि इंद्रिय विषय सभी तुम्हारे (आत्मा) के पालन हैं बुरे हैं ये त्याग्य हैं। प्रपन भी दण्डना है अनुभव करना है फिर भी क्या कारण है कि मनम व्यावर्तन नहा हुआ? पुन-पुन उठा में घम जाता है। आश्विर घन कमजोरी क्यों है? कर्मी में चार घमना है हमका पना लगा। जिघ्रह द्वार है उसे रोक। दमतावरणी कम के सायागम से दमन शक्ति प्रकट होता है देखने रूप किया सत्य ही होनी चाहिए किन्तु जालावरणी का उन्म होन से अनाल का पनी आ जाता है वह अनाल माह में मभयता कर कृद-मय हृष्टि को विह्वल कर देना है फलन गुमा शुभ के

विवेकहीन होने से वस्तु स्वरूप को मयाप नही देख पाता ॥ तब यग-सद्वा दृष्टा म लुभा जाता है और भग्न जाता है। यही कारण है कि नहीं चाहने पर भी कभी कभी जीव-मन भटक जाता है पना नही चनता बब विघ्नर कसे छसक गया। यह मन की दशा पूव मिथ्या अभ्यास का दुष्परिणाम है। अनान हटे तो सज्ज्ञान जाग्रत हो। मोह मरिचा का वमन कर तब राग द्वय परिणति छूटे। राग-द्वय म अभाव से कुछ भी देखो कुछ भी जानो उसस जीव आत्मा की कोई छति नही हा सकती। यह है साम्यभाव का महात्म्य। समता भाव विषय व्यावृत्ति का उपाय है। कर्म का काम है-देखना यह उसका स्वभाव है सामने आया पदाय भमवेगा ही उसम राग द्वय परिणति करना म करना अपना काम है। पण्य तो कहता नही कि मुझ वखो सरागे या निन्ने। वास्तव म यह अच्छा बुरा है भी-नही। यह तो अपना ही स्वभाव है। अत तू सगानी जीव है विषया म प्रवृत्ति मन कर। कथुरिन्विय क विषय म आसक्त पतन की भांति विमूढ़ हुआ तो जीवन भयकर खनरे म पड जायेगा दुर्गति का पाप होना। अत अपना बरण कर।

देखो ससार में सात स्वर हैं। माना म ७ नरक द्वार हैं। य सात घोर सागर हैं। किन्तु ये सातों शुभा शुभ समय प्रकार हैं। अशुभ स्वप्न के कारण हैं ता शुभ सत्त परम स्थानों के साधक। सात सरयो क चीनक। सात शीतो क नावक। सातों शुभ स्वर शा माना सात अपिप्यों के उरपात्र हैं। ह भाई एक ओर भयानक बाधा है दुःख और अशान्ति है तो दूसरी ओर सुख शान्ति अक्षय पन का साधक सामग्री है। दोना से ऊपर उठकर तेरा अपना निज स्वभाव है। एक आरम स्वभाव का भावक है और दूसरा उमका साधक। एक मे तनाव है आकुलता सङ्ग और अधीरता है तो दूसरे म सौम्यता, समता विश्व और धय एव अमता है। इसी क्षमता म माह ममता का अभाव होने से स्व स्वरूप की ओर उन्मुखता है। ह नादिनु साधो। तू अपना हित खान। जिसम तेरा कल्याण हा बही कर। विषया म आसक्ति दुःख ही है। इन सप्त स्वरो मे खनासक्त हो। यदि सुन्दर कर्मोय पला है ता बीन राग प्रभु की स्तुति पूजा स्तोत्र पाठ पढ़ गा भक्ति कर रावण मे कलाश गिरि पर अपनी नसी से तद्वरा बजाकर रम्य स्वर म अहून प्रभ का गुनगान दिया फलन अर्हत पन का ही बंध बिया। जो जिसकी आराधना करेगा उसे वही आराध्य पद सिद्ध होगा यह नित-देह है। पञ्चपरमेष्ठिया का स्तवन करने से उहा पनों को पाकर जीव अनुक्रम से अपने स्व स्वभाव की उपलब्धि कर सेता है। हि साधा। यह वेप भी तेरा नही है, इसम भी मोह ममता मत कर किन्तु इस निर्मोप प्राप्त करने से यह तेरे निज पन का साधक है। अत इसकी भक्ति पूजा में सम्य हो।

हे आत्मन तू तित्य स्वभावी है। विहार तेरा स्वरूप नही है। तेरा स्थान सुरक्षित मुनिरिषय एक ही है। यही से बही जाना तेरा निज स्वभाव नही है।

किन्तु यह विहार पर रूप है। यह सत्य है पर क्या विहार उद्वेग का है ? यदि उद्वेग का माना जाय तो मुक्ति का भी विहार होना चाहिए। आग बहने से मुक्ति भी तो आग ही है रेल में मोटर में गाड़ी आग में। आग भी जाती है। ठीक है परन्तु मुक्ति इच्छा से मनी से जाया जाता और रूप स्वयं इच्छा से जाते हैं। यह इच्छा क्या ब्रह्मा है ? जीव की परिणति इच्छा शक्ति है जो जीव को वह स्थान में दूसरे स्थान पर समन कराता है। यह चरना शक्ति का विहार है या यों कहिए कि यह आत्मा का विभाव रूप परिणमन है। अतः इस ब्रह्मादिक शक्ति का निमित्त ही विहार का कारण है। तू इस रहस्य को समझ। अब प्रश्न यह उठता है कि मानिए विहार क्यों करना ? अनादि काल से यह आत्मा कम ज्ञान में निरत आया है वह कर्म शक्ति आत्म शक्ति से व्यर्थ रूप से घग बिन गई है। दोना के तायीय से एक तीसरी विलक्षण शक्ति पैदा हुई और उसमें हुआ संसार भ्रमण। भ्रमण से भ्रमण को मिटाना है। विवेकपूर्वक यत्नाचार से शिवा गया विहार ही अशुभ को मिटा सकता है। इसीलिए साधजन शब्द मिष्ट भाषा की ब्रह्माव जिन दशनायें गुरु ब्रह्मायें समाधि स्थान अवेपथाय एवं निर्विकल्पाय की लक्षणा करने के लिए स्थापना कर के विहार करते हैं। हे गाथा ! तू भी इस उत्तम विहार में संसार भ्रमण रूप विहार का नाश कर सभी तेरा विहार साधक होगा। अनादि काल का ज्ञान छेया। आत्मस्वरूप विनेया। निजधाम में पहुँचो वाला ही विहार कर।

जावन में अनर्क समस्याएँ हैं। ये पहली बनकर आती हैं जिनका मुआना सरल नहीं। स्वभाव और विभाव का अन्तर्गत चलता है। गतिारिक जीवन उद्वेग के सयोग का परिणमन है। उद्वेग और चरन अनादि से इनके घल मिल कर एकाकार हो गये हैं कि इनका पृथक् करना अति दुर्लभ हो गया है। पुद्गल परमाणु और आत्म प्रदेशों का एक क्षेत्र बनाह हो जाने से इनकी पहिचान दुर्लभ है। बिना समझ इनको छुना-छुना करना अति कठिन है। तो भा जीव में ज्ञान शक्ति है। विवेक गुण है भेद विज्ञान प्रणाली है स्वसंवेदन आधार है। स्थानुभूति के माध्यम में वह अपने विज्ञान में मन स्वरूप विज्ञानमयी आत्मा को प्रकाश के द्वारा बह तो तत्काल ज्ञात कर पृथक् कर सकता है। हे गाथा तू इस रहस्य को समझ। विकारों का सख्या अनन्त है और उनको देखने जानने समझने की तरी निज ज्ञान शक्तियाँ भी अनन्त हैं, जिन्हें इन उद्वेग परमाणुओं में आच्छादित कर रक्खा है। तू इष्ट स्वभाव को समझ जिन वाणों का अज्ञान कर मिथ्या भोह विभ्रम को छेड़ ज्ञान की तराजू पर तौल और चारित्र के पलटे पर रखकर सत्यकरण की बड़ी परब्रह्म बस अपनी वस्तु छोट के। तब किये बिना आत्म शोधन नहीं हो सकता। मोहित किये बिना उसकी पहिचान नहीं हो सकती और बिना पहिचाने पा नहीं सकते। भ्रम संपन्न को हड़कते सत्य धारण कर उसे वृद्धिगत करो ज्ञान वैराग्य बढ़ाओ। सवेग और निवेग का पोषण करो। सभी पुद्गलाय साधु पद साधक होगा। ब्रह्मा

पिशाच है ये स्वयं भी आज्ञामण करती हैं और अपने परिवरों को भी पीछे उगा देती हैं जो चारों ओर से आकर चिपटती नहीं अपितु अपना मोहक रूप दिखाना कर फुलवाती भी हैं। अतः इनसे सावधान रहा।

ह साधो यदि तुझे सच्चा सुख चाहिए तो दुःख को गले लगा। सांसारिक या व्यावहारिक दृष्टि में जो दुःख है वही वास्तव में तप सच्चा मित्र है उपकारी है। देखो तुम मरण से डरत हो, दूर भागते हो पर विचार करो दाहण बेगना से ज्ञान जिताने वाला यह मरण ही है घोर यातनाग्रा से रक्षा करता है जीण-जीण कृतियां से निकाल कर सुन्दर मयीन महान मे से जाकर बसाता है ऐसे उपकारी मित्र को तू उपेक्षा करता है। यह क्या सही सज्जनता है? विवेक है? बुद्धिमानी है? नहीं कभी नहीं यह तो दृढघ्नता है। तू विवेकी है ज्ञानी है महान है। बुद्धि का सही उपयोग कर। मरण से तनिक भी मन डर। इन्द्रियाँ इन्हें देख। इनका क्या स्वभाव है। ये चापलूस हैं ठग हैं भयंकर घोर हैं। जोरी करते हैं और छीना जोरी भी। इनको पोष-पोष कर बनाते जाओ ये शोष शोष कर तुम दीमक जमा खोखला करती जायेंगी। अतः भोजनरहित असहाय कम धिनाचना बनाकर दूर ही जायेंगी कोई भी साथी न होगी। तब उस असमय अवस्था में यही सच्चा मित्र जिसकी तू उपेक्षा कर रहा है जिससे भय ही नहीं बना भी करता है गाली भी देता है वही आकर ज्ञान देता है उस कष्ट से रक्षण करता है। इसलिए भ्रमार्थ उसके स्वागत की पहले से तयारी कर। इन्द्रिय-गिर्यों का त्याग कर। राग-द्वेष मोह ममता को छोड़। निज स्वरूप को भ्रम। जब तक इन्द्रियाँ मस्ती में घूम रही हैं तब तक इनकी ठग विद्या को समझ कर इनसे जप-तप समय सत नियम त्याग आदि कर आत्मा की सिद्धि कर ले और इनके घोषा देने के पहले ही तू इनको लात मार कर समाधि मिट कर ले।

हे साधो आश्रय परीपह जयी बनी। बध-बधन सहन करना सरल है किन्तु बट बधन निचा गाली सुनकर साम्यभाव धारण करना अति कठिन है। परन्तु ऐसा करना ही धर्मा भाव रखना ही आश्रय परीपह जय है। यह व्रतों की जननी है। इसके रहने से तप की शोभा है। तप का सार है। तप अनन्त कर्मों का नाशक। उसकी रक्षा यह परीपह जय है। तू ज्ञानी है भ्रम्य है। हे ज्ञानिन शान्त जट है, योगविक है। तू उसमें क्यों विकारी होता है। फिर वह यह तो कहता नहीं कि तुम मुझे सुनो समझो? तुम स्वयं उधर उपयुक्त होते हो। अरे भाई जब वह तेरा स्वभाव नहीं स्वभाव साधक भी नहीं, प्रेरक भी नहीं फिर तुम क्यों उधर जाते हो और क्या उन्हें सुनते हो और फिर क्यों सुनकर उनमें राग द्वेष पन करके हो? इष्टा निष्टा बुद्धि करते हो? यह तुम्हारी अज्ञान दशा है, विभाव परिणति है इसका त्याग करने से ही तुम स्व स्वभाव में प्राप्त हो सकते हो। तुम समता रस के भोगी हो साम्य धन के अधिपति हो। एतन्मय निधि के धनी होकर विकारी बने भिरकारी क्यों

बनते हो ? शरीर जड़ है इसे ही मगारी लोग लेगते मानते हैं और इसी के मान मात्र मित्र का सम्बन्ध जोड़ते हैं इसी में इतना निष्ठा बनाता कर राग दण करने लग नवीन कर्मों का मन्त्र कर चतुर्विध ध्यान करते हैं । यह अनाद ज्ञान है नू प्रब पानी हुआ है तबज बन । आचोग का त्याग कर दामा गति से इन कोशिका को नुहा और स्वमवेष्टन से आत्मो य आनन्दारम का पान कर ।

हे आत्मन नू गुण गागर है । बड़ा आगरव है दुःख गागर बना हुआ है । सुख कहा है ? घन सम्पत्ति वैभव मंगलि भोग विनाम पश्चि दिग्गाम म अनादि से नू भटक भटक कर देख क्या पाऊँ नहीं भी रंगमान भी गुण की शक्त नहीं पायी फिर क्यों बावरा हुआ है । ज्यों ज्यों कर हावा त्याग भी कर दिया । अरे त्याग क्या किया ये तो त्याग्य हैं ही । तेरी है ही क्या ? क्यावों का परिष्कार किया पर य भी पर स्वरूप हा है । पर ही को तो छोड़ा । छोड़ है पर वस्तु को ग्रहण करना पारी है नू क्या चोर है उह देख भी मन । तब त्याग दी फिर अब उधर क्या शक्ति है ? पीछी कमण्डलु ग्रास्य केना धनी ऐ क्या पर कहा है ? इनम भी ममता क्या, राग क्या ? सप का व्यामोह क्या ? अरे ज निज विचार कर ये सब तरे आरम पतन क हेतू हैं । निर्विकल्प त्याग क ध्यान है । ये परिग्रह है इनम आसक्ति पुनः हृद रौद्र ध्यान का कारण हो जायेगा । बिबेकी नूतु ही है । अतः ॥ को अपना मान उसी पर विश्वास कर (नव तत्त्वों क बीच रहकर भी यह नव तत्त्वा से निराला है एक है अघण्ड है । ज्ञान-दत्तन केना स्वरूप है । बाकी सब सयांगी हैं पर हैं, तुलसे धृषक हैं । उनम से परमाणु मात्र भी तरा नहीं है और न तू उनका है । उनसे तरा कोई बाय सिद्ध न हुआ और न हो सक्ता है । लोभ कपाय का मूलोच्छेदन कर यह बड़ी बचक है स्वय भी आजपण करती है और अपन परिहार को भी भेजती है । अतः इससे तू हर दण सावधान रह । तनिक भा विमल गया तो बस तेरी अमूर्त्य निधि बराग्य को धूमिल कर देगी । मोह राजा क चतुर्न मे जसा दगी । जहाँ के द्वारा वास की अवधि का कोई ठिकाना नहीं है । ह साधो निनारा अति निवृत्त आ चुका है जीवन तरणी की भने प्रकार साध ।

साग जय आधार्मों की सहन करना परमावश्यक है । ये वातनार्म हमारे जमा गुण की परिचायक हैं । धर्म की चोतक हैं । सहन शक्ति की परीक्षक हैं । इनसे पार होने पर जीवन विकासामुक्त होता है । आरम-आसक्ति बढ़ती है । आत्म बल प्रकट होता है मान कपाय का नाश होता है । शम दम का भाव आप्रत हाता है । स्वाभिमान को बल मिलता है और अन्तरंग शक्तियों का विकास हाता है । बटु मधु बाणा ॥ साम्य भाव रखने का अभ्यास होता है । अनान परीपह स्वयमेव विजित हो जाती है । कपाय का परिष्कृत घटता है । बराग्य की पुष्टि होती है । मवेय आप्रत होता है । साध ही जीत उज्ज भूख प्यास आदि की आधार्मों पर भी आधिपत्य हो जाता है । अतः साध का विहार करना साधक है । धम ध्यान की सिद्धि होनी है ।

समाधि का पान होता है। समाधि योग्य क्षेत्र भूख व देश की माधना हो जाती है। निर्विकल्प ध्यान की सिद्धि होती है। मोह ममता का नाश होता है। पान ध्यान की वृद्धि होती है। यत्र यत्र का व्यवहार आचार पद्धति पात हाती है। सिद्ध सत्र अनिशय सत्र, निषदाग्नि निषधिकाग्नि स्थानों का दहन स्पन्द-वातावरण काल आग्नि का नाम जानकारी हो जाती है। जिससे समाधि की माधना सिद्धि होती है। मानव जीवन या माधु जीवन में समाधि का सर्वोत्तम महत्त्व है। समाधि जपय रूप में भी यदि एक बार सिद्ध हो जाय तो नियम सं ७ में भव में आत्मा परमात्मा बन ही जायगा। हे मुमुक्षु आत्मन्! अपने इस उद्देश्य को सम्मुख रखकर तुम विहार करा। आत्मा की सिद्धि करो सभी सुम्हारा विहार साधक श्याम। व्याप्ति पूजा, लाभ प्रतिष्ठा का प्रयोगन तन्त्रि भी मत आने दो। धर्म प्रचार के साथ आत्म धर्म उपनिधि का रहस्य बनाओ।

हे आत्मन तू दक्षज पान पारिज का घनी है। आज वह तरी सम्पत्ति छपी हुई है तू उसे खोजकर देख भल प्रकार सम्हाल गाँव का गवाकर कमान बन रहा है। इसका कारण है स्व स्वभाव से धिय कर पर में सिपयता। राग द्वेषाग्नि कपाम विभाव हैं पर हैं। जोध जीव का शत्रु है मान जोध का मन्त्री है माया पुरोहित है लोभ जानवाल है। जहाँ लोभ राजा आव बि मन्त्री जा भूछ तान कर पड़ हो जात हैं हाँ-हाँ आपका अपमान असह्य अपमान हुआ है जाध का डहा निधनाय बिना य बस में नहीं हो सकते माया आचार भव प्रकार ममझानी है सत्य है मान की बात मानना ही चाहिए। लोभराम जी का तो कहना हा क्या दान पवान्न भीम लपलपाते सार टपकाते नाम टिनकत सरखवाते बस तयार हा जात हैं बिचनी चुपड़ी बातें बनाने। हाँ हाँ ससार की सब वस्तुमा क अधिपति आप हा हैं। आपका सबसंग्रह कर ही बना चाहिए। मुन्दर मुडील रम्य कमरीणी भइबीनी दया बितनी छबीनी है बितनी रगीती है अमुक मे वर गुण है अमुक में यह अच्छा है यह बुरी। अरे बुरी भी है ता क्या हुआ संग्रह तो कर हा सेना बान्धि पड़ी रहता एक ओर। समय पर काम आयगा। अरे भक्त पवन पर घाटा दग और छोटा पगा काम माता है। कोई वस्तु बुरी भती नहीं सब सबय करो रखते जाओ। यह लोभ का परमा जीव का मन मस्तिष्क इन्ध्रि हाय-वाँच आग्नि सबका बनल बना है। न इधर का रहता है न उधर का। हे आत्मन तू सुप्त है साध है पर वर मन भूल की लुप्त पर यह अपना रय चड़ाय बिना रह सकता है। पाठी कमण्डलु शान्त बेयटन भीनी पाटा साड़ी आग्नि की साज-सज्जा कमर दमक आग्नि निपलायगा किन्तु तू सावधान रह। इनक पचद में पड़कर यदि तू अपने स्वभाव बर्तव्य स्वरूप से च्युत हो गया तो बन समझ से, समार में इन लोभ और परमाद दाना से घ्रष्ट हो जायगा।

प्रकट होगा निर्वेद बड़ेगा समार शरीर और भग्न अभिप्र होगे । उस समय भ्रम पटान हटेगा नान रवि चन्ति हाया । सब चारित्र शिविका म आरु हो शिव रमणी के वरण को प्रयाण होगा । यही सच्चा घर द्वार होगा यही शास्वत सतति और सम्पत्ति होगा । हे माई जिव गामो बन ।

मोह बस मुरासुर नर सार हैं इमे कसे जीता जाय ? प्रश्न कठिन के साथ कठिन-सा प्रतीत हाता है । इसका टुंगिल चारो ओर फला है फिर मध्या-तर म प्रिययां जुनी जुनी हैं । एक ओर से भुलझाओ कि दूसरी ओर टांग उलझना और बात टूटना भाकी नहा रहना । घर का मोह छाडा तो घरना की ममता ने आ पकडा नारी बंधन शिविल किया कि माँ की ममता आँखों म झूमने लगी । उधर से दृष्टि फरी तो सनान का स्नेह पास आ फना । उस जाल की काटा तो सम्पत्ति का ध्यामाह और हमसे पीछा छड़ाया तो परोरकार क्या ने आ धरा । ज्यों त्यो मर्ग से पार हुआ तो जाया की माया म जा मिरा । इन विज्ञान समस्या म उघड़ चुन म पडा छटपटाता है । शरीर विगड़न का बि ता दुबरा होने की आशका जादि नाया विकल्प जाल आ घरते हैं । इन विकल्प जाना म से यदि किसी प्रकार पार होना है तो फिर मान की नाक भाडी आती है पूजा आवर सत्कार मान-सम्मान आदि के फरूर मेघ बा मिर जाते हैं और निज स्वरूप का भान नही होने देते । कराति पूजा साम की चाह म कम कर परमुखावसी हो जाता है । मोह राज का दाब दगता है जीव समझना है मेरे भवन मेरे हिरपी हैं आज्ञाकारी हैं अनुकूल हैं म जो चाहता यही ये करेंगे किन्तु होता है विपरीत । चाह चाह म फूला देख भवन समझ लेते हैं कि ये मटात्मा जय जय नाव चाहते हैं बस वारे सुह हो जाते हैं भुलान गगन भेनी नारी मे साधक का साधना स्वर मिथिन हो जाता है । जो भवन चाहे वही उनकी वाणी उपदेश आगम शास्त्र हो जाता है फलत पवन का गर तयार ।

काम विकार विजय करना भनि कठिन है । स्त्री मान का त्याग कर घर वार का परित्याग कर भी इस पर विजय पाना दुस्तय है । यह अनदि से चारों गनिया म जीव पर हावी होना आया है । सब दानव सुर असुर तर पगु आदि सब हा इस बली से हार धाकर इसे गले का हार बनाये हुए हैं यहाँ तक कि भारवी भी इसकी ज्वाला म झुलस रहे हैं जहाँ केवन नपुंसकत्व ही है । अनादि स सहषर होने के कारण यह एव नपविक स्वभाव बन गया है । बगानियों ने भी इसे नसगिक प्रवति मिड किया है । बालक की बालिका और बालिका को बारक का दशन भी न हो ता भी यह मन्त्र दाह उहें सताय बिना नहीं रहनी । यह ज म बात स्वभाव है जो प्रारम्भ म प्रच्छन्न रहना है और इन्धिवत पत्थर प्रकट हो जाना है । इमीलिए भेन विनानी साधु बन इसके कारण इन्धिय पोषक विरयों का परित्याग करने हैं । एकाकी निस्पृह हो आत्म भावना म निमग्न रहने हैं । दान्तानुप्रेषा का

दत्त वित्त चितवन करते हैं। स्वानुभूति में तीन आत्मोत्पन्न सुख का स्वमन्त्र द्वारा अनुभव करते हैं। मन और इन्द्रियों पर विजय करते हैं। शुद्ध नीरस दशा मुखा एक बार दिन में एषणा शुद्धिपूर्वक पाणिपात्र आहार कर इस नमस्कृत प्रवृत्ति पर विजय कर तीन लोक के अग्रिमावर्त बनते हैं। हे आत्मन तू साधु है तेरा भी यही वक्तव्य है वस्तु स्वरूप विचार स्वाध्याय प्रमोद बन सत्सार प्रनाम्न त्याग मन्त्र राज पर विजय पाना है तो एषणा समिति पर विशेष ध्यान दे। तत्त्व विचार कर। आगम चतुर्धन। आगम अवाध है उसी में मोते लगा।

हे आत्मन् तू स्वन्त्र है। स्वन्त्रता का दुष्ययोग करने से तू बन्धन में पड़ा स्वच्छन्द प्रवृत्ति करने से सत्सार बन्धन को प्राप्ति हुआ। कम बन्धन से जकड़कर स्व स्वरूप से व्युत्पन्न हुआ। बाह्य पदार्थों में निजत्व बुद्धि कर भटक रहा है। पर पन्थाय परिग्रह है क्योंकि पर वस्तु के ग्रहण का भाव बिना भ्रूणों का नहीं जाना भ्रूणों ममता दोष सालव एक ही पर्यायवाची हैं। इनके ग्रहण का भाव परिग्रह है उत्तम आनन्द होना परिग्रह सत्प्रधाननी रौद्र ध्यान है जो महान् दुर्गति नरक का कारण है। नरक की भावना अनेकों बार सहन की अब भी यदि उसी का साधन रत्न शिवा कर्तव्यों में समा रहा तो स्व-स्वरूप की ओर कब-कैसे प्रवृत्ति होगी। हे ज्ञानिन् साधधान हो स्व-स्वरूप का पहिचान, अपनी वस्तु पर दृष्टि कर। निज भाव पर दृष्टि रख, तभी संसार का अन्त हो सकता है। परीन सत्सार हान पर ही सत्त्वा सुख आत्मोत्पन्न सुख की प्राप्ति होगी। परम सुख दुख नहीं है। स्वन्त्र अनान मोह मिथ्यात्व से दुःख है और अपने ही ज्ञान सम्पन्न व और अज्ञान है। ये ताना रूप ही आत्मा है यही आत्मा का स्वरूप है। सत्सार की यति विधि की समझा लोगो की यति का अन्त कर दो। यतिदुग्ध है कुटिल सोम है स्वाध से भरे हैं भौतिकता में पर तब दूध है आध्यात्म से दूर हट रहे हैं नरक स्वर अन्तित होता जा रहा है भागों का प्राचुर्य है। भाग बिनासों में गलत तब दूध रहा है। इन सब प्रतिकूल बाधावरण में अब हि चारों ओर से मुह पणि बनाने का ही साधन किया जायेंगे। उन्माद की ओर बढ़ने पर गिराने का प्रयत्न किया जायगा। इस अवस्था में भा मुहें गन उद्यम धन साहस बन बुद्धि और पराक्रम का अवलम्बन तब अन्त उन्माद की पूर्ति करना है। यही सत्त्वा पुरपाय है यही साधना की साधकता है। यही सत्त्वा स्वन्त्रता है।

मिथ्यात्वसाधकता जीवार्थता स्वयं अपने स्वरूप को धूसा हुआ है। इनका नहीं अनन्तरता नाना प्रकार अर्थ रूप निज स्वभाव मानकर विविध कर्तव्य कर उनमें उन्नत रहा है। कर्तव्य भ्रमिन् हो दुखी होकर नाना कष्टों का शिकार बन रहा है। दुखों की ज्वाला में झुनझुना हुआ जीव निजस्वरूप से अनभिज्ञ हो पर पन्थाय में निरन्तर कराना करता है। कर्तव्य करने से दूर हटता जाता है। पर रूप मान्यताई पौर्वाधिक है, भङ्ग है। जैसे कोई जीव का लक्षण कर्म को कहता है

[illegible]

दयालु बन्धु स्वर्ण का शान्त ही स्वर गही कर में था गहरा है । ॥ सुमुख
 यदि न भान भगति कर को दयालु बन्धु है तो स्वर्ण को बन्धुनी पाद का आनन्द
 समझे का प्रमाण कर । रंग शान्त करन

हन्नी बैरागी बनः वा उदयः नमः॥

पूरा विद ज्ञान बीरसाय योजन है

बहुलं वा । मन्त्रादिति ही मन्त्रात् ।

हो ग्यो न। वा ठकना है। अरु म

सह भाग्य स्वभाव अनुभव गम्य

विषय-सूची ४५

सर्व स्थानमानुराग

ਦੀ ਸ਼ਯ ਥਾ ਪਰ ।

ପ୍ରମୁଖ ଭାବ :

६।३८

सप्तमः ॥ ५ ॥

भारत है जेय है

अवस्थान्तर मे

बन्धुगण करो ।

कोई ब्रह्म के उल्टे का कोई ब्रह्म व फलानुभव को तो कोई ब्रह्म को धन्य आत्मा समझ रहा है कोई राग रूप रस विभाव परिणामों को जाब समझता है तो कोई ब्रह्म मिथिल अशुद्ध जीव की क्रियाओं को कोई कहता है आठ बाठ स बनी हुई छान व समान आठ बमों व तबों को छोड़कर जीव नामक द्रव्य कोई भिन्न नहीं है जिन्हा की मायका है भूत चतुष्टय का सपान ही जीव है इन्द्रियाणि, विन्दु एवम् सर्वज्ञों वातराज वापी मे ये सभी कल्पनाएँ असत्य मन गड़त हैं क्योंकि ये समस्त अल्पवस्तु जड़ रूप हैं पुद्गल से निष्पन्न हैं आत्मा जीव चेतन स्वरूप इनसे भिन्न अनुभव में आता है । जड़ वभी चेतन नहीं हो सकता । यदि जड़ चेतन एक हो जायें तो एक का अभाव हो जायेगा । जड़ भिटा तो शुद्ध चेतन रहने पर सत्तारो-छा हो जायगा समार नहीं तो भुक्ति वित्तको हागी सो भक्ति का भी अभाव टहरेगा । तबल शून्यता हो जायेगी । यदि जड़ चेतन हो जाय तो भी अभाव अभाव होगा । पुद्गलाय न रण्गा । अन ह जानिन् साधो । तुम आत्मा का सहो स्वरूप समझो ब्रह्म और आत्मा का अनादि सवास सम्बन्ध है जो हमार मिथ्या अज्ञान असम भाव से बला आ रहा है और राग द्वेष मोह स अटिब बन रहा है इन विभावों को हटान का प्रयास करो । सम्मन्त्र पुद्गल-तपश्चरण-ध्यान स्वाध्याय सवम इन्द्रिय विजय शम दम धरन स बोना पृथक् पृथक् हो जायेगे और फिर तुम्हारा ज्ञान वजन चेतन स्वभाव आत्मा शाश्वत अमर अजर हो जायगा परमात्मा बन जायगा ।

ध्याय वस्तु स्वरूप का ज्ञान ही उग सही रूप में पा सकता है । ह मुमुक्षु यदि मू अपने असारी रूप को जाना चाहता है तो स्वयं को सर्वांग स पान का ज्ञान समझन का प्रयास कर । इसे जान करने का सर्वोत्तम उपाय ज्ञान और व ज्ञय है ज्ञाना वरागी बनने का उपाय सम्मन्त्रिष्ट बनना है । बिना सम्पत्तत्व के प्राप्त और पुष्ट विम ज्ञान वराय्य खींचल हैं अस्तु माह राग-द्वेष का परिणाम कर सम्पत्तत्व ग्रहा कर । सम्मन्त्रिष्ट ही मन्त्रा जानी भेद विज्ञानी बनकर अपन में स्वय प्रविष्ट हो स्वयं को पा सकता है । अपन में अपन को पाये बिना वस्यान नहीं हो सकता । यह ज्ञान स्वभाव अनुभव मन्त्र है स्वतन्त्र से उपलब्ध होन वाला है निजानुभव विषय-वपाना क रण्य स हो सकता है । इन्द्रिय विषयानुराग जब तक होगा तब तक स्वात्मानुराग वसे हो सकता है ? एक काल में एक ही भाव जाग्रत हागा या ही स्व या पर । स्व स्व है और पर पर है । अपने आत्मानु को छोड़कर अथ समस्त भाव विभाव विभावोत्पादक सचित्ताचित्त व मिथ्य भाव द्रव्य पर ही हैं । उन पर द्रव्यों में से एक परमाणु मात्र भी अपन आत्मा का भाव नहीं हो सकता है । इस पर विषयों में समक त्याग यही निष्परिणत है । परिणह बोझ है भार है लेप है यह तनिक भी रहेगा जो ससार सावर के ऊपर नहीं आ सकता । भवसागर में डूबेगा ही । अन ह आत्मन अंतरङ्ग से मूर्च्छा भाव हटाकर अपने में अनुराग करो । आत्मा में दधि बढ़ाओ ।

दत्त बिना विनश्यत करने है। स्वानुभूति में सीधे आत्मोन्मत्त गुण का प्रगट होना अनुभव करते हैं। मन और इन्द्रियों पर विजय करते हैं। शुद्ध तीक्ष्ण बनता है। एक बार जिन में लक्षणा बुद्धिपूर्वक पाणिनाथ आचार्य कर द्वा गीर्णित प्राप्ति विजय कर तीन स्रोत के अग्रिम बनने है। हे आत्मन् तू माया है तेरा स्व-वत्त है तबसे स्वभाव विचार स्वाध्याय प्रेमा का गंगा प्रतीका १० राज पर विजय पाना है तो लक्षणा ममिति पर विजय होगा ६। तब विजय आगम पाया बने। आगम अगाध है उसी में होते सगा।

१ आत्मन् तू स्वयं व है। स्वयं-ज्ञा का दुहावीन करने से तू व स्व-वत्त प्रकृति करने से सत्ता बचन को प्रत्येक दुःख। तब व ज्ञा में स्व स्व-वत्त से बचन हुआ। बाह्य पदार्थों में निरन्तर बुद्धि कर मन्त्र व पदार्थ परिग्रह है क्योंकि पर बन्धु के ग्रहण का भाव बिना तू तू का मूर्च्छा मन का लोभ लालच एव ही पयायवाची हैं। इनके ग्रहण का भाव उत्तम आनन्द होना परिग्रह सरसगा-नी रीति ध्यान है जो महान् दया का कारण है। नरक की पातना अनेको बार सहन की अब भी यदि उमा रर क्रिया कलापों में फंसा रहा तो स्व स्व-वत्त की ओर बच-कम प्रकृति हे जानिन् सावधान हो स्व-स्व-वत्त को पहिचान, अपनी वस्तु पर इन्द्र-भाव पर दृष्टि रख, तभी सत्ता का अर्थ हो सकता है। परीत गमार् सत्ता सूख आत्मोन्मत्त सुख की प्राप्ति होगी। परम सुख दुःख नहीं है। स्व-मोह मिथ्यात्व से दुःख है और अपने ही ज्ञान सम्यक्त्व और अज्ञान है। ही आत्मा है यही आत्मा का स्व-वत्त है। सत्ता की गति विधि का की वृत्ति का अध्ययन करो। कलिपुत्र है कुटिल लोग हैं स्वायत्त स भो में गले तक डूबे हैं आध्यात्म से दूर हट रहे हैं तनिक स्वर पतित है भागों का प्राचुर्य है। भोग विलासों में गले तक डूब रहा है। जन ज्ञानावरण ने जब कि चारा और से तुम्हें पतित बनाने का ही साधन है उत्थान की ओर बढ़ने पर गिराने का प्रयत्न किया जायेगा। इस अव-सत उद्यम भय साहस बल बुद्धि और पराक्रम का अवलम्बन सत्ता की प्रति करना है। यही सत्ता पुरुषार्थ है यही साधुता की साथ सत्ता स्वयं-वत्ता है।

मिथ्यात्वमावृणो जीवार्त्मा स्वयं अपने स्व-वत्त को भूला हुआ नहीं अज्ञानवश माना प्रकार अय क्य निज स्वभाव मानकर विवि-जनम जनस रहा है। फलत प्रमित हो दुखी होकर जाना कष्टा रहा है। दुखों की ज्वाला में झूलझूला हुआ जीव निजस्वरूप से पदार्थ में निरन्तर बहना करता है। फलत अपने ही दूर हटता ज्ञा-मायवर्त पोद्गलित है, अज्ञ है। जैसे कोई जीव का स ज्ञान कर्म

कभी अंधकार रूप परिणमित होता है और न अपने तेज रूप स्वभाव का स्वरूप करता है। अर्थात् बाह्य आवरण येषों से आवृत अवश्य हो जाना है। इसी कारण आत्मा है या स्वभाव से शुद्ध ज्ञान दान चेतना से मुक्त है। कर्मवृत्त। मतिन है। कर्मवृत्त हटते ही आत्मा ज्यों की त्यों शुद्ध-शुद्ध परमात्म स्वरूप रूप परिणित हो जाता है। नित्योन्नि रहन जाता है। हाँ प्रथम आवरण रूप का नाम अवश्य होना चाहिए। यही कार्य हेतु मन्त्र अवश्य करना है।

हे आत्मन् तू अपनी वस्तु की घोष कर। नित्र म नित्र को ध्यान से करी पा लेगा। अपनी घर आने से जाने से ही हो सकती है। अपने घर में जायेगा या संसार की पीठ लियेगा। नित्र वस्तु की वही पायेगा या पर वस्तु नष्ट लियेगा। शुद्ध वही है जिस पर पावर फिर कुछ न हो। उग वही पा लेकेगा जो पर निमित्तक शुद्ध की प्राप्ति छाड़गा। जान वही है जहाँ अज्ञान न हो। वह उग ही प्राप्त होया जिस साक्षात्कार प्रतिभापित हुआ एक माय। मति क्या है? जहाँ से आगनि-गुनरागमन न हो। वह किन मिलेगी? जिनम प्रमथन व कारण कम का माया क्या है? जान क्या है? जान दानमयी चेतना। वह कहाँ है? आत्मा म। आत्मा चेतना का क्या संयोग है? नहीं तात्पर्य है। क्योंकि अपृथक् है। आत्मा और चेतना एक ही है। फिर पृथक्-पृथक् से क्या कहाँ? अनादि से वह ज्ञान चेतना कम चेतना और कमजन चेतना रूप विकसित हो रही है विपरिणामन के कारण उत्तम सहा रूप नष्ट नहीं जाता। बँस? विकार हान से अज्ञान रूप पर भाव के धुन जान से। अब बँस मित? जिन्होंने पा लिया है उसको उन्हीं व उत्पन्न से या तत्पुनत माय पर चले से। जाना होकर भी क्यों अपना हो रहा है अपने स्वभाव धुन जान से। स्वभाव क्यों बना? मोह मति का पान करने से। मोह मद्य क्या पिया? मिथ्यात्व व पत्ते में पड़ जाने से। क्या जाया फन्दे में अनादि से उमी का अनुभव होने से चेतना जान हो अब उत्तरो। अब तो ज्ञान चेतना का अनुभव करो। अपने स्वभाव को समझो आप में आओ स्व को स्व में जानो। विषय भीण क्यायों की लयागा। पर की चीज पर मुख्य हाकर दस्तु क्या बन हो? अपनी गाँठ को पूजी गया या छाँवर भिनुव क्या बनने हो? उठो तबो अपने में धुतो अपने में बने अपने में। कम वही करना है।

हे आत्मन् सम्मन्त्र व भाठ अगा म प्रभावना नामक अंग विषय महत्त्व पूरा है। इसका व्यवहार म तो 'कर जिन घम लियाव अर्थात् नाना प्रकार व शुभ रूप जिन भक्ति रथात्मक पञ्चकल्याणाणि इन्द्रजित तिर्यक्याणि विधान सम्मन्त्राणां निवान शत्रानि तीव्रकल्याणां चतुर्विध सष विहार आनि कराकर जिन घम की बद्धि करना चाहिए। अर्थात् इन उपायों से जैनधर्म का माहात्म्य प्रकट करना मिथ्या दृष्टियों का मान खूर कर सद्धम प्रकार करना धर्म का उद्योतन करना धर्मोपदेशानि द्वारा अज्ञान घम दूर कर सोचों का सम्मन्त्र यथाय धम समझाना या समझवाना

हे आत्मन् राग जीव की पामी है । रेशम की डोरी की प्रची के सहज धुन जाती है उनसन मुनझना अयत दुप्पर हो जाना है । द्वेव मित्राना सरन है किन्तु राग प्रम का पन्ना ज्या ज्यो मुलझाओ धुलता उलझता जाना है । यह राग आग है जिसकी दाह म समस्त ससारी प्राणी जल रहे हैं । जनते हुए भी पजती व रोगी के सेव की भांति साना रूप मानवर उमी म धुसते हैं यह है कम राग की प्रभुता का महत्व । यह अप्रशस्त और प्रशस्त के भन् से दा रूप धारण किया हुए है । प्रपम तो विषय भाग कपाय सम्बन्धी अप्रशस्त राग ही नहीं छूटता यदि वेन वेन प्रकारण अशुभ पन्नाय स प्रीति हटता है—ममत्व क्षीण होता है तो शुभराग की ओर उन्मुख होता है उसमें आसक्ति वर उसे भी विवृत वर झलता है पुन शुभ भाँति के निराग से किसी प्रकार सहा सातिशय पुण्य रूप शुभ राग की समझा तो उसी म सान हा उस पकड़ने की चेष्टा करता है यह पकड़ ही दुखानायक है अरे सीढ़ी चढ़न जाओ मजिल पार होगी किन्तु यदि एक दो सीढ़ी चढ़कर ठसी की पकड़ बट गय ता भाई कभी भा शिखर नहीं पाओगे और यदि शिखर तक पहुच भी गय और बड़ी अड गय तो उसके तल पर कसे जा सकोग नाव ज्या रया सहर तूफाना की पार कर किनारे पर जा सगी जीर बठने बाला बहे कि यह नाव बड़ी उरकारी है इमन मुस पार लगाया है अब इसे कसे छोड़ा जाय ? तो क्या वह सट के रम्य हृदय का अनुभव आनंद स सरता है ? कभी नहीं । इसी प्रकार ह स धो । तू ससार व किनारे पर आ चुका है अब इस वेप ओर इन उपकरणों के प्रलोभन म मत पत जाना । सावधान हो ।

हे मुझ आत्मन जग जजाल स पार हो । यह जजाल बाहर ससार म नही है किन्तु तेर ही अंदर है । तेरा ससार और मोक्ष तर ही पास है । अपना भूल से अज्ञान, मोह मिथ्यात्व से तू स्वयं अभ्रम हुआ आज तब भटकता रहा और अब स्वय ही अपने उत्पित अपने ही सवज्ञान से इस अनादि भ्रान्ति को नष्ट कर । तेरा सम्पन्न दशन ज्ञान और चारित्र्य तुझमें ही विद्यमान है तेर ही प्रभाव अज्ञान राग द्वेष रूप विभावों स तर ही द्वारा आच्छान्ति किय गय हैं । अब तू जब चाह तब बदने ही पुनराय स अपने ही कर्तव्य द्वारा अपने म छिने अपन रतत्रय रूप स्वभाव की स्वय ही प्रकट करने म गुण समर्थ है । पर म अपनी खोज मत कर । पर म आया भाव छाड । पर की निज समझना ही ता अज्ञान है अर घाई रतीना आ गई साल पीला और पीला सफ़ आँि विपरीत स्थिने खगा । चक्षु रोग निवृत्त गया दृष्टि साफ़ हा गर् तो सान सान और पीला पीला ही रह गया । कम यहा तो आत्मस्वरूप का खन है । मच छाव रवि आच्छान्ति हो गया तिमिर छा गया मध पन्ना हूँ प्रकाश आ गया । क्या सूय म अघवार या या सूय का प्रकाश नष्ट हो गया ? नही मुगाना जाव न सूय म अघवार या न प्रकाश ही उसका नष्ट हुआ । वस्तु अपन स्वभाव म कभी अस्त नहीं हाती । सूय म स्वभाव से प्रकाश है न नष्ट

कभी भ्रंशकार रूप परिणमिन होता है और न अपने तेज रूप स्वभाव का त्याग ही करना है। अपितु बाह्य आवरण मेघा से आवृत अवश्य हो जाता है। इसी प्रकार आपका आत्मा है जो स्वभाव से शुद्ध ज्ञान दर्शन धनना से युक्त है। कर्मावृत्त हान से मलिन है। कर्मावृत्त हटत ही आत्मा ज्यो की र्यों शुद्ध-शुद्ध परमात्म स्वरूप ज्ञान दशन परिच का पुञ्ज है। नित्योन्नि रहन वाला है। हाँ प्रथम आवरण रूप कम का नाश अवश्य होना चाहिए। यही कार्य है भव्य तुझे अवश्य करना है।

४ आत्मन् तू अपनी वस्तु की धोख कर। निज में निज की ध्यान से निज की पा मरेगा। अपनी खबर आप में जान से ही ही सजती है। अपने घर में बही आवेगा जो सत्कार की पीठ स्थिराया। निज वस्तु की बही पावया जो पर वस्तु से नेह स्वागेगा। शुद्ध बही है जिस पावर फिर दुख न हो। उग बही पा मरेगा जो पर निमित्तक मृष की भ्रान्ति छाड़या। ज्ञान बही ॥ जहाँ अज्ञान न हो। वह उस ही प्राप्त हागा, जिस लोकात्माक प्रनिभापित हागा एक साथ। गनि क्या है? जहाँ स आर्गनि-मुनरागमन न हो। वह किस भितनी? जिनने भ्रमण के कारण कम का नाश किया है। जाब क्या है? ज्ञान दशनमया धनना। वह कहाँ है? आत्मा में। आत्मा चेतना का क्या संयोग है? नहीं, तात्पर्य है। क्योंकि अपृथक् है। आत्मा और धनना एक ही है। फिर पृथक्-मृथक् से क्या कहाँ? अनादि में वह ज्ञान धनना, कम धनना और कर्मफल धनना रूप बिरुप हो रही है विपरिणमन के कारण उसमें सहो रूप नजर नहीं आता। कस? विकार होने से अज्ञान रूप पर भाव के धुम जान से। अब कैस मिल? जिन्होंने पा लिया है उसको उन्हीं के उरन्ध्र में या सदनकुल माग पर धनने से। जानो होकर भी क्यों अज्ञान हो रहा है अपने स्वभाव धून जान से। स्वभाव क्यों भूना? मोह मन्त्रि का पान करने में। मोह मय क्या पिपा? मिथ्यात्व के पन्ने में पड़ जाने से। क्यों आया फंदे में अनादि से उसी का अनुभव होने से जना जान दो अब उगको। अब ता ज्ञान धनना का अनुभव करो। अपने स्वभाव की समझो आवे में आसो स्व को स्व में जानो। विषय भोग कदायों की रयागी। पर की बीज पर भुग्घ होकर दस्य क्या बन हो? अपनी गाँ की पूजी गवा मा छपाकर भिम्बु क्या बनत हा? उठो तपो अपने में धुसो अपने में मरो अपने में। बस मदा करना है।

हे आत्मन सत्यकथं न आठ क्या में प्रभावना नामक अग विशय महत्व पूण है। इसका व्यवहार में छा 'हर जिन धम दियावे अर्थात् नाता प्रकार के शुभ रूप जिन भक्ति रथासक पक्कस्थाणाणि द्वाध्वज छिद्रवन्ताणि विधान सन्देशवन्ताणि निवाण सन्ताणि ताववन्ता अनुविध सध विहार आनि कराकर जिन धम की वद्धि करना चाहिए। अर्थात् इन उपाया से जनधर्म का माहात्म्य प्रकट करना मिथ्या हृष्टियों का मान चूर कर शद्धम प्रचार करना धम का उद्योतन करना धर्मोपदेशाणि द्वारा अनान धम दूर कर लागी को सच्चा यथाध धम समझाना या समझवाना

ह। ह भव्यात्मन् बस-बीय को बिना छिपाये तपस्वता से तपस्वरण करो भान ध्यान से आत्म शोधन करो। आत्म शुद्धि के बिना परमात्म की सिद्धि नहीं हो सकती।

हे आ मन बीतराज मुद्रा का दशन करने से भावो म परम वरात्म की प्राप्ति होती है। शान्त मुद्रा अनरात्मा की मुमुक्षु शक्ति को जगा देती है। परम मोनरागी प्रभु की सौम्य छवि मुख का सोन बहा देती है। एक अणुव शक्ति मताप हृदय म प्रादुर्भूत होता है। त्रिविध वरात्म बर्द्धित होना है। ता० २ फरवरी १६७५ सायबाज अयोध्या म पहुँच कर श्री १००८ आदीश्वर प्रभु की अनुपम मनान बिम्ब का दशन कर माना वचनाप शान्त हो गये। ता० ३२ ७८ की पाँचौ तीथकरा के जन्म स्थानों का दशन कर अणुव आनन्द हुआ। हे मुमुक्ष परमात्म स्वल्प जिन बिम्ब का तू सतत चिन्तन ध्यान व स्मरण कर। श्री जिन बिम्ब का महा मस्तकामिषक करन से व करान से भव भव व अनन्त पातक नष्ट हो जाते हैं। जलाभिषेक बाह्य मल का प्रशानन करता है तो दुग्ध दही का अन्तरङ्ग राग दूध का बिनाश करता है। साम्य भाव जगता है। सबी पक्षि का अभिषेक ममस्त शारारिक रोगा-व्याधिया का नाश करता है तो चन्म स अन्तरङ्ग कपायात्मि मनो का प्रशानन होता है। गभी म इसका महत्व स्त्री पर्याय का नाश बनवाया है। मन्त्र परिग्रह त्यागी साधु सत भी जिनाभिषेक बड़ा भक्ति और धृष्टा से दशन हैं।

जिन निवाण महात्मक अष्ट कर्मों के नष्ट करने की प्ररणा प्रदान करता है। भगवान न किम प्रकार समस्त सामारिक बंधन का पूजन नवकोटि स परि त्याग कर समय धारण किया पालन किया ध्यानात्मि प्रवाल कम शत्रुभा का सहार किया महा तजस्वी अरण्य नवल नान का मूय उन्ति किया और पुन निज शुद्धा भा म सोन ह। वमश शेष ७२ व १३ प्रकृतियों को नष्ट कर परमात्मा बन गये। इस प्रकार विचारने से ध्यान की सिद्धि होती है। परम वरात्म पुष्ट होता है, जान की बद्धि होती सम्बन्धक दृढ़ होता है। आत्म भाव जाग्रत होता है। अनन्त गृणा का विकास होता है। निर्विकल्प भाव उत्पन्न होत है। माना सकल विकल्पा की श्रु श्रुता टूट जाता है।

हे आत्मन् विषय कर आज के जिन ही प्रथम तीथकर आदि प्रभु साक्षात् भगवान परमात्मा हुए। धम ध्यान से ऊपर वी पहुँचे हो हो चुके थे। शुक्ल ध्यान व पुषवत्व वितन, एकत्व वितक के गारा मूर्धम क्रिया निर्वर्ति का प्राप्त कर सम वमरण की विभूति से शोभित हुए। पारा और वमव का चकाचौध मानुपी हा नहीं देवी विभूति भी घरा पर आ प्रभु व पारों पार छ मई था। परो वरणों का भुम्बन करनी मिन्नीती करती मस्तक झुकती नाना प्रकार थापतूसी कर रिमाने का प्रयत्न कर रही थी। यही नहीं प्रभु क ऊपर भी छत्रत्रय के बहाने नृत्य कर रही

आप में आपको पाओ । अपने म अपने को पाना ही मोक्ष माग है । मोक्ष है स्वानुभव है परमात्म शुद्ध दशा है ।

विचार क्यों होता है ? निमित्त मिलने पर सदनुसार स्वयं परिणमन करने से । कम उन्मय या उत्तीरणा को प्राप्त होते हैं । क्यों ? उनका स्वभाव है । स्थिति पूरा होने पर उन्हें चैन दया है । जसाता का उन्मय आया दुःख होगा ही निमित्त पाकर वह बूझ देगा । साथ है किन्तु कम उन्मय काल म यदि निश्चय नय स हम विचार करें कि जब रूप मूलगत कम मुक्त चेतन स्वरूप का क्या अनिष्ट कर सकता है ? म तो जाना इच्छा है य अचेतन जब है अपने जब रूप स्वभाव से आय है चले जायेगा । इस प्रकार विचार करने पर व आने और गये । उनम इष्टानिष्ट बुद्धि नही होने से राग-द्वेष नहीं हुए और राग-द्वेष बिना नवीन शुभाशुभ कम भी नही आये साम्य भाव होने से पुरातन कम समूह निजरा को प्राप्त हो गये आत्मा हवा हो गया कमभार कम हो गया । विचार आया नही । स्वभाव प्रकट हो गया । मय हम गये मय छाये नहीं तो स्वभाव से सविता का प्रकाश क्या हुआ उस कीन दोष सक्ता है ? कोई नहीं । ह मुमुक्षु ज्ञानी बनो भक्त विनोद बनो । स्व परका भाव हुए बिना अपनी पराई चीज की पहिचान नहीं हो सकती । बिना ज्ञान समम भाव का ग्रहण नही हो सकता अज्ञाप्य का अनुभूति नहीं हो सकती अनुभूति का आस्वात् नही हो सकता और आस्वाद बिना ज्ञान नही हो सकता । अतः स्व पर का भक्त ज्ञानना परम आश्चर्य है । ये ज्ञानी के नवीन बर्माशिव नही हाता पुराना निर्मल हो जाता है । आत्मा निमित्त हो प्रकाशमान हो जाता है कम गये तो स्वोपनिषद् है आ म तत्त्व की प्राप्ति है । निजानन्द रस है । ह भाई 'योग' कर तू जब बार स्वगति की आस्वाद कर । निजानन्द का प्रसी उती रस म निमित्त हो जाता है । पर बार स्वयं हट जात है । आनन्द ही आपको पाकर सत्य व लिए सोन हुआ निज सुख भागा बन जाता है ।

हे भाग्यन् ! अपने विचारों पर हार लग दृष्टि रख । भाव-विचार चाहे व शुभ है वा अशुभ बियाएँ सही है या गलत अच्छी है या बुरी । उन पर पनी दृष्टि रखना । स्वयं प्रानोत्तर करो व क्या हुए ? वहाँ से हुए ? इनकी जन्म मृति क्या है ? मूल हेतु क्या है ? उत्पत्ति का बीज कौन बना है ? स्वभाव क्या है ? बाध क्या है ? इच्छा । उत्तर भी स्वयं याचिक । व शुभाशुभ भाव विचार बियाएँ प्रकाश बर्मा के उदय होने पर ही होती है । कम जब स्वयं है जब अचेतन निमित्त होने से निमित्त भी जब-मुक्त स्वरूप होना यह निश्चय है । मुक्त से हा मुक्तमयी हार बनेगा ची । से ची । का और लाह से मट का । य वीर्यानिज राग-द्वेष रूप परिणामा से ही हुआ है राग-द्वेष पर है—विचार है विचार है अतः व शुभाशुभ भाव ही आत्मा के स्वभाव नही बियाव बन हा है । अनादिकारो ॥ भाग्यन् ! विगम्युति हा इनका उत्पत्ति स्थान है । जन्मे जन व हा दानन्द रहता है उन्मे

वभव लेकर। पर क्या वह भी रह सकता था? नहीं। सब अद्वितीय है, नाशवान है परिहाय है आद्य स्वरूप के शुद्ध स्वभाव को विवृत करने वाला है तभी तो प्रभु ने शभव स्वामी ने भाया ईश की छोई के समान नीरस पात कर फेंक दिया पाछे मुड़कर भा न दखा। उन की दृष्टि में उसकी असारता इत्यायन समान धोयी सुन्दरता किशुनन नियन्त्रणा सम्यक् प्रकार आ चुकी थी फिर भना क्या उसमें रमत क्या पुलन क्यों अपनाते? ठीक है। सही है। भोग राग है। स्वानुभूति के घातक है। शुद्धात्मा को आच्छादित करने वाले वभव का घटागोप अधकार का प्रभाव है। चमकन वाली विद्युत घनघोर वर्षा की निमित्त है उसी प्रकार कीधने वाला जन घन वभव पार समार ुध का कारण है मोह अघवार का निमित्त है। माह मरिच है। वह आसव है जिसका पान कर मानव वैमुघ हो जाता है। आपा पर का मान नहीं रहता। स्व भोर पर की पहिचान ही नहीं कर पाता। हे भव्यजना जानी, आज भा अद्भ-अद्वितीय शिखर आपका मज्जा बराय्य मयम त्याग भाव का मार्मिक उपन्यास दे रहा है। मुझे जानो के परदे घातकर, विचारो हृदय पट उद्धासित कर मनन करो चित्त वसित एकाग्र कर अमल करो इन्द्रियों का दमन कर धीर ग्रहण करो कदामों का शमन कर। तभी होगा आस्तविक वधान आचरती का नहीं तुम्हारा स्वयं का। अपने निज रूप का। शुद्धात्मा का। मिसगा शाश्वत निराबाध अखण्ड सुख। आज आचरती से विहार किया।

हे भव्यात्मन् ! मानव जीवन का प्रत्यक्ष क्षण अमूल्य है गया समय जा नहीं सकता मिल नहीं सकता। गय समय की चिन्ता न कर वनमान का गदुपयोग करो। आयु का एक-एक क्षण विनाश का कारण है स्वामा-उवासों की मज्जा परिमित है कम, वही चित्त प्रकार समाप्त होगी अगम्य है। जहाँ इतका अन्त होगा वहाँ वन मान मानव पर्याय का मुनिशिवित विनाश हो जायगा। फिर चाहे लाख उपाय बान्ध करता रहे वह क्षण भा नहीं सकता। हे मुमुक्षु इस पर्याय के क्षणों को समाला त्याग से होल से मयम से शम, दम नियम रूप चारित्र्य से। यह तभी होगा जब शरीर का मोह दूरेगा आ मा से नह दूगा स्व-स्वभाव में प्रीति होगा इन्द्रिय विन्या से अरवि होगी। ज्यों ज्यों स्व की चरित्ति होगी सुलभ विषय भा नीरस हा जावेगे, जत त्रैके विन्य पन बट प्रतीत होगे स्वप्रवित्ति होती जायगा। एक म्यान में ॥ चरुग नहीं आ सकता। उसी प्रकार एक समय में विषय भोग और मास का शब्द जान-बराय्य नहीं हो सकता। आत्मा इस शरीर ॥ है, आत्मा स्वभाव में निर्मल निर्मल निरजन, शुद्ध है शरीर मलिन अमुचिच्छ सज्ज घानु निर्मित निज है। दोनों १६ की भाँति एक दूसरे के विमुघ है। फिर भना एक के भोपन से दूसरे का भोपन का एक के पोषण से दूसरे का पोषण क्या हुआ सकता है? नहीं हो सकता। दोनों स्वभाव अलग स्वरूप से विभिन्न है। अत आत्मा का पोषण शरीर का पोषण और शरीर सम्बन्धी रस-द्वेष विषय-वचनों का पोषण है और विरपाणि

वभ्रव सेवर । पर क्या वह भी रह सकता था ? नहीं । सब अखिर है नाशवान है परिहाय है आत्मस्वरूप के शुद्ध स्वभाव को विह्वल करने वाला है तथा ता प्रभु ने शभव स्वामी ने भागा ईश की छोई के समान मोरस नात कर फेंक दिया पीछे मुटकर भी न दखा । उन की दृष्टि में उसकी असारता इत्ययण समान यापी सुखता विशुद्धत नियोजना सम्यक प्रकार आ चुकी थी फिर भला क्या उसमें रमन क्या घुलने क्या अपनाते ? टीव है । सही है । भाग राग है । स्वानुभूति के धानक हैं । शुद्धात्मा को आच्छादित करने यात्र वभ्रव का घटाटोप अघकार का प्रताक है । अमकने वाली विदुत घनघोर क्या की निमित्त है उमी प्रकार कीघने वाला जन, जन वभ्रव घोर ससार ख का कारण है मोह अघवार का निमित्त है । माह मरिा है । वह भासव है जिसका पान कर मानव वसुध हो जाता है । भाग पर का मान नहीं रहता । स्व और पर की पहिचान ही नहा कर पाता । हे भव्यना जात्रो भी अद्भुत खणित शिखर आपको सच्चा वराग्य मयम त्याग भाव का मामिक ग व रहा है । मुना बाना के परदे खोलकर, विचारों हृदय पट उद्धारित कर करो वित्त वति एकध कर अमल करो इन्द्रिया का दमन कर और ग्रहण त्याग का शमन कर । सभी होया वास्तविक दशन धावस्ती का नहीं तुम्हारा । अपने निज रूप का । शुद्धात्मा का । मितया शाश्वत निराबाध अखण्य भाव धावस्ती से विहार किया ।

भवात्मन् ! मानव जीवन का प्रत्येक क्षण अप्रमूय है क्या समय आ नहीं सकता । गय समय की चिंता न कर वनमान का गदुपयोग करो । एक क्षण विनाश का कारण है श्वासाच्छवासों की सया परिमित है किस प्रकार समाप्त होगी अगम्य हैं । जहाँ इनका अंत होगा वहाँ वन पयाय का मुनिश्चित विनाश हो जायगा । फिर चाहे लाख उपाय बाई क्षण आ नहीं सकता । हे मुमुक्षु इस पयाय के क्षणा का समाना से समय से शम दम नियम रूप चरित्र म । यह सभी होगा जब छूटेगा आ मा से नेह हागा स्व स्वभाव में प्रीति हागा चिद्रीय होगी । "यो या स्व की नविति हागा सुलभ विषय भा मोरम हा मय" जैसे-जैसे विषय पल बटु प्रणीत होंगे स्वमविनि होनी जायगी । एक म्यान न दा खण्य नहीं आ सकता । उमी प्रकार एक समय में विषय भोग और मान का शायक ज्ञान-वराग्य नहीं हो सकते । आत्मा इस शरीर में है, आत्मा स्वभाव से निमित्त निमित्त निरजन शुद्ध है शरीर मलिक असुचिरूप सप्त धातु निर्मित लिप्त है । दोनों ३६ की भांति एक दूसरे के विमुख हैं । फिर भला एक क शोषण से दूसरे का शोषण या एक क पोषण से दूसरे का पोषण कैसे हो सकता है ? नहीं हो सकता । दोनों स्वभाव सक्षण स्वरूप से विभिन्न है । अत आत्मा का पोषण शरीर का पोषण और शरीर सम्बन्धी राग-द्वेष विषय-व्याप्यों का शोषण है और विषयादि

प्रकार दिवारी मा मे ही दिवार रखा है। क्यों हूँ पर पत्थरों में निराल सुनि
हान म। पर को निज करा माना ? क्रांति करने को मत मना। क्यों को भूना
करा ? इसलिए कि पर को निज माना गया। पर को निज करा माना ? इस कारण
कि अराजि से पर के साथ धनि-सम्बन्ध बनाया गया है। यह सम्बन्ध इना
मन्त्रा करा ? मित्राण के मत से। मित्राण के मत हों ? सम्बन्ध अगि ते द्विप्रमि
होन म। सम्बन्ध कहाँ है ? आगमा में अन्तर। यह के मत मित्रे ? कम गिरा
सुनु हान पर मा मगार-मगर म के पर आ आगे पर। गरिणि जाग। पर भाग
विषय बताया। विरति-धराय होने पर। धराय के मत हों ? यथार्थ सत्य का मही
विनयन करने पर। सम्बन्धमान के मत हों ? आगम माना हों पर। अगम मान
कम मित्र ? गानाकरणी कम का दायोम उगम मा दाय हों पर। ये के मत हों ?
दया मान रखा तो करने परिणामी हों। पर अद्वार मान बताया का मान
हान पर।

आवस्ती मगरी अति प्राचीन समय सम्पन्न हान के साथ ही भारतीय धार्मिक
मस्तिष्क का जीवन न ज्वाला त निष्कात है सपन जाति वन मगार की भयंकरता का
प्रश्नन करत हैं। नीरव वन प्रश्न सत्त्व भावना एक अत्यन्त भावना का दृश्य
उपस्थित करत हैं। यहाँ के गुजते सजाव पण्डित सगार के क्षणिक परिचयनशील
धम का सन्ध दने हैं। हे मानव तन धन भोग सब क्षणिक हैं। अद्वार पतन का
मून है। अभिमान की चाटी में प्राणी उगा प्रकार किरणता है जमे महावाणी उपगम
अणी के गिरर त अनिवाय रूप से गिरता ही है। अद्वार भूलकर भा जान ध्यान
सब पूजा जाति कुत अपु धन आनि का कमी मही करना चाहिए। यहाँ की एक
एक ईंट बराबर भाव का उग्न करती है। ईंटों के टरक-टरक रोड बकड़ एक
स्वर में पुकार पुकार कर बह रहे तो प्रतीत होते हैं। उत्पान पतन अनादय प्रकृति का
नियम है। समभाव ही एक मात्र जाति का गुण का उपाय है। सहनशील बना।
उत्तम कर धन हमारी यह दशा हुई। मरी छाती पर न जान कितना भय आया
कितनी शहनाइयाँ मजी रितने महोत्सव हूँ कितने ही मुझ रख गये कितनी ही
विभूति विधारी रत्ना की धूलि बन बिखर गई। किन्तु सब आये और गये। धन्य
और बडभागी य ही हैं जो सी १००० सम्भव नाथ स्वामी धर्मण चन्द्र मुनिराज
साराय इन ममस्त राग रग वभव को सात मार कर अजर अमर पन् के स्वामी बन।
हे भय्या मनु प्राणिमा आप भी आपा रम्य ससार के इन चक्र मय झुर मुन से
बचा। आत्म साधना करो। आरम्भ परिग्रह का त्याग करो। आप न त्यागे तो
मह आपकी अवस्था छोड़ देगा। परसोक खाली हाथ ही जाना होगा।

यह है अविचारी महाराज का राजप्राण। इसके ही प्राणन में प्रतिनि
ताना मय्यात्रा में १२६ कराड़ रत्ना की बट्टि हुयी थी। भगवान तीसर तीथकर
शभव नाथ स्वामी इसी के प्राणन में अवतरित हुए पुण्य की पराकाष्ठा का समस्त

वचन लेकर । पर क्या वह भी रह सकता था ? नहीं । सब अद्वितीय है नाशवान है परिहाय है आत्मस्वरूप व शुद्ध स्वभाव को विहृत करने वाला है तभी तो प्रभु ने शम्भु स्वामी ने भागा ईश्वर की छोड़ के समान नीरस पात कर देकर दिया पासे मुड़कर भा न देता । उन की दृष्टि में उन की असह्यता इन्द्रिय समान बांधी मुक्तता किशुनवन निगूचना सम्यक् प्रकार आ चुकी थी फिर भना क्या उगम रमन क्या सुख क्या अपनाते ? ठीक है । मही है । भोग रोग है । स्वानुभूति व प्रानव है । शुद्धात्मा को आच्छादित करने वाले वचन का घटागोप अधकार का प्रताप है । वचनने वाली विद्युत पामोर वर्षों की निमित्त है उनी प्रकार की देने वाला जन, धन वचन घोर समारुद्ध का कारण है मोह अधकार का निमित्त है । माह मन्त्रि है । वह आत्मा है जिसका पान कर मानव वसुध हो जाता है । आपा पर का मान नहीं रहता । स्व और पर का पहिचान हो नहीं कर पाता । हे भव्यता आभी, आज भा अष्ट-शक्ति जियर आपकी यक्षा धैर्य सम सम्यग भाव का मामिक उपनश द रहा है । मुनी बाना व परदे छासकर, विचारो हृदय पट उद्धासित कर मनन करो वित्त वित्त वित्त कर अभत करो इन्द्रिया का दमन कर और ग्रहण करो कपाया का समन कर । सभी होमा वास्तविक दशन वास्तवी का नहीं मुष्टारा स्वय का । अपने निज रूप का । शुद्धात्मा का । जिसका वास्तव निरावाध अग्रण सुख । आज वास्तवी स विहार किया ।

हे भव्यात्मन् ! मानव जीवन का प्रत्येक क्षण अपूर्व है गया समय आ नहीं सकता मिल नहीं सकता । नय समय की बिना न कर वनमान का गुरुपयोग करो । आपु का एक-एक क्षण बिनाश का कारण है इन्द्रियोन्द्रियों की मन्त्रा परिमिन है वच, वही विद्य प्रकाश समाप्त होगी अवश्य है । जहाँ इनका अन्त होगा वही वन मान मानव पर्याय का मुनिचित बिनाश हो जायगा । फिर चाह लाख उपाय काई करता रहे वह क्षण आ नहीं सकता । हे मुमुक्षु इन पर्याय के क्षणों को महाना त्याग स शील स समय से शम दम नियम रूप चारित्र्य । यह सभी हागा जब शरीर का मोह टूटना आ मा स नेह हावा स्व स्वभाव स प्रीति होगी इन्द्रिय विषया से अरवि होगी । "यो यो स्व की सवित्ति हामी सुलभ विषय भी नीरस हा जायेगे जसे-जसे विषय वन कट्ट प्रतीत हुमे स्वमविनि होती जायगी । एक म्यान स दो खड्ग नहीं आ सकते । उनी प्रकार एक समय स विषय भोग और मास का साधक ज्ञान-विराग नहीं हो सकते । आत्मा इन शरीर से है आत्मा स्वभाव स निमल निर्लिप्त निरञ्जन शुद्ध है शरीर मलिन अगुचित्य सप्त घातु निमित्त लिप्त है । दोनों ३६ की भाँति एक दूसरे के विमुख है । फिर भना एक के शोषण स दूसरे का शोषण या एक क पोषण स दूसरे का पोषण कैसे हो सकता है ? नहीं हो सकता । दोनों स्वभाव मक्षण स्वरूप से विभिन्न है । अत आत्मा का पोषण शरीर का शोषण और शरीर सम्बन्धी राग-द्वेष विषय-कपायों का शोषण है और विषयाभि

का पोषण आत्मा का पोषण है। आत्मा शाश्वत है स्व-स्वच्छ है अपना स्वभाव है अन इमी का पोषण करना मनुष्यवर्ग का पाने का सार है।

हे मुमुक्षु अपने जीवन की कमियाँ को खोजो, उन्हें दखो और चुनकर फेंको। फिर व न आये इसके लिए गावधान हाँ जाओ। गुणों की खोज करो गुण वही गये नहीं हैं वे आपक है आप ही में हैं आने ही रहेंगे दोषों से आच्छादित हैं वे हूँ कि वे प्रकट हो जायेंगे। पर को भी देखो समझा उनसे गुण-दोषों से परित्यक्त करो दोषों में नैप मत्त करो उपेक्षा करो मुझ पर सो जहाँ वे तहाँ छाड़ दो। गुणा को देखो ग्रहण करो वृद्धिगत करो अपने में मिलाकर अपने गुणों का विकास करो। ई भाई निश्चय और व्यवहार की ठाम परिणती का सम्बन्ध अध्ययन करो। प्रथम व्यावहारिक जीवन का साधन करो सत्कार पासा शिष्टाचार बर्तों प्राणी-मानव में मित्रता स्थापित करो गुणों का देखकर गुणकर हृदय में प्रसन्नता भरी प्रसन्नता हाँ जाओ दुष्टी प्राणियों पर कृपा भाव-धारण करो तुम्हारा बहिन करने वाले गावन वाले क प्रणि मान्य भाव धारण करो। अपने विरोधियों से प्रणिशोध बना सन का कभी विचार मत करो। अपना व्यवहार सरल बनाओ, सत्कार तुम्हारा मित्र होगा तुम गलत क अपने बन जाओ तुम्हारा व्यवहार धर्म परिरक्षक होगा बग उमका उपमान कर आग वा ज्ञान अब बहन जाना उममें उगाना नहीं पसना नहीं यत में स्थिति में पुनः स, नाम में वही भी बटन न जाना। प्रबोधनों क सम्बन्ध में पगे तो भया वही दुष्टी होकर विपक्षित रह जाओगे। बस यहाँ से ऊपर उगना ही आपका अपना विकास है उच्चान है आरम्भ शक्ति का घोरन है। अपने आत्म-स्वच्छ में स्थिति अस्वच्छ प्रीति बहि ही सम्बन्धन है उनके अगे प्रथम का वपावन समझना जानना हा सम्बन्धन है और उमी में सीन हो जाना बहनी लगाना सम्बन्ध धारित है। वे सब अपने ही में, अपने द्वारा आप ही है। वही स्वात्मोन्नति है विमान है परमात्म व है निजस्वरूप की प्राप्ति है। ई आत्मन् इमा रहस्य का उन्पादन करो।

एक बात हीरा की कपी है एक समय काग। तोपने पर जो उमरे घटा बस है बान हवाका। छावधानका मानव का जीवन है। सनक जीवन धर्म से रगित रहना है। मे कौन है? मुझ क्या करना है? क्या करना चाहता हूँ? क्या हो रहा है? क्या हो रहा है? आत्मा प्रात विमके मलिन्य में निरन्तर भुँजन है वही अपना मन बनना है। सम्बन्धी विचार करना है मैं कर्म और कर्म का पन सब मित्र मित्र है। मरा इनमें कोई सम्बन्ध नहीं। परा स्वभाव सगन सब इनमें गिराना है विमान है आ विरागी हुना है बहू एक साथ रह ही नहीं सकता। मन पयस ज्ञान, कर्मिक विमल मय उन्नत सम्बन्ध और आहारक एवं आहारक मित्र अवस्था एक सम्बन्ध में हो सकता है इनमें क कोई एक ही हुना है सब एक साथ नहीं। इमी बहाने तुम तुम्हारा स्वका और पर कर्म एवं कर्मकर्म में एकत्व नहीं हा गगना।

यही भक्त विनाश है। अपने में जब अपना ही अनुभव करता है। सभी वह अपने को पाता है। हे आत्मन तू अपने में अपना अनुभव कर निज में निज का देख। यह सभी होया जब तुम अनादि के सत्कारों को छोड़ कर अपने ही को स्मरण करोगे।

निजानन्द रसास्वादी सत्कार भय से मक्त होता है। निभय ही स्वच्छन्द स्वानुभव रूप उद्यान में विहार करता है। महाप्रतापी की क्यारियों में विकसित समिति कुसुमा की बहार चूता है। त्रिगुण रूप धाग में प्रणम सुखी से विरा विरा कर शम द्वय के मुस्ताओं को मूष-मूषकर चारित्र्य निर्विकार बनाता है। शीत का परदा लगाता है मयम की क्षुब्ध घटिया सदका कर पङ्कजशयनी की गद्दी बिछाना है। वैद्यक निर्भीक मवार होकर निराल पड़ता है निजानन्द नोरव, धनधोर बाहुक वनप्रहारी में कन्धराओ में साह-अच्छा में भूतवता प्रसन्न होता आनन्द बनाता मस्ती में भूमता निर्द्वन्द्व निर्मोह निमग्न एकाकी अपनी धुन में अपनी जगत् में अपने वर में अपने ही स्वर में अपने ही गान में और अपनी ही नान में जगत् को भूला विषया को छोड़ा भीमों से बंध मोड़ा, शिव से नाता जोड़ा बाहू से निजानन्द रस भागी।

मन का प्रपञ्च निराला है। यह निश्चिन्ता करन में बड़ा बतुर है विवेकहीन है। किन्तु टगने में अति त्रिपुण है। जीव को बचिन कर चक्रमा देने में नहीं बूक सकता। हाँ विवेकशील प्राणी अवश्य इस पर अधिकार पा सता है। जो इस पर शासन करता है वही महान बन सकता है। मन की लगाम जो बस कर पकड़ सता है उसके विषय वषाय विकार इन्धिया सब बची हो जात हैं। बाह्य इन्द्रिय विषया में तिथिलता आने पर आत्मा का ताता ज्वरित हो जाता है। राग-द्वेष मोह का प्रणियाँ मुलमाने लगती हैं। आत्मा पुष्ट हो जाता है। आध्यात्म शक्ति का पोषण होने लगता है। नतिक उत्थान प्रारम्भ हो जाता है। अन्तर्मुखी भावना हो जाने में बाह्य सत्कार का प्रलोभन अनायास नष्ट हो जाता है। शरीर से हट कर दृष्टि आत्मा में लग जाती है। जहाँ शारीरिक मोह ममता नष्ट हो जाती है वहाँ शरीर के पोषक आरम्भ परिग्रह सग्रह का भाव धन भव का मोह-सग्रह आदि की अभिज्ञापा स्वयं समाप्त हो जाती है। शरीर के साथ सत्कार का समस्त सम्बन्ध हैं माता पिता भाई बंधु भगिनी भोजार्थ बैठ-बेटी, भाई-जमाई आदि। हे शाल प्राणी तू निज परिणति को भूल शरीर को अपना मान रहा है इसके परिणाम स्वरूप शरीर सम्बन्धियों के साथ स्वात्म सम्बन्ध की कल्पना कर रहा है। पर ये सब तेरे न थे न हैं और न हो ही सकेंगे। फिर क्यों व्यर्थ इनमें इष्ट अनिष्ट बुद्धि कर बर्मासव करता है? मिथ्या अपना प्रमाण और वषाय के बशीभूत मिथ्या धर्म में पड़ कर पर को आपा और आपे को पर कल्पना कर उनमें (पर पत्नियों में) मेरा तेरा अपना, पराया आदि नाना विवरण कर करके विपटाता रहता है। यही आत्मव का हेतु है जो अशुचि, दुःखमय नश्वर और दुःस्थान स्वरूप हैं। ये ही आत्मा के साथ मित्रकर

धिमाने पिताते हैं स्वयं भा उसका खात पीते हैं उसका यही भाना-जाना प्रारम्भ
 करने हैं आस पास पास पड़ी-धियां भयङ्क चर्चा करने से बाज नहीं आते कि यह
 हमारा परम मित्र है हमसे और इससे कोई दुरा नही है। सब विश्वस्त हो जाते
 हैं। इस क्रिया के सम्मान में उसे आपको मङ्गलता अवश्य मिली किन्तु शान्ति की
 सलह भी नहीं आई मुख नहीं बन नहीं सब कुछ करत घरत रहने पर भी बेचनी इस
 बात की बनी दुयी है कि कही मेरी बस न खन जाय। इसके लिए आप चौकन्ने
 रहते हैं, पात-पीने उठते चटन सोन जागन आत जाते आप किसी भी हालत में त्पिर
 नहीं रह सकत कहा आगे-पीछ पत्ता भी छाका कि आप चौक उठत हैं किसी ने दर
 बाजा खटखटाया कि पुतिस की आसना से बाप जात हैं बाड़ी आई तो मानों प्राण
 पड़ेर उठ गये भने ही वह आपका दोस्त ही आया हो। कोई भी दो शक्ति परस्पर बात
 करने हुए आपकी आर झाँकने सब सा बस आपकी गन्त शक्त जयंगी पलक गिर
 जायेंगी यह होगी आपकी दया इस समय जो कुछ भाव भगिना आपका अंदर चल
 रही है यह सब है मान्य । हर शक्ति अपने अपने को टालते अपराधी अपराध बाल
 के पुनर्से नान बनाने में माना विकला के मून में गूनता २ अरराध करत समय जो
 उनकी दशा होती है वही जाने राग भर भा बन रहा पाता अपराध करने के बाव
 एव क्षण सुखामास की सास सेता है कि पुन अरारतना की प्राणा उसे बिलून
 कर देती है। परबालाप की ज्वाला में जलने से बचना है। क्या ऐसा किया ? मैं
 चाहता नहीं या ऐसा बसे हो गया मैं तो यह कहता चाहता था मुह से ऐसा निकल
 गया क्यों निकला कस निकला कब निकला ? अब इसका क्या परिणाम होगा
 इसका प्रकट होने पर मैं किस अवस्था पर पहुँचा मेरा अपमान होगा या सम्मान या
 नरपमान लोग मेरी आर देखें आँखों के नगारे से एक दूसरे को मेरी गुस्ताखी समझाते
 हैं दखो उधर उगली उठान हैं वह देखा जाठ हिले अवश्य मेरी ही चर्चा होगी
 होगी मैं ही इनके चार्गनाप का विषय हूँ क्या कहे स्थिर जाऊ वहाँ छिपू
 रस अपनी सफाई दू कि मैं अपराधा नहीं हूँ या जाबवर मेरे अपराध नहीं किया।
 भयवा कभी आप सोचते हैं। क्या हुआ चलनी हा गई मानव कमबोरियों का खजाना
 ४ छानस्य अधूरा है ज्ञान ओछा है शक्ति जला है विद्या बुद्धि सीमित है यदि
 सनना हुई तो क्या हुआ होना स्वाभाविक है। आप साहस करोते हैं क्षमा माचना
 करना चाहते हैं कर्म बढ जाते हैं चरना प्रारम्भ किया पहुँचे उस व्यक्ति का
 बहरा देखते ही मान बपाय तपनमा कर आपके गाल पर समाचा जड देती है
 और आप तिन मिला कर सारे सत्राय अरमानों को उसी क्षण बिखेर कर पत्ता
 साड देने हैं क्षमा भाव पुन मोघ का भयकर रूप धारण कर सेनी है, मोह-तम
 पिर जाता है सप्रह की कामना सजीव हा उगनी है भाया आपकी भीतर ही भीतर
 नगेना शुरू कर देती है और वही सोम तात्रा-सा हा सामने आ जाता है।

क्षण भर का मुख जितना घातक निराशा का अन्धकार घटा मुस्तुरा रहा।
 पल का विश्राम जितना अनन्तर प्रयास की तन्ना अगड़ाई में रही थी एक नि-
 सता- जितना आन निराशा का नृपान था एक क्षण का उपाय जिसके पीछे
 का टकरा सपार था। तुम सोचत थे विषय में भोग रहा हूँ पर परिणाम में
 व विषय तुमको भुम रहे थे। मोह बितनी कटारता है इन भागा की बितनी
 है इनमें कितना स्वाय है ? और दग्धो जितनी बचपान ?। दण्ड लग एक साथ
 कर सजकर भाव धावा किया हूँ मुझा क्या अपन को भूमकर कुछ को।
 अपनी हाकर मोह मदिरा पीकर। हुआ क्या ? भागा उन्हें मधुर लगा पल
 अपना नारस हुआ उपाय में भावा पातक बना। पुरक से भाव मोहित दिया
 हानी बचन में पडा पीड़ा हुयी पुकार की कैने सुने ? बाँधने वाला तो घमक
 था अब तो एक ही गति थी बचन का पल पीडा गहन करना करना ही हुआ
 बिना वह मानने वाला ही बच था। वही दशा पाँच प्रकार रंग ५ बर्णों द्विविध
 और गन्त स्वरों की हुयी। सब अपना-अपना राज-सामाज्य लेकर भाव और तुम उ-
 पान में, उनकी धुगायन पापलुमी में कम कर अपने को धाय धाय इत-इतय मा-
 कर एंट में अकड़ते रहे। ऐसे अकड़ कि बाह्य बर्मा के घरे में स्वयं को उलझा कर
 अपने को भूल गये उहाँ में निरप गये। अपनी कुछ कुछ ही नहीं रही उत भुल
 भाँति उनमें उलझ गये जो आकाश माय भूल कर गतिनी में पत भौध मुख भूलत
 है। इन दशा में क्या हागा ? परास्ताप निराशा हाथ मनना और बार बार गिर
 घटना। य हृदय विचारने पर सरे सामने चल चित्र की भाँति आयेंगे तुम उह ध्वय न
 जान हा उनमें राग हृदय मत करा बिनु उनसे अपना बराय भाव पुष्ट करो। निरपक
 करा इन विषया से घरे और कुछ है वही मेरा है वहा मैं हूँ जिसे भुल पाना है। अब
 इनमें नहा पैनना है न अटकना है न सुभाना है न ठगाना है। बीती ताहि बिसारि
 दे भाग की मुघ सेहूँ मोकोति चरितार्थ करा। सभी निज बस्याय में स्व स्वरूप में
 दक्षि और पर रूप से विरक्ति हा सक्ती है।

स्वाधीनता निमग्न है जहाँ परावलम्बन न हो। कुछ क्या है ? जहाँ पुन
 कुछ की संभावना न रहे। भागा वहाँ ? जहाँ से पुन आना न हो। लेना क्या ? जिसे
 लौटान की बिला न करनी पड। देना क्या ? जिसे लेने का प्रसंग ही न जावे।
 जानना क्या है ? जिसके आन सोने की आवश्यकता न पड। भोजन किस कहत हैं ?
 जिसका आन सेन पर पुन लुघा ही न सके। पानक क्या है ? जिसको पीकर पिर प्यास
 न सताव। बैठना कहाँ ? जहाँ से कभी उठना न पड। करना बिधर ? जहाँ अचन
 हो जाय। जानी क य ही प्रश्नोत्तर उसे निज घर तक पहुँचाने में सहायक होत हैं।
 इनक होते ही पूव की अज्ञान दशा क हृदय उमस बेपटा प्रतिभासित होने लगती है।
 अपनी करनी पर स्वय ही उसे आश्चर्य के साथ शोभ होता है। वह शोभ अमान्ति
 उत्पन्न कर वीराग्य जगाता है। बराय से समय भाव प्रादुर्भूत होना है उसने त्याग

भूराभा । निज तब कति प्रकटाओ निज परिणत भ जाओ । पर घर धूमना छाओ ।
आनन भाव जयाओ । जग जजाल मिटाओ । परी बन् करो । स्थिर हा जाओ वस
मुख है शान्ति है पान है आनन है मुक्ति का द्वार है ।

हे भव्यात्मन अनिष्टाय क्षमा और क्षमस्व त्रिन विम्बो व दशन करने से मन
पावन होता है पाप भार हल्का और पुण्य बढन हाता है । जीवन म शांति आती
॥ । वराध्य पुष्ट होता है । समय की वद्धि हाती है । पान का विकास और ध्यान
की निष्ठ हाती है । मिथ्यात्व का नाश और सम्यक्त्व की वद्धि हाती है । सम्यग्मान
के ५ पक्ष से समार गरीर भोगो से वराध्य जाग्रत होता है, पुष्ट होता है और बद्ध न
होता है । चमत्कारों व पुण्यों की चोनि से आनोक मिलता है त्रिमये श्रद्धा अकाट्य
रूप धारण करती है । समार क प्रबोधन अपना अमर नहा डाल सकते । मिथ्या
चमत्कारों से रक्षण होता है । साध जीवन निश्चरता है । समय की वस मिलता है ।
त्याग भाव वद्धि को प्राप्त होता है । बाह्य जड रूप बभानिक क्षणिक चमत्कारो म
विना प्रचार का आकर्षण नहीं रहना । आध्यात्मिक शक्ति बनाने का अनायास प्रयास
हानि लगता है । आध्यात्म उद्योति चमकती है । अन्तरात्मा परमात्मा की भार प्रयाण
करती है । जड क अन्तर प्रच्छन्न चतय प्रकट हो जाकने लगता है । उसकी किरणों
म मन आभासित हो उठता है । क्षणिक इन्ध्रिय विषया का प्रलोभन नहीं रहता ।
विषयानीत आनन का चाह जाग्रत हो उठती है । उन्नाहरण क लिए त्रिनाकपुर
अनायास क्षम । माना जावन सरल गाँव न सिर दन करने जाने सिनमा रनिना,
न विषय पापक व्यापार । शांत नीरव आनावरण । प्रभु नमिस्वर का अत्रिदय ।
मनान विम्ब शांत छवि सौम्य मूर्ति नाशा दृष्टि एकाग्र चित्तन मुन पक्षमन
निचल ध्यान । ओह नान से अपार आनन मिलता है, अनुपम शान्ति बना है ।
आ जग जन हो क्या प्यर उधर भटकत हो अपन में अपन को दखो वही बना है
है अयन कहा भी कुछ नहीं है ।

एक आशा इगवा जाल यह कब शुक हुआ कहीं से प्रारब्ध हुआ कि
हुआ ? ओह बड़ी विम्बना है । न उत्तर है न मतोप । तृष्णा बना है, पक्ष में बना
कहाँ हुआ ? यह तो बड ही रही है । बगुनी जा रही है । व्यापक हुआ । हृदय हुआ ।
मोचा छोड दूँ । सोड दूँ । यह मोड लूँ । तथा भा बसे छू रहा है । मित्र हुआ
है । कुछ दीवा पड रहा है । दखू तो निघर न ? अर बना हुआ ।
साचा शिपिन हुआ पर कहीं ? यह तो और जम गया । अर बना हुआ ।
हृदया सोच कर छोड लिया पर पाया तो अधिक कटार, अर बना हुआ ।
मुन ही तोड लिया कहीं कठोर से कहीं पाए से । एक बना हुआ ।
की घुन वी उधर गई घुल गई रूप बन गया । अर बना हुआ ।
बनी जातिम है यह । गिरमिट से कम नहीं । अर बना हुआ ।
वही स यही । उधर से उधर से अर बना हुआ ।

यह तो त्यागियो के पीछे भी पिसली जाती आ रही है। हर है बेगारमी की। वही स्वयं का बिनापट बिछाव है, तो वहीं धर्म प्रेम का, वही भारतस्य में छुप गई तो वही परोपकार के सागर में। दाब देवती है। वही करती है जो करता है। बाढ़े आवश्यक हो या अनावश्यक। साज्जारा है पकरी। आत्म से बाहर नहीं आ सकती। पेट भरा ह तो क्या भिखार पाया कि उछली ? बस आशा नागिन क्या कम है ? दूध रिलाते जाओ विय सेने जाओ। प्राण भी मली बप्ट भी देगी। यही है इतना काम। न इधर जान न उधर। अरे देखो आगि ईंधन पाकर जलकली है (निधम) बिना ईंधन के शांत हो जाती है। किंतु यह उन्मयन समान है। पापा तो भी आशा बढ़नी है और न भित्त तो भी जीव को जलाती हो रही है। फिर क्या किया जाय ? आशा का त्याग। परिग्रह प्रमाण। इच्छा निरोध। समय का धारण। सत्ता का पालन योगों का निराध विषय का त्याग मन।

हे भय्य तरा क्या है ? तू जिसका है ? मरत क्या है ? मैं जिसका हूँ ? बड़े अटपटे प्रश्न हैं ? भला इनके उत्तर की आवश्यकता ही क्या है ? स्पष्ट तो निश्चय रहा है मरत शरीर है धर है इन्धिया हैं उनक विषय हैं क्योंकि उनको मैंने ही तो अजन किया है भाव विचार मरत है दुख सुख भी मरत है धन गौन सभी पुन आत पिता सब ही तो हैं मरे फिर इसम पुछता ही क्या है जो ? ठीक है। सब सुम्हारे सहा। पर यह तो बताओ यह क्या जिसका है ? बाहरे प्रश्न यह सुम्हें नहीं सीख रहा कि यह सोने का है पीला कमकीला चिकना भारी साफ तो है। गीर कहा यह क्या सोने का है क्योंकि यह सुवर्ण रूप है समय है यही न ? हाँ ठीक है तब तो यह हुआ कि जा जिसका होता है वह उसस समय होता है तद्रूप होता है ? ठीक है न ? बिस्तुल सही माने का आधुपण हम सब और जानी का रजत मय होता है सभी तो यह सोने का है यह जानी का है व्यवहार होता है। ठीक है। अब आओ अपन मूल प्रश्न पर। आप कहत हैं शरीर धन, धर विषय मरे हैं ? क्या यह सही है ? जा जिसका होता है वह उस रूप ही होता है। तो क्या इन जड़ वस्तुओं रूप आप भी जड़ हैं ? है ! यह क्या बर सब समायी है ? भला व जड़, मैं भजन व भुक्त रूप वग हो सबक है और मैं उन रूप भा वस्तु हा सकता हूँ ? भला सोचो तो ? ठीक है आप औरत क्या है ? भाग ही न ता कहा था व मरे प्रत्यक्ष है तब आप जड़ हो गये। मरती-मरती यह वग हो सकता है ? मैं भजन हूँ जानती हूँ हृष्टा हूँ बिन्दव निधन ठर पुञ्ज हूँ। फिर आप ही कहिये व सब वर है या आप मय हूँ ? अरे बाबा सब पर है जड़ है पुनःम है न न मरत कहा है हाय हाय मैं कहा भटक गया ? अरे र ! व सब सुखम अत्यन्त मित्र है न मैं इतना हूँ और न व मरे है मैं तो मैं हूँ भुक्त म हो हूँ मरत मैं हो हूँ भग्य सब पर हूँ न मैं उनका हूँ और न व मरत है। मैं उनका कर्ता नहीं व मरत कर्म नहीं। वे भजन स्वस्व है मैं स्वयं सुख रूप हूँ यही भद विमान है। यही जान जाना है। यहा निमाभानुमति है। अब तक भय्य था, पिछ्या बुद्धि

धी मोह का नशा था अज्ञान का परदा था। अब हटा। परस्व बुद्धि नष्ट हुयी पर
म आपा का भ्रम समाप्त हुआ। अज्ञानतम नशा। बस अब जो कुछ धूलि कचरा
बाकी है उसे हटाना है साफ़ना है, सफ़ता रहेगा पर सावधान इस ओर होना है
कि वही भवोत मतवा न आ जावें जम न जाव छान न जाव। ठीक है यतना
सावधानी तो बहुत कुछ हागी यही तो सवर है अब क्या है यह स्थित हुआ कि
निजरा चालू है। पुराना आ रहा है चाहे मद रूप स जाव चाहे तेजा से पर नया
तो नहीं आ रहा। व्यय होता रहेगा और भाष बंद तब तो एक न एक दिन
नयाया सब धाली हो ही जायगा बस रह जायगा स्वय मोह नहीं अहम मात्र स्व
आत्मा शुद्ध आत्मा निरञ्जन निर्विकार पानपुञ्ज ज्योतिस्वरूप निमलारमा बम
यहा मैं हूँ यही मेरा है यही साक्षत है यही मुक्ति है मोक्ष है शिव है।

हे मय्यात्मन् अनादि स तू भ्रम में है। अब गान आया। विवर्ण जगा। अब
न चिन्तना। यही सरा अपना स्वभाव है। इसी में रहो। अब तक कम और कमजोर
चेतना में ही पड़ा रहा। ज्ञान चेतना का आभास ही नहीं मिला। ज्ञान-रसो बर अब
आये की आर उन्मुख हुए हो वही छहरने की चेष्टा करो, उमी में रम उसा का
अनुभव लो स्वाध आने पर ही तो उसमें लय आयेगी। बिना एक क्षण हुए आनन्द
कहाँ मिल सकता है। एकत्व विभक्त का आनन्द भी एकरव विभक्त ही है। नू उमी
में लमय हो अरे लमय क्या होना के अपन में आ जाना है। सीन तो पर म होना
है पर पर ही है निज तो उसमें भिन्न है। पर म सुख नहीं भाति नहीं। निराकूलना
कहाँ है? यह सब भ्रम जान है। माया है। तू आये में आकर अपन में अपना
अन्वेषण कर। पा गया कि पार हो गया। बस फिर क्या? न समार है न सन्नि
न सम्पत्ति, न शरीर न विषय न विषयी। सभी का व्यापार समाप्त। मात्र एक
जाता हुआ रह जायगा। फिर किसमें सीन हाव? असु अपने स्वभाव में।

राहु रे स्वाध। कितना दूर है तू। किसमें? अपने से। निजरा स। बहुत
असीम। लम्बा राहु है मजिल दूर है अति दूर। माग बंटकाशीन है ऊबड़-खाबड़
भी नहीं बीचड़ है ठा कहीं पानी। माग है असयम उसमें माया के गत्र है भयकर,
राग-द्वेष की है ऊँचाई-नीचाई मोह की पक और ममता का पाना भरा है तबालब।
भला सोची तो यह स्वाध की अगर किछर जा रही है क्यों जा रही है? हथौड़ी का
मन कुटिल रहता है वचन अमत्य स भरा हुआ, बाध बुध्दियों के बल से टनी।
इस परिस्थिति में जीवन का सौन्दर्य विम प्रकार-भय सक्तता उन्मूल भविष्य की
शान्त शीतल सुखर किरणें किस प्रकार बिछर सकती हैं? स्वाध स्वय अधा है।
अह अपने ही की नहीं देख पाता फिर सुमकी किस प्रकार शिखता सकता है? वही
विदग्धना है इसकी। इस माँ में अनायाम शत्रु बनान का यह सरद उपाय है।
निन्दा का अनरु और अविवशता की जननी है। जहाँ देखा निरस्वार सहान्द तयार

उसी प्रकार मन का भी हेतुवाच्य का ज्ञान करना जिज्ञासा उत्प्रेष प्रवृत्ति करना, शुभाशुभ विचार करना है। परमात्मों से उत्पन्ना आत्मा विद्वत्त्व विपरीत भाव अज्ञानानि रूप परिणामन करता है तो मन भी उसी प्रकार विचार भाव को प्राप्त हो निजान्त स्वभाव के प्रतिबुद्ध व्यापार करता है वास्तव अपराधी स्वयं जीव है। मन एतत्ता जड़ है दूसरे भाव मन उपचार से चेतन है, परन्तु उपचरित वस्तु स्वयंभावमूल नहीं हो सकती। सयोगी पदार्थ परायेगी होते हैं। पर की गति से अपना जोर चलता है। पराई प्रेरणा से नाचता है। मन का भी यही राग है। मन है माया। मूल सर्व शक्तिमान हो। सब प्रकार सुखा हो। पर निमित्तों का लेश भी लगाव न रहे तत्त्वबुद्ध प्रवृत्ति करो। गरमाहट है तो दूध गरम रहेगा अग्नि बुझी है दूध ठण्डा पड़ना प्रारम्भ हो जाता है और मन मन एक दम ज्ञान जीवन् हो जाता है। मन यही हाल सुन्दर आत्मा का है मन का भी यही हाल है। पर विषयों का आत्मबन्ध लेकर दोड़ता है। भीति पण्यों का जिनता अधिक प्राप्त होना मन की दोड़ भी उतनी ही तीव्र होगी और आत्मा का निजान्त भा उत्पन्न ही आच्छादित होना जायेगा। मन मनोव्यय राशना है तो परम गयाम का नाश करो वह त्याग से होगा सन्तोष से होगा तृप्ति का परिहार से होगा मन निजान्त गयाम धारण से होगा। मन का दास सत्तार का गुलाम है। मन की लोड गमन विवर्धन है। वह त्रिपर से जायदा उपर ही खींचना पड़ता है। जो मन की निजाधीन कर सता है वह समस्त संसार को स्वाधीन बना लेता है। मन की गति सभी एक गहनी है जब उमका तबहार भाग विषय व्यापार बन हो। विषय कम करने के लिए उमका विपरीत चलने की आत्म ज्ञान की आवश्यकता है। मन स्वभाव से आत्म वचन की ओर ही गमन करता है। यह मनोमत्ता बुद्धि है। ज्ञान बुद्धि का बिना बल नहीं हो सकता। बुद्धि तभी तब मात्र की लयाम को बिना अस्तिवार न गयी जा सकता। मन एक है उसके सहयोगी पाँच हैं। मनका बल पाँचर वह और अस्तिवार बन जाता है। हे भाई हमारी मनुष्य गति विज्ञ की सम्पद प्रकार समस्त कर उन पर ज्ञान विशेष का प्रतिबन्ध लग भी। प्रतिबन्ध भी लाने की आवश्यकता नहीं भाव जिज्ञा परिर्वर्तन कर दा। अनुभव भाव। स प्रवेष्ट न हूँ दा। मूल स प्रवर्ण कराता। मूल व्यापार का अस्ति रम सीने बिन्दु तब पड़ने पर मूल की चर्चका प्रवर्ण हूँ। वह पुण्ड्र भूमि टटारकीन है। वहाँ न करना है ब्रह्मना न बनना है न जाना न करना है न विचार, न सुखीन है न वेदीन है दिन कर है ? का है बग है। अस्ति कर सत्ताका। कौन देखना है उन ? इत्यं ब्रह्मा। ब्रह्म बनना है। उवा का नाशाय है वहाँ। वह ज्ञान स तन्वीन इत्यं ब्रह्मर ब्रह्म स्वानर्क्य स अनुभूत है। स्वयं अस्ति कर निराकार है। साकार का निराकार का बनना हुआ है।

आज बनायास प्रश्न उठा मैं कौन हूँ ? आज पीछे का स्मरण किया । भूत
 भी और दृष्टिपात किया बड़ा आश्चर्य हुआ । देखा अनोखी रील सामने आई क्या
 मिनेमा है या टेनोविजन । अरे यह तो स्मृति पटल पर स्वयं भरे ही अनक रूप हैं ।
 मैं कौन हूँ ? इसका उत्तर बच्ची बच्चा बेटो सटकी छोटी जीजी बहुत नुआ
 भानजी भनीजी नन्द भोमा अर यह क्या ? ताना नया है मर रूप का ।
 क्या जाकर हूँ इनसे तो बीनसा रूप मर हा सकता है ? निजय हो नहीं कर पायी
 कि दूसरी रील आना प्रारम्भ हो गई । बहुत दुलहिन सारी भाभी मायी देवरात्री
 बाकी और फिर माँ और मम्मी ताई दादी नानी और न जान क्या-क्या ? अब तो
 नीर भी पत्तीजा हुई । क्या समझू अपने को । जस निजय बच्चे ? मैं कौन हूँ । एक
 बिजपट पूरा नहीं हुआ कि दूसरा शुरू हो जाता है । क्या पलट हा गई या दखा
 अब तो मास्टरली विदूषी महिला नारी रत्न गुणवती शीलवती गुणना चतु ।
 घमाँमा त्यागी और फिर घनी मयमा माछा त्यागी बरागी आँ अनक रूप
 भाये और गये । अकालर क्यों का ता क्या कहला आई सप्या ही कहा है । न जाने
 प्रणिनि बितने आय और मय । रहा आई नही ? अब कसे निजय बच्चे कि कौन हूँ ।
 बिचारा रमान में आया एक स अनक ये रूप आज और मये इनका सखा जाया
 किमको रहा ? हो वह कौन है ? अवश्य आई जाता हूँ । वह कहाँ है ? वह
 मुझमें ही है वही मैं हूँ । येना रूप । न स्त्री हूँ न बच्चा न बच्चा न पुरष,
 न नपुमक और न अय ही आई हूँ । कम बहो एक नाता हूँ ही मैं हूँ । फिर ये
 सब क्या है ? य जाल है आना सोना ताना-बाना है पर्यायो का । क्या ? क्याकि य
 रपाया नहा जा अपना निज स्वभाव हुआ है बिपरित हा रही हैं प्रपञ्च प्रमाण
 बरित भा हाता नही । य सब हामने नखर है बिपरित हा रही हैं प्रपञ्च प्रमाण
 है । अन ये कोई भी मैं नहीं और मैं भी इनमें सब आई रूप नहीं । यह मुनिबिषय है ।
 मैं तो मैं हूँ । आयक स्वभाव । क्योंकि बितने जीवन क कम बिच आय क प्राय पा
 है । अन स्मरण जान की पर्याय है । जान रूप हा मैं हूँ । मने देखा अट हटा भी मैं
 ही हूँ । निजय हुआ मैं आत्मा हूँ । जान रूप हा मैं हूँ । मने देखा अट हटा भी मैं
 है-जीव आत्मा । रत्नय प्रमै । मुनिबिषय है यह रूप आत्मा स अयण अनिज
 रूप ।

बचप्यों की प्रक्रिया एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है । ये उत्पन्न क्यों होती है ?
 इनका परिणामन किम प्रकार होता है ? इन प्रश्नों का समाधान पात्र ही इनकी
 मनोवैज्ञानिकता स्पष्ट हो जाती है । दृष्टिज पत्रों का बचपिज मानसिक उत्पन्न
 भी जननी है । मन के संभव से मयस्त मयिष्ठ में बिबिदिहाइ-जीव पत्र हाता है
 ह कोय भी गुण पर्याय है यही अर्थज्ञान है इनका वह रूप कोय है । मान सन्निध
 आर बिना व्यक्ति के प्रति कोई आभा बरत है बिन्तु वह आरक अनुकूल रिना
 नहीं करना बल यही से संभव प्रारम्भ हो जाता है । अन्तरात्मा बहुत नापत्र हा बच्चा

हे आत्मन् जीवन विनाम नहीं है यह भीषो का दास नहीं यह बभ्रव गुनाम
नहीं है । न यह तन का बभ्रव है न मन का गुनाम । न शत्रियों का दास है और
न सवार का बभ्रव । न कभी ने इसे खराग है न भाषा के जाल में निपटा है ।
फिर क्या है ? यह है अनादि स अपने अज्ञान से विवृत बभ्रव विगहा धिनोना भव ।
रक्त विवृत होता है पीव बन जाता है बभ्रव है पीडा देता है पका ता बहता है
चमड का धीर कर कभी अस्थि निवासकर ता कभी मसि-मसिपा का प्रथम कर ।
यही नहीं स्वभाव म भी बहता है एवं दो स्थान से नहीं अगिनि नव द्वारों से । क्या
यह जीवन है ? नहीं यह तो जीवन का विकार है ऐसा विकार जो गने के रग
में फास करस डालकर निवासकर फँक दिया जाता है । जिसका कोई उपयोग नहीं
भूत नहीं । भना ऐसा विकार क्या तेरा हा सक्ता है ? कभी नहीं । दूरत शृङ्ख
हुआ मगर स्वच्छ निमल रूप धारण कर साक्ष्य सुन्दर भूतोना मन मोहक हा
जाता है । कम यही हाल है जीवन का । इसमें समय का काम परस डालो । बभ्रव
क बूझने भट्टी पर क्या दो सगा दो ध्यान की अनम कर्म का इधन जलने का ये
घटक विवृत क बभ्रव से अज्ञान मन निवास फँका । बस फिर देखो जीवन क्या
है ? जो कम कर्मों से न दिया अब निम्न नेत्रो स निम्न आयगा अनायास । कम
यही होगा सच्चा स्वाधी अमर अचल एवं अनोखा ध्रुव अपना जीवन । पात्रा
पात्रो रे भाई अपने ऐसे भुंकर जीवन का । कहा मिलेगा ? स्वयं छरे में ही आच्छन्न ।
कब मिलेगा ? अब तू चाहेगा । कसे मिलेगा ? स्वयं के पुण्याय स । निरंतर के
अभ्यास से । भन विनाम के प्रकाश में । प्रज्ञा के प्रहार में । तप के ताप में । ध्यान के
प्रभाव में । हे भाई साधो ! जाग जाग बभ्रव सो चुका अब गफनन में न कम ।
सत्रा छाड़ हठि शोष भगडाई ताड़ सावधान हा स्व और पर नई पहिचान ।
एक ओर आधा-आधा भिनकर एक अंगर है और दूसरी ओर ने । बस दो का समझा
कि अगला सनम रास्ता छाड़ सज्जिष पार रह जायगा स्व एक । एक गक हा है ।
सारा कुराफात अन्नम क्याकि दा का परस फास । वह नहीं रह सकेगा कनाकि
आमय विहीन हा जायगा । कम अब जो कुछ बचैगा बनी है जीवन ।

लौकिक जीवन अशिव उरसन है । एक विविध पहरी है । कभी शमन का
रग आना है कभी बभ्रव का राव कभी निशोर की किमलय ता कभी मोहन का
बभ्रव । पीछे स साकना क्या जाता है अयावक कच्छन्न बुझा का पनपड । उनड
यना बिलर गया, बस रह गया गुवा टूँठ । कना उपक्रम किमलय आयेंगी पुण
सिनेगे रग भरेगा पतिपाई जूमेगी बभ्रव आयगा भरे मूजे (विनामी) हरा भरा
रसीता उपवा चहुँ उठगा । कब तक ? कद निना तक नई जो कन क्षणो तक ।
यह भी नहीं बस एक क्षण । फिर क्या होगा ? वही जो हा चुका था । हे बुद्धिमन
इस पहली को देख । ऐसे नहीं जसा अनादि स दगना आ रहा है दिन हटि
सम्यग्दृष्टि से निहार विभक्ति । समझ इस रहस्य को निम्न अन्नरत्न ज्ञान स-सम्यग्दान
निमल योषि से । एक निशट रह शून्य व्यवहार से सम्यक् चारित्र्य से अपना ही

अपने को बुराहाय पवित्र उगम बना देता है। यह है मनीषि इमरा मया प्रभुत्व भी महिमा।

मानव का सबसे बड़ा तारु है ईर्ष्या काट। अन्तर्गत वृद्धि, प्रसन्नता वगैरे विद्या वगैरे विद्या आदि को नहीं, बरता ईर्ष्या है। यही तो ईर्ष्या की परिचय परिणाम अन्तर्गत का हर प्रकार में प्रत्यक्ष प्रमाण है। उगने प्रत्येक काय में विघ्न दाना की जगता करता है। हर प्रकार विघ्न का उसे नीचा और अन्तर्गत का ऊँचा करने की चेष्टा करता है। यमन ईर्ष्या का समय सति, उपयोग दूसरे का अहित करने में ही व्यय होता है जिसे वह हर अपने पास उपनयन नामकी भोग विषय समय आदि का भाग भी नहीं देता। अन्तर्गत दिन रात काट कर ही रात में जलकर दुर्गो हागा रहता है। अन्तर्गत अन्तर्गत कर शक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। यही यही यका-बोझन रूप का को निन्दित म जोड़ देता है। स्वभावतः वह पर भी उगम ऊँचा है उन्नी किय म अट जाता है फलतः अपमान हाट मार और अपमान का भाग्य बना है किन्तु इसकी वह परवाह नहीं करता। उसे तो एक ही धा सवार रहनी है जिसे वह अगले को नीचा दिखाना छोटा बनाना सबकी दृष्टि में उन्नी पतन बनाना। वह तो यह है कि ईर्ष्या मयकर विष है जिसे निन्दित की सोनी म नर का मूत्र निन्दी सोनी जलना के बीच उच्छानता फिरता है। दुर्बुद्धि अज्ञाना मूल इस विष के विपाक हो उगता अन्तर्गत कर लेते हैं और धीरे धीरे उगती पुष्प रूप विष में टकरा कर अपना फिर पोड़ते हाथ-पांव तोड़ते बहोम हा हाँकर पतन लाने हैं। यह है ईर्ष्या का दुष्परिणाम। है भयानक मूल सत्त्विकी है अपने सामक विवेक के अपना विकास कर उतारन कर; पर विमूर्ति, पर गुणा म प्रमाण धारण कर ईर्ष्या के स्थान पर प्रतिस्पर्धा को आपन कर। अपने से बड़े का सम्मान आनन्द एवं प्रभुत्व का भाव धारण करो। आपका विकास अनायास होता जायगा।

मानव जीवन की अभिवृद्धि म प्रतिस्पर्धा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह दुर्ग आदर का पोषण कर उन्नत करता है। अपने से अधिक धन जन गुण वषट्गानी पुष्पात्मा की देकर हर्ष होता है और साथ ही स्वर में भी ऐसा ही बनूँ ऐसे ही गुणों का प्राप्त कर इसी प्रकार का अवका इससे भी अधिक प्रसन्नता यह और प्रभुत्व पान का प्रयास कर यह महत्वाकांक्षा आपन होती है। पुष्प गुणा का ऐव पुष्पावन का भाव होता उत्तरि का कारण है यथा जिनेन्द्र प्रभु का दान कर उनके गुणों से अनुपम उनके जीवन के कार्यों में हमारी अट्टा भक्ति, अनुपम तथा अनुपम स्थान, समय वन नियम चारित्र्य वासन धारण व सब प्रतिस्पर्धा का प्रसार निन्दित रूप है। है मुमुक्षु अशपार ही करना है ता छोटा छोटा बयो करना धोव वगैरे व्यापार करना चाहिए। सांगारिक विषय माया की प्रतिस्पर्धा से वे दिन प्रदान आये कि मु उनसे परमाय की मिद्धि नहीं हो सकती। नैतिकता नहीं पतन सबकी आदर का विचार साधन नहीं हो सकता। आदर की वृद्धि के बिना सबका दुर्ग

सार है। यही जैन मित्रान का अनौपचारिक है। आर्य समाज का उपाय है। मूल प्राप्ति का परम साधन है।

हे भगवान् अपने बने हुए का विचार कर। तु कौन है? क्या कर रहा है? और करना क्या चाहिए? वास्तव में मनुष्य गर्वोपरि है और गवस नीच भी है। उच्च और नीच गुणगुण कर्म पर निर्भर करता है। शुभ क्रिया शुद्धाकरण करने से मनुष्य महान बनता है और अशुभ क्रिया दुराकरण से मानव गुण का पाप हो जाता है। यही कारण शरीर के साथ है। यह अस्विकार का डंका मूल के गारे से बिना हुआ भगवान् से पनस्तर कर चमड़े में मढ़ा गया है। स्पष्ट करने योग्य भी नहीं है क्योंकि मूल-मूल में व्याप्त है। फिर हमको अगेना क्यों है? इसलिए इसमें केवल राजा निवास करता है। चैत्र ही मैं हूँ मेरा ही मैं हूँ और मूल में ही मैं हूँ। क्योंकि प्रत्यक्ष होता जाता है। मैं निवास जाता हूँ और यह (शरीर) पड़ा हो रह जाता है। फिर विचारणीय यह है कि आखिर एक बार निवृत्त कर फिर इसमें पतता ही क्यों है? इसका उत्तर इसी की गुणगुण क्रियाएँ हैं। अपनी करनी से यह स्वयं बना बनता है और स्वयं छूना है—मुक्त होना है। शुभ कर्म से उन्नत का सन्दर्भ मुहूर्त आकर्षक शरीर पाया है और अशुभ कर्म से महा दुर्गति प्राप्त शरीर में जा मग्नता है। मनी विज्ञापन दुराय—प्रभा के उपयोग से गुणगुण क्रियाएँ से ऊपर मुक्त स्वभाव में आ जाता है और फिर शरीर की बारम्बार से मूल के लिए मुक्त हो जाता है। यही हमकी स्वाधीन अवस्था विरम्भायी है। इसी का नाम मुक्ति है। सारांश यह है कि स्वयं का भेद विज्ञान करना अति अनिवार्य है। इसका परिणाम करने के लिए जिनायम का मसन करना आवश्यक है। इन्द्रिय भोग विषयों में उन्नतता उन्नत मेहनत करना उत्तम आशक्ति रखना उन्नत बाह्य रूप पर सुगुण होने ससार का बहाना है। ससार की परम्परा स्वयं जीव बहाना है और स्वयं ही कर्म करता है। मनुष्य की सम्पत्ति प्रकार समझना मानवता का पार है। हे आत्मन् इस शरीर विज्ञान में जीव शुद्ध बानी है। इसे बढ़ाओ ममसाओ। शिथिल गुण स्वयं बहान मुक्त हो जायगा।

मानव जीवन में प्रकृति महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति का कण-कण मानव जीवन को उन्नति की प्रेरणा का मुख्य केन्द्र रहा है। सम्पूर्ण लोक प्रकृति है। ससार स्वभाविक है। अद्वितीय है। स्वभाव निष्पन्न और साधन है। किन्तु इसमें रहने वाली वस्तुओं परियोजनाशील हैं। इसीलिए यह नाट्यशाला है। कर्म से मूलधार है। जाव अभिनेता है। प्रकृति से प्रेरित कर्म से उन्नत मानव नाम स्वयं बनाना फिर रहा है। एक बार मुकुटाना सुमन कहता है हर्षोत्कृष्ट हा जीवन का आनन्द से तो ता ठूमरी और मुर्झायी पतियाँ औंधू बूझती हुई प्रेरणा दे रही हैं हे मानव सज्जन कला जयया यौवन बिम्बर कर मिट्टी में भिज जायगा। चीन्हा कहता है भया यश-जमाना है तो कमानो महा तो कण पण की शक्ति अपयश रूप राहु के गाल में

सार है। यही जन मिद्वान का अनौपच्य है। आत्म शान्ति का उपाय है। सख प्राप्त
का मन्त्र साधन है।

हे भव्यात्मन् अपने कनक्य का विचार कर। तू कौन है? क्या कर रहा है? और क्या क्या चाहिए? वास्तव में मनुष्य सर्वोपरि है और सबसे नीच भी है। उच्च और नीच शुभाशुभ कर्म पर निर्भर करता है। शुभ क्रिया शुद्धाचरण करने से मनुष्य यहाँ बनता है और अशुभ क्रिया दुराचरण से मानव घणा का पात्र हो जाता है। यही कारण शरीर के साथ है। यह अस्थियों का ढाँचा धून के गार से बिना हुआ मज्जा स पदस्तर कर चमड़े में मड़ा गया है। स्पष्ट करने योग्य भी नहीं है क्योंकि मन-मूत्र से व्याप्त है। फिर इसकी अपेक्षा क्या है? इसलिए इसमें केवल राजा निवास करता है। केन-यही मैं हूँ मेरा ही मैं हूँ और मुझ में ही मैं हूँ। क्योंकि प्रत्यक्ष देखा जाता है। मैं निकल जाता हूँ और यह (शरीर) पड़ा ही रह जाता है। फिर विचारणीय यह है कि आखिर एक बार निकल कर फिर इसमें पड़ता ही क्यों है? इसका उत्तर इसी की शुभाशुभ क्रियाएँ हैं। अपनी करनी से यह स्वयं बन्नी बनता है और स्वयं छूटता है—मुक्त होता है। शुभ कर्म से उच्चवर्ण का सुन्दर सुदोश आकषक शरीर पाता है और अशुभ कर्म से भद्दा कुलीन निम्न शरीर आ जाता है। यही विशेष पुण्याय—प्राण के उपयोग से शुभाशुभ क्रियाओं से ऊपर उठकर शुद्ध स्वभाव में आ जाता है और फिर शरीर स्वीकाराचार से सदैव के लिए मुक्त हो जाता है। यही इसकी स्वाधीन अवस्था चिरस्थायी है। इसी का नाम मुक्ति है। सांगत यह है कि स्वप्न का भेद विनाश करना अति अनिवार्य है। इसका परिणाम करने के लिए जिज्ञासु का भयन करना अत्यवश्यक है। इन्द्रिय भाग विषयो में उलझता उन्हें सबन करना उनमें आसक्ति रखना उनमें बाँध रूप में सुगंध होना ससार का बड़ाना है। ससार की परम्परा स्वयं जीव बनाना है और स्वयं ही बन्ना करता है। इसा तत्त्व को सम्यक् प्रकार समझना मानवता का सार है। हे आत्मन् तम शरीर पिछड़े में जीव शुक बन्नी है। इस पन्थो समझाओ। शिथिल हुआ स्वयं भयन मुक्त हो जायगा।

मानव जीवन में प्रकृति महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति का कण-कण मानव जीवन का उन्नति की प्रेरणा का मुख्य स्रोत रहा है। सम्पूर्ण खोज प्रकृति है। ससार स्वाभाविक है। अकृत्रिम है। स्वाभाव निष्पक्ष और साक्ष्य है। किन्तु इसमें रहने वाली वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। इसीलिए यह नाट्यशाला है। कर्म के सूत्रधार है। जाय अभिनेता है। प्रकृति से प्रेरित कर्म से दम्भित मानव नाना स्वाय बनाना फिर रहा है। एक ओर मुस्तुराना सुमन कहता है हर्षोत्फुल्ल हो जीवन का आनन्द ले तो तो हमारी ओर मुझाधी पत्तियों आँसू बहानी हुई प्रेरणा दे रही हैं हे मानव सहित करने की अपेक्षा जीवन बिखर कर मिट्टी में मिल जायेगा। चर्चा कहता है भया यश-कमाना है तो कमाना नहीं तो कण पक्ष की शक्ति अपयश रूप राहु के गान में

बने जाया पहना । यदि विविधों की भाँति हैं कहीं भावपूर्ण स्वरूप प्रकट करने को भी न शक्य अक्षर करो । मुक्तता मानव जनों के भार से सारी हुई शक्ति बर रही है वह बुद्ध पराजय केवल यम प्रयुक्तता का पाकर बल करो फिर भी बल शक्ति और शक्ति को भी गो । मेरी के पत्र मित्राणे है हुए विम प्रकट पागने वा । के वर युवक की रक्षा कर साधित करने है उनी प्रकार साधन मान्य भेदन प्रवेश करने वाले यम सन्तुष्ट को साधन रम ॥ एवम् उक्त सम्यक् भावना । गाय युग म तन कर दूध देती है पाया का । को तो माई बड़ा हन मनुष्य होकर अपने उदरारी का उपहार मदा कर सदा ? अवश्य कर सदा है । मेरा समान रम का पाठ पढ़ा है । धर्म प्रविष्ट युग का रम-रमन युग भाग्य युग छात्र विमो और जीन म का पाठ पढ़ा है । उनमें परीक्षा मनुष्य भी हर पर का कर्मान करमा साधना है । साधन जीन भी प्रकृति की पाठशाला का एक अङ्ग है । उनका तत्त्व साधन मनुष्य मनुष्यता ही का मान साधन उत्पन्न है । उनमें अधिक विद्या ज्ञान ही मान्य की आत्मा की परमात्मा बनाने में समर्थ है ।

हे मनुष्य मानव जीवन अमूर्त्य निधि है । इनमें चारित्र्य प्रारण करना सार है । चारित्र्य विहीन जीवन निराश्रय व समान है । चारित्र्य का अर्थ है—१ सदाश और २ जीवनम । मनुष्य चारित्र्य १३ प्रकार का है—१ महाजन २ समिति और ३ गुणिया । १ अहिंसा महाजन २ सत्य महाजन ३ अचोरे महाजन ४ ब्रह्मचर्य महाजन और ५ परिग्रह श्याम महाजन । इसी प्रकार ५ साधितियाँ—१ ईश्वर २ माता ३ पिता ४ अदान निषेध और ५ उत्तम साधितियाँ हैं । १ मनुष्य २ बचन गुण और ३ वाच गुण ये तीन गुणियाँ हैं । महाजन ५ पापों का सदाश श्याम साधारण बिये जाते हैं । य मया नाम तथा गुण हैं । महाजन है स्वयं तथा महा गुणों द्वारा ही धारण भी बिये जाते हैं इसलिए भी महान है । साधन ही इनका एक ही महान है मोक्ष गुणधाय का मित्र । समितियाँ इनकी रक्षण हैं । बिना समिति पात्रन बिये मनुष्य ही ही नहीं सकत । समितियाँ जीवन की प्रहरी हैं । प्रत्येक काय जीत—भाहार बिहार बात बीत सेन देन उठना-बैठना रखना उठाना मल भूषाणि धोषण करना आदि आदि समस्त विषया म य मरक रखनी हैं । प्रमाण का मल भी नहीं रह सकता जहाँ प्रमाण है वहाँ इनका सदा रूप न । रह पाता । इनका प्रकार तीन गुणियों है—साधन का बला करना । मल बचन और काय ये तीन धाम हैं । इका विपर होना गुण है । गुणियाँ ज्ञान-बन की प्रयाप्ती हैं । गुणियाँ जिनकी साधा म धारण हावा उनही ही ज्ञान की वृद्धि लेनी जायगा मही विगुणित भूत हुई कि मर्याद ज्ञान म य पद ज्ञान तब अन्त म बल ज्ञान की मित्रि हा जायी है । बल्य हावा हा परमात्मा म है । यह साक्षात्तर अवस्था स्थायी है । मान्य रहन बायी है । विरहात्त सदा एक रूप मही । है मनुष्यत्व स्थायी मुक्त प्रत्येक चारित्र्य को अवश्यमय धारण करो ।

कतमनिष्ठता उत्पन्न की कुञ्जी है। कतव्य परायणता जीवन का निषाद है। सुख काव्य पालन में है। शांति कतव्य न जानने समझने में। कुछ करना है ? यह विकल्प अशान्ति है। क्या किया जाय इसका समाधान ही शांति है। आशु भी निठना पड़ा हो आप पूछिये ठीक है ? जर बाबा न ठीक का चिन्ता न बंशक का इनी उग्रह चुन की अशान्ति बनो हुयी है। जब वह निर्धारित कर ले कि अमुक काम करना है तब रख रहता है अब शान्ति आई। मन्त परेशान हुआ। उगाहरण के लिए क्या के भला पिताओं का सीखिये। जीवन प्राप्त क्या का विवाह करने की चिन्ता म किन्ने पाकस हावे हैं। साथे-सीठे सात जागते थसते फिरत एह ही बीमारी क्यागन कसे हो। किन्ती अशान्ति इस समय हानी हागा को ही जान। चहेज की माँग चुकी तो वस समझो जान बची तब कहन कुछ शांति मिली किन्तु चार अशान्ति आ गई। फिर पर कज हो गया कुछ क्यादान न व्यापार म बमी रह गई तबही पर ही म रह गई। पनि कहना है क्या पम नहा सास को नहेन मन भासिक नहीं। समुद्र को खानिरदारी नापसन्द। अब क्या कर ? कोई करना है दावा करो कोई कम्पा को अलग थोले कहकर पुनर्विवाह का दावा कराना चाहता है तो कोई विनिन बनाओ का नारा सगता है तो कोई आदिका आनि बनान का। अनेका विकल्प सड हा गए। क्या शांति मिली नही। एक शांति के पीछे हजार अशान्तियों का नाता लगा रहना है। फिर वही प्रसन्न शांति कसे मिले ? यही हान व्यापार आनि का है। करना भी सब कुछ है फिर कहीं सुख शांति है ? विचनारमक दृष्टिकोण से परीक्षण करने पर ज्ञात होगा कि सांसारिक सब और उत्तक पान पर प्राप्त शान्ति दोना ही नाशवान है। फिर इनम सुख शान्ति भ्रान्ति हो तो हुई ?

मानव दुःखी क्यों ? इस प्रश्न पर विचार करने से विनिष्ठ हुना है कि आसक्ति विषयाशक्ति दुःख का मूल कारण है। मानवोचित पण्यों न अनिरिक्त वस्तुओं का भी भोगपभोग करना आन का मानव चाहता है जबकि उचित पण्यों की उपलब्धि भी उसे दुःख है। दुःखमता का कारण विरतिता या मिथ्या पुनराप है। अरे भाई कोई भ्रम ना सामा जाहे और बीच इसकी काये को कम भ्रम मिले। रम ही से रमण करना चाहे और पर रमणी पर कण्टि हाने तो क्या राखन की दशा नीनी नहीं होगी ? धन राज वभव चाहे और पर सम्पत्ति का हानन का भयस्त करे तो क्या बीरकों जैसी दुःशा हुए बिना रह सकनी है बभी नहीं। नाना प्रकार वस्त्राभूषण चाहे और पराये वस्त्र पटी निजोरिया पर मजर सगाय रहे तो जेप न दिखडे म ही वस्त्र होकर उनका भाव हुवा। भाजन तो चाह और उसकी सीमा न रम ता ? अजीब हुए बिना नहीं रह सकता। पट भरना ता है ? माँफ मछनी भण्ण आनि मे भरे तो तामसिक धृति ब्रू परिणाम जेर आनि खूबार पणुआ जैता ही आचरण होगा। भय और दम्भ का ही प्रान्भाव होगा। जीवन काय है। एक ओर दानवता की मुई है और दूसरी ओर दस्तक का काटा बीच म है मान क्या। जियर दृष्टि होगी पुम्बक की तरह उधर ही जीवन झुक जायेगा। सदाचार

मान में निश्चय यही मेरा कहना हो जाता है। मैं इसी का उद्देश्य करूँ। इसी की पान का प्रयत्न करूँ।

तब होता है। एक समाधान करता है। दूसरा तब से आता है। तो तीसरा समाधान करना है। अब देखते हैं तीसरा भाग का जीवन हुआ। जिस दिन मैं मरने का होता है तीसरा का रहना आसानी है। (कायागुच्छा) कारणगुच्छा का होता है। कारण भी दो प्रकार हैं उत्पत्ति और निमित्त। यही मैं प्रथम विचार करता हूँ। पुनः तब से आता यह उत्पत्ति समझ भीजिये। जिसने तब से आता समाधान प्रश्न उठाया है। मैं के तब से जिस निमित्त से? तब से तब से। अब आप हरिये पुनः कर कार्य के समाधान के लिए उनसे आता निमित्त का कारण का समाधान होता अनिवार्य है। समाधान अनिवार्य सभी चीजों पर निर्मित ही होती है। या समाधान के लिए बिना समाधान करने की उत्पत्ति ही नहीं सकती। जब तक समाधान समाधान न होगा तब तक मुझ डम्प की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। समाधान के समाधान के लिए अनुकूल उत्पत्ति करना होगा। यह भी तब निर्मित ही है। प्रत्यक्ष निमित्त को मिटाने और नैमित्तिक की सिद्धि के लिए भी अन्य निमित्त अपेक्षित है। यथा तब उत्पत्ति करने के लिए भी निर्मित है तब उत्पत्ति तब-कार्य या नैमित्तिक अब यह नैमित्तिक निमित्त तब समाधान समझ जब हमारी इच्छा तब पुनः का ओर। पुनः पुनः रूप काय भी कारण हो जाता है तब प्रार्थना के दौरान में। यह तब तब पान पर स्वयं देख गया। इसी प्रकार समाधान के प्रत्यक्ष क्षेत्र का काम है। अनुकूल कार्य करता है अशुभ शुभ और शुद्ध। अशुभ से हटने के लिए निर्मित मिलाना होगा। शुभ रूप नैमित्तिक की सिद्धि के लिए पुनः शुभ से शुद्ध में आने का निमित्त मिलाना। अब यही बात पहले निमित्त के हटाने की। तो उनके लिये कोई पुरुषार्थ आवश्यक नहीं। वृक्ष उगा भीज पर्याप्त स्वयं हट गई। पुनः के अनन्तर तब आने पर पुनः का पुनः करने के लिए कोई पुरुषार्थ अपेक्षित नहीं है। इसी प्रकार शुभ में मान का भी तीव्र प्रदर्शन करो अशुभ स्वयं कीर्ति दूर कर हो जायेगा। शुद्ध की सिद्धि का उत्पत्ति करो। पुरुषार्थ तब रहेगा और परिपक्वता पायेगा शुभ यही का तब रह जायेगा। पुरुषार्थ करना होगा निमित्त पढ़ाने होये। उत्पत्ति तब ही निर्मित यही होना चाहिए। यदि निर्मित विद्वान् हुए और भी तब परिपक्व किया तो भी उत्पत्ति नहीं मिल सकती। यह है उत्पत्ति प्रयत्न। व्यवहार और निश्चय का यही सम्बन्ध है। व्यवहार से निश्चय की सिद्धि हो सकती है। यही अनेक न सिद्धान्त है। यही व्यापक प्रक्रिया है। यही विनाशम आर्थ माय विनयायी है।

कई कहे मोक्ष चलती है। क्यों? बताया जा रही है इसलिए। यात्रा क्या है? निमित्त। यदि चालक निमित्त न हो तो चलना का कार्य कैसे होगा? चलने की शक्ति तो विद्यमान भी फिर उठावट हुई। सोचा तो बात है चालक का कारण के न हान से। सब कारण अपेक्षित है। चलनी गाड़ी चल गई सड़क पर।

क्यों ? पट्टाल समाप्त हो गया इसलिए । कोई बड़े पट्टोल रूप कारण स्वयं
 आ जायेगा और माटर चल देगी । यह अशुभव है । न तो मोटर ही पट्टाल के पास
 जा सकती और पट्टोल ही स्वयं गाड़ी में आकर घुम सकता है । फिर क्या होगा ?
 मनुष्य का पुरुषार्थ रूप निमित्त ही सबका सहयोगी निमित्त ही उस धनाने में समय
 है । वह निमित्त हम जुगना ही होगा । स्पष्ट हुआ कि उपागान रूप कारण की
 काय रूप या मिट्टि करने की हम मजबूत सही योग्य निमित्त साधन एकत्रित
 करना ही होगा । बिना निमित्त के नमित्तिक की सिद्धि नहीं हो सकती । मन्त्र
 निमित्त काय करता देखा जाता है । भगवान् अरहन्त देव जीवन्मुक्त हैं । चारों
 पानियाँ कमनन्द हो चुक अन्न चतुष्टय प्रवृत्त हो गये । अन्न शक्ति रहन हुए
 भी फिर क्या सही मिट्टालय में आ बिराजते ? उपादान तो पूरा परिपक्व है ।
 यही कारण सामन आता है कि योग्य चार अवाधियाँ कर्म रूप निमित्त राकने वाला
 है उस पुरुषार्थ द्वारा जब तक प्रयत्न नहीं किया जायगा तब तक मुक्ति की सिद्धि
 नहीं हो सकती । अतएव निमित्त भवत्त अपरा प्रभुत्व उनी प्रकार दिखनाता है
 अने उपागान । आठ कर्मों का नाश कर आरम्भ मुक्त हो जाना है । साक्षात्भाग
 में पहुँच जाता है परन्तु उसमें ऊपर नहीं जाता क्या कि वहाँ से आग घम
 रूप निमित्त की अभाव है । निमित्त की शक्ति कम नहीं है । समित्त हमारे
 सहयोगी साधर्म्य जन सदा है । जिस प्रकार पूजन विधान तीर्थयात्रा विवाह
 शादी आदि विज्ञान कार्यों में अपने आई बंध बुद्धिमान पान-पानी की जाति
 बंध आदि सहयोगी कारणों की समीक्षा कर उस कार्य को विशेष सरलता साध
 धानी एवं सुन्दर रूप से सम्पान्ति कर लिया जाता है । उसी प्रकार मान्य रूप
 कार्य की सिद्धि के लिए भी हमें त्याग भय दम प्रवृत्ति धारण चरित्र
 पानन आदि निमित्तों का सकलन पानन मवाहन रक्षण आदि निमित्तों का एकत्रित
 करण करना परमावश्यक है । निमित्तों के जुगने से नमित्तिक की सिद्धि आमान
 हो जाती है । मान लिया जाय हमें आहार दान करना है । यदि हम आहार नामप्री
 तयार न करें पात्र प्रतीक्षा न करें पन्थाहन कर नवधा भक्ति आदि निमित्तों को
 नहीं जुटावें तो क्या आहार दान रूप किया जा सकता है ? कदापि नहीं । हमें
 भोग चाहिए । भोग तो चाहें किन्तु मान्य सिद्धि की साधनप्राप्त निमित्त रूप दीक्षा
 धारण न कर शुद्ध मन से आत्म चिन्ता करें । मन वचन काय का शुभरूप निर्मल
 पवित्र न बनाये शुद्ध का लक्ष्य न रखें तो क्या हमें मुक्ति रूप साध्य अनायास
 मिल सकता है ? कभी नहीं । अरे आई मन्त्रन या भी चाहिए । चाहा चाहते
 रहा चाहते हुए उसका नाम रटते रहो पर आपको भी या मन्त्रन कभी नहीं प्राप्त
 हो सकता है । हाँ यदि सन्तुष्ट आप पुण्याथ करें निमित्त जुगमें तो अवश्य
 मिलेगा । दूध जमाओ दही होने पर उसे मयानी के सहारे मथो । मथने पर
 ऊपर सरते हुए घी को भी पान के लिए हाथ धलाकर उसे निकालना उपाना
 आदि किया रूप पुरुषार्थ निमित्त मिलायगा सभी उसे भी प्राप्त होगा और पुनः

भी परिग्रह महान कष्टदायी है। वह परिग्रह शुभ रस रूप भी परम मोक्ष अवस्था का वाधक है। प्रथम अशुभ परिग्रह का परिहार करो शुभ म आओ शुभ की वृद्धि करो इतना ब्याख्या कि वह स्वयं परिष्कृत हो जाय इतना परिष्कृत हो कि स्वयं मुक्ति रूप रस टपकने लग। बस फिर क्या है पूरा रस चुआ नहीं कि छितका गुन्नी अपन आप ही प्रयत्न हो जायेंगी। तथा स्व तत्त्व मात्र रह जायेगा। इसीलिए आचार्य कहते हैं कि माई शुभ त्याग नहीं जाना अपितु स्वयं ही छूट जायेगा। अस्तु प्रयास सानिध्य सम्पत्तय युक्त पुण्य को पकाने का करना है न कि पुण्य को छानने का। अरे माई अपना ययाय लग्न सफल करो।

मनुष्य बुद्धिजीवी प्राणी है। जन सिद्धान्त मानव को सजी पञ्चद्विष मानता है। मजी का अर्थ ज्ञान है। ज्ञान का तात्पर्य विवेक हेतुसाधक का ज्ञान। ज्ञान का अर्थ ज्ञान का ज्ञान। वास्तव में मनुष्य भव ही एकमात्र ऐसा है कि जिसमें ज्ञान स्वयं की पहिचान हो सकती है। आत्मा स्वयं ज्ञान रूप है। ज्ञान आत्मा है और आत्मा ज्ञान है। यद्यपि यह आत्म तत्त्व जीवमान में विद्यमान है। जीव के अभाव में शरीर मिटती है निरा पुत्रता इ मह प्रत्यक्ष है। बुद्धि मस्तिष्क की उपज है। बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज जाता चला आ रहा है और आगे भी अनन्त भविष्य तक होता ही रहेगा। इससे स्पष्ट है कि बुद्धिजीवी होने पर भी बुद्धि का मानव नहीं है। बुद्धि एक पर्याय है। ज्ञान शुभ का विकार है। विकार बुद्धि का हटने पर सम्पूर्ण ज्ञान (बुद्धि मस्तिष्क) बुद्धि का निषेध है। बुद्धि मस्तिष्क की उपज है। मस्तिष्क भूमि और बुद्धि बाधे जाने वाला है बीज। ज्ञान उसका फल है। समार में अनेक प्राणी जन्मता है और यथावत् यथाशक्ति मानता भी है। बस यही मानवता है। बहने का साधना है कि चित्तस्थी भूमि निष्कल विघ्न बाधा रहित है तो बुद्धि रूपी पीछा बसा ही होगा। जिसके गम आते हो सबके सुख और शान्ति स्थापित हो जाती है। यह रत्नाकर है छायाही है धन का। यदि हम मधुर सुन्दर सुखाल धर्मात्मा समाज सेवी भाव से युक्त रहना है तो सर्वप्रथम हम अपने मन मानस की स्वच्छता कर लेनी चाहिए। मानसिक कुराफात ही ता नाना बप्टो का कारण है। मानसिक विवृति के रहने से सुख शान्ति स्वप्नवत है। मन की शक्ति अति है। यह शक्तिना उत्तरात्तर उत्तरी जाती है। इस उत्पन्न में केवल कर मानव विपत्तियों का जान रिच्छना है और स्वयं अपने में अपने आप ही उत्पन्न ही रहना है। मटी मसार की परिपक्वी है। ससार बढ़ता है। जिसमें बढ़ता है वही मूल कारण है। मूल को काट दिया तो आप बुद्धि एक जायगी। बढ़ती बहना जानती हैं। हे मध्यात्मन् तू अपने मूल हेतु का सधन और उसका निकालने का प्रयत्न कर।

अमन्तोप क्या है? वनमान स्थिति का अपूर्ण लक्षण ही अमन्तोप है। वह स्थिति चाहें धर्म के सम्बन्ध में हो शुभ हो धन के विषय में हो या तन मन आदि सम्बन्धी हो। इन अपूर्णता का विघटन मात्र कम सिद्धान्त कर सकता है साधना पुण्यापन सत्कीर्णता। शुभाशुभ कर्मनुसार भाग्योपयोग की सामग्री उपलब्ध या

अनुपमग्य हाती है और उस प्राण वस्तु की वृद्धि या हानि हमारे सम्मान पुण्याद पर निर्भर करती है। जैसा हमारा परिश्रम होगा वसा ही फल प्राप्त होगा। हाँ यह सुनते तो प्राण्य वस्तु भी नष्ट हो जाती है और पुण्यादय है ता अन्त यम भी विनिष्ट फल प्रदान कर सकता है। कम मिद्वान का सही रूप ज्ञात कर मातव ईश्वरी की जवाला से बच सकता है। यही नहीं अपितु वह अपन का प्रथम मित्रता स्नेह करता और ममता से भी ऊपर उठा सकता है। समार और मगारातीन अवस्था को समझ कर अपना माय प्रणाम बना सकता है। हम स्वय को यथायथा ॥ अधिक गुणी घनो बली मान बैठते हैं और अन्य का औचित्य से कम। वस यही हमारे दुःख का कारण का और दुर्गति का कारण हो जाता है। विषमता कष्टदायी है किंतु ही जिस क्षण में जहाँ नव है वहाँ तक विषमता मानना कायकारी भी है। पयाद पर्याया को प्रमाणित किया बिना उदा रूनी। नारी उस पयाय में नर नहीं बन सकती, नर नारी हो नहीं सकता। उसी प्रकार नीच कुलोपपन्न उच्च कुलीन नहीं हो सकता और ऊँच नीच नहीं हो सकता। जन्मजान कम मिद्वान तदुभय पर्याय में अकटय है। हाँ पुण्याद करना सवय आवश्यक है यथायथा यथाशक्ति यथानुसूल। विरासत करने का सबसे अधिकार है मयानानुसार। पशु भी दब हो सकता है दब पशु भी। मानव अनुरक्त हो सकता है मगवान भी मारी पूज्य हो सकती है नाररी बूकरी भी। य सब परम कम सिद्धांतानुसार ही चलनी है। नारी भी मगवान हो सकती है। वनमान रूप का विनाश कर आन सन्नुकूल पुण्य पर्याय उत्तम सदन उत्तम कुल वस परमा पाकर। उमम से पुण्याद अपाति है। रसम सयम तपश्चरण से होता। स्वय ऊपर उठा है वही दूसरे को उठा सकता है या उठाने में सन्नेने बन सकता है।

स्वय स्वच्छ है ता दूसरे से बात निराकर उठ मिटाने का प्रयत्न करता सकता है। अथवा स्वय ही बाला मैला चुभना है ता पर का दोष दिन प्रहार निना सकता है? नहीं निखना सकता। अपने को बनाने का प्रयत्न करो। स्वय स्वच्छ बना। बनान का मन्त्रदवाही मूछ बनाना नदी पर मरान दूधान बनाना नदी। भात प्राणिका को उन्नु बनाना नदी। किसी को निधन दुभी रोपी पांडित बनाना नदी। और न अपने का ही भोगी विपत्ती बनाना है। अगि स्वय का रसम बनाना मयवी बनाना मगवारी बनाना नैष्ठिक बनाना सिद्धाचारी बनाना मन्त्रदवाही बनाना द्यानी धैनी तपस्वी साधक बनाना और बहु बनाना सिद्ध बनन क ब द मूछ भा बनना बाकी ही न रहे जाये। यह है सचरी बनना। पुण्याद कम बनाना। यमम गुम स्वय बना। पर के बनान की बहू है मन्त्रदवाही। स्वय स्वय मन्त्र मन्त्र बना मैम। मुग्धारा नवना बनाना उम वस बना। स्वय मन्त्रदवाही न नैष्ठिक मुग्धारे नाम मन्त्रेय गुपम ही बन जायेगे एव

समान एक रूख तो भी सब अपना अपना अस्तित्व व्यक्तित्व लिखा है सबका अपना अपना स्वरूप होगा चिन्तन घन । यही तो निजाना हाथ । ह आत्मन् अन्तर्गता नष्ट को एक साथ सम्पुन करो । अपनी शक्ति अपने में लगाओ । अपने प्रयोग अपने ही पर करो । अपना बना तो जग बनता रहेगा । अपने सुधार में सबका सुधार है इसे समझा ।

ज्योति पुत्र भगवान महावीर का अमर जीवन आज से प्रारम्भ हुआ । तो क्या यह जिन सबका सब एक समान एक ही वातावरण हो सकता है ? नहीं यह हमारे जीवन के पुरुषार्थ पर निर्भर करता है । मानव कमजोरियाँ का पुत्र है । कमजोरियाँ हर एक के जीवन में आती हैं । आती नहीं बल्कि रहनी हैं उनमें समाहित हैं । वह स्वयं ही उनसे अनभिज्ञ है । वह अशोधता जन्मदाता होने में इतनी गहरी होती है कि वह चेष्टा करने पर भी बार-बार उस समझन में अटकता जाता है । फलतः जीवन पगडंडी उसी प्रकार मोड़ लेती है जैसे पहाड़ी सनी । बल रहित मनी घबराती घटती जाती है । वही भी उमका ठिकाना या सुनिश्चित मार्ग नहीं रहता । यह अज्ञान भी अज्ञान का साथी है । मोह का बन्धन है । मिथ्यात्व के कारण मोह मदिरा का पान कर अज्ञानी मानव अर्हति विपरीत जिज्ञासा में फँसकर दुःख उठा रहा है । मोह से पर में निजत्व बुद्धि मान बढ़ा है । यही दुःख का भूत है । परबन्धु परिग्रह है । परिग्रह गरव का कारण है । यन्त्र जन्म अत्यासक्ति हुई तो निगो का द्वार है । मयकर विपत्ति का कारण है । हम यही तो समार परिभ्रमण का जग है । रात जिन इसमें उलझा जीव घूमता ही रहता है । उसे स्थिरता कहाँ ? हे भगवात्मन् अपने स्वरूप को समझने की चेष्टा करो । आपे में आओ । निज में निज की खोज करो । पर स्वयं छान जायेगा । पर का सम्बन्ध हुआ कि स्व मिला । यही स्व सवित्ति है । यही स्वान है । यही आत्मानुभव है । यही निजानुभव है । जहाँ धमा भाव आया कि क्रोध विभाव वसे ही गामय हो जाता है जने वायु वेग से वेग समूह । मादव से मान आजव से भाया और मनोप से सोम उसी प्रकार छिन्न जान है जैसे रवि किरणों से उलूक । मण्डलों की सन-सन सभी तक गुजती है जब तक प्रभात का प्रकाश न आवे । उसी प्रकार रघु-रघु सभी तक भनभनाते हैं साम्य भाव की निर्मलता-स्वच्छता जब तक नहीं आती । अपनी सफाई करो ।

हे भग्य भगवान बनना है तो भगवान के पथ पर चलो । उसी का अनुकरण करो । प्रभु कौन है । हमारे जैसा ही मानव । हाँ उसने मानवता से ऊपर उठकर अपनी शक्तियों का विरासत कर लिया है । उसे पाने को लघुना का सहारा भा । चिन्तन को धारण करो । धीन पालन करो । धीन ठगनाई नहीं है । धारित को सर करने की बराबरी नहीं है । सपन मान शरीर की क बना नहीं है । जान मान साम्य पर नाम छानना नहीं है । विश्व काई सांख्यिकियों का डेर लगाना नहीं है । बुद्धि का अनिनाय पुनरुत्पत्ति को लघुन में फना उलझा जीवन घन धीनरत्न हुआ

तब वह नहीं और तब आत्मा चेतन रूप नहीं है। क्योंकि प्रत्यक्ष देया जाता है कि
 शरीर निष्क्रिय पड़ा रह जाता है और चेतन रूप आत्मा वृक्ष-हाथर विरक्त जाता है।
 विचार करो और आत्मा और कर्म अति निष्ठ हैं। अनादिकाल से मिल हुए हैं और नीर
 बन एकाकार है। किन्तु न तो आत्मा के एक भी परमाणु अनात्मा जड़ कर्म रूप नहीं हो
 सकता न हुआ और न होगा उसी प्रकार कर्म आत्मा चेतन रूप न हुआ न होता है और
 न होगा। अब मुनिर्णीत हो गया कि प्रत्येक पदार्थ स्वयं अपने रूप है अपना ही बाय
 है अपना ही कर्म है अपना न कर्ता है न कर्म है। सब अपने-अपने में स्वतन्त्र हैं।
 कोई भी शून्य अर्थ का कर्ता नहीं है और कोई भी हमारा कर्ता नहीं है। हे आत्मन्
 ! स्वयं स्वतन्त्र है एक है चतुर्थ स्वरूप है। पर रूप एक परमाणु मात्र भी तेरा
 नहीं और सरा एक प्रदेश मात्र भी पर का नहीं हो सकता। फिर विचार करो भला
 पर का क्या और भोला आत्मा किस प्रकार हो सकता है? आत्मा आत्म भाव का
 ही कर्ता है। शुद्ध निश्चय तब से आत्म भाव का कर्ता भोला आत्मा है और परभाव
 का कर्ता भोला पर हो है। यही शुद्ध निश्चय है। अब रह गया ब्रह्महार। ब्रह्महार
 से आत्मा छूट है। कर्मबद्ध है। इसी से यह अशुद्ध है। अशुद्ध के समस्त भावे अशुद्ध
 ही हाथ अस्तु मिलने भी वस्तु स्व भाक्तत्व आत्मा भाग हैं वे सब विभाव हैं। विभाव
 स्वभाव नहीं हो सकते। स्वभाव विभाव होना असम्भव है। हे माई स्वभाव में
 आत्मा। विभावों में भटकते अनादिकाल हो गया। तू अब सचल। भटकना बुरा
 !। अज्ञानवश भटकना या सा भटक सिया। अब मन भ्रम। भ्रम का घूमा। अब
 रम का नाम हुआ। भ्रम ही मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के कारण जीव दुःख उगता
 गया है। भागे भी उठाना रहेगा। तेरा स्वरूप सम्भल। तू अपना कर्ता स्वयं आप
 । चाहे स्वभाव कर चाहे विभाव। स्वभाव रूप परिणामन करोगे स्वभाव ही
 गने को मिलेगा। विभाव रूप परिणाम तो विभाव के ही भोला होबोगे। स्वभाव
 जल को पाना है और विभाव निज को खोना है। क्या कोई विवेकी अपनी वस्तु
 खाना चाहेगा? यदि सो गई तो क्या उसे सोजने का प्रयत्न नहीं करता। अपनी
 [किते प्रिय नहीं? सब अपनी चीज खाना रखना बड़ाना और रतित रखता
 न हैं। हे जानिन् तुम अपने स्वभाव को खोज चुके हो वहीं कभी है तो उसकी
 करो। उसी में इतत विल हो जाओ। जहाँ पूर्णता होगी वहीं शुद्ध स्वभाव में
 ये। बस यही भोला है। तुम अपने में शुद्ध पर में निहित हो जाओगे और
 का मित्र कर्म मो कर्म भाव कर्म आदि विभाव अपने स्वभाव में आ जायेंगे।
 ने तुम्हारा कोई सम्बन्ध होगा और न उनका ही तुमसे कोई भी किसी प्रकार
 बंध रहेगा। दही चीनी मिली है तो मिश्रितनी है। दही दही रूप में हो जाये,
 तीनी में तो मिश्रितनी नामक औपाधिक वस्तु समाप्त हो जावेगी। शुद्धाशुद्ध
 आत्मा की दो अवस्थाएँ हैं। शुद्ध अपनी निज स्वरूप पर निरूपेण स्वतन्त्र है इसने
 कभी पर सयोग नहीं होगा एव बार प्राप्ति होने पर। सयोग रूप अशुद्धावस्था है
 को परापेन है। जैसी-जैसी पर की अपेक्षा होती है उसी तरह नामा रूपता होती

मलवा से घरे अपने मकान को हस्तगत करलो। फिर बूझा झाड़ते रहता। अस्तु हे भयार्थम् तू सम्पत्त्व रूपी महल को प्रथम खरीद ले। अपना बख्श कर। मिय्यात मोह का मूनीच्छेकर।

एक एक क्षण पर दृष्टि रखो। विचारा कर्म आगे गया या पीछे। बूद-बूद से घड़ा भर जाता है। अन्तर अन्तर से विग्न हो जाता है। पार्श्व पार्श्व से घनाद्व हो जाता है। एक एक रत्ती से पहाड़ बन जाता है। एक-एक गुण घृण से महान बन जाता है। और एक एक कस्तुर विषय के त्याग से सब मेल बट जाता है। एक एक कर्म के परिहार से आत्म शुद्ध होता है। विकारों से रहित होकर यही परमात्मा कहलाता है। प्रत्येक क्षण को देखो। इसका अभिप्राय यह नहीं कि काल द्रव्य का परमात्मा को दलने के लिए दुर्बल लगाकर बट जाओ। यह अर्थ नहीं कि उनका लक्षण निर्धारित करो। फिर क्या है? उस क्षण में तुमने क्या किया? उसका प्रतिफल क्या हुआ? विकास या हानि। हुआ तो अवश्य ही कुछ न कुछ होगा। किन्तु विकास हुआ तो किसका? राग या विराग का और हास हुआ तो किसका स्वभाव का या विभाव का। दोनो ही विराग्यो हैं। दोनो ही शुद्ध निश्चय से दोनो विप्र विप्र अपने-अपने ही आधित है किन्तु विकारी हाकर एक दूसरे में घुस पड़े हैं। घूना हल्दी का संयोग किया तो लाल रंग बन गया। अथवा बन नहीं गया बना दिया गया। दोनो ने अपना-अपना रंग स्वभाव एक दूसरे को अपना कर दिया। सफेदी और पीलापन छोड़कर लाल हो गये। यही हाल है स्वभाव और विभाव का। दोनो का मिले प्रेम किया गल लगे। गलबाह पड़त हो दोनो का बागा उत्तर गया। पानी दलते ही मोती की चमक की भाँति। दोनो बिहकप हो गये विकारी। इस विकार को समझो। समझकर बिस्वास करा और जुट जाओ पुन पृथक् कर शुद्ध स्वभाव में लाने को बत यही प्रतिपन्न को दलन समालन का है।

एक प्रश्न उठता है। मानव कूर क्या हो जाता है? विचार करने पर दो कारण समझ में आत हैं। प्रथमतः पूर्व भव के भस्कार दूसरा वर्तमान भव में नुगत कर्म। दोनो के अन्दर अज्ञान छिपा है। दोना में अहंकार पुन छिपाई देता है। दाना में अहंकार गुंजा है। अहंकारी अपने को बड़ा समझता है जिस समय वह अपने को और उसकी दृष्टि जानी है। साथ ही निरपराध से उत्पन्न बराबि उसके हृदय से टकराती है। अब उसका अपराध उसके विरस्कार और भाग हानि का साथ मिश्रित हो जाता है। साथ ही साथ अहंकार भी उभर पड़ता है। इस घमण्ड का पूर में वह गले तक डूब जाता है और अपने समस्त कुकर्मों के भार का भासादे रह जाता है। अब यही से उभरी करणा निकलना आरम्भ हानी है। वह अपने प्रत्येक काय को

अपन ही दृष्टिकोण से अपन बहणन के साथ ओकने लगता है और दूसरे के सदगुणों पर धरदा डालने लगता है। इसी मनावृत्ति की प्रक्रिया नृगसत्ता का रूप धारण कर लेती है। यह कुबर्मी को ही सत्कर्म बहता है सरकर्मों से अदानी रखा करता है सत् व्यापारों की वृद्धि करता है शुभ कार्यों का गन्ना धोता है। कबर्मी मिन और सत्कर्मों शत्रु बन जाते हैं। दुजना का गिरोह परिवार हो जाता है सत्नों का सद्गुण हनना होता है शिकार। य शिकारी अपने दुष्टरथा में निष्णात हो जाते हैं। इनको सम्पूर्ण सन्निविधि मात्र पर पीछा में ही इतना काम होने लगती है। यह प्रक्रिया इतना गहरी हो जाती है कि माना स्वाभाविक जन्मजात अनादि जातीन हो। उनरोतर सत्कारों की वृद्धि से कुमगति बन्द कर समयदुर रूप धारण कर लेती है। भाजानिन् एव रहस्य को समझ। अहंकार का त्याग कर। अपने सुकर्मों का विनय कर। विनय पाप रूप खाटे मस्कार अकुरा का धुन धुन कर निवास केकेनी नम्रता में शुभ पद और शुभ भावा में शुद्ध भावा में अकुर निवसत है यह मुनिचिन् समझ।

हे भगवन्तम ! गुह भक्ति सत्तार सारक है। चारित्र की प्राप्ति वृद्धि और स्थिति गुह भक्ति से ही हो सकती है। गुह स्वयं चारित्र है। ये चारित्र पालन करते हैं उनका जीवन चमच्चिन् की भांति हमारे जीवन को प्रभावित करता है। उनका प्रभाव छाप अमिट पड़ता है। क्योंकि उसका चारित्र पुस्तकीय नहीं होता बल्कि व्यवहृत होता है। प्रत्यक्ष नियामें जीवन को विषय अनुप्रापित करती है और तत्त्व प्रभावित करती है। सच्च राम दूगाणि विचार शून्य होने हैं। विनय भाव के होने हैं। विनय बन्धनों से अछूत रहते हैं। ज्ञान ध्यान तप में लीन होने हैं। यह कारण है कि भूतनामों उनका जीवन परीक्षण में निष्णात होता हुआ उन सदगुणों का आधार बनता जाता है। उन्हें अपने जीवन में उतारना हुआ मात्मज्ञान बनता जाता है। चारित्रिक तप साक्षात् स निष्णात जीवन तपोभूति हो जाता है। यह तप का प्रणिमा समय को आधारशिला और वैराग्य का प्रतिबिम्ब हो जाता है। फल प्रत्यक्ष अमिताया शिष्य अनुपायी स्वयमेव अनायास योग्य सदगुण सम्पन्न हो जाते हैं। यही है गुह गुह का मन्त्र जीवन सत्त्व गुह का सही प्राप्ति सत्य गुह का सत्य प्रभाव। यह प्रभाव अनेक या आत्मा की छाप बलि विवासावधिष्ठित होती है। गुह की उत्पत्ति में तो मार्गगत होता ही है उनकी अनुप्राप्ति में भी वे अपने अमर गुणों की वृद्धि के लिए निरंतर मार्ग प्रयत्न करने रहते हैं। श्री १०८ की का पञ्चन चरित्र विमल जीवन का जो उनके चारित्र शरीर से बहिर्गम होकर निष्पन्न में व्यक्त हो आता भी प्रणिचरित्र हो रहा है। तीर्थ क्षत्री क कल-जन्म में विद्यारी उनको जन्ममार्ग वाली अन्तर्निवास की सावधान कर रही है। छन्द है ऐसी नम्रता। चारित्र कायों को यह आत्मा अपना जीवन धार बनाना अर्थात् कर है।

[illegible]

निकन सकता है। धर्म से काम लो। उपमन परीपहो है विचलित नहीं होना। अपने निश्चय को अटल बनाय रहो विघ्न बाधाएँ आपने सकल्प को मिटाने के प्रयत्न में स्वयं ही मिट जायेंगी। तुम्हारा स्वरूप दण्ड बत स्वच्छ हो जायगा।

हे आत्मन् विचार करो। अग्नि सवत्र वर्जयेत्। तुम पर मे जितनी आशक्ति कराने उतने ही माया जाल में फँसकर ब्रष्ट उल्लासोग। आज तब जो भी आशक्तियाँ सही हैं उनका मूल यथान है अज्ञान मोह और प्रमाद का अहाँ त्रियोग मिश्रण हुआ कि बस सत्ता बढ़ा। मित्र मत्त सटार्ई तीनों का योग मिला कि रोग बढ़ा। य तीना शरीर के रागों की बढ़ती का कारण है और तीनों ही मसार के कारण है। इसा प्रकार सत्ता के नाम बरतन के भी तीन ही उपाय हैं—१ सम्पत्त्यन २ सम्पत्त्यान और ३ सम्पत्त्यारिज। इन तीनों का योग ही मुक्ति का कारण है। मयत्र तीन का योग ही काम की सिद्धि करने वाला है। तीन ही मयत्र का कारण है और तीन ही मुक्ति के कारण हैं। तू तीनों से बड़ा है और तीनों ही में खुदा है। हे भाई तीना का प्रयत्न कर। प्रथम सम्पत्त्य का धारण कर सम्पत्त्यान और सम्पत्त्यारिज का प्राप्ति कर ध्यन का छान करो। अनानिवासीन परत जना का नाम करो। स्वानन्द स्वतन्त्रता अपने आधीन होना। अरमा स्वभाव में आना। निज भाव में रमण करा। अपने में रह रहा ही स्वतन्त्र है। निज स्वभाव में तीन हो जाया। अपने में स्वतन्त्र बनना स्वाधुभूति ही निजान है। निजान में तीन होना ही स्व स्वकानुभूति है। इसी का अनुभव करो।

हे आरमभू दण्ड क्षण की पहिचान कर। प्रणिधन तुम्हारा जीवन नवीन नवीन हो रहा है। बन्धनी बहुर का समय। क्यों ब्रह्म रहा है। ब्रह्म का बन्ध तुम कहाँ हो? तुम में भी कुछ परिवर्तन हो रहा है या नहीं? यदि हाँ रहा है तो क्या वह सपाय है अथवा पर निमित्तक मात्र भ्रम जाल। यदि भ्रम है तो क्यों तुम उत्तम रूप विपन्न करते हैं? रागी इषी होने का क्या मतनव? आन रीत्यो करना? सुखी सुखी क्यों होना? अपना-पराया क्या है? मरा तरा क्या है? माह ममता क्यों है? क्या दासता है? क्यों आकषण है? क्या विकषण है? सकल्प विकल्प क्यों? तरा स्वरूप इन सबसे पारा है। तू शापक है दर्शक है। बस जना दृष्टा रह। जा डाना है होने दे। उसमें तटस्थ ही। आपा स्वयं मिल जावेगा।

हे साधो! मनीरोध आत्म साधना का उत्तम उपाय है। मन वेद है। जन्म कपी विप्रविषा का तार मन में वेदित है। सबका सधानन में से होना है। यह शान्त हुआ कि सब चुप रह जायेंगी। पावर हाऊस में नरेंद्र चानू हुआ तो सब प्रकाश है और पावर हाऊस फेल हुआ तो सब अंधकार। जिनका ही स्विकल्प सगत रहो चानू नहीं हा सबना यही दला है मन राजा और इन्द्र प्रजा की। यथा राजा तथा प्रजा। मन पवित्र है निर्धन है शम है तो सभी इन्द्रिय रागर भी उद्भूत उत्तम ही होने और यदि मन असम है विषय-वासनाओं से व्याप्त है विकारों से अनुरजित है तो समस्त इन्द्रियाँ तन्नुसार सम्पटी विषयसक्त धनि

[illegible]

प्राण हा जायना । वही है अर्थात् का मन ।
 गुड क्या है ? विचार । विचारना । जिसकी गुडि हाना ? जो
 अगुड हा । अर्थात् जो अज्ञान परमात्मन कृपु हा गया हा । कपडा मैना ही गया
 यानी अपने अगुनी कप हा विषय गया । उप गुड करो साध करो । मार करत
 साधुन पानी ओर घोड़ी चाहिए । आत्मा गुड गुड रित्य निरगत है गंगा हो ग
 विषय विचार परमात्मा न रित्य हो । इन भी भेद ज्ञान साधुन समरण नीर जो
 अनारात्मा रजस की भावकता है । अनात्मिनीन तत्विज कर्म मन प्रमात्मन कर्म
 के लिए इन नवी साधनों का प्रचुर पर्याप्त और सहज हाता परमात्मन है ।
 सवप्रथम भेद ज्ञान साधुन तपार करता है । आत्मा कम और भय पर मर्याद
 भावों का मिश्रण रूप साधुन बनाना है । या या कहो इन दृष्ट्या का मिश्रण है यह
 करना चाहिए । आत्मा शरीर कम एक म एक अनुप्रविष्ट है इन समझो जाना ह
 म उगारा इदता मे अज्ञान से और महान पुरुषार्थ स । यह स्वपर का विधान है
 पर परिणति रूप मय विचार का स्वच्छ करने वाला है । इनके साथ ही साम्य ज्ञ
 होना भी अनिवार्य है । अनेका साधुन रगड़ने जायें ओर पानी न डाला जाये तो
 बरत न ता धुलगा न गंदगी निकलेगी अविदु बहु पाँठ का साधुन भी तब हो
 जायगा । इसी प्रकार भेद ज्ञान हो गया और कपट कीचड़ का ही धोवन गद तो
 निष्पात की सझो होनी ही जायगी । अस्तु साधुन पाना शनों का होना जरूरी
 है । अब यदि ये दोना वस्तुन हा और धाने वाला न गत तो वरत किस प्रकार श
 हागा ? नही हो सकता । अत निर्मल अनारात्मा की घाड़ी परमात्मन है । अन
 रात्मा के तिराय बहिरात्मा तीनकाल म भी परमात्मा की उपनिधि करन म सम्य
 नही हा मरती । अनारात्मा जो चाहो उगाय कर अरने म स्थिर रह कर प्रमा
 कपाय माग और निष्पात रूप आसव को कम बाधिका का अनायास हा दूर कर
 सकता है । ए अज्ञानम अनारात्मा बन । कर्म दम की छाया म तप की शिला बिछा
 कर संयम मरारत स ज्ञान सधना ज्ञान ले न कर कम बाधिका का विनाश कर ।
 अनात्मन है यह ज्ञान कर बना हुआ है पुरी रगड़ धगड़ पछा लगाने पर ही

निकल सकता है। धर्म से काम लो। उपसम परीषद्ओं से विचलित नही होना। अपने निश्चय को बटन बनाये रहो बिना बाधाएँ, आपके सत्य को मिटाने के प्रयत्न में स्वयं ही पिट जायेंगी। तुम्हारा स्वरूप दण्ड वत स्वच्छ हो जायगा।

हे आत्मन् विचार करो। अग्नि सवन बर्जयत। तुम पर मैं जितनी आराधना करने उतनी ही माया अन्ध में फँसकर बण्ट उठाया। आज तक जो भी आराधना की है उसका मूल अज्ञान है। अज्ञान मोह और प्रमाण का अही त्रियोग मिश्रण हुआ कि मन मसार बढ़ा। पिछ तल अट्टाई तीनों का योग मिला कि रोष बढ़ा। ये तीनों शरीर के रागों की बढ़ती का कारण है और तीनों ही सत्कार के कारण हैं। इसा प्रकार सत्कार के नाम करन कभी तीन ही उपाय हैं—१ सम्पत्त्यान २ सम्पत्त्यान और ३ सम्पत्त्यान। इन तीनों का योग ही मुक्ति का कारण है। सवन तीन का योग ही कार्य की सिद्धि करने वाला है। तीन ही बन्धन के कारण हैं और तीन ही मुक्ति का कारण हैं। नू तीनों से बचा है और तीनों ही से मुक्त है। हं भाई तीनों का प्रयत्न कर। प्रथम सम्पत्त्यान व को धारण कर सम्पत्त्यान और सम्पत्त्यान का प्राप्त कर बन्धन का छन करो। अनादिवासीन परत जना का नाश करो। स्वात्मन्य स्वयम्भवा अना आधीन होना। अरमा स्वभाव म अना। निज भाव म रमण करा। अपने में रन रहना ही स्वयम्भ है। निज स्वभाव म तीन ही जाजा। अपन म स्वयम्भवन करना स्वानुभूति ही निजान है। निजान म तीन हाना ही स्व स्वयम्भानुभूति है। इसी का अनुभव करो।

हे आत्मन् क्षण क्षण की पहिचान कर । अनिष्टम मुझ्छारा जीवन नवीन नवान हो रहा है । बन्धनी बहारा को समझा । क्यों बदल रहा है । बन्धने का बन्ध तुम कहाँ हो ? तुम में भी कुछ परिवर्तन हो रहा है या नहीं ? यदि हा रहा है तो क्या वह सकारण है अथवा पर निर्मितक मात्र भ्रम जाल । यदि भ्रम है तो क्यों तुम उसमें हूय दिया करते है ? रागी हूयी होने का क्या मतलब ? आज रोगियों फेरना ? सुखी क्यों होना ? अपना-बरादा क्या है ? मेरा-तारा क्या है ? यह समझा क्यों है ? क्यों बामना है ? क्यों आकषण है ? क्या विवर्ण है ? मकरन्द विवर्ण क्या ? तरा बकर इन सबमें ग्यारा है । तु आषक है दसक है । बस झन्डा हट्या रह । जा हाता है हान दे । उसमें ठण्ड हो । भाषा स्वयं मिन आवेया ।

हे सन्ने ! मनोरथ काय साधना का उत्तम उपाय है। मन केन्द्र है। इन्द्रिय
बन्ने निरन्तर का तार मन में वर्तित है। सबका सञ्चालन यहीं से होता है। यह
काम्य हुआ कि मर चुन रह जायेंगे। पावर हाऊस से करेण चानू हुआ तो सब
मर जायेंगे और पावर हाऊस बन्द हुआ तो सब जगत्कार। बिजली ही विश्व का
साधन रही चानू नहीं हो सकना यही दशा है मन राजा और इन्द्रिय प्रजा का।
मन प्रजा। मन बन्ध है नियम है जय है ॥ सभी इन्द्रिय व्यापार भी
ये हैं और यह मन सम्पन्न है विषय-व्यापनाओं में व्याप्त है
इन्द्रिय सन्तुलन लक्ष्मी विरपासक धृति

रहेगा। अतः हे भाई तू सतक हो सावधान हो, सचेत हो अधिष्ठ हो, प्रमाण तब मोह त्याग मिथ्यात्व की शान्ति कर। ऊपरी आवरण का त्याग होने पर भीतरी स्वयं स्वयं ही आपके समान आ जायेगा। मस्कर बनसना है। घरेलू मस्कारों का परिहार करो तो आध्यात्मिक मस्कार जमते जायेंगे। नस्तिक भावों का प्रादुर्भाव करा। आत्मिक भावों का उत्थप करो। अन्तरङ्ग को छोड़ा बाह्य में उलझा, बाह्य को तब दो अन्तरङ्ग में स्वयं आ जाओगे। हे आत्मन् प्रमाद तब कर सावधान होने का प्रयत्न कर। भोगों में क्या-क्यों क्या दुख ही पत्र पाया तब मुनिश्चित है कि भोगों को त्यागो तो त्यो त्याग सुख की प्राप्ति होनी जायगी। व्रत त्याग नियम समय धारण कर। त्याग ही आत्मा का दशक है। अब उस आत्मा का दर्शन करा। उसी को पाओ। उसी का पोषण करा। उसी का पुण विकास होने पर अन्तम सुख मोक्ष प्राप्त हो जायेगा। यही है अतः वृत्ति का फल।

मुक्ति क्या है? पवित्रता। निवसना। निर्दोषता। जिसकी मुक्ति होना? जो अशुद्ध हो। अर्थात् जो अपने स्वभाव से कृत्तु हो गया हो। कपड़ा मैला हो गया यानी अपने असली रूप से बिगड़ गया। उसे शुद्ध करो, साफ करो। साफ करने का साबुन पानी और धोबी चाहिए। आत्मा शुद्ध बुद्ध नित्य निरन्तर है गंगा हो गया विषय विकार परभावों में निम्न हो। इसे भी भेद ज्ञान साबुन समरस नीर और अन्तरात्मा रजक की आवश्यकता है। अनादिकासीन सचिन कर्म मन प्रत्यालिन करने के लिए इन सभी साधनों का प्रचुर पर्याप्त और गहरा होना परमावश्यक है। सबप्रथम भेद ज्ञान साबुन तयार करता है। आत्मा कम और कम पर सयोग रूप भावा का मिश्रण रूप साबुन बनाना है। या तो कहीं इन द्रव्यों का मिश्रण है यह ज्ञान करना चाहिए। आत्मा शरीर कम एक में एक अनुप्रविष्ट है इन समस्तों जानो हृन्म में उनारा इकता में भेदज्ञान से और महान् पुरुषार्थ से। यह स्वयं का विज्ञान ही पर परिणति रूप मन विकार का स्वच्छ करने आता है। इसके साथ ही साम्य जन होना भी अनिवार्य है। अकेला साबुन रगड़ने जायें और पानी में डाला जाय तो बरत न तो धुनेगा न गन्गी निकलेगी अपितु वह गाँठ का साबुन भी खच हा जायेगा। इसी प्रकार भेद ज्ञान हो गया और कष्टाय कीचड़ का ही धोते गय तो मिथ्यात्व की सदा होती ही जायगी। अस्तु साबुन पानी दोनों का होना जरूरी है। अब यदि य दोनों वस्तुएँ हा और धोने आता न रहे तो बरत किस प्रकार गड्ड हागा? नहीं हा सकता। अतः निमित्त अन्तरात्मा की धोबी परमावश्यक है। अन्तरात्मा के मित्राद अन्तरात्मा तीनकात में भा परमात्मा की उपनिष्ट करने में सनय नहीं हा सकती। अन्तरात्मा जो बाह्य का उभाय कर अपने में स्थिर रह कर प्रमाण कष्टाय माग और मिथ्यात्व एवं आश्रय की कर्म कालिमा को अनायास ही दूर कर सकता है। हे महाशय अन्तरात्मा मन। कम दम की छाया में तप की गिरा बिछा कर संयम सरावर में जन सभ्यता जन में से कर कम कानिया का विनाश कर। अन्तः मन है यह जन कर बड़ा हुआ है पूरी रगड़ धवड़ पछा सगान पर ही

निकल सकता है। धर्म से काम लो। उपसर्ग परीपहो से विचलित नही होना। अपने निश्चय को अटल बनाये रहो निम्न बाधाएँ आपसे सकल को मिटाने के प्रयत्न में स्वयं ही मिट जायेंगी। तुम्हारा स्वरूप स्पष्ट वस्तु स्वच्छ हो जायेगा।

हे आत्मन् विचार करो। अग्नि सर्वत्र वर्जयेत्। तुम पर मे जितनी आशक्ति करोगे उतने ही माया ज्ञान में पसकर कष्ट उठाओगे। आज तब जो भी आशक्तियाँ सहीं हैं उनका मूल अज्ञान है अज्ञान माह और प्रमाद का जहाँ त्रिवेग मिश्रण हुआ कि बस सत्कार बढ़ा। मित्र तब सटाई तीनों का योग भिला कि रोग बढ़ा। ये तीनों शरीर के रागो की बढ़ती का कारण है और धीनो ही सत्कार का कारण है। इसी प्रकार सत्कार के नाश करने के भी तीन ही उपाय हैं—१ सम्यग्ज्ञान २ सम्यग्मान और ३ सम्यक् चारित्र्य। इन तीनों का योग ही मुक्ति का कारण है। मन्त्र तीन का योग ही काम की सिद्धि करने वाला है। तीन ही बन्धन का कारण हैं और तीन ही मुक्ति के कारण हैं। तू तीनों से बड़ा है और तीनों ही में खुला है। हे भाई तीनों का प्रयत्न कर। प्रथम सम्यक्त्व को धारण कर सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य का प्राप्त कर बन्धन का छान करो। अनादिकालीन परत वना का नाश करो। स्वात्म-प्रयत्न स्वतन्त्रता अपने आधीन होना। आत्मा स्वभाव में आना। निज भाव में रमण करो। अपने में रत रहना ही स्वतन्त्र है। निज स्वभाव में लीन हो जाओ। अपने में स्वसंवेदन करना स्वानुभूति ही निजान है। निजान में लीन होना ही स्वस्वरूपानुभूति है। इसी का अनुभव करो।

हे आत्मन् क्षण क्षण की पहिचान कर। प्रतिक्षण तुम्हारा जीवन नवीन नवीन हो रहा है। बल्लती बहार का समझो। क्यों बदल रहा है। बदले ला बल्ल तुम कहाँ हो? तुम में भी कुछ परिवर्तन हो रहा है या नहीं? यदि हो रहा है तो क्या वह यथाय है अथवा पर निमित्तक मात्र भ्रम ज्ञान। यदि भ्रम है तो क्यों तुम उसमें हय विषाद करते हैं? रागी इषो हान का क्या मतलब? अन्त रीत्यो करना? सुखी सुखी क्यों होना? अपना-पराया क्या है? मेरा तरा क्या है? माह ममता क्यों है? क्यों वासना है? क्यों आकर्षण है? क्या विकर्षण है? सकल्प विकल्प क्यों? तरा स्वरूप इन सबसे पारा है। तू जापक है दशक है। बस जन्ता इष्टा रह। जो ठाना है हान दे। उसमें तटस्थ हो। आपा स्वयं मिल जावगा।

हे साधो! मनोरोध आत्म साधना का उत्तम उपाय है। मन कन्द है। मनिय रूपी विभक्तियो का तार मन में वदित है। सबका संचालन यही से होता है। यह शान्त हुआ कि सब धुप रह जायेंगी। पावर हाऊस से करेंट चालू हुआ तो सबत्र प्रकाश है और पावर हाऊस फलत हुआ तो सबत्र अंधकार। किन्तु ही स्विक सन् श्रुताते रहो चालू नहीं हा सकता यही दशा है मन राजा और इन्डिय प्रजा की। यथा राजा तथा प्रजा। मन पवित्र है निर्धन है मूढ है तो सभी इन्डिय व्यापार भी तदनुकूल उत्तम ही होंगे और यदि मन असत्य है विषय, स व्याप्त है विकारों से अनुरब्ध है तो समस्त इन्डिया तनुसार सक्त घटित

मोक्ष अनुचित कर्मों में ही नहीं रहती । जन्म मरण के सुभाषित होने से सम्पूर्ण इन्द्रिय आत्मा उसी के अनुसार होते रहेंगे । जिस समय सुभाषित वक्तव्यों से रतिमय मन अज्ञानता को धारण करता है । उस समय मरण के साथ साथ सम्पूर्ण इन्द्रियाँ निश्चित हो जाती हैं । योग का अन्तर्गत वह जाता है । मारी आकाशगर्भी स्थिति हो जाती है । कारण के अभाव में कार्य स्वयं बन्द हो जाता है । यह है मतो विष्णु और इन्द्रिय मन की स्थिति जो सम्पूर्ण आत्मा के अन्तर्गत के साथ मुक्ति का मानव है ।

क्या विरोध धर्म का अंग है ? धर्म विरोध का मानव है । विरोध राग द्वेष मूलक है । धर्म राग द्वेष से मूलक है । जहाँ राग-द्वेष हाथा बढ़ाई धर्म ही नहीं है । मया वस्तु का स्वभाव धर्म है । उन्मत्तमानि-द्वय प्रकार का धर्म मानव माना धर्म है । नीच स्वार्थ रक्षण धारण करता धर्म है । मया माना धर्म है । ये चार परिभाषाओं आत्म में वर्णित की हैं । मया धर्मों का विरोध करने पर राग द्वेष का अभाव स्पष्ट प्रतिपत्ति होता है । जहाँ राग द्वेष हाथा अवश्य परिभाषा में कुटिलता रहेगी । वह परिणाम में सम्पन्न नहीं रह सकता । अवश्य में धर्म नहीं ? जहाँ अगम्य और बचना है वहाँ गति है । दिना अधम है अन्ध है आ वृद्ध धर्म नहीं है । मया धर्म राग-द्वेष विविध है । अत्र विचारणीय है राग-द्वेष अधर्म क्यों है ? स्पष्ट है राग-द्वेष वस्तु स्वभाव नहीं । आत्मा वस्तु है जीव वस्तु है । उनका स्वभाव मान-अज्ञान धर्मता है न कि राग द्वेष । इसी प्रकार अधर्म परिभाषाओं हैं । अब आप माधिर्य समार में प्रवर्तित नरा पक्ष भीम पक्ष साडे सोलह पक्ष काजरी पक्ष आदि अनन्त पक्ष हैं उनमें भी बहुत सरल मध्यम भेद हैं । ये सभी एक-दूसरे को द्वेष दृष्टि से धर्मन हैं एक दूसरे का हृद्य चाहते हैं पराभव करते हैं परस्पर बह्वृ करते हैं मन बचन काय से निरस्तार करने की चेष्टा करते हैं । इन परिस्थितियों में धर्म किन्तु कहा जाय ? यह प्रश्न अत्यन्त शास्त्रीय विचारणीय और अनुभवनीय है । प्रथमतः आत्म का आनाडिन विमोहन करना चाहिए तन्नुसार जो सही है उसे धर्मन करे अथ के प्रति मध्यस्थ रहे क्योंकि माध्यस्थ भाव विचरीन वस्ती जो विचरीनी जन है उनके प्रति राग द्वेष का त्याग करना परमात्म उपाय है । यही होगा धर्म का स्वरूप धर्म का पालन धर्म का रक्षण और इसी से धर्म की अभिवृद्धि हो सकता है । ह माधो ! तुम राग द्वेष छोड़ो सही उपदेश करो सभी आपका उपदेश धर्मन करें ऐसा दुराग्रह मत करो । सभी माने इसमें हठ क्या ? हम सबके कर्ता नहीं हो सकते । भरतु अपने परिणाम समालो । भावो में सरलता होना ही धर्म है ।

धर्म अति सरल है यदि हमारे अन्तर उस पान की आकांक्षा हो । हम धर्म स्वरूप ही हैं । आत्मा धर्म से भिन्न नहीं । धर्म आत्मा से पृथक् नहीं । आत्मा और धर्म अयोपानम है । जिस समय हम किसी को धर्मिता कहते हैं वह आत्म भाव में निश्चय होता है । वही अधर्मों पापी की सजा युक्त होता है तो धर्म आत्म भाव से दूर रहता है । धर्म आत्मा की अभिव्यक्ति है । आत्मा अनादि से कर्मोच्छन्न है । कर्मवृत्त होने से धर्मभाव छुटा है । धर्म की ज्योति कर्म पटल के हटने पर ही प्रका-

मित होती है। हमारे छोटे भाव विचार दुर्धन आध्यान ही अग्रमं है शुभ भाव
सन्निवार विवेकपूर्ण त्रिषा सरतभावोप्य ध्यान दयाधर्म चित्तम तत्त्व स्वरूप विव
आत्म यद्वात वस्तु स्वरूप निष्ठा ही धर्म हैं। इन त्रियात्रा म रति प्रीति ही ध
है। आचार्य श्री कु-कु-स्वामी न भी यही धर्म का स्वरूप निर्धारित किया है
हे साया ! कपाय मद करो। सहनशील बना। सहिष्णुता धर्म की जननी है। कुछ
करो धर्म भाव दया भाव वत्तव्य भाव से कर दो। पर क प्रति आशा न करो कि
मैं जसा चाहू बना ही यह करे। वह कछ भी करे अथ उठाकर मत देना यदि
पतक उठ भी जाय तो पुन साप ता तो भी न माने ता देखकर उस अथ त मन
कहो। कोई कुछ भी नहे सुनो मन सुनन म आ जाये तो उस पर विचार मत करो
दहराओ मत अथ के समन व्यक्त मत करा। अथ सभी इन्धियों क विषया क प्रति
उदासीन उपेक्षित हो जाओ मध्यस्थ बनो अछम दूर रहेगा धर्म जगता आत्मवल
बढ़गा विवेक जाग्रत होगा ज्ञान की किरणें चमकेंगी पुन धर्म प्रकट हा जायगा।
आत्मा परमात्मा बन जायेगा। यही मुक्ति है यही सत्य है शिव है मुक्त है अतिम
मोक्ष पद सिद्धि है।

ह आत्मन् ! 'अ' का ध्यान कर। यह अक्षर अक्षर है। ज्ञान गुण का उद्बोधक
है। नामि कमल म इसका ध्यान करने से कम कालिमा नष्ट होती है। नवो भीहा
मुख कमल आनि म ध्यान करने से माना प्रहार के सकल विरह नष्ट होत है। दुर्धन
मष्ट हाता है। एकाग्रचित्तवृत्ति हो जाती है। किसी भी क-के पूव लगा दिया ता
विपरीत अथ कर देता है। सत्य स-है। पूव म अ गया दो अग्य बन
जायेगा। अर्थात् वह पण्य जिसका कभी नाश न हो। वह क्या वस्तु है ? वह है
धर्म और आत्मा। वस्तुन तसार लणिक है। हर एक वस्तु नश्वर है। हर एक चीज
परिवर्तित होती रहती है। रह। अथ इष्टि से कभी सत का अभाव नहीं हाना।
आत्मा और धर्म अयोयाधर्म हैं। दोनों एव ही सिक्के क दो पतक हैं। आत्मा
सुख रूप म पारणत हाने क बा-पुन अशुद्ध नहीं होता। आज है अग्य तृतीया।
तृतीया तो सतन् आती जाती रहनी ही है। समय लगा त्रिया जाय ता कोई आश्चर्य
नहीं क्योंकि आने क बा-जाना ही है। किन्तु इसक पीछ तो अ और गया है।
अग्य कभी अथ न हो। भगवान् आदीश्वर का प्रथम पारणा इम त्रि हु-
महा राज-नी अध्यास राजा क घर। इन रस का आहार। धय हो गया वह ताता
पाकर अपूव पात्र का। उमे वह निधि मिली जो अग्य रूप म ही परिणत हाकर
रही। घर म अतिल मण्डार भर गये। रत्ना स नगर जड गया। अथाण महानस
श्रद्धि प्रकट हुई। ऐसा था चमत्कारी जिन शामन का महात्म्य। जिन प्रभु का महत्व
असाय ही होता है। अस्तु दान की प्रवतना इसी त्रि से प्रारम्भ हुई जो प्रथम काल
के अन्त तक बराबर अग्य रूप स चलती जायगी। इही सब कारणों स यह अग्य
तृतीया प्रसिद्ध है। इस दिन जो भी काय प्रारम्भ किया जायगा वह बराबर मफन
होगा। उसमें विशेष अतिशय आयेगा एक निश्चित चमत्कार जाग्रत हागा। यह

मिष्ट होती है। हमारे लोटे भाव विचार दुर्ध्यान अश्रद्धा ही अधर्म हैं शुभ भाव सन्निवार विवेकपूर्ण क्रिया सरलभावोत्पन्न ध्यान व्याधर्म चित्तन सख स्वस्व विचार आत्म यज्ञान वस्तु स्वरूप निष्ठा ही धर्म हैं। इन क्रियाओं में रति प्रीति ही धर्म है। आचार्य भी कृष्ण कृष्ण स्वाधीन भी यही धर्म का स्वरूप निर्धारित किया है। हे साधु ! कपाय मद करो। सहनशील बना। सहिष्णुता धर्म की जनना है। कुछ करो धर्म भाव दया भाव वत्तल्य भाव संहर दो। परम प्रति भाषा न करो कि मैं जसा चाहूँ वसा ही यह करे। यह कुछ भी करे अथ उठाकर मन देना यदि पनक उठ भी जाये तो पुन भाव ला तो भी न माने तो देखकर उम अथ म मन कहो। कोई कुछ भाव रहे मना मन मुनने में आ जाये तो उस पर विचार मन करो। दुहाओ मन अथ के समान व्यक्त मन करो। अथ सभी इन्द्रिया के विषया पर प्रति उदासीन उर्ध्वान हो जाओ मन्वस्य बनो अधर्म दूर रत्ना धर्म जगता आत्मबल रहेगा विवेक आपन हाता धान की किरणें चमकेंगी पूरा धर्म प्रकट हो जायेगा। आत्मा परमात्मा बन जायेगा। यही मुक्ति है यही सत्य है शिव है सूर्य है अनिम मोघ पर सिद्धि है।

हे आत्मन् ! 'अ' का ध्यान करो। यह असंख्य वन है। पान पुन का अद्वोद्यक है। नाभि बयल में इसका ध्यान करने से कम कालिमा नष्ट होती है। नमो भोहा मुक्त बमल आत्मा में ध्यान करने से माना प्रकार के संस्कार विचार मिटते हैं। अध्यान नष्ट होता है। एकाग्रचित्तवृत्ति हो जाती है। किनी भी वस्तु के पूर लगा लिया । विपरीत अथ कर देगा है। धर्म अर्थ है। पूर में अ लगा दो अथ बन जायेगा। अर्थात् यह पण्य जिसका कभी बाज न हो। यह क्या वस्तु है ? यह है धर्म और आत्मा। वस्तुतः ससार शक्ति है। हर एक वस्तु गन्धर है। हर एक चीज परिवर्तित होती रहती है। रह। नव्य दृष्टि से कभी सन् का अभाव नहीं होता। आत्मा और धर्म अयोवाश्रय है। दोनों एक ही शक्ति के दो पल्लव हैं। आत्मा सुद्ध रूप में पारणत होने के बाद पुन अशुद्ध गद्दा होता। बाज है अथय तृतीया। तृतीया तो सत्त्व आती जाती रत्नी ही है। धर्म लगा दिया जाय तो कोई आश्रय नहीं क्याकि आने के बाद जाना ही है। किन्तु इसमें पाछे तो अ और लगा है।

अथय कभी धर्म न हो। भगवान् आशीश्वर का प्रथम पारणा दग निन हुआ महाराज श्री गयाम राजा के घर। इस रत्न का आश्रय। धर्म हो गया अत्मा पाकर अपूर्व पात्र को। उये वह निधि मिनी आ अथय रूप में ही परिणत होकर रही। घर में अन्विल भण्डार घर अये। रत्नों से नगर जड़ गया। अश्वत्थ महानम कृद्धि प्रकट हुई। ऐसा था चमत्कारी जिन शासन का महात्म्य। जिन प्रभु का महत्त्व अथय ही होता है। अस्तु दान की प्रवतना नसी निन से प्रारम्भ हुई जो प्रथम बाल के अन्त तक बराबर अलक्षण रूप से चलती जायेगी। इहां सब कारणा से यह अथय तृतीया प्रसिद्ध है। इन निन जो भी काय प्रारम्भ किया जायेगा वह बराबर सफल होगा। उसमें विशेष अविशय जायेगा एक विशिष्ट चमत्कार जाग्रत होगा। यह

नि महापवित्र है तृतीय का प्रवक्तृ है। दानवीय क बिना धर्मवीय नहीं बन सकता इसलिए यह धर्मवीय का भी पापक बटक और प्रवक्तृ है।

आत्मा है क्या ? आत्मा शरीर में है। कबे जाना जाय ? अनुमान से और प्रत्यक्ष भी। यथा बाण्ड में अग्नि दुग्ध में घृत चक्रमक पत्थर में आग पाषाण में गुवण सीप में मोती पुष्प में इत्र तथा दन्त में रस मिष्ठान आदि रूपा है। उसी प्रकार शरीर में आत्मा निवसमान रहता है। मरण काल में निष्कण्ट शरीर बना रह जाता है इसमें त्रिनि होता है कि शरीर अवयव इन्द्रिया का समाहित करने वाली बाई अग्नि विलास है जो आत्मा है। अग्नि की बाड़ी लगान से बाण्ड का धनजन्य प्रकट हो प्रचलित हो उठती है विलाने से दूध में घी प्रयत्न प्राप्त होता है परस्पर में परस्पर रमडन से अग्नि प्रकट हो जाती है लगाने से किहि बादिमा पाषाण से गुवण निखन आता है सीप से मुक्ता पुष्प से पराग इत्र विलास पर रस में रस माध्य है उसी प्रकार तपस्वरण से शरीर में पुष्पा आत्मा प्रकट प्राप्त हो जाता है। आत्मा की उपस्थिति प्रयत्न माध्य है यह सुनिर्णीत है। चर्चिण्या का सङ्ग्रह होने में चर्चका तमणि से स्वयमेव शीतल जन प्रवाह प्रकट हो जाता है उसी प्रकार बीतराग मङ्गल विनोदशा दश का अन्त में निवृत्त बन पर आर्य स्वर्ण प्रारण हो जाता है। आत्मा साध्य है निर्मेत मुद्धारम परमात्मा साध्य है। परमात्मा का गुणानुराग आत्मा के दुगुणा का प्रमाण बन में पूरा समर्थ है। त्रिन भक्ति एकमात्र दुष्मि का सहार करने में समर्थ है। प्रभु का गागान् दशन मात्र निवृत्ति का मङ्गल निमित्त करने में पूरा समर्थ है। यद्वा नहीं मर्य यद्वा एक भक्ति से किया हुआ त्रिन विवद नान और पूजन नहीं पाने लाय है जो सागान् विनेत दशन पूजन पत्र भेदे है। तत्र बराग्य से माध्य है बराग्य तत्त्व ज्ञान ॥ तत्त्वज्ञान सास्त्राध्ययन से सास्त्राध्ययन निर्विकल्प ज्ञान प्राप्त से भावमाध्यम करने में माध्य है। यह है स्व स्वर्ण गिद्धि की साधना त्रिगुण माध्यम में हम अपने निवृत्त स्वर्ण के अग्नि निवृत्त पदार्थों को लाते हैं और अन्त में स्व स्वर्ण समर्थ हो परमात्मा की कल्पना है। भी साधना यह मयमन्य इसी मानव पर्याय में साध्य है नू साधना हो एक निमित्त मात्र भी व्यर्थ मन मया। हर शन अनिजयवान मङ्गलवाणी है। बराग्य घर मयमी बन तपो हृदय लक्ष अष्ट तपस्वरण कर तत्र की उपाया में कर्म का बन की मयम मान कर।

हे मध्यमन्य ! अन्त में सर्वोत्तम बन्यु है। आर्यभक्ति व मयम अन्त मयम भक्ति अन्याय विराजित हो जाती है। मयम अन्त में नून्त दुष्ट त्रिगुण का भावना पराधम स्वाध निवृत्त हो जान है। नू साध्य बन प्रकट कर। त्रिगुण बन। अन्त अन्त पानन का कारण है। मयमन्य मानव सागरीति जीवन की बरा बन अष्टक अन्त में भी स्वर्ण नो साधना विवदामुक्त नहीं हो पाय। कारण बाण्ड है उसकी निवृत्त भावना पान नहीं मयमी। मयमन्य भक्ति

की पावन शक्ति कमजोर हो जाती है। वह रुग्ण सा अपने को अनुभव करता है। उसका विचार स्वातन्त्र्य घुटा घुटा सा रहता है। यदा-कदा वह अविच्छाद्यक दुःखसना में भी फस सकता है। त्याग व्रत नियम आदि का भी परित्याग करने का तत्पर हो जाना है। बोलना चाह कर भी बान नहीं सकना। करना चाहत हुए भी शरीर से कुछ कर नहीं पाता। यह हाना है भयातुर व्यक्ति की दशा। साधु अवस्था में भी यदि भय का भूत रहा तो कई बाध विपरीत हो जाते हैं। दाप हाँ जान पर लोक लाज का भय यदि हागा तो शुद्ध आलोचना नहीं कर पायगा। प्रायश्चित्त कटार में मिल इस भय से न तो सत्य शुद्ध आलोचना कर पाता है और न प्रायश्चित्त ही यथोचित मिल पाता है। शुद्धि का अभाव हान से द्रव निर्णय नहीं हो सक्ता और शुद्ध व्रत नियम नहीं पसन्द न आत्म शुद्धि किस प्रकार हो सक्ती? उभय लोक की शक्ति होती है। ब्रह्मनिका में कुत विभी ब्रह्म आदि पर प्रयोग कर यह सिद्ध किया है कि भय में पावन शक्ति कमजोर होकर धीरे धीरे घुसुन्ना शान्त होने लगती है। भयातुर प्राणी का आमाशय पक्काशय निष्क्रिय हो जाता है। सम्पूर्ण आत्मा की क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। शास्त्रों में इष्टाष्ट निरुद्धा है श्रेणिक महाराज न ब्रह्मोणा (जिन्ना के) व सोमो व पास एक बकरा भेजकर कहा कि छ माह तक हम रक्षा पुन वापिस लाना किन्तु ध्यान रहे यह न मांटा हा न पटना। पतन सब व्याकुल हाकर अमरकुमार के पास पहुँचे। उनकी युक्ति व अनुसार उसे भरपूर मुन्दर पत्राज्ञ यथेष्ट विनाये जा किन्तु उसे दो शरीर के बीच बाँध लिया जाना। बेकार भयातुर जहाँ का तहाँ रहा। अर्थात् उसकी पावन शक्ति नष्ट हो जाने से कथिरीय धातु नहीं बन पाना। यह है भय का प्रभाव। ह ज्ञानिन। अभी भयभीत मन हुआ। निरन्तर आत्म तत्त्व का विचार करा। विवेक से किया करा। काय करने के पूर्व साध समझ लो उसका विषय परिणाम। यदि कदाच कोई क्रिया प्रमाद अज्ञान या कपायाधिन मागम में प्रविष्ट न घने विरुद्ध व्रत नियमादि के प्रतिवृत्त हो जाये तो सरल मानो न समझावों से मायाकार रहित उसे स्वीकार करो। उस पर पुन-पुन परमात्माप करा गुह्यज्ञो के समस्त निवेदन कर उसका दण्ड प्रायश्चित्त धारण करो। भविष्य में उस प्रकार की गलती या भूल न हो इसके लिए सावधान रहो। जीवन निश्चरता आयगा। व्रत शुद्धि व साय-साय आत्मशुद्धि होती जायेगी। यह आत्म विकास की कृष्णी है। आत्मोन्नति का सोपान है। सत्कार से पार हावा है अपने कर्तव्य पर दृष्टि करो। पग-पग पर अपने व्रत-कार्यों पर ध्यान रखो। हर क्षण अपनी प्रवृत्ति को शान कर उन्हें निकालने का प्रयत्न करते जाओ। सद्गुण बढ़ने आयेंगे। नृगुण निकलने रहेंगे। आत्म विकास होते-होते परम श्रुद्ध आत्मा की उपलब्धि हो जायगी। यही परम ध्य है। मोक्ष स्थान है।

ह साधो! हमारा इन्धन का विषय कितना घुणास्पद है इसका नू विचार कर। सबप्रथम यह स्थान रक्ष भूत का प्रवाह है। हर समय मन बढ़ने व नव द्वारों

मे मे एक है। यह घास कूज झाड़ो में आच्छादित रूप सज्ज है। इससे स्वभाव स्वल्प का जान करने वाला कौन सज्जन पुष्प हाथा जो अधवन इसमें पड़कर मृगति का प्राप्त बनगा। इस लोक में निम्नीय और परलोक में नरकानि गतियों के दुःखा का कारण है। अनन्त भूयः सम्पूच्छन मनुष्य रूप कीटा स व्याकीर्ण है। निम्न मण्डलन मात्र में ६ लाख कीट निरपराध जंतु क्षणभर में मरण का प्राप्त होते हैं। हिना की स्तन इसे मागवर की सखी मुमानुभव करेगा परपीठा महा कष्टनायी है उभय लाव घानक है। इसका भयङ्कर रूप बीभत्स आकृति, घणाम्प रूप मात्रना क बराय का कारण है न कि भाग का। यह भयङ्कर ऊच नीचे पचना के मध्य की गहन करता है। इसमें घृष्टता रूप शिकारी छुस बठा रहता है। इसका एवमा का बागुरा भोज आवां को अनि चतुर है। निम्ना की विष मिथिन मिठास में फसकर विषयी जीव उभयदय प्राणा का घात कर डालने हैं। यह विषकुम्भ पयामुन है। विष ना एक भव का ही नाम करता है। यह अनन्तमया का विगा देता है। मय सिद्धमानार भी यमे ही तीक्ष्ण घानक है। यह मृगनयनिया के कृष्ण बागा से भागियो क हृन्म विनीष करा देता है स्वच्छ हास रूप पना में उनमावर उनके विवेक करी घन का अपहृत कर लेता है। चञ्चल चित्रन, टेडी घाल स उनक जान घन का हरणकर लेता है। ह मय तु किसी किसी प्रकार न सव आवा से निर्वन्तर घम क द्वार पर आया है। यव नये कने में नहीं आता। तु सावधान हो। हर क्षण चौकड़ा रह। कभी भी भूलकर पुरुष क साथ एकाउ काम मनकर। तदा ही रागन तुम दम लेगा। इस शरीर रूपी पित्र में देव और मानव दोनों ही विद्यमान हैं। दाना ही प्रभुता और प्रतिभा सम्पन्न हैं किंतु ता भी इन प्रभु और प्रतिभा का प्रशान्त तरे हाथ में है। नरे पुरुषाद का स्याम का पारर ही में पन सक्न है। तु विगता चाह उस आगे कर विजयी कर लकता है। अन्तु ह आरम्भ विषय भागा में बराय बढ़ाकर अन आरम्भ का सिद्धि उपर्य कर। यही मानव पर्याय का मायका है। चान् प्रगुन प्रमाण नला। जो गहर क चर नान स भी मय मृगप्रिय घनिन बीस स कान्छा। उम पान की मानमा कर तुने मय नहीं आनी। गनी मानी ॥ कना मुड मय भा मनुष्या का हार है फिर क मृवागय में मरा उसी द्वार ॥ कना क कदा क्षण करन भी माय है? गनी मावि कया के वदित शरीर में कना एमा अगवन कम्पु का प्रवेश हुना माय है? लघ्दार उलम मुड रत्त में पराया मृवागिन बाय आकर उस अन्त कनाय कया मुड दम स्वीकार करना चाहिए? कनादि नही। यह उत्तम नर्त्या क आचार माय नही। अगव ब्रह्मप क तत्र को धर्मन करन कना कय काय का कया भी अवन न हास मय होन दा। यह शरीर का न नान अन्तु लक्षणा आमा का भा मयिन करन माया है। कनाय क अगव ब्रह्मप का वदित का मय्य का हि उमक शरीर क स्तन मय म अगव रय भी कान्छ हान क। किन्तु ब्रह्म सम्पन्न का वीय का वीच उमक

[illegible]

पृष्ठाने ॥ ही शक्ति प्रयोग कर मगार बर्सेन म रण निग रहता है । ह्रीं उगरी सगार
 बन्तरी अक्षय निन दूनी राग चौमुनी जैवरी पगरी जगरी रहती है । मायो !
 अपने म पर का गनिक भी मिथय हुआ कि बारी के झाड म बिगड़ जायेगा । प्राये
 रूप म अपने का देगो समझो और उमी प्रकार जीवत मे बरवहात करो । जीवत एक
 अद्भुत बन्ता है । अनादि है । जीवत शक्ति इगरी अतुल्य मन्वावत है भी और रहेगी ।
 यह शक्ति भाव प्राण मे बसित है । बाह्य मे हमारे मायक रूप सद्व्योमी विमित है
 इन्द्रिया मन बचन काय आयु और वशागाच्छास । ये ही रम्य प्राण बने जाते हैं । ये
 रम्य प्राण अपने अग्नितत्व के अन्ध-बन्ध मे एक पर्याय मे अय पर्याय मे जीव का
 परावर्तित करते रहते हैं । किन्तु भाव प्राण हमारे अभिभूत होकर भी अपने अस्तित्व
 को बची नहीं छोड़ता । यथा मेघाच्छाद गिरि स आश्रित हु ने पर भी रवि अपने
 प्रकाश रूप स्वभाब का परित्याग नहीं करता है धूमिग या मन् मन्तर मन्त्रम
 प्रकाशी अवश्य ही जाता है । उभी प्रकार भाव प्राण हैं । इतना जीव ने माय तान्त्रिक
 सम्बध है । अपनी वस्तु की मार मगार करना ही गत्यजता है । यह हमारी निधि
 हमम ही विद्यमान है । अस्तु हम स्वय अवैगद और हम ही अवैगद हैं । ह आत्मन्
 त अपने द्वारा अपने म अपनी म्वाज कर जैसे पान का प्रयत्न कर ।

वहत्याण है क्या ? निज स्वभावानुभूति ही बचाव है । अपने म अंगी वस्तु पड़ी है । अपनी निधि का भूलकर हम स्वयं अविच्छेद-रहित बने हुए हैं । क्या ? अनादि मिथ्यात्व अनाम और मोह के कारण हैं । ये प्रच्छन्न मनु हैं । पीछ से बार करते हैं । मति भ्रम तो करते ही हैं उमे विपरीत भी बना देने हैं । बस उल्टा कि सारा ससार ही उलट गया । धनूरा खाने पर शूकन पनाथ भी पीला शिखाई पड़ता है । पीलिया रोगी को विपरीत ही सफेद आँखें पीली ही मिलती हैं । कम यही हास मिथ्यात्व का है । यदि आप भूलकर हमली को आम कह दिय तो दूसरी बार समझने पर तत्काल मान लेंगे कि हाँ यह मेरी गलती है किन्तु यदि मिथ्या बुद्धि में हमली आम ही है यह आपके मस्तिष्क में जम गई तो फिर सही बतलाने वाले की भी आप भ्रमा उतारेंगे और अपनी हठ से उस विपरीत मायता को भी नहा छोड़ सकते । कोई भी मनुष्य अपराध होने पर अनुभव करे कि मुझ से अपराध हो गया है तो वह अवश्य निरपराध हो जायेगा यदि अपराधी समझाये जाने पर भी अपने कृत्य को निरपराध ही सिद्ध कर रहा है मान रहा है तो उसका वह विभाव परिणाम जल्दी नहीं छूट सकता । आप यदि किसी दोषी को निर्दोष बनाना चाहते हैं तो उसे भूलकर भी दोषी अपराधी मत कहो । यह मनोविज्ञान है उस दोषी के दोष को सामन्य उद्दिष्ट करो । अपराधी के मन में जका दो वास्तव में वह दोष है जो कुछ बहकर गुजरता है । दम्बिये, वह दोषमुक्त भी हो जायेगा और आपका हितपी भक्त सेवक भी । ॥ आत्मन् तुम अपने अपराधी को आत्मा समझ पेश करो उसी के

हृदय में साक्षात् धीर कमला छड़ से स्वयं अनिच्छीय सही माग पर आ जायेगा उत्तरातर दिशातोमुख होऊँ जायेगा । हृदयान्वित योगी मुग्ध स्वामी ने भी अपने आत्मानुशासन में लिखा है जो जो मैंने पूर्व चष्टाए की हैं वे सब अज्ञान व य क्रियाएँ थीं ऐसा योगशोका उत्तरोत्तर प्रतिभाभिज्ञ होता है । उनकी साधना की कमी पर वे सभी अज्ञानव्यय काय करने जाते हैं और मुग्ध मुग्ध की भाँति यथायत्न वस्तु सामने आती जाती है । हे भयंकारी नाही स्थिति समानो । दान पतन का भी परिचयान्वर अज्ञान निष्पत्ति मोक्ष का विनोद न बढ़े उस का क्रिया करा — आचरण करो तप करो ध्यान-अभ्यास आहार विहार में प्रवृत्ति करो । वृथाति काम पूजा का नश्य छोड़ दो । य नीतों ही तीनों सोपा के उत्पादन है । काटा लगाते ही लाजकर निकालो रोग हाते ही निगल कर दूरा में नुटि होते ही उगे समझा साम धानी में उभरे बहा हूँ जान पर परिहार करो । आत्म स्वभाव से विपरीत जिन्ना भी भाव विचार क्रिया और वस्तुएँ हैं वे सभी ही हेय स्थान्य और अप्रहीण हैं अर्थात् ग्रहण करने योग्य नहीं है । तथा गरम हा यवा क्या यह उसका स्वभाव है ? नहीं ? क्या ? क्या कि पर न्याय से हुआ है । अग्नि व निमित्त — से हुआ है । जीव जितने कष्ट उठाता है दुर्घों का सामना करता है थापछिया का जनना ॥ वे सब पर मयाग से उत्पन्न हैं । पर निमित्तिक हान से माहवान भी है वे स्थिर नहीं रह पाती हैं । आ एक कर नहीं स्थिर नहीं वे अविनश्यर सुख की कारण किस प्रकार हो सकती हैं ? अर्थात् कारण सत्ता ही काय होगा है । मिष्ठ-मीठा मिष्ठाने में मिठाई बननी समक हासने से नमकीन मिरच से चरपरा पदार्थ तयार होगा इसी प्रकार नामधान विषयों से अरिषय मन्वर सुख होगा जो निमित्त न रहते ही समाप्त हो जायगा । परानपेन सुख अपना निज सुख है । आत्मा बरबर बदर है साधन है । उस आत्मा से उत्पन्न सुख ही अपना निज सुख है । स्व स्वभाव है निजानुभव है । सभी को पाने का प्रयत्न करो ।

अत्यन्त यथा : यम से पूर । छाया की चाह में । आया पथिक धृन् के पास । एक दिन का बुलाया पर नहीं आया । क्यों ? यम न था अथित न था धाम न थी पसीना भी नहीं था । आज बहु सब है दृष्टिपर तो आया है धृन् की शाखाओं की निहारता । पतियों की पुष्पारता । शीतों की सवारता । धूमि की निरुपना । हे भगवन ! हमारी यही दशा है । शून्य स्वार्थी हैं स्वार्थ में लिपटे । माया में फँसे पर को पाकर आया मानकर उनमें दृष्टका-कर, अपने को धूल कर मस्ती में झूम कर एक दिन अपने पास से निकल गये सटक गये धीरे से होरे से कभी निजका न हिन जाय तरी दृष्टि हम पर न पड़ जाय हमें आना न पड़ जाय तरी मरण में । घने गये न अदर वा न वतल्य स्थायी । द्विविधा सवार थी आप में सब भोगों में रवे कद्यों में फँसे । आगिर कस ही छा यय । कब कभी कहीं कुछ पता नहीं कुछ हाँ नहीं कुछ गान नहीं किन्तु प्रकार मानन की भी तयार

महों। आया शम्का टगी तन्ना पाया अपने को बीचो बीच अघर लटका। है यह क्या? ऊपर चूड़ा कासा-गोरा नीचे कुआ गहरा चौड़ा सपों का पर मुह पाड़े जोभ निवाने फूकार लगाते विष फलाते। भागा म छता मसिया का मुड़ा नगा था। डाली हिनी के उडों वहाँ जाती क्यों जानी मिक गया कारण वही पयिक चिरट गई आग पीछे आजू बाजू इधर उधर न दिस न नन। भागे तो कौ और किरर। ऊपर से टपका रन मधुर कुछ मत्ता पर मोटा स्वा आया पीछा रो गो गई हो गया उमत्त शून्य मिया जग चीखो चाहो पाछो जग क्या वही मजा है। उसी म झुमने लगा। मूत जाता है अङ्ग। छटपटाता है और फिर फिर उमम ही कमना है। अब लक्ष्य चुकी है। हे प्रभो अब मुघ आयी भन म अपनी हो भून स स्वय भटका अब स्वय टिकाने आया। हे आत्मन् भूमी ताहि विहार द आग की मुघ ल। अरने को समान स्वय बूो है जो भगवान है। भगवान से रगड भगवान ही बन जायगा।

हे भगवान्त साराग भक्ति म बीतराग भाव का जगाना ही अनेकान है। यही पीर प्रभु का स्वाहाद गिद्वान्त है। यही भगवन्वाणी है। जिन वाणी का गौरव अभी अवाद्य गिद्वान्त के आधार पर विजय बजयती पहुर रहा है। अहिता गिद्वान्त हाहा पोराग कर रहा है। भगवान महावीर के इगी सिद्धांत से बहु भाग तक अवाद्य अ दुग और स्थिर रूप से बना आ रहा है। हे आत्मन् कनमान समय मे मराग मन्ति का पापण भी महत्वपूर्ण है हों इच्छा सत्य बीतरागता की मिडि हावा चाहिए। बीतराग भाव अपने प आप ही है वह निर्विकल्प है उमम क्या क्या को अवकाश महा। हम अब अपने को देखें क्या हम क्या क्या के बिना खुद चाग मोन से रह मचन है? यदि हम म यह क्षमता हो तो वास्तव म हम बीतराग दशा म पहुँच लय। यदि रह रह कर इधर हमारा सत्य आ जाना है और पुन आपन को रोचन का प्रयत्न करत है ता समझना चाहिए कि हमारा कर्म उत दशा म बड रहा है हमारा सत्य है किन्तु है हम शुभाशपाग-मराग परिणति म ही। अगर आगे दाना है तो सत्ता अना को टटगा रहा। बाहर भीतर से अपने प्रत्यक्ष कार्य का पराग कर। हर प्रकार स्वय के पहिचानने की चट्टा करो। अण्डा करो या बुरो। फिर गो की लकीरन शरा करा। अण्डा है तो बड़ाओ और बुरा है तो स्वय अण्डा बुरे का निषेध कर अण्ड स्वय ही अपने आप उनके घटन और रपाग म प्रयत्नायोग हो जगो। जहाँ साराग भाव का अरमेत्कार हुआ नहीं कि कम अपन आप बीतराग भाव अपन हा म स भाव ही पूर निरुपता। यही हावा आरवा अपना स्वका जगना मन्त्र जाना घर्ब अना पुन अना स्वभाव और अपना ही भाव। यह निरपग दशा हूय। पर निमित्त का यही जभाव होया। इसीनिद्र यह अधिचन भागिनि दका हनी।

हे आत्मन् ! परोपकार करना उत्तम भाव है। पर हित दया है दया धर्म का मूल है। धर्म आत्मा है। आत्मा ही तू है तू ही आत्मा है। अभिप्राय यह है कि परोपकार परम्परा से तेरे ही स्वरूप का साधन है। निश्चय से परोपकार ही स्वापकार है। आत्मोपकार ही आत्महित है। हम कहते हैं हमन आपका उपकार किया या अमुक व्यक्ति का दुःख दूर किया उसकी भलाई की अमुक का रक्षण किया उस बचाया इत्यादि। अब विचार कीजिए हमने ऐसा क्यों किया ? आपका उपकार करने में हमारा सन्ध क्या है ? यही न कि हम आपका दुःखदशा दखन में असमर्थ थे और इनने आतुर कि अपने को रोष में लें उसी आकुलता को मिटाने के लिए हमन आपका हित किया तो मूल उद्देश्य क्या हुआ अपनी अशान्ति दूर करना। अमुक व्यक्ति का दुःख दूर क्यों किया ? इसलिए कि हम अपने का उस दुःख से दुखी बनाना महा चाहते थे जब अपना ही दुःख को मिटाया। उसकी भलाई की क्या क्योंकि उसकी बुराई से मैं अपने को भी बुरा अनुभव कर रही थी और चूँकि स्वयं बुरी हालत में रहना नहीं चाहती थी। उसका रक्षण किया क्यों क्योंकि उस अशान्त छोड़कर मुझे अन्तरङ्ग शांति नहीं मिल सकती थी। मैं उसका रक्षण कर अपनी अशान्ति दूर की अमुक का बचाया क्यों ? क्योंकि उसे दयाय विना मेरा मन तिल मिला उठा था। इसलिए अपने मन की अशान्ति को दूर करने के लिए उसे बचाया। कोई दूब रत्ना है दूसरा उसे देखकर हस रहा है तीसरा सरसाल बूढ़ कर उसे पकड़ सता है कौन ? स्पष्ट है एक को आनन्द होता है बहु सुखी है स्वयं उसे कोई व्यथा नहीं फिर मिटाये क्या ? दूसरे के हृदय में उसे बूढ़ना देखकर दुःख हुआ इतनी पीड़ा हुई कि सहन न कर सका और उस पीड़ा का प्रतीकार करने की स्वयं जल में कूँ ही ता पड़ा। सबका मार है आत्मा धर्म है दया आत्मा की पोषक है इसलिए वह भी धर्म है। यही बरहस्वभावा धर्मो की परिभाषा है। इनने ही अपनाओ। अपना हित मन हो इस पर लक्ष्य रहेगा तो पर हित अवश्य होगा ही। पर का अहित कभी महा हा सकता।

हू सुजानी जिय ! अपने जीवन का आधोपात साठा देल। हानि लाभ का धीरा समन। कहाँ नका हुआ और कहाँ घाटा इसकी परख कर ल। यह परख जब तक नहीं होगी कर्मों का तबस बसे भरीय। कम तबस चुकनी जिये बिना ससार मञ्च नहीं छोड़ सकते और ससार मञ्च तयारे बिना मुक्ति कहाँ मिल सकती है ? मुक्ति बिना धर्म का पल सुख नहीं प्राप्त हो सकता है। मुख वास्तव में अनीन्द्रिय हाना चाहिए। ऐहिक सुख सच्चा सुख नहीं है। यथाय मुख बही है जहाँ अनुज का नामे निशान नहीं है परिणमन यही होता है। यही द्रव्य क्षेत्र काम भव और धाव सभी परिणमन स्वरूप है उनमें परिणति होने से विचार होता ही रहता है। चरन पगधों की अपेक्षा बिम्बाव परिणमन में आँखों के अन्दर विचार रूप परिणति होती रहती है। यह पर सयोग निमित्तक क्रिया न केवल जीव के ही होती है अपितु जड़ रूप अय

समस्त पदार्थों में निरन्तर होती रहती है। संयोग में मयोग मूलक विपत्ती भी धारा-
है। उन सबमें विभाव होता है। वैभाविक शक्ति जड़-पुद्गल और जीव दोनों में
विद्यमान है तभी तो कर्म मैत्र जीव को अपने अनुगुण परिणाम सेना है और जीव
में परिणमित हो जाता है। इन दोनों का संयोग ही मिथ्या से ऐसा स्वभाव ही बन
गया है ॥ भी एक दूसरा कोई भी अपने अपने निज स्वभाव जड़ता और जननता
का तनिक भी परित्याग नहीं करते। जरा भी छोड़ने नहीं है। दोनों अलग प्रपन्न में
ही रहने हैं। सत्य है यह और अकाट्य विचार्य अटन प्रपन्न सत्य है। तो भी मयोगी
अवस्था में एक दूसरे ॥ प्रभावित अवश्य होने हैं। एक दूसरे पर अलग अलग अवश्य
हासते हैं। हम ही अलग भावा में परिणत दशा-कहा है। जहाँ सब जीव परिणत दशा
में है। अर्थात् छत्ते गुण स्वान और मातृत्वे के निरनिश्चय भाग पर्यन्त एक दूसरे का
प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता ही रहता है। हाँ यह अवश्य है कि प्रत्येक जीव अपनी अपनी
ज्ञान गरिमा विवेक बुद्धि उपायेय शक्ति और निमित्त शक्ति के अनुगुण कर्म या
अधिक प्रभावित होना और करता है। किन्तु मगबा अप्रभावित अच्छा नहीं रह
सकता और पूरा प्रभावित हो यह भी नहीं है। साहे का माता अग्नि को धावना
ह अग्नि लिखती है और धारो ओर से। वह (गोना) सञ्चालन अग्नि को आरम मान
कर लेता है इतना अधिक उसमें सत्सीन हो जाता है कि आगे अपने अस्तित्व को
भी धुनने का लगता है। कउन उसकी आहूति प्रहृति रङ्ग रूप स्वभाव सही परि
वर्तित होने लगता है तब होना क्या है? माना क्यों में करने लगता है तब विमर्श
क्या है से लेकर भीम माटर जैन मशीन भाति अस्तित्व का रूप बदलना रहता है
यही हाल सब की विकारी परिणत दशा प्राप्त जीव की है। वह भी वेद-नीचे वनस्पति
से लेकर मनुष्य तक देव नारकी आदि सब विविध पर्यायों में विविध रूप शरीर
धारण कर उला बना घूमता रहता है। पर संयोग हटे तो यह जादूगरी मिटे। जहाँ
जालिदायन गया कि असली तत्त्व सामने आया। वास्तविकता हर पदार्थ के अन्दर
विद्यमान है। प्रत्येक वस्तु अपने-अपने शुद्ध स्वभाव में सीन है परन्तु पर का तनिक
भी सम्बन्ध लगा है तो वह विकारी हुए बिना नहीं रह सकता। आरमा पर संयोग
से विकृत है विकारी है इसी से ही दुखी भी है। दुख इसका साथी बन गया जो
यथा समय इसे अपने लक्ष्य सही के मुख की ओर आकृष्ट करता रहता है घुमाता
रहता है। यह सब हमारी कमजोरी है। हम स्वयं अपने ही दबाव में दबकर कुचले
बले जा रहे हैं। उठने का अवकाश ही नहीं पा रहे। किन्तु हे ज्ञानिन्! जागो, ममज्ञा
तो दुम्हे सजत होन और उठने में दर नहीं लगेगी।

अतिशय श्रेय क्यों हो जाते हैं? बीनराय प्रभु के अराध्य सिद्धांतों के
प्रचारण शासन रण्य सम्बन्धित यशस्वी प्रभावना अङ्ग के पोषक चमत्कारों द्वारा
अतिशय देव की स्थापना कर लेने हैं। प्रभु जन पुण्यात्मा सरन मानव नाना
प्रकार की संसार-आकृति हो पीडा सहने में असमर्थ हुए भी

वीतरागी प्रभु की शरण में जाते हैं। बड़ा भक्ति विमोह लौकिक मत्तन उपचारों से भक्ति प्रभु चरणा में सपसप करमानों को अर्पित कर उन्हें ही अनन्यशरण मान विश्वस्त हो जाते हैं। धर्मवत्सल शासन देवी-देवता उनकी भक्ति अबाधित श्रद्धा से प्रसन्न हो उनकी मनावांमना पूजा करने सबट निवारण में योग्य निमित्त बन जाते हैं। मत्त जानता है प्रभु वीतरागी है। राबद्ध पंख रहित है पूजा और निष्ठा में सम भाव है या उन्हें तो कोई भाव है ही नहीं, वो तो अपने ही में आप ही मीन है। तो भी अपने साधर्म्य भाइयों के समान उन शासन एगो से प्रार्थना कर अपने कार्य की सिद्धि कराने में सफल हो जाते हैं। ये शासक देवी देवता स्वयं सम्पूर्णान्त में युक्त होन हैं और धर्मात्माओं की रक्षा कर हुषिय होते हैं। धर्म धर्मात्माओं के आश्रित होता है अतः धर्मात्मा का संरक्षण करना धर्म का रक्षण करना है। धर्म की स्थिति वृद्धि-अभावना सम्पूर्णान्त की वाचक है। प्रभावना सम्पूर्णान्त के भांड अङ्गों में एक प्रमुख अङ्ग है। अङ्गों के पालन करने में सम्पूर्ण निमित्त और पुण्ड्र इष्ट होता है। यही सम्पूर्णान्त ससार का धातक है। ससार की निवृत्ति बिना सम्पूर्ण के नहीं हो। सकृती सम्पूर्णवृद्धि ज्ञान और चारित्र्य साधक होता है। रत्न यज्ञ का मूल बाज यही है। बीज बिना वृक्ष नहीं हो, सकृत्। उसी प्रकार सम्पूर्ण बिना धर्म स्वर्णा धर्मात्मा नहीं हो सकती। अस्तु सम्पूर्णान्त धारण कर उसके अङ्गों का सम्पूर्ण पालन करना अनिवार्य है।

हे आरम्भ शरीरमाद्यम अस्तु धर्म साधनम् यह शक्ति जीवन में मन्त्राव सा प्रतीत होती है। किन्तु जीवन चलने पर अनुभव में इसका मूल स्पष्ट समझ में आता है। तब भाषायों का कथन कि 'हे साध्या' मार्जाररतिनोपम मा कार्यो तप । मार्जार विद्वान् जिन प्रकार बोलना प्रारम्भ करती है ता बड़ी तेज आवाज में बोलती है पुन धीरे-धीरे मन्द मन्द और मन्दम होती हुयी एकदम शान्त हो जाती है। इसी प्रकार भी साधु या साध्वी दीना सेते ही तो शक्ति मय या यशसिप्ता अथवा भाषावेश में आकर मद्भाग बढार तीव्र तपश्चरण करने में लग जात हैं। उपाध्र वन उपवास रस परिस्पाग आदि बाह्य तपों में विशेष अनुरक्त हो जाते हैं। फलतः शरीर क्षीण हो जाता है कपार्ये उग्र होने अपनी है अती लाकाति है कमजोर ज्यादा गस्ता भारी वाली कहावत चालू हो जाती है। ही यदि बाह्य तपश्चरण अन्तरङ्ग तपश्चरण भी बढ़ रहा है काय व माय कपार्ये भी दृष्ट हो रही है तब तो तपश्चरण बराबर जग्न तब चवता रहता बढता रहता और उत्तरा शर विकासोमुख हाकर अन्त में सिद्धि की प्राप्ति हो ही जाती है। हमारा काय ऐसा हो जिनने हमारे पुणो की उत्तरोत्तर वृद्धि और सन्तोष शान्ति की वृद्धि हो उसी प्रकार का तर होना चाहिए। व्यवहार और निश्चय दोनों का योग ही काय सिद्धि का यथेष्टतम सफल उपाय है। दोनों के एकीकरण ही ससार का नाश होता है। ससार नाश करना है तो दोनों बाह्याभ्यन्तर तपों में सामञ्जस्य करो। दोनों को

समस्त पदार्थों में निरन्तर होती रहती है। संसार में सयोग मूलक जिंदा भी धाराएँ हैं। उन सबमें विषाद रूपता है। वैसाविक शक्ति जड़-गुण-गत्त और जीव-गत्तों में विद्यमान है सभी तो ब्रह्म-मैत्र जीव को अपने अनुकूल परिणाम लेता है और जीव में परिणमित हो जाता है। इन दोनों का संयोग ॥ मिथ्या से ऐसा स्वभाव ही बन गया है ता भी एक दूसरा कोई भी अपने अपने निज स्वभाव जड़ता और जननता का तनिक भी परित्याग नहीं करते। जरा भी छोड़ने नहीं है। दोनों अपने प्रपन्न में ही रहने हैं। सरर है यह और अकाट्य विनाश अटन घटन मरण है। तो भी संयोगी अवस्था में एक दूसरे से प्रभावित अवश्य होते हैं। एक दूसरे पर अपना अगर अपना दावत है। इन्हीं ही आगम भाषा में परिणत दशा कहा है। जहाँ एक जीव परिणत रगा में है। अर्थात् छठवें गुण स्थान और पातचें के निरन्तर भाग पर्यन्त एक दूसरे का प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता ही रहना है हाँ यह अवश्य है कि प्रत्येक जीव अपनी अपनी शान गरिमा विवेक बुद्धि उपादेय शक्ति और निमित्त शक्ति के अनुसार ब्रह्म या अधिक-प्रभावित होता और करता है। किन्तु गवया अप्रदाशित अछूता नहीं रह सकना और पूजन प्रभावित हो यह भी नहीं है। लोहे का गामा अग्नि का छावना है अग्नि विधनी है और चारों ओर से। वह (गामा) सर्वांग से अग्नि को आरत मान कर लेता है इतना अधिक उसमें तल्लीन हो जाता है कि आगे अपने अस्तित्व को भी भूलने लगता है। फलतः उसकी आहूति प्रकृति रज्जु रूप स्वभाव की परि धति होने लगता है तब होना क्या है? नाना रूपों में बनने लगता है तब विनश्वर बनता है लेकर भीम माटर और मशीन आदि अंतर्धान का रूप बदलता रहता है यही हाल सब की बिकारी परिणत दशा प्राप्त जीव की है। वह भी वैद-मोक्ष धनसंगति से वैद मनुष्य तब वैद नारकी आदि सब विविध पदार्थों में विविध रूप शरीर धारण कर छाना बना घूमता रहता है। पर सयोग हटे तो यह जादूगरी मिटे। जहाँ आतिथ्यमान गया कि असली तत्त्व सामने आया। वास्तविकता हर पदार्थ के आन्द विद्यमान है। प्रत्येक वस्तु अपने-अपने शुद्ध स्वभाव में लीन है परन्तु पर का तनिक भी सम्बन्ध लगा है तो वह बिकारी हुए बिना नहीं रह सकता। आत्मा पर सयोग से विवृत है बिकारी है इसी से ही दुखी भी है। दुख इसका साथी बन गया जो यथा समय इस अपने लक्ष्य सही के सुख की ओर आकृष्ट करना रहता है घुमाता रहता है। यह सब हमारी ब्रह्मजोरी है। हम स्वयं अपने ही दबाव में दबकर कबले चले जा रहे हैं। उठने का अवकाश ही नहीं पा रहे। किन्तु हे ज्ञानिन् ! जागो, समझो तो तुम्हें सबत होन और उठने में देर नहीं लगेगी।

अनिश्वर धन क्यों हो जाते हैं? नीतराय प्रभु के अकाट्य सिद्धांतों के प्रचारक शांतिन रत्न सम्भव विनश्वर प्रभावना अज्ञ के पोषक चमत्कारों द्वारा अधिशय दोषों की स्थापना कर लेते हैं। अर्थ जन पुष्पात्मा सरत मानव नाना प्रकार की सपार आधिपत्याधियों से आकृति हो पीडा सहने में असमर्थ हुए भी

विहीन साधक नहीं आत्मा का साधक है। सरलता कथाय विहीनता अपरिग्रही निराश्रयी उपमम परीयक विरही महिष्णु और जितेन्द्रिय होता चाहि। य गुण जिनकी मात्रा में ज्ञेय साधक की साधना उपन हो अन्त में उगे प्राप्त होगी। योनी ध्यानी और दयी साधक ही सफल साधक हान में समर्थ हो सकता है। निष्ठात ध्यान, तब धर्म आत्म आध्यात्म आत्मता व रहस्य का ज्ञान हाना चाहि। साधक हा पुत्रा ज्ञानि और साधकान्ता में पराङ्मुख होता चाहि। साधक विष्णु और निम्न का नीना ज्ञायों में रहित हो। साधक वान है योना वाच है। अन्तरात्मी को सहायक साधक को भी सहायक सामर्थ्य कर दया। अस्तु साधक तीन शक्त्या में रहित ही होता चाहि। मुख्य परित्यागी हा। निम्न जयी हो। प्रमाण रहित हा। आगच्छ मरल हिताहित परीयक हाना चाहि। साधक शीत है। उभय नपों से उस कहना है। चारो निर्देया से वस्त्र समीपा करन में योग्य और निष्ठात हाना अनिवार्य है। अवाह्य सत्त्व पर अधिन साधक ही सफल हो सकता है। साधक की सफलता उस ही का सफल प्रयास है।

आइये आज 'साधक' के सम्बन्ध में विचार करें। साधक का अर्थ है जिसे प्राप्त किया जाय। प्रत्यक्ष ज्ञान सत्त्व बस्तु। वह साधक क्या हो सकता है? या आत्मा का सत्त्वका का सत्त्व कर सब बड़ी सत्त्वा साधक है। साधक प्रमाण साधक की निर्दिष्ट करता है। अनिम साधक ही निष्कल साधक है। वह है मोक्ष निष्ठान। उस अवस्था में पुरुष के ज्ञान रूप का सत्त्व साधक साधक का भी आत्मजन सत्ता हान। प्रारम्भ में हम साधक के युक्त हैं विषय-आशयों में अभिमुख हैं। इनमें बचने का साधक परमे। प्रथम साधक है। साधक का आशयना ही साधक बना सकता है। उनका मुक्तानुक्त किता कर ही हम सब साधक बना सकते हैं। साधक का वान ही वह साधक में साधक होना और उदात्तता परमेष्ठी बन गया साधक। ज्ञान ध्यान-नव नीन से साधकाली निष्ठ व उदात्तता परमेष्ठी बनन व निष्ठ आत्मता अध्यात्म ज्ञाना पदान साधक में हम ज्ञान ही उस साधक की उपरिष्ठ है। जिन समय साधक हम साधक कर सब परित्याग पुत्रा कि ज्ञाना साधक परमेष्ठी साधक हो जाता है और वह सब साधक बन जाता है। योनी का साधक का ही सत्त्व है। विष्णु साधक आशय में हम सब के पुत्रक होने में उपरोक्त साधक से साधक है न ज्ञान है या सा कहो कि साधक ही साधक का साधक ज्ञाना जाता है। अब निर्दिष्ट व नी के साधक पर जाता है। योनी दो कर है। अस्तु और निष्ठ। अस्तु अवस्था साधक है। साधक साधक। अस्तु का साधक ही साधक साधक और साधक निर्दिष्ट में साधक निष्ठता का साधक ही साधक है। यह निर्दिष्ट साधक है। हम सब साधक नहीं हुआ। यह दया साधक का सब एक ऐसी ही रहेगी। ज्ञान साधकान्ता में ज्ञान-पञ्च परमेष्ठी साधक कर के साधक है। जिन निर्दिष्ट में साधक सब साधक कर हा जाता है। योनी साधकान्ता सत्त्व साधक के पर अधिन वान साधक है। पञ्च परमेष्ठी ही हमारी सत्ता है। यह ही हमारे साधक की निर्दिष्ट करता बन है।

नकर करने से ही बान मिट्टि लेना सम्भव है। अमुक प्रज्ञा को समझकर आगे बढ़ने से निश्चय्य भाव हो जाता है। ज्ञान की अल्प गतिशीलता होती है। सभी जीवन विचार हो सकता है। विचारामुक्त प्राणी एक ही विचार को सदैव ही मुक्ति मिट्टि करने में मग्न हो जाता है।

हमारी आत्मा ! मृत साधक ! साधक का वस्तु है साधना। साधना एक कला है। यह जितनी सुख है उतनी ही कठिनाई और दुःख भी। साधना का चार भाग पर विचार करना अनिवार्य है। साधक साधक साधक और पद। बीच खड़े रहने समय भूमि समय बीच और उभरा पद समझकर पद विचार गया बीच ही योग्य पद प्राप्त कर दुःख का मृत प्रभाव करता है। यह मृत सौजन्य परनिमित्तक नाशवान् इच्छा है। तब साधक को किसी वातावरण में अनीति अविवेक मन रहने वाला आत्मन्य प्राप्त होता है। विचारणीय है इन लोक सम्प्रदायी क्षणिक मृदाभाष को पाने में निरत बिना अल्प शुभाशुभ विचार पार परिश्रम विविध कठिनाई और अनेक उपन्यस्य सह्य करने पड़ते हैं कि पर भी वह प्राप्त सुखच्छाया आह्वय गई। फिर भला वह क्षणिक सुख क्या आनन्द दे सकता है कुछ भी नहीं। यत्न-कर्म भक्त पदा सा भव भव में दत्ता किता है सत्य की स्वप्न तनि को गजाना ही रहता है कि मृतपुराण अघानक धावा कर क्षणमात्र में जीवन नीला की इतिथी कर आरता है। पुनः-पुनः भव भव में इनी प्रकार भटक भटक मृत वृष्णा में उल्लास जीवन ससार हिडोल में झूलता रहता है। अब साधना के पथ पर आता। साधना रम्य है जीवन दान समय दान स्वादवाद मनन अनुचितन वीतरागता वराय त्यागादि इनसे साधक परिकर है। साधना एक स्वयं अपने में परिपूर्ण भाषना है। आत्मबलवीर्य की उत्थापन अनन्त अनुष्ठान दायक मुक्ति साधक और कल्याण कारक है। अतः हमारे अंग प्रत्यङ्ग का सम्पूर्ण पूर्णतः शक्ति विवर्णन की भाँति जानना परस्वना अनिवार्य है। बिना परीक्षा किये अपनाया कोई भी अज्ञ उसका साधक न हो सकता है। निमित्त बलवान् होना चाहिए साथ ही सरल इच्छा सबन और सफल होना ही चाहिए।

सर्वप्रथम साधक बनिये। साधना के पथ पर बढ़ना है। पथिक का सर्वोत्तम गुण निश्चयता सम्पन्न होना चाहिए। कायर भीरु साधक नहीं हो सकते हैं। मृगचारी बनकर भटक सकता है। निर्धन के साथ भीरु भी होना अनिवार्य है। संसार शरीर भोगों में भयातुर हो सदैव मुक्त। वराण्य भरा हुआ। तत्त्वज्ञ होना साधक का परमावश्यक है। तत्त्वविचार निपुण साधक विषयासक्त नहीं होता। ३३ सागर पथ में आपात मस्तक मुष्माभिभूत रहने पर भी सर्वोच्च सिद्धि स्थित वह मित्र तत्त्व चिंतना में बल पर उसमें तनिक भी क्षीन नहीं हाते अपितु जल विषय बमन मन सानन अच्छे रहकर अनुप्रेक्षा और तत्त्वचर्चा में ही तल्लीन रहते हैं। यह है सम्पन्न का माहात्म्य अतः साधक सम्पन्न ही हो सकता है। सम्पन्न

विहान साधक नहीं आत्मा का धातक है। सरलता बचाव बिहोतता अपरिग्रही निरारम्भी उपमग नरीपक विजयी-महिम्न और जिज्ञास्य होना चाहिए। य गुण त्रिनता भाषा म रह्ये साधक को साधना करने ही अगो म उत प्राप्त हाणी। मोती ध्यानी और श्मी साधक ही सत्य ब्रह्म होन म समर्थ हो सकता है। मित्रात् दशन सर धम आगम आध्यात्म साधना व रहस्य का माना होना चाहिए। गाय ही पुत्रा दशानि और साभावासा से पराङ्मुख होना चाहिए। भाषा मिथ्यात्व और निगन कर तीना शत्या से रहित हो। शाय बाता है पना बात है। अररु को सजावर साधना को भी सजावर बोधन कर देगा। अस्तु साधक तीन शत्या स रहित हो होना चाहिए। सुख परित्यागी हा। निग जनी हो। प्रमाद रहित हो। आपक सरर हिताहित परीक्षक हुना चाहिए। साधक बीर है। उभय त्यों से उभ बनता है। चारो निषेधो स सत्य समीक्षा करने म योग्य और निपात होना अनिवार्य है। अकादय सहर पर अडिग साधक हो सत्य हो सकता है। साधक की सत्यता उभ ही का सत्य प्रमाण है।

आइये आज साध्य के सम्बन्ध में विचार करें। साध्य का अर्थ है जिसे प्राप्त किया जाय। प्राप्त साध्य क्या वस्तु। वह साध्य क्या हो सकता है? या आत्मा को मनुष्य बना अनर कर सने बही साध्य है। साधक समस्त साध्य की मित्र बनता है। अनिम साध्य ही निश्चय साध्य है। वह है मोक्ष मित्र। उभ अवस्था म पहुचने के लिए हमें अथ सहायक साध्यों का भी आसम्भन करना हाता। आरम्भ म हम राग द्वेष मुक्त हैं विषय-वशायो से अविभूत हैं। इनत बचने का साधु परमेष्टी प्रथम साध्य है। साधको को आराधना हा साध बना सक्ती है। उनका गुणानुराग बिना कर ही हम स्वय साधु बना सक्ते हैं। साध व पाते ही यह साध्य म साधन हो गया और उपाध्याय परमेष्टी बन गया साध्य। जान ज्ञान-नर तीन ध साध्याती निष्ठ म उपाध्याय परमेष्टी बनने व लिए अनन्य अयोग्य ज्ञाना पयाग भावना म बन गया ही उभ साध्य की उत्पत्ति है। दिन समय साध्यक हम साध्य कर स्वय परिणमिष्ट हुआ कि अगता आचार परमेष्टी साध्य हो जाता है और यह अथ साधन बन जाता है। य तीन व साधु व म ही सिद्धि है। किन्तु सारनम्य काव मे एर दूसरे के दूर होन म उत्तरातर साधन हैं साध्य हुन जाते हैं या वो बही कि साधक ही साध्य रूपता धारण करना जाता है। अब निरीय धेनी के साध्य पर आता है। य भी दो का है। अरहन् और विद्व। अरहन् अवस्था साध्य है। आचार्य साधन। अरहन् व पाते ही श्मी साध्य साधन और एक निमित्त के प्राप्त सिद्धावस्था साध्य हो जाती है। यह अष्ट साध्य है। हमें परिचयन नहीं हाता। यह बना बनन बात मक ऐसी ही रहेगी। अस्तु साधक-साधना म अथ परमेष्टी साध्यक कर के साध्य है। दिनके निमित्त मे साध्य स्वय साध्य कर हा बना है। उनी साधक-साधना सकार बधन म परे अविचन मुनि स्वक है। उभ परमेष्टी ही हमारी कर है। ये ही हमारे साध्य की सिद्धि करने का है।

अनेकान्वयों के प्रादुर्भाव में साधना का स्वल्प निर्धारण करना बड़ी टेढ़ी सीढ़ी है। किन्तु यदि ध्यान वित्त से इस पर विचार करें तो यह परमोत्तम प्रणाली है जिससे हम सरलता से अपने सत्य को पा सकते हैं। साधना है साधक की क्रिया साधक दो प्रकार की है (१) गृहस्थ और (२) व्रति। गृहस्थ साधना विविध धाराओं में विभाजित है किन्तु अंत सबका एक है वराम्य-यति रूपता प्राप्त करना। गृहस्थ साधना अग्रणी और श्रुती के भ्रम से दूर प्रकार है। अग्रणी अष्टमूल गुण धारण कर ससार शरीर भोगों से विरक्त होता है ससार भीड़ रहना है। पञ्च परमेष्ठी हा का शरणभूत मानता है। यह साधना जीव की भोगमत्त या विषयमत्त नहीं जाननी। ससार से उत्तरीय रहनी है। द्वितीय श्रेणी की साधना में क्रिया विषय हो जाती है। यह ११ भागों में धाराओं में विभक्त हो जाती है। उनमें भी उत्तम मध्यम और अधो रूप से तीन भागों में बँट जाती है। माना प्रकार के कलश्यों में बँध जाता है। उत्तरांतर शरीर कृष्ण कृष्णर कृष्णत्व जाना जाता है और साध ही कथाओं भी मन्मदनर और मदनम हाती जाती है। इसमें ऊपर प्रति माग भी साधना, प्रयत्न योगयोग की साधक बनकर आती है। इसकी भी साम्ना प्रस्ताव है। २० मूल गुण रूप १० धर्म रूप १२ अनुपेक्षा रूप २२ परीक्षा रूप रूप आदि। इन साधनाओं के रूप पर किसी भी प्रकार अपने साध्य की निम्ति कर लेता है। केवल कि उपायन पत्र हि साध्य के सिद्धांत से अल्पि तत्त्व एक ही है। साधना-उपाय १। उपाय निमित्त है। सहायक साधन है। कारणानुविधायी कारण है। जगत् कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। साधना में साधक का प्रतिगण साधनान्न जगत्क रहना चाहिये। साधना का शत्रु विषम है पद पत्र पर विगलन है प्रमाण है माना प्रकार के कटको से व्यापन भाव है। बीहड़ माग है। साधक साधन रहे तो साधना योग्य होगी और उचित साध्य सिद्ध हो जायगा।

साधना का पत्र क्या है ? साधना से अभिप्राय आत्मसाधन से है। आत्मा एक सत्य-असत्य उद्योग स्वयं है। उसकी प्राप्ति होना ही सत्य साधन का उत्तम पत्र है। अन्तर्मा ही अन्तर्मा एक अविचल और अविनश्य है। चारों आरा धना ही साधना है। सम्पत्तिजन आराधना श्रौंगरि है। २२ मन्म दोषों से रहित अष्ट अष्टा सहस्र सम्पत्ति की धारणा पारणा-नासना-वृद्धिजन करना सम्पत्तिजन है। सम्पत्ति जन नाश है। नीच मन्मद्वय हान पर जगत् भवन बनाना परमोत्तम है। आठ मन्म का ज्ञान कर अन्तर्मा का मानक गुण प्रकट होता है जिससे दया धन सब अन्तर्मा परिणाम प्राप्त है। आन्तर्मा शक्ति होता है परिहार की साधना आन्तर्मा की जगत्ता को प्रत्याह्वन दा है। पत्र बनायोजना के त्याग में सम्पत्ति नियत होता है। तीना मुक्तिमा के परिहार में तीन रत्नों की सम्पत्ति प्रकार में उत्पत्ति होती है। य साधना के प्रकार है इनमें साध्य रूप सम्पत्ति है। इना प्रकार जगत्-साधन के अष्ट अष्ट है। अर्थ शत्रु उन्मत्ति साधना से उत्तम निम्न

पान की प्राप्ति होती है। विवेक हेयोपादेय बुद्धि जाग्रत होती है। तेरह प्रकार की साधना के फल से उत्तम सम्पद धारित्र की सिद्धि होती है। धारित्र मानव जीवन का सार है। मानवमता का पराग है। मुक्ति का साधक है। प्रत्यक्ष आत्मानुभूति का अङ्ग है। तपसाधना का यही एक उत्तम साधन है। तप से बर्मा की निजरा होती है। बर्माभाव से ससार भार हलका हो जाता है। नमश्च सामान्य फल मोक्ष की सिद्धि हो जाती है। मोक्ष आत्मा का निज निवास है। अपना परम धाम है। आत्मा का पूर्ण विवास है। सम्पूर्णतः आत्म स्वरूप की उपलब्धि है। इसे पाना ही साधना का फल है। समाधि साधन का फलित मरित सुन्दर वृक्ष है। उसके शिखर पर पहुँच जना ही साधना का फल है। मोक्ष पाना।

हे भगवन् आपका आदेश ही मेरा साधन है। आपका अवलम्बन ही ससार सागर से पार करने में समर्थ है। आत्मा का विवास करने के लिए आत्म स्वरूप को प्राप्त भगवान् ही समर्थ है। अहम् और सिद्ध परमेष्ठी का आलम्बन लेकर ही हम अरुह्य और सिद्ध पद प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं। साध्य साधन की कल्पना ही व्यवहार है। व्यवहार ही निश्चय का साधक है। व्यवहार बहो या निमित्त। यह व्यवहार दो प्रकार का है। (१) सत-सत्य रूप या असत्य रूप अर्थात् साम्यक व्यवहार और मिथ्या व्यवहार। दूसरे शब्दों में समय कारण और असमय कारण। जिसमें बाध की सिद्धि विषमपूर्वक हो वह समय साधन है और जिसके निमित्त से बाध सिद्धि न हो ता वह सब असमय असत्य रूप साधन है। साधन जुटाया ही पुष्पाव है। पुष्पाव की सिद्धि तभी हो सकती है जब कि हमारा मस्तिष्क निर्धारित हो और सत्य के अनुसार ही पुष्पाव भी हाता रह। साम्यक विवेक पूर्वक काम करने से ही मन्त्र-साध्य की सिद्धि होना समर्थ है। हे आत्मन्, ऐसा साध्य स्वरूपोपलब्धि करना है स्वपदेन गम्य आत्म स्वरूप की अनुभूति ही आत्म तत्त्व का प्रकटीकरण है। आत्म तत्त्व एक अनन्त निराभा तत्त्व है। यह सर्वोपरि है। अन्य समस्त तत्त्वों से भवया विपक्षण है। चेतनता भाव एक इसका स्वभाव है। ज्ञान वजन रूप चेतना स्वभाव अन्य किसी भी मन्त्र से न हुआ न होगा न हो ही सकता है। अब यह आत्म स्वभाव विधान सत्य है। एक बार प्राप्त होने पर पुनः उससे किसी भी प्रकार किसी भी क्षण में परिवर्तन नहीं हो सकता। टकोकीय जायक स्वभाव आपका आह्वानदा आनन्द मूल में सम्पन्न है। यह स्वभाव प्राप्त हो तभी निज स्वभाव की प्राप्ति सम्पन्न हो सकेगी।

हे आत्मन्, तू दया धर्म का सेवन कर। यह धर्म सर्वोपरि है। दुःख-दुःख-दुःख मेरी जीवन्त रक्षण धर्मो बड़ा है। दया ही धर्म है। दया का अविनाश ब्रह्मा भाव से है। पर जीव पर दया करना यही स्वतः अपने कारण तत्त्व पर दया करना

धम है। पर जीव पर दया करना पुण्य है शुभ किया है शुभोपयोग है शुभाश्रय का कारण है किंतु आत्म तत्त्व अपने स्वयं जीव तत्त्व पर दया करना धम है। आत्म दया क्या है? स्व स्वभाव के अनुसूल प्रवृत्ति करना आत्म स्वभाव का समझना आत्म तत्त्व पर दृढ़ विश्वास करना तत्त्वानुसूल आचरण करना अर्थात् आत्म तत्त्व में रमण करना आत्म दया है। आत्म धम है या दया धम है। वास्तव में धम शब्द स्व स्वभाव वाची है। जिस जिस द्रव्य का जो जो स्वभाव है उसे उसी उसी रूप में जानना श्रद्धा न करना और मानना वही धम है। दया धम है क्योंकि अनादि काल से आत्मा पर रूप हो रहा है स्व स्वभाव से च्युत होकर नाना दुःख कारक विभिन्न भेष-धारण करना हुआ फिर रहा है। अपने स्वभाव से भ्रष्ट होने के कारण दुःखी है दुःखिया पर दया होना स्वाभाविक है इसीलिए अनेक पर दया कर शुद्ध स्वभाव को करने का प्रयत्न करना धर्म है। धम बंध का कारण नहीं उपयोग बंध का कारण है। उपयोग और धम पृथक् पृथक् हैं। दया रूप होना धम है और दया रूप भाव या परिणमन होना उपयोग है। यह उपयोग शुभाशुभा भेष से दो प्रकार होकर पुण्यपाप रूप कर्मों का कारण होता है। इन्हें ही शुभाश्रय और अशुभाश्रय कहा जाता है। यह प्रक्रिया जहाँ तक है दया धम प्रत्यक्ष मित्र नहीं होता। प्रथम अंग में शब्द शुभ रूप परिणमन करता हुआ जब शुभ की परिपरवत्ता हो जाती है तब धम रूप दया का प्रयत्न काय आत्मस्वरूपोपरमिष्ठ प्राप्त होती है यही जीवाण स्वयं धम का पक्ष है।

तत्त्व चिन्तन गान का फल है। तत्त्व पन्था का स्वभाव है। स्वभाव का निराकरण करना ज्ञानाराधना का फल है। शब्द परमेष्ठी शुद्ध निष्कल परमात्मा का फल है। उनका स्वरूप अप्रकृत रहित साक्षात्कार का ज्ञान और सकल पन्थों का हान्य पुण्याकार अमूर्ति कहा है। निराकार भी कहा है। प्रश्न यह उठता है कि पुण्य कार और निराकार विरोधी विज्ञापन किम प्रकार घटित हो सके हैं? अब ज्ञानात्मा के अंगों का फल क्या है। जिस पन्थ से सिद्धावस्था प्रकट होती है वह नियम में पुण्याकार ही होती है। पन्था के बन्धने का कारण विग्रहगति नाम कम है। वह कम का गया नाम अब शरीर भ्रष्ट हुआ उस शरीराकार से तत्त्वाकार निकले आत्म पन्था को बन्धन बौन? कारण के अभाव से काय नहीं हो सकता बिना निमित्त के नामनिर्देश कैसे मित्र हो? अब आत्म प्रज्ञेन अविम पुण्य शरीर की अत्रगाहना से कुछ कम तत्त्वाकार ही रह जान है। हम अनेका से पुण्याकार कहा है। आत्म भावा में धूनधून प्रगल्भ नय की अनेका पुण्याकार स्वरूप है। कल रम मध वन में रहित हन के कारण अमूर्त कहा है। जमा कि द्रव्य सग्रह में कहा है। पक्ष रम वन में गता का फल अमूर्ति कहा जावे। इत्यादि अनेक अमूर्त दो इत्यादि। अमूर्त का फल है जिसकी मूर्ति आकार नहीं है इसी अनेका से निराकार कहा है। अनेक भिन्न भिन्न अनेका से भिन्न भिन्न गुणों का प्रतिपादन है। फिर अत्राश्रय ही

ज्ञान की पूर्णता रतत्रय है और रतत्रय की उपसन्धि ज्ञान की पूर्णता है । तीनों का एकीकरण ही आत्मा है ।

हे आत्मन् आशा पिशाच है । भयङ्कर है । नाशक भी है । आशा प्रधानतः दो प्रकार की है जीविताशा और घनाशा । अन्य भी अनेकों आशाएँ हैं वे सब ही जीवन और धन से सम्बन्धित हैं । आशापूर्ण हुई कि मानव पुष्प का बर्धाई देना है । आशा अनुकूल फलित नहीं हुयी तो बस पाप को कोसना है । दुर्भाग्य की निन्दा में जट जाता है किन्तु जो आशा ही नहीं करते वे न उनकी पूर्ति में धूने हैं न अपूर्ति पर पश्चान्नाप ही करते हैं । अपितु हृष विषाद मूल्य आशा निराशा दोनों से ऊपर उठ जाने हैं । हृष विषाद का कारण मूल पुण्य-पाप ही कम है विधि है । माय्य है । जहाँ तक आशा का भङ्ग रहना है भाग्य बनेगा बिगड़ेगा ही । आशा नहीं तो शुभागुम किया नहीं । शुभाशम कर्माभाष होने पर सुख-दुःख रूप पुण्य-पाप भी नहीं होने और तब आत्मा इन्द्रिय जय सुख दुःख से ऊपर उठकर स्व स्वभाव में आ जायगा । शुभाशम विकल्पाभाव में आत्मा शान्ति होता है सम्पूर्ण बनना है सम्पूर्ण चारित्र्य कहलाता है । वहाँ बय नहीं आसन्न नहीं होता । यह जानना है । सुख-दुःख एक है । शुभाशम दोनों ही शुद्धात्मा के घातक हैं । तब पुण्य-पाप का विधि माय्य उसका क्या विषादकर सकता है । जिसन निघ्नता का घन मान लिया मृत्यु को ही जीवन समझा जान मात्र पण्य मुक्त मानव का भाग्य विधि या कम क्या विषाद सकता है ? क्या बना सकता है ? कर ही क्या मचना है ? कुछ भी नहीं । हृष दुःख होता है । क्व ? जब हृष किसी वस्तु को सुख की साधन समझने हैं और उस वस्तु की उपस्थिति नहीं होती अथवा उसका होकर नष्ट हो जाते हैं । इसी प्रकार हृष इष्ट बुद्धि माय्य पण्य के विषेय होने पर दुःखानुभव होता है । जब किसी भी मौखिक पण्य में इष्टानिष्ट चलना ही न रहे तो उस पण्यत्रय आशा निराशा भी हम नहीं हो सकती । आशा ही नहीं तो फिर उसकी पूर्ति में सुख और अपूर्ति में दुःख कैसे सम्भव हो सकता है ? अर्थात् न सुख होगा न दुःख क्यों कि दोनों के कारण आशा निराशा नहीं है । कारण के अभाव में क्या नहीं हो सकता । हे साधो ? यही वास्तविक आधुनिक है । साधु धर्म राम-रव दाना से परे है । जहाँ राग होना होय भा ही जायेगा । मित्रता होगी तो शत्रुता भी आवे बिना नहीं रह सकती । पानी रहेगा कीचड़ होगी ही । मेरापन आया तो मेरापन कहाँ जायेगा ? जहाँ मेरा या मेरी जिस वस्तु के प्रति कल्पना हुई कि वह वहीं राग और द्वेष आ कूने हैं । किसी न किसी वस्तु को हम अपनी कहते अक्षर । किसी न किसी को हम पराधी भी अक्षर । कहते हैं । यह मेरा-तेरा का भाव ही रागद्वेष का मूलमूल कारण है । अन्तु मुनिविषय देना जाना है जहाँ अयत्नत्व बुद्धि है वहाँ राग और जहाँ परस्पर बुद्धि है वहाँ द्वेष है । जहाँ अयत्नत्व-परस्पर का विचार नहीं है वही स्वात्मापन्नति है । स्व-पर विज्ञान है । आत्मा की प्राप्ति है ।

ना फिर पहराहूँ मजुरता उड़ाया बड़े सारी है तब होता क्या है ? वह भागी उन दबी धारणा के उमाह के प्रवाह में योगायोग विचार विहीन होकर आत्म की भाव बह जाता है और पुनः आकाश रोग का विचार का भाग है। उन अर्द्ध स्वप्न दशा में यदि वह स्वप्न सावधान रह गया अथवा अतः द्वारा सम्बोधित किया तो अस्वप्न पूरा स्वप्न स्वप्न पान में समर्थ हो सकता है। वह तो बाह्य स्वप्न है अतः स्वप्न तो अतः अन्तरिक विचारों को पूरा करता चाहिए। विचार भाव पर धार है परमात्मा का मिश्रण उदय का कारण है उदय विचारों को उदय है बिना उदय का कारण है। अतः आत्म स्वप्न ही सर्वोपरि है। हे भाई आत्म शान्ति जिस साधन में रह गये उन्हीं साधनों को एकत्रित करना चाहिए। जो कदा साक्षात्क निमित्त है उदय साधन परिकार करता चाहिए मही मही पुनः प्रयास है। अतः प्रयत्न भाव सर्वोपरि है। अतः भाव में मुख्य शान्ति मही मिल सकती। बिना प्रयत्न करने में सर्वोपरि जीव है मनुष्यों का आत्म उद्धारण तब करने में लिया जाता है वे अहंनिष्ठ परिधम करती हैं किन्तु दास भाव भी इहं गुण शान्ति नहीं मिलती। अतः आत्म शान्ति ही मुख्य है और उदय पाने का प्रयास ही सही पुनः पाने का उद्योग है।

अपने निश्चय अथवा जा मुनः जाय वह बहुत है। किन्तु धातुनीमनसाय व अनुसार धम धर्म में या आत्म में शून्य का अर्थशास्त्र है। वह शान्ति जो पूर्वोपर विरोध से रहित हो। सबल कीतराग हितान्तेही द्वारा प्रतिपादित किया गया हो। क्योंकि इन विरोधों युक्त ही वला निर्णय सत्त्वा मवाय तत्त्व प्रतिपादित हो सकता है। अतः नहीं। सर्वोपरि कारण आत्म ही सत्त्वा आयम है। जिसमें प्राणी मात्र का अनुपपन्न हो जीवनान के कल्याण का विकास माय बनताया गया है वही सत्त्वा अकाट्य उत्तमोत्तम शास्त्र है। शास्त्र शास्त्र शास्त्र धातु के निष्पन्न है। शास्त्र का अर्थ है शासन करना। अनन्त शास्त्र वही है जो हम पर अधिकारपूर्वक अतः प्रभाव डाल सके हम अपने अधिकार में रख सके। हमारा माय निर्देश कर सके। शास्त्र शास्त्र में हम कह सकते हैं जिसके द्वारा हमारा ज्ञान प्राप्ति हो मिलता है। शुद्ध हो और भाव ही विकासोन्मुख हो वही सत्त्वा शास्त्र है। निर्णय ज्ञान का अभिप्राय है सशय विषय और अनन्तव्यमाय रहित और विकासोन्मुख से अभिप्राय है केवल ज्ञान की प्राप्ति कराने में समर्थ। वास्तव में ज्ञान वही है जिससे तत्त्व का अवरोध हो ध्वज का निरोध हो और आत्मा की शुद्धि हो। आत्म तत्त्व का यथार्थ स्वरूप प्रतिपादन करता है और उसी के आधार पर हम तत्त्व का अवयव करते हैं। आत्मा भी तत्त्व है ॥ भी आत्मा ॥। आत्मा एक तत्त्व है। आत्मा का प्रतिपादन आत्म है। आत्म व अनुसार आत्म तत्त्व का जानना और समझना वा ज्ञान है ही किन्तु उम पर अतः दृष्टि होना परमावश्यक है। अद्वैत ज्ञान तत्त्व में रमण करना उत्तम आनन्द लेना भी ज्ञान की ही विशेष क्रिया है। इमं बिना वह पूरा विकास नहीं पाना। अतः

ज्ञान की पूर्णता रतन्त्रय है और रतन्त्रय की उपलब्धि ज्ञान की पूर्णता है। तीनों का एकीकरण ही आत्मा है।

हे आत्मन् आशा पिशाच है। भयङ्कर है। नाशक भी है। आशा प्रधानतः दो प्रकार की है जीवितारणा और घनारणा। अब भी आशों आशाएँ हैं वे सब ही जीवन और धन से सम्बन्धित हैं। आशापूर्ण हुई कि मानव पुण्य का बड़ाई देता है। आशा अनुकूल फलित नहीं हुयी तो बस पाप को कोमलता है। दुर्भाग्य की निन्दा में जट जाता है किन्तु जो आशा ही नहीं करते वे न उसकी पूर्ति में फूलते हैं न अपूर्ति पर पश्चात्ताप ही करने हैं। अर्थात् हय विषाद भूय आशा निराशा दोनों से ऊपर उठ जाते हैं। हय विषाद का कारण भूय पुण्य पाप ही कम है विधि है। भाग्य है। जहाँ तक आशा का भङ्ग रहता है भाग्य बनेगा बिगड़ेगा ही। आशा नहीं तो शुभाशुभ किया नहीं। शुभाशुभ कर्माभाव होने पर सुख दुख रूप पुण्य-पाप भी नहीं होने और तब आत्मा ईदिय जब सुख दुख से ऊपर उठकर स्व स्वभाव में आ जायेगा। शुभाशुभ विकल्पाभाव में आत्मा शान्ति होता है सम्पूर्ण बनना है सम्पूर्ण चारित्र्य कहलाता है। यहाँ बंध नहीं आकर नहीं होता। यह जानता है। सुख-दुख एक हैं। शुभाशुभ दाना ही शुद्धात्मा के घातक हैं। तब पुण्य-पाप रूप विधि भाग्य उसका क्या विषादकर सकत हैं। जिसने निधनता को धन मान लिया मृत्यु को ही जीवन समझा पाव मान चगु मुक्त मानव का भाग्य विधि या कम क्या बिगाड़ सकता है? क्या बना सकता है? कर ही क्या सकता है? कुछ भी नहीं। हय दुःख होता है। कब? जब हम किसी वस्तु का सुख की साधन समझते हैं और उस वस्तु की उपलब्धि नहीं होती अथवा उत्पन्न होकर नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार हय इष्ट बुद्धि भाग्य पदार्थ के विषय होने पर दुःखानुभव होता है। जब किसी भी लौकिक पदार्थ में इष्टानिष्ट बनना ही न रहे तो उस पदार्थ में आशा निराशा भी हम नहीं हो सकती। आशा ही नहीं तो फिर उसकी पूर्ति में सुख और अपूर्ति में दुःख कबे सम्भव हो सकता है? अर्थात् न सुख होगा न दुःख क्योंकि कि दोनों के कारण आशा निराशा ही नहीं हैं। कारण के अभाव में कार्य नहीं हो सकता। हे साधो? यही वास्तविक आधुनिक है। साधु धर्म राम-राम दोनों से परे है। जहाँ राग होगा द्वेष आ ही जायेगा। मित्रता होगी तो शत्रुता भी आवे बिना नहीं रह सकती। पानी रहेगा कीचड़ होगी ही। मेरापन आशा तो मेरापन कदा जायेगा? जहाँ मेरा या मेरी जिस वस्तु के प्रति कल्पना हुई कि कम नहीं राग और द्वेष आ कूटने हैं। किसी न किसी वस्तु को हम अपनी कहने अवश्य हैं किसी न किसी को हम पराधी भी अवश्य ही कहने हैं। यह मेरा-तेरा का भाव ही रागद्वेष का मूलभूत कारण है। अस्तु मुनिस्मिन् देना आना है जहाँ अपनत्व बुद्धि है वही राग है और जहाँ परस्व बुद्धि है वही द्वेष है। जहाँ अपनत्व परस्व का विचार नहीं है वही स्वस्मापनत्व है। स्व-पर विज्ञान है। आत्मा की प्राप्ति है।

राग द्वेष इष्टादिष्ट बुद्धि ही दुःख की कारण है। कोई भी पदार्थ जिनका मात्र भी अपना न था न हुआ और न होगा। मात्र हमारी कल्पना से हमारे और पराये हैं। यह मेरा तेरा का व्यवहार ही सुख दुःख का कारण बनता है अथवा कोई सुख है न दुःख। हे साधो तुम कल्पनिक सुख की ओर दृष्टि मत लगाओ। तुम्हें तो चिरमुख चाहिए। यह चिरमुख है आत्मोत्थ आत्म के द्वारा आत्मा में रहने वाला। आत्मा का सुख सच्चा और अकारण है। वही चिरमन है। इसी का पाने का प्रयत्न करो। इसी की धोज में लगो। इसी को पाओ इसी की बड़ाओ। न कहो अथ स्थान से लाना है न ले जाना। अपने हाँ आत्मा में विद्यमान हैं स्वयं अपने ही में रहा है। अपने अंदर है यन्त्र कन्ध यथायोग्य प्रकट होना है हम मंत्रों लगाता है पर विपणन से बचाता है आता है चला जाता है ? क्या क्या कि हम उसमें उतरना नहीं चाहते। उसका तो घाट पाम है बड़ा जान में पड़ने में अधिक बाल न लगेगा ज्योत्स सज्जान जन्ममुत्तम मात्र बन। हे पानित उस क्षण की खोज कर उस भगवान् उस ही पकड़ कर उसमें रमने कर अनुभव ल उबरा लगा। आनंद आयगा आस्थाए रूप। चिर रूप। पानावधक स्वभाव पुनः आरमानंद।

जीव और जीवन दो पृथक् पृथक् हैं क्या ? हैं भी और नहीं भी हैं। जब का अथ प्राणी है जो पान दान चेतना सम्पन्न हैं। यह व्यापक अथ है। इसमें माय का अवरोध होता है। जीवन का अथ है कुछ अवधि प्रमाण जीव की पदाय विशेष। यथा मनुष्य जीवन देव जीवन नियन्त्र जीवनात्। जीव निराशा बल्लभ हैं शास्त्रों निरुद्ध हैं और जीवन सन्निक हैं परिवर्तनमाल है और वन मान कालमात्र में रहने वाला है द्रव्याविक नय से जीव है और पर्यायनपाय ता जीवन। जीवन का निमित्त से जीव को भी जाना पदायो में भगवन्ता पड़ना है। विविध कष्ट उठाने पड़ने हैं नाना प्रकार के वेध नाम और कार्यों का धारण करना पड़ता है जीवन सीमित है मात्र असीम हैं। जीवन आत्मा है जीव अनात्मा है। जीवन शान्त है और जीव अतन है। जीव में कोई विचार परिवर्तन या कन्धन नहीं हाथा पर तु जीवन निरंतर परिवर्तित निरुद्ध हाता रहता है। जीवन की उत्पत्ति ही पर निमित्त से हाथी है। पर सयागा हाँ जीवन है। जब तक पर सयोग रहेगा जीवन रहगा पर सयोग समाप्त हुआ कि जीवन भी समाप्त हो जाता है किन्तु जीव जा था बढ़ी है और यही रहेगा उमम काइ सन्तुह नहा है। सयाग दा पदार्थों में हाता है। जीवन सयागी है। किम किम का सयाग है जान और कम का। कम का सयाग हुआ कि मात्र मुद्ध जाव रह जायगा पुन किम सयोग कम नहीं हाता। अथ एक बार सयाग पिटा कि जीवन सयाग का समाप्त हा जायगा। पुन कभी जीवन नहा हाथा। सयन जद्ध एक मात्र रह जायगा। पदा में है।

स्तुति क्या है ? स्तुति के यथोत्कर्षण करने को स्तुति कहते हैं । स्तुत्य क्या है ? जिसका स्तवन किया जाय जिसके गुणों का स्तवन किया जाय वह हमारी ध्येय वस्तु स्तुत्य है । गुणानुवाद वर्त्ता स्तोता है स्तुत कारक है । स्तुति करने से हमने वाला मन प्रसन्न आत्म शान्ति या मोक्षोत्पत्ति स्तुति का फल है । स्पष्ट हो जाता है जहाँ हमारा ध्येय पश्य होता जहाँ भक्ति और ध्याना रहेगी वहाँ ही हम उसका फल प्राप्य हाँगा क्योंकि स्तुति गुणानुवाद गुण स्तवन मत्ति ध्यानानुसार ही होता है । भक्त ध्याना का फल है ध्याना जानकारी का पराव है । जानकारी ध्याना का प्रतिफल है अथवा प्रबन्ध अवबोध भावना का फल है । शक्ति या ध्याना वही होती है जहाँ हमारा मन टकताता है मन वह जाकर टिकता है जहाँ हमारी बुद्धि स्थिर होती है । बुद्धि मस्तिष्क की उत्पत्ति है । मस्तिष्क की दृष्टि से बुद्धि का विकास होता है । मन मन मस्तिष्क और बुद्धि का सहयोग से स्तुति उत्पन्न होती है । अतः स्तुत्य मस्तिष्क मन और बुद्धि तीनों का म्रिय हाँगा चाहिए । हे साधो ! विचारणीय यह है कि यह स्तुत्य गुण कन है या अगुण रूप व शुद्ध रूप । अशुद्ध रूप स्तुत्य तो बार्द भी कुछ भी बर्मा भी बही भी सुषमता से प्राप्य है । वह स्तुति भी उत्तमी ही उत्पन्न है । शुभ स्तुत्य अनेकान एक ही हा स्रज्जा है अथ उत्पत्ती परीक्षा करना अनिवार्य है । परीक्षा की योग्यता उस से भी अविकल आवश्यक है । हे साधक योग्य परीक्षण बनो । मन्त्र मूत्रे की पहिचान करो । सत्पासत्य वा ध्यान हुए बिना पश्य स्तुत्य प्राप्त न होगा । आत्म के मध्यम से पञ्चवरमेष्टी शुभ स्तुत्य है और शुद्ध रूप स्तुत्य अपना ही शुद्ध स्वरूप अरमा है । स्व स्वरूप की पहिचान और प्राप्ति जब तक नहीं होती है तब तक शुभ रूप स्तुत्य की स्तुति में स्रजन रहना चाहिए । शुभ व ही शुद्ध की प्राप्ति हाँगी है । शुद्ध रूप अपना ही अरमा है । त्रिकालत्र टकास्तीय शायन स्वरूप आत्मा की पहिचान करो ।

हे आत्मन् ब्रह्म और ब्रह्मण एव ब्रह्मी और इसका फल इन चारों का सम्यक् स्वरूप समझो । बिना पृथक् पृथक् अवगत किय तुम छः नहीं सकते और बिना छः कारे स्वतन्त्रता नहीं स्वतन्त्रता बिना सुख नहीं शान्ति नहीं । ब्रह्म सत्त्व ध्येय करता है कि कोई हो पश्य है । एक कहे ब्रह्म कहा जा सकता है । गाय ब्रह्म को प्राप्त हुयी इसका मनसब धाय के साथ कोई भी अथ वस्तु मिनी बाहे वह रस्ती हा फल ही बड़ी हो जो कुछ भी है । उन दोना व बीच कोई भी क्रिया हुई । गौड मगी बड़ी जुड़े या आँकड़ा लगा ठाना लगा । ब्रह्म यही ब्रह्म है । वह ब्रह्म कई प्रकार ॥ हो सकता है सयोग स्रजेय रूप शान्ति । आत्मा और कर्म दा है । दोनों का मिलना ही ब्रह्म हुआ । मया दूध और पानी दोनों मिलकर एकमेक हो गये इसी प्रकार आत्मा और कर्म परमाण अन्धाय प्रविश्य हा जाते हैं । दोनो मिलकर बन गये ब्रह्मी । आत्मा ब्रह्मी है और कर्म परमाण भी ब्रह्मी है । दो बराबर की शक्तियाँ

मिनी । दोनों ही अज्ञान अज्ञान प्रभाव निभाती हैं । दोनों में निश्चय हुआ है । यह तनाव ही बचन है । जो दोनों के बीच परकर उठे सफाये दे । यह सत्यने वासा कोन है ? यही है बच्ची । बच्ची बचन की जिज्ञा प्रविष्टा के परिणाम में प्रभावित होता है यह स्वाभाविक है । इस विषय का नाम है पता । अज्ञान बचन मुक्त है । बचन की प्रविष्टा है शुभाशुभ गुण दुष्ट ज्ञान ज्ञान आदि । अज्ञान बचन सत्य या बचन का पता मुक्त दुष्ट जीव अज्ञान भोगता है यही बचन का पता / । यह साधारण पता है विशेष पता है इन गुण दुष्टों से पते । जो बचन का अभाव रूप है । बिना बचन का बचनभाव कैसे हो ? स्वाभाविक वहाँ से मिले स्वाभाविक वहाँ पाये ? अज्ञान यह मुनिविषय है नि बिना बचन के मुक्ति नहीं मिल सकती । बिना मुक्ति के आत्म गुण नहीं हो सकता । अज्ञान बचन की प्रविष्टा को सम्पूर्ण ज्ञान कर उगे (बचन) के बादने की प्रविष्टा अवगत करना अत्यवश्यक है ।

हे भयोत्तम सिद्धान्त परगामी बनो । यशो का पतापता त्यागो जहाँ पता या नय ध्यामीह रहना वहाँ वस्तु स्वल्प का निगम नहीं । सत्यता यथाय वस्तु स्वल्प समस्त बिना सत्य ज्ञान नहीं हो सकता । सत्यता सत्यता की दुष्कृति है । यह बलिदान है । इस पर भी दुष्कृतिपिनी । बिट्टुमान गामी कुतर्क विधर्म धर्ममासी लोक अधिस्तर स्वभाव से ही दाने धर्म के सम को न समझ कर के केवल धर्म के नाम पर बसतु निर्मल करके ग ही अपना गौरव समझते हैं । यही नहीं स्वार्थी धर्मो अथवा देव गुण ज्ञान का अर्थ लगाकर भोज भोज जगो का सुमाध्युत करने में प्रवृत्त होंगे । अपनी प्रभुता यज्ञ न या बनाये रतने के अभिप्राय से धार्मिक क्रिया बाण्डों पूजनाभिषेकानि पट्ट बर्मों में स्त्री पुरुष का भोग भाव पता करते हैं । प्रथम ता लेने दुरभिप्रायीजन धर्मोद्योग का ध्यान कर अंतराय कर्माजन करते हैं । दूसरे स्त्रियों को निषेध कर तीव्र ज्ञानावरणी दशनावरणी और मोहनीय बम की परिपटी की भी बड़ाने की चेष्टा में भी सलग्न रहते हैं । तीसरी बात साधु धर्म में स्वयं जाना नहीं चाहते ना नहीं सकते आने का भाव नहीं है यह तो ठीक ही है पर अनीतिन विषय यह है कि ये मनबने साधुधर्म साधुओं का भी साधुधर्म पर अधिक देखना नहीं चाहते सभी ता रात दिन बटु आनोचना करते हैं अहंनिष्ठ छिन्नावेपण कर जोक की भाँति उनकी कमजोरियाँ रूप रक्त-पान करके अपने उर को प्रसम्भित करते रहते हैं । जो ही समय सर्वत्र सबके लिए एक ही समान नहीं है । जिन्हें दुर्वृत्ति का पात्र होना ही है या जो नरक निरोद्धा से आये हैं उनका परिणाम इस प्रकार कुटिल होना स्वाभाविक है । हे भगवन्सन्त तु सावधान हो मत भूल कि तु ज्ञानी है ध्यानी और परम विवेकी है । आत्मा और कर्म के जोड़ पर तुझे प्रशास्त्री देखनी चलाना है । पर की आर नहीं देखना । जो पर पर दृष्टि रखता है उसका स्व हीन हो जाता है । स्व पर दृष्टि रखने वाले को पर स्पष्ट

समझने में आता है यह कभी भ्रम में नहीं पड़ता। तत्काल उसे भ्रम विज्ञान होता है। यही स्वप्नवेदन की प्रथम भूमिका है। जिसका एक बार स्वाप्न लेकर पुन कभी नहीं भूलना। उत्तरोत्तर अपने में समाहित हो जाता है। यह है अनन्त का माहात्म्य। हे साधो ! जनघम को समझो उसकी यह म धुनो। सिद्धांतों का अधिकाधिक अध्ययन कर मृद्विषय कर मजबूत बनाओ। हे साधो उहाँ जन घम है वहाँ कन्ह दगदग या विसर्ग नहा हो सकता। भरा घम स्व स्वभाव है। तू साधू ३ आरमन् । इस अवस्था में चान्चाल करना उचित नहीं। यह विद्या मिथ्यात्व का कारण है। मिथ्यात्व अनन्त सत्ता का बीज है। सत्ता दुःख है। आरम स्वभाव से भिन्न अपना अनन्त सत्ता बनाने चाहा है क्योंकि मिथ्या रूप है। हे आरमन् निराकुण बना। पथ प्रामोह म आकुचता रहेगी दुःखहोया परित्याग सत्ता और दुःख होगा ही तब महात्रन साधु रूप व्यक्त हो जायेगा। यह है अन सिद्धांत त्रिनागम और जिन गुरु का सत्ता स्वरूप और सिद्धि। भले प्रकार समझो। सम्यक् क्या है ? जिस प्रकार उसे पाया जाता जा सकता है विन तरह मनाता जाता है विन उपायो से बनाया जा सकता है और विन विन क्रियाओं से अमिट बना कर सम्यक् ज्ञान पारिवर्त को प्राप्त किया जा सकता है। मानासमान पर विन पाना रमाडा है। ज्ञान प्रभावना में तत्त्व होना ध्यान है। कम काबिमा को अलग करना कथन है। साध का गुण मौन है। मौन से ही आरम सिद्धि है। मौन सब कार्यों का साधक है। मौन से आरमभक्ति बढ़ती है। आरम गौरव समझना है। निज स्वप्न झलकना ३। मौनो बनो।

स्वप्न हमारी जाग्रत अवस्था की भावनाओं का प्रतिबिम्ब है। हम अपने स्वप्न जीवन में जो कुछ करते हैं। उनका अनुभव होता है। अनुभव गहरे प्रभाव हैं। प्रभाव एक प्रकार की तस्वीर है। कमरा में फाँटे आता है। फाँटे बिज है बिज लावा गया प्रतिबिम्ब है। इसी प्रकार हमारे अनुभव हमारी जनघम भूमि में अक्षिप्त रहते हैं स्वप्नावस्था में ये ही बिजित बिज रोज समान आते जाते रहते हैं। जिन में हम जा कुछ सोचने विचारते हैं वे ही पूरे अधूरे होकर स्वप्न में जा जाते हैं। य स्वप्नगत बिज जनमान विचारधारा की ही प्रतिबिम्ब स्वप्न हात हों यह बात नहीं है अपितु भूत एक भविष्यकाल सम्बन्धी भावार्थ में आती है। कभी कभी हम जिन कार्यों का भूत चुके होते हैं अथवा जनमान जीवन में कभी नहीं किये वे काय विचार धारा में जनविज की मौलि स्वप्न में आकर हम अनुदासित करते हैं। यह प्रक्रिया हमारे जाग्रत और मुक्त मन की संधि भी घोटक है। दोनों का जोड़ है। कभी-कभी इन स्वप्नों से निश्चयता आती है। भविष्य में ज्ञान का विपदाओं का संकेत मिलता है। उनसे छत्रास पाने का उपाय सूझता है। हम अप्रत्याशित घटनाओं से सावधान हो जाते हैं। जीवन को नवी मोड मिलती है। नवीन जीवन

मे उत्साह समग्र और सत्परता की सहर दीव उठती है। कभी दुःस्वप्नों के कारण विपरीत परिणामन भी हो जाता है। हनोत्साह और निराशा होकर हम अपना सस्त्र खा बैठते हैं। सबका सारांश है कि मन की पवित्रता होने पर हम पूर्वा पर होने वाली घटनाओं की सूचना मिल जाया करती है। हे भव्योत्तम अपनी विचार भण्डारा परिपक्व करो। तत्त्व चिंतन म रत रहो। आत्म स्वरूप की अनुभूति करो। जन्मी म प्रवेश करो। स्वानुभव म दुबकी लगाने पर बड़ी सम्भावना म भी आवेगा। उसी की धारणा बनेगी। यदि किसी प्रकार रिप्य सम्भावित भी होगा तो पूर्व सूचना ही ज्ञान से सावधानी हा जावगी।

हे आत्मन् तू निज स्वरूप को समझने की चष्टा कर। व्यवहार सम्पत्त्व का पोषण कर निश्चय को प्राप्त करने की चष्टा करो। व्यवहार सम्पत्त्व निश्चय सम्पत्त्व का साधक है। निमित्त है। बिना निमित्त क मर्मितन की सिद्धि नहीं हो सकती है। सराग चारित्र्य बिना भीतराग चारित्र्य नहीं आ सनता। उनी प्रदा सराग-व्यवहार सम्पत्त्व के बिना निश्चय सम्पत्त्व नहीं हो सनता। कर्माओं का मन्दन परिणमन ही सम्पत्त्व का साधक ह। मन तानुबन्धी चोबड़ी मूल म चारित्र्य मोहनीय की है किन्तु दशन माहनीय की अभीष्ट साथी होने से दशन गुण का भी मान करती है। चारित्र्य मोह का धात ता करती है। इस प्रकार यह अनेको एक ही प्रवृत्ति दो काम करती है। चूनि दो क्रिया करती है तो इसके अभाव म का कर्माओं का अभाव और दो ही का प्रादुर्भाव होना चाहिए। अस्तु दशन माह के उपशम क्षय क्षयोपशम स और अनन्तानुबन्धी क भी साथ-साथ मे उपशम क्षय, क्षयोपशम से औपसमिध, क्षामिक और क्षायोपसमिध सम्पत्त्व ह ता है और उसी का अविनाभावी स्वरूपाचरण चारित्र्य भी होना है। यथा नीम को पीना प्राय तो मद्यति उसका उपभोग नहीं किया यथा तो भी उसकी बड़वाहट गले म आवे बिना नहीं रहती। यह कड़वाहट ही उसकी क्रिया है। इसी प्रकार सम्पत्त्व के साथ चारित्र्य भी होता है। परिणाम मे निमलता सरलता होना ही तो चारित्र्य है। भगुम से निवृत्ति और गुम मे प्रवृत्ति ही चारित्र्य है। शुभ रूप परिणमन ही चारित्र्य है। यही अनुभूति ही स्वरूपाचरण चारित्र्य है। कुछ अभिप्राय है कि ११ वे गुण स्वान म ही स्वरूपाचरण चारित्र्य है। ठीक है यही चारित्र्य मोह की अने ११ स्वरूपाचरण है और यही दशन मोह के नाम स आविभूत परिणाम विमुक्ति हानी है। यह निमलता ही स्व स्वरूप की अनुभूति है।

येन सिद्धोऽनुरूप है अर्न्तीय है सर्वोत्तम है। इसने समान तत्त्व व्यवस्था अन्तर उपपन्न नग होती। अन्तर दशन म भी तत्त्व विवेचन है किन्तु यह दशन मूल्य नहीं कि जिसने उसे पूरा कहा जा सन। सर्वत्र अनेकान का मानावाग है।

वस्तु अनेकान्तात्मक है सामान्य विशयात्मक है उभय पक्ष के बिना वस्तु स्वरूप निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह विशय वशन जन दर्शन हो करता है अतः जन सिद्धांत अनुपम है। इसका कम सिद्धान्त अनात्मा है। कम की व्याख्या उसका सूक्ष्मनम स्वरूप तथा वाय का जो स्पष्ट सरन गुणवा रूप जिन शस्त्रन में मिलता है वह अयत्र नहीं प्राप्त होता। वतमान विज्ञान जन सिद्धान्त के अशा से ही अनुप्राणित है। हमारे जनमत का एक एन श = वस्तु का जण प्रणु नियमों का विश्लेषण शुद्ध वज्ञानिह है। सौत्रिक जीवन की प्रत्येक क्रिया प्रविष्टिया वज्ञानिह आधार पर ही आधारित हैं। यह है जीवन का विश्लेषण। अनएव जिनशामन अद्वितीय है। इस लोह ररतोक जीवन मरण स्वय मरक मसारम छ जीवाजाव आनि की व्याख्या जन सिद्धान्त में जिन प्रकार बलित है उस प्रकार अयत्र नहीं है। जीव निरय निमोद से निजनकर अनाति मिथ्यात्व का नाश कर उस पर्याय का विविध भेषो को धारण कर किस प्रकार ससार में स्वय स्वतंत्र कम कर शुभाशुभ पक्ष मोचना है और स्वय ही अपने सत्पुरुषार्थ से ऊपर उठकर कमल पूष विवास को प्राप्त होता है यह प्रक्रिया जैन सिद्धान्त क निवाय अयत्र नहीं मिलती। जैन धम ही एक है जो प्रत्येक जीवात्मा का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करता है स्वय जीव ही अपने बल मोन का कारण है स्वय परतत्र हुता है और स्वय ही स्वतंत्र हो परमारमा बन जाता है। प्रत्येक भव्यारमा अपना पूष विकास कर परमारमा भगवान बन अनत कान तक अनन्त सुख का उपभोग करता रहेगा वास्तव में यह सर्वोत्तम है।

पुष्य पाप एकही कम की दो अवस्थार्ह हैं। कमपिणा दोनो सनान हैं। परन्तु कार्य अपेक्षा दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं। एक ही मां में उत्पन्न हो सहोदर सहोदरा पुत्र या पुत्री अपेक्षा एक समान हैं किन्तु तो भी पुत्र धम स्वभावानि अपेक्षा दोनो में विपरीतता पायी जाती है। एक धर्मात्मा सरस सुन्दर श्रिय आनि गुण सम्पन्न है तो दूसरा पापी क्रूर नुकु, अशुभ-अप्रिय दुष्ट दुर्वन होता है। एक सैठ सैठानी हो जाता है तो दूसरा सेवक या बेटी। दोनों ही कम का पत्र है। कम यदि एक ही रूप है तो यह भेद क्यों? एक शिविका में सवार है दूसरा बाघे पर दो रहा है। एक कुत्ता पर पर दुरदुरावा जाता है तो दूसरा सुन्दर मखयत के रङ्गे पर बैठकर सुन्दर भोजन पाता है। एक ठाकुर है एक पानर है इसमें स्पष्ट है बहना की अपेक्षा आत्मरवभाव में विपरीत होने से वास्तव में कम एक होते हुए भी क्रिया अपेक्षा बहु शुभ और अशुभ का पुष्य पाप रूप भेद से युक्त है। दोनों का भेद विनयन है। पुष्य उभाये है पाप हेय है। पुष्य पाप का पातक है। पाप दुखराता है पुष्य सुख का साधक। यद्यपि यह दुख और सुख दोनों इन्द्रिय वन्ति है नरर है आत्म स्वरूप में भिन्न हैं दोनों ही मुक्ति में बाधक हैं परन्तु पाप मुक्ति का पातक भी है और समार बर्तन भी किन्तु पुष्य मुक्ति में तनिक बाधक होता हुआ भी उस भेद का परारा साधक भी है। यथा मरलनी माय है साज केंकरी है थोट मयत्री है किन्तु सरीर

प्रेमक गुणवान् बन बुद्धि बलक रूप भी उसी में मिलता है। मार मार भी पाप का कोई श्राव नहीं करता अतः उमात पापन योग्य प्रारत पूर्ण करने के क्यों? क्योंकि हम जानते हैं कि मरणात्पश्चात् पुनर्जन्म होने का भी यह श्रावणी योग्य के सभी प्रकार पुनर्जन्म का आत्मसंस्कार में बाधक है कि पुनर्जन्म के परम योग का साधन है आ बलमीय है बोधनीय है उपादेय है। पुनर्जन्म के परम उपाय नहीं। परम स्थाया माना है पुनर्मान के निष्ठ पुनर्मान का पुनर्मान के निष्ठ कि पुनर्मान पूरा जाता है धर्म प्रवृत्ति होने पर स्वसंवेग्य जगत् पर स्थापित आने पर। पुण्य भोग प्रसार है। साधित्य और निरन्तरित्य के भेद से। साधित्य पुनर्मान साधित्य मोक्ष का साधन है निमित्त है। तीर्थंकर प्रवृत्ति साधित्य पुनर्मान का फल है इमहावर्तिर भी उसी उत्पन्न भाति का होता है। देखिये तीर्थंकर प्रभु जन्म से अवधि जाती होते हैं। अवधि ज्ञान दवा को भी होता है इन्हें सभी मुनिराज आदि को भी होता है। जानते हैं सदा समान है किन्तु तीर्थंकर के ज्ञान में विभक्तता होती है वह जन्म ही में उपलब्ध रहता है। अन्य जोड़ते हैं तब उपयोग में आता है परन्तु बलमान स्थायी को तत्प्राप्त इन्द्र की शक्ति अवलम्बन हो गई और तत्प्राप्त अमूर्त दवाकर उनका तन्हे हुए किया और महाभिषेक किया। अमर्त्यमयी सुदृश्य जीवन मही तीर्थंकर के पावन पुनर्मान का शरीर का दशन मुनिराज की शक्ति निराकरण में समर्थ हुआ। यह क्या? पुण्य का साहाय्य ही था। ऐसे उत्तम पुनर्मान को विना बलमाने वाला क्या अवधि पावे मिष्टास्वी नहीं होगा? अवश्य होगा। यह पुनर्मान ऐसा नहीं। उपादेय है। इसे छात्र नहीं जानता यह स्वयं मुक्ति रूप फल देकर स्वयं पुनर्मान शब्द जानता है। ज्ञान पर पुण्य आया यह हेतु तत्प्राप्त है यह मानकर यदि उसे तोड़कर फेंक दिया जाय तो फल की प्राप्ति क्या है नहीं हो सकती। ही मारवाली में पुण्य का पोषण किया जायेगा तो फल देकर वह स्वयं ही शब्द जायेगा। इसी प्रकार पुण्य मुक्ति का साधक है कारण है। कार्य सत्यज्ञ हान पर मुक्ति प्राप्ति होने पर सहायक साधन स्वयंमर जहाँ का तहाँ रह जायेगा। ह आत्मन् तू सिद्धान्त के हृदय को समझ। तत्त्व की परीक्षा कर। यथार्थ स्वरूप समझ कर धृष्टा कर और तदनुकूल आचरण कर।

एक प्रश्न उठता है मनुष्य गति में स्त्री-पुरुष की आयु में कोई फरक नहीं है दोनों ही की अधिक से अधिक इष्टत्व हो सकती है इसी प्रकार नियन्त्रक में भी है। किन्तु देशपर्याय में देश देश की आयुष्म अल्पान्तर्गत होती है। क्यों इसका उत्तर तीर्थंकर शब्द मही हो सकता है कि स्त्रीवेणी आनी देव जन्मा हो बाध कर सकता है। देवागना आयु की स्थिति उनकी ही बाधता है उससे अधिक निमित्त विवर नहीं कर पाना है अधिक नहीं। अल्प शक्ति होना ही कारण है।

पूजा में तीन भेद हैं—१ सचित्त अचित्त और मित्र। सचित्त पूजा क्या है? साक्षात् जिन भगवान् जीवन निर्धन परम बीतरामी दिग्गम्बर साधुओं की पूजा सचित्त पूजा है। अचित्त क्या है? तीर्थंकर सदा भगवान् की वाणी अक्षरारमर लिपि

ब्रह्म जिन वाणी काधारमय होने से अविज्ञ है पर पर ब्रह्मर आत्मा अविज्ञ है अत्र
जिन वाणी पूजा अविज्ञ है । विषय क्या है ? दोनों की सम्यक् रूप पूजा करना अपना
जिन वाणी की पूजा विषय या अविज्ञाविज्ञ है । धान्नु पापाणां अविज्ञ ॥ और उनमें
मूलमन्त्र देवता मन्त्राणि महान्तर कर उद्यम जीवन मगवान का आरोप किया जाता है ।
अत्र यह भी जानी चरत पूजा सम्यक् मित्र पूजा है । यह कमुन-दी आवाप व धारका
धार म वर्णित है । प्रत्येक धारका अपनी अछानुसार कोई भी या तीनों ही प्रकार
की पूजा कर सकते हैं ।

निम्न ब्रह्मर साधु अपने मानो का निराका है भावों के साथ स्वयं गिरता
है । शुभ स्थान स्थान गया । किसी भी कारण व द्वारा काय म भी वह हो जाता है ।
काय अपने सहयोगी कारणों व अनुसार होता है । आनु निम्नब्रह्म किया उस
समय उगका व्यवहार सम्यक्कर कर गया वहीं वह उसका हान-बेहान हा जाता है ।
उसने पूरा वह ब्रह्मात्मा नहीं रहना । किन्तु मन्त्रवादी होता है । उसी से नियन्त्रण आत्मा
का वध कर मता है । जैसे निम्न का वध आत्मा । इसकी व पत्नी जिनने मर्त्यों की
काटने के लिए । निम्न करने पर परिणामों का सन्नेह होता है । इससे सम्मान की
विनाशना हा जानी है । पत्नी कमुम भावों के कारण शुभ पुत्र तब बुद्धि हा जाती
है । हे आत्मन् तू निम्नमात्र हाकर पूरा साधनाती व तत्त्वचरम कर । निराका व
साधना उत्तम पत्र दायक है । निरमाष्टि तब साधना आत्मा शोधन की साहायक
होती है । बाँटा यदि मोक्ष की भी दुर्गो भी भी वह योग की पत्नी है । किन्तु
अधमावस्था म साधनम् हाका की मिद्धि व लिए मोक्ष की अभिनाया होता भी
वर्मावस्था है । अहन्तां पञ्चपरम प्ति का स्थान वर्मा भी असावस्था है ।
परिपुष्ट आत्मवर्माधन हुए बिना भाव बुद्धि नहीं हो सकती । परमात्म स्वरूप की
मिद्धि का यही मार्ग है । तमसा साधनम् स निरावस्था ध्यान कर पूरा आत्मा की
मिद्धि होती है ।

हे भन्यामन् स्वतः व बना स्वस्थ बना निर्भर बना और निर्विकार बना ।
स्वात्मन्यन विकास की कुञ्जरी है । स्वयं अपने ही अधिन रहना तब का सहारा
मानना शक्तम् है । आत्मा स्वतः द्रव्य है । अपने म पूरा है । अन्त वन सम्पन्न
है । उनका दशन और जान है । वही भा वभी नहीं विर द्रव्य ही अर्थ क्या होगी ?
कल नहीं । आपे म आना ही स्वतन्त्रता है । उस स्वतन्त्र अवस्था मे स्थिर हा
जाना हा ता स्वस्थ है । स्व म निज स्वरूप म स्व ठहरना स्थिर हो जाना
स्वास्थ्य है । जब तक स्वतन्त्र नहीं स्वस्थ नहीं रह सकते । पराधीन
तापनेहुं मुख लाहा । स्वम्यावस्था म निर्विकार है—निर्भरता है । जो अपने म
विविक्त है उस मत्र वही और विनका । व्यवहार म भी वमभार-मुक्त वक्ति की प्र
मयावुर होता है । योगी की क्षण क्षण म भय सदा है । वमभार होन मे उत्तका

मनोबन्ध भी क्षीण हो जाता है। मनोबन्ध मिथिल होने से नाना प्रकार का मल्लय विकल्प पदा हो होकर उसके आन्तरिक विकास को आध्यात्मिक शक्तियों को नतिक विकास को रोक देते हैं। फलन वह अपने म मान बठा है कि मैं जाने बड़ नहीं सकता। मेरा विकास नहीं हो सकता। मैं तो ऐसा ही रहूँगा। इत्यादि। अतः स्वस्थ होना अत्यावश्यक है। स्वस्थ आत्मा निम्न बननेगी। उसे किसी प्रकार का भय हो नहीं सकता। स्वास्थ्यलाभ ही सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व का भय कहाँ ? निर्भय जीवन अनगल प्रवृत्ति नहीं कर सकता। जो स्वयं भयहीन है सबल है अपने म विरहस्थ है स्वाधीन है वह पर को सत्ता का भाव नहीं कर सकता। पर रक्षा ही करेगा। अपनी रक्षा करने वाला पर क ऊपर आघात नहीं कर सकता। अतः विकार भाव नहीं हो मने। हे आत्मन् पूर्वापर सम्बन्धित गुणों पर विश्वास कर उन्हें जीवन म उतारने का सफल प्रयास को।

प्रेम और वात्सल्य पर्यायवाची जैसे लगते हैं किन्तु अन्तर है। प्रेम में निष्ठा है वात्सल्य म त्याग। प्रेम म आकांक्षा है वात्सल्य म निरपेक्षा। प्रेम "तुम्हारे की अपेक्षा करता है किन्तु वात्सल्य में बदले की भावना नहीं होती। अनुराग का परिपाक वात्सल्य है भोगावांता का परिपाक प्रेम। प्रेम अघा हाता है वात्सल्य प्रकाश पुञ्ज। प्रेम म स्वाय है किन्तु वात्सल्य निस्स्वाय। गोवत्स प्रीति वात्सल्य का उाहरण है। कामाद्य रागण प्रेम का। प्रेम मे बचना है वात्सल्य म विकास। प्रमी स्व पर दोना का ठगने की चष्टा म रहता ॥ अतः कि वात्सल्यमयी प्रवृत्ति निज पर के करवाण में रत होता है। प्रेम इन्द्रियज उ सुख की आर उमुस होता है वात्सल्य आत्मोत्प सुख का उद्देक करने वाला। वात्सल्य आत्मा का गुण है। इगम प्रवचना नहीं प्रवचना भी नहीं। प्रमी पथ भ्रष्ट है किन्तु वात्सल्य सुवि सिक्कपासी है। प्रेम मे ठाठ है वात्सल्य मे शीतलता प्रेम में अशक्ति अवृत्ति भागा का लाना है परन्तु वात्सल्य म शक्ति वृत्ति निराकुलता और सुख है। प्रेम तारत धाया है संसार की परम्परा का रत है। वात्सल्य मने मित्र निद्रा आरम गुण का प्रकाशक है। हे आत्मन् सम्बन्ध स्वय आरम रूप है उमो सम्बन्धन मग का अकांक्ष अङ्ग है वाग म जा आरमा का निज गुण है अर्थात् सम्बन्धन मग को पर्याय ही वात्सल्य है। प्रेम मने मववा मित्र है। प्रेम आता उ प्राप में पगा कर जग्या को पवन क मग में कामने वाला है। वात्सल्य अनुराग की को में अङ्गिकर ममार मानर मे कोष पार करने वाला है। हे साधो प्रेम हेर है ममार का कारण है वात्सल्य अर्थात् वृत्ति का हेतु है। इस ही अपनाभी।

प्रेम का मकर कण गुण म परिचय हो जाता है जबकि व रगम्य का वेग रग का घम म मयानि हो जाता है। हम प्रेम करने हैं उमम स्वा रंजित होना है। हम वात्सल्य को जोर पर निम्न का बचना बताते हैं जिससे हमारे जीवन की कोय

रूप जब सा, मान रूप आधी माया रूप वर्ण और लोभ रूप कीचड़ से रक्षा होती है। वास्तव्य के फुहारों में भला बोधानि विम प्रकार प्रकटित हो सकती है आधी के प्रकारे उनका विस्तार ही करते हैं। माया रूप कीचड़ भना विम प्रकार कसा सकती है। धम की कम-बल ध्वनि में इनका उद्देश्य मिटा सा प्रतीत होता है। विषय वासनाओं का आह्वार दिव नहीं पाता। समार शरीर भीषों में स्थि नहीं आती। जीवन के एक नये मोड़ पर सदा रहता है और समग्रता की भांति सदा जागरूक रह कर सत्य कार्यान्वित होता रहता है। वास्तव्य की छाया है वरणा समता और स्नेह। अस्तु ये सभी आंगोपांग हैं। इनके बिना वास्तव्य भाव निर नहीं पाता। वरणा और समता देखने में दो बहिन हैं इसमें कोई शक नहीं किन्तु ये दोनों हैं वास्तव्य की साधन। वास्तव्य बोन नहीं चाहता मयना विम व्यापारी रही? सभी की शुभ भावना है कि हम प्राणी मात्र को अपनाएँ। जीव मात्र वस्त्रि हमारा सम्मान उठाए रहे। किसी का हिन न कर सकें जो मज करो या करिये किन्तु पर पीड़ा वारन वचन अपने मुख से न निकालो। इसी में साधुता और सधता है। आप कछ कर सकते हैं जो स्वयं उसे स्थित से साथ सध का परिचय अवश्य देना अनिवार्य है। उसके मर्म स्थान पर अतिन घटनाओं का तून मज बनाइये। ये कु वचनी भाषा रम्य है। उन्हें वषामान बहुर निरस्कार करना चाहिए। क्योंकि इन्द्रायन की भांति विप्राय व कस्मिन् एव देवर उसे (मेवन करने वाले की सरण धर्मपात कर देना है। हे आरमन्तू चौकला) हो सतत सावधान रह। धर्म के मर्म की समझ कर तदनुसार वाचन करा। धर्म के मर्म की जानने और समझने के लिए आप्तोप मनोवैयि को प्राप्ति करो अर्थात् आर्षांगम का अध्ययन अनिवार्य है। इससे विपरीत है प्रथ। प्रेम व स्वयं करने सही और नाम से टन-मधुर वञ्चक है। भोले प्राणी प्रेम में विषयाय हो जाने हैं। उन्हें जानि वस परम्परा वृत्त की मर्णा भांति किसी भी वृत्ति को अपनाये नरक्षण करने या वृद्धि करण करने में उनका मन मीन होता नही। यह है प्रथ का बराहुरण और भी अनेक कारण है। जिनसे जोर स्व तन्त्र को पहिचान नैम अति अवमय हो जाता है। वास्तव्य का क्षत्र अति विनाम अति दीर्घ और चिन्म है। इसमें सत्ता का साक्षा नहीं अपिपु द्वा पात्र मोड़कर बैठे हैं। हम एव से दो दो से तीन तीन से चार च वसकमान जन ३ की मीन नहीं अविपुनीना का रसाय है। सहाय्य सहाय्य है। वास्तव्यमयी धृति एव के वा एव दो तीन चार पाँच छ भांति पुष्पधानों में प्रवेश करना हुआ बड़े चाव स मार से चलि थडा से अपने मलव की ओर अग्रमत रहकर बढ़ना जाता है। उस न प्रतीकता व बाटे पुष्पन का मज है न दिग्गिने के राश की टाकर घाने का कर। उमे न बढ़ना है बढ़ना जाता है न जाने से भय है न पीछे से मज वषमान के साथ अरिपन मज न स्थित हा। वास्तव्य स्थान पर बहुत हो चने

11

12

रक्षण का अङ्ग है। अथ मान अङ्ग और हैं प्रत्येक अङ्ग अपना स्वयं अङ्ग रखते हैं तभी तो एक भी यत्नि महा है तो सम्पूर्णतः नहीं कि सक्ता इसके अभाव में न जाना है न चाङ्गि। दोनों ही मिथ्याकार हैं फिर किस प्रकार मो० माग गिद्ध हो सकता है। अस्तु मात्र मे यत्नि एक अङ्ग भी भूत है तो यत्नि वेदना का समन नहीं कर सकता उगी प्रारम्भ एक भी अङ्ग विहीन सम्पूर्णतः जन्म मरण रूप समार परम्परा को नहीं बाट सकता। ह आरम्भ समवार पर धार मान ह तो वह शास्त्र है अथवा सोह का टक्का है। कुत्र म बेंग है तो मनही माने का काय की निधि कर सकता है अथवा नहीं। अस्तु चास्त्ररूप की मानि अथ अङ्गों का समाहार कर अपने साम्यवत्त गुण की बुद्धि का ना चाङ्गि।

मन की एकाग्रता सफलता का सोपान है। लक्ष्य पर मन स्थिर होता है। लक्ष्य सुनिश्चित करना बुद्धि का काम है। सद्बुद्धि से सुस्पष्ट बनता है। मोटी बुद्धि सोटा ही सत्य बन बेगी। विवेक से प्रथम भेद विज्ञान पत्त बनता अत्यन्त को लक्ष्य बनाना। उगरे लक्षण का विशाल वजन करना। स्वरूप का विनयन करना उस में तल्लीन होना, मन को उसी में लय कर देना एकाग्रता है। एकाग्र मनोवृत्ति आत्म स्वरूप की साधक है। उपयोग की निश्चलता मनो निश्चल है। मन की स्थिरता ह समस्त इन्द्रियाँ स्वयमेव ही स्थिर हो जायेंगी। यहाँ स्थिर होने का अनिवार्य निष्कर्ष होता प्रमादी आलसी हो जाना नहीं है। सक्रिय तो रहें तब आत्म काय का अनिश्चित अन्य कार्यों से व्यापन हो जायें। स्वयं आत्मा में रमन करे रमना आश्वासन का आश्वासन करे प्राण आत्मा की सुखात में मस्त हो जाय चक्षु आश्वासनोत्पन्न में निमग्न रह और श्राव सच्चिदानन्द रूप माधुर्य की निरूपणी सहर्षों का अनन्त माद अनन्द संगीत सुनें। मन स्वसंविधि ह समुत्पन्न चन्द मयी परमानन्द की निरूपण बीचियों में वेमि करता रहे। ये रगरेतियाँ सक्रिय रहकर स्वयमेव निश्चिन्त हो जायेंगी। इ यों के कारण रूप कम कालिमा नष्ट होने पर कुछ आत्मा ही एक मान रह जायेगा। कारण के अभाव में काय ही नहीं रहेगा। हे भव्यात्मन् साधो ! मनो निश्चल का उपक्रम मत्ता करते रहो।

ह आरम्भ मन को स्थिर करने के निम्न उपाय करो—

- (१) आत्मा और शरीर का सर्वथा पृथक् निश्चिन्त करो। कम और आत्मा सर्वथा अलग अलग है इस सिद्धांत पर दृष्टि जमाओ।
- (२) शरीर को स्थिर करो। हाथ पाद आदि अवयवों को सुस्थिर कर पापापवन् निश्चिन्त बंठने का प्रयत्न करो।
- (३) अपनी दधि क अनुसार यथाशक्ति यथाकाल योग्य जीवन का अभ्यास करना।

- (४) शरीर को झुक कर नाशिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखने का संज्ञ
अभ्यास करना ।
- (५) नाभि कमल की कृत्तिका में अ का ध्यान करना ।
- (६) मस्तक कमल में सि का ध्यान करने का अभ्यास करना ।
- (७) कण्ठ में या वण का चितवन करने से मनोनिग्रह होता है ।
- (८) हृत्पत्र कमल में उ वण का पीन या शुक्ल वण का ध्यान करने से मन एकाग्र होता है ।

(९) मूल में या पुष्पाभ्युक्त में सा वण का अनवरत ध्यान करने से निश्चल होता है । विद्या बुद्धि की प्रवर्धना होती है ।

(१०) अग्रज दीवाल पर या किसी पटल पर बह आकर मे किसी वक्त्र को लिखकर अनियोज्य दृष्टि में समय की कृत्तिका के साथ बिन्दु के आकार का से भी मन की चञ्चलता स्थिर हो जाती है । जारी रहना चाहिए । बीच-बीच में रुक हो जाना है । निरन्तर उन्हीं में उपयोग करनी रहेगी और मन की बौद्धिक शक्ति

(११) मन का स्थिर करने के लिए शरीर वक्त्र मन मोबल का साधक है । नाग

(१२) मन का अविकारी होना अत्यन्त है । राग-द्वेष काम क्रोधा आवश्यक है । मन्त्र से मन

(१३) मन्त्रों से अथवा उत्तेजित जाग्रत होता है । मन करने में परम सहृदय वक्त्रों का स्थापन

(१४) सतत प्रयत्न एवं सन्तुष्टि मन

(१५) अनावृत्त एवं

अवृत्त

। यह
सकना
मन्त्रों
शरीर
है।

- (१६) जन सम्पत्त का अधिक से अधिक त्याग करने से भी मन स्थिर रहता है । वह विमर्शान्ति की क्या चार्त्ताओं से सबथा दूर रहना ।
- (१७) विषय कषाया की चर्चा में प्रीति नहीं रखने से मन अपने अग्रही होता है । अनासक्त विषय भेवन से सोडुपना नष्ट हो जाती है । इससे मन स्थिर होता है ।
- (१८) निर्वाण क्षमा अनिवाय क्षीत्रा का सेवन भी मन की एकाग्रता का प्रमुख हेतु है ।
- (१९) मनन स्वयं रहना उसी की चर्चा अर्थात् वार्त्ता कर । अपने में ही जाना जाना रमण करना से भी मन स्थिर होना है ।
- (२०) पर वस्तुओं का गर्वा त्याग करना चाहिए । परिग्रह वित्त विप्रम का प्रमुख कारण है । विप्रम परिग्रह त्यागने पर ही विराम बुद्धि मष्ट होती है । सत्त्व विरामो में उत्तमा जीवन ज्ञान नहीं हो सकता । मन तो स्वभावन अच्युत है ही फिर उसे आनन्दन भी मिल जाये तो कहना ही क्या है ? बिना नचाये नाच करेगा ही । अस्तु मन की स्थिरता के लिए उसके बाध करने वाले कारणों को अवश्य हटाना चाहिए ।

हे आत्मन् अज्ञानाह क्या है ? उत्तर क्या कारण है ? अज्ञानाह मनोविकार है । मन विषय होने पर इसका जन्म होता है । मन स्वभावना चाहता है । पर स्वस्थ रहा तो वह इस कायम रस सक्त है । सवन मन उत्साही होता है । उद्योगी रहना है चित्त मय्य होगा है मस्तिष्क की सहायता लेकर । शरीर और मन का अनिष्ट सम्बन्ध है । अगर मून है मन उसका एक अङ्ग मूल स्वस्थ है ॥ है रोष है ना मन भी स्वस्थ है और टोष रहेगा और यदि शरीर कभी जब में मून है— राग है अग्नि क्या कीड़ा है तो मन का दुःख असक्त होना स्वाभाविक है । मन और मन का पालन ही अज्ञानाह है । कक्षा सेवना है आप निताते हैं कभी कभी काँ वस्तु मन मय्य मन मय्यरवन के लिए उमे—बालक का वस्तु देने का कहना का छिटा मन है वचन से कान्ने है नहीं है वर प्रयत्नशील होना है सोच मगना है कदाकि वह उन समय निश्चय है, मय्य है पुन सोचना है जब आसरी छन रिष्ट उन प्रतीक्षा मन का ज्ञानी है तो उसका उत्तर उत्साह परा मन विद्विष्ट म सम्पत्त का है । मान्यिष्ट मन्त्र शीघ्र हो जाती है विद्विष्टाह बड़ जाती है । शरीर दहन का ज्ञानी है मय्य स्वभाव म विद्विष्टाह हो जाती है । यह दुर्गता मन का कन मय्य कर वी है । मन-मय्य म अज्ञानाह आन मय्यी है चित्ती

बनायाव प्रयोग सुलझाहट के कारण है। पुनः को बसाइय को बार बार जान
 १। बन मानकर बाहर हो जायेगा बिना हीनताएँ जाने हीन मानको हनेग म नारी
 २। दोनों ही को जाने दोहना है उग गयय हम उगे और अग्रिम परेकान कर
 बिजुबिकाहट करवाते है। यह हमारे मनोहरजन का गुणा बिपर बन जाना है।
 बरन्तु इती प्रकार का कोई हम पर प्रयोग करे तो हम भी हमय बग्न गरी जाने है।
 यह मन की बपकारी का बिचार है। है भव्य मन को गवय बग्नो। हीन बग्नो।
 गरीर नीनेय रहे। इच्छा तो जीमय बना।

तन मन बचन—मन तन और बचन का बनिष्ठ सम्बन्ध है। तन व
 वाप तीनों ही एकत्र होने है। मन तीनों में प्रमुख है। मुनिता है। मन एवं कति
 बिशेष है। यह बुद्धि का मन्त्री है। बुद्धि में बिचार जन्म है। मन बिचार का मापन
 है। मन में इच्छाओं का शाशुवीय होना है। मलिन्य में आकर इच्छाओं परित्यक्त
 होकर भावना का रूप धारण करती है। भावना बिचारों को जन्म देती
 है। भावना मन मागिनी है। भावना के बिचार बनने हैं। बीती भावना होती है
 गुन या अगुन। उसी प्रकार के गुणगुण बिचार बनने हैं और तन्मगुन
 अच्छे बुर भावना का कारण होता है। पारिव जीवन का उन्नयन प्रदान
 है। मन बना तो बनेत्री में बना हमारा मन यदि गयय है। तो गरीर और बचन
 भी स्वच्छ और स्वयय रहता है। हृदिन-वचय मन गरीर बचन को भी परिव बन ना
 है। जहाँ तीनों का निमन वयभाव है वही भावना की पारवना है। भावना इन तीनों
 में सविनय है। अनानि से इती व मय स्थित है। मन बचन का सम्बन्ध तो गति
 है बिन्तु गरीर सम्बन्ध अनानि है। हम इच्छा निष्ठ बुद्धि करने हैं या व भाग्य पर
 छिद्र होता है आर्यध्यान और इनने हाता है भावना मलिन। पनचों में गुणगुन
 भाव रहित जब साम्य भाव जाग्रत होता है तब त्रिन भक्ति भाव और गुणमति
 जाग्रत होता है यह है समता रस का प्रवाह। समता मनबचन व में भी होता
 चाहित। इन तीनों की समता ही तो भावना की समता है और इती का नाम भाव
 स्वात्म्य। आत्मा में भावना की स्थिरीकरण। हमारे मन में अच्छी बुरी भावना जगती
 है। जगती नहीं बल्कि हम जवाते हैं। वन्तु में अच्छाई या बुराई नहीं होती है। यह
 अच्छा बुरातन मन की बचन है। मन यदि चाहें तो निगी को भी अच्छा बुर बचन
 है और नहीं चाहें तो बुरा। वही नहीं एक ही वस्तु को यह पर समय में गुन और
 हमारे समय में अगुन बना बना है। मन बेचन है। नगी उत्तम है परेककारी है
 बिन्तु यन्ि बून नहीं तो बह पालक है संहारक है। मन की बाव बिबेक है बुद्धि है।
 बुद्धि बिबेक बिहीन निरबुध मल जमा हापी है। जमन हापी अंगुन और महाजन
 को भी परवा नहीं करता उसी प्रकार निबुद्धि और बिबेकी मन भी यही नहीं रह
 सकता। मन यही होना अन्विष्य है। मन व साय बचन है। वचनरति हि मानसम्

मृत मन का स्थान है। मृत मन का क्या है। शरीर मन का प्रमाण। हमारे मन में तेजसा की भाँति विचारणाएँ उठती हैं। सद्गुरु भ्रम हुआ होता है कपरा और शरीर भी उठती है उन्नी प्रकार विचार म नाश प्रमाण के विचार होते हैं। सुविचार बुद्धिवादी भी रहा है। वे सब मन के गहरे हैं। भाग्यविर्ग विचारों के आधार पर भय सभी विचारणाओं का जन्म होता है। मन का स्थित होना जानना है। शीघ्र जाने व पूर्व भूमि का उत्तर और कालीनार रति होना भीगार है। उपद्रव भूमि में आगति शीघ्र नीच भंगुरित होता है। पानना है बगल है। पत्रविन और पुष्पा शास्त्र कति शास्त्र है। यही दशा विन भूमि को है। शुभ दशा व कवने ही शुद्ध दशा का प्रारम्भ होता है। परत प्रथम आन रीत्र द्वात कपी कनक पत्थरी का निरापना। परमाणुगत है। आद्यात रूप कटा धर्म द्वात और भुक्त द्वात व पानना है। राग द्वाति धाम का पुता भी जटरी है। कजर भूमि में बीज जमना नहीं। उमर में विचार नदा और ताल तमान का बाग मवन पना नहा। बग यही बाग मन रिता दती भूमि का है। मयकार अहंकार के बागों में द्वात जमना नहीं पूजा द्वाति लाभ की चाहकपी बाग में बहुवापा तहीं। और राग द्वात को आग में पचना नहीं। आत्मनू द्वात आत्म बोधन की प्रणाली है। त्रिगता वही से भी विद्वान् ज्ञाना आत्म साधना में साधन नदी हो सजाता। द्वात व लिए मन गवन चाटि। प्रबन्ध मन निभय होता है। भय हीन मन विना से मुक्त होता है। पिता रहित मन उत्तम हृषण होता है। गाली मा विपत्ति को का हृष वर पार पार जाना है। निमयता सपनता की कृषी है। ह साधा निमय बनो। अगम पानु बना। आय माग का अनुसरण करो। आगम पद्धति निर्भय बनाने वाली है। मन को सज्ज बनाने का प्रयत्न करा। जीवन सप्राम है। मन के हारे हार है और मा के जीते जीत। शीत च हते हा मा विजयी बनाता।

मन एक रम्य विजडा है। यह मोक्क है। ऐसा मनोहर वि आरमा स्वय की बन गया। कब ? स्वय को ही पना नगी कये ? यह भी यह जानना नही। अन्ध पन्नी है हम बंधन की। अनोखा रातरी ह इस स्थान का। अद्भुत चमत्कार है इस प्रमाण का व ऐसा जप स्थाना है विराम व दी स्वय को आजा मानता है। कपडे पर धूल पड़ी साह गिया। बग बने वाला भूत गया धूल का भूल। यही हाल आरमा का है। शरीर भ धुवा और भुना गिया अपने आप को। आज तब इसकी बाध को पान नगना। पाप तो पकड नगना। पकडा तो रोम धाम न वर पाया। बग छाया पाया और हारा। इनम लया रत्न। रहने रहने ही गया आनी इनी का प्रमी इनी का पुनरो उपासना। आत्मा विरत गया मन अचना हो गया। यह तो वही हुआ सोने के डंडे में धरे हीरे। बदर हो मये बंद नजर लगी डब्बे पर। देखने देखने डब्बे का घनी भाग बीठा आने की भूल गया हीरे की खबर। बा

जिन्दगी। हे! गया विपदाओं का लिपारी। तन मेरा हूँ। मान लिया। एक-एक रोम
 में हजारों छिद्र हैं प्रति छिद्र में अनेकों रोम। एक जीव के बराबर स्थान में ६६
 रोग हैं। सभी धा घमक। जाते बने नहीं। अरनी घती में कुत्ता घोर हाता है।
 प्रभुणा पाय काहि मद नहीं। अब गया बा। आमा भाव दब गया। रोग उभड़
 गया। इनक समनने उपायों में उलझ गया मन। मन नन के बीच ही तो है। उनसना
 क्या नहीं! चोर चोर मौसेरे भाई। बग दानों में घट पट हो गयी। अब चलने लगी
 अटपट। मन बनना करता और करीर उन्हें मँडोता ममालता। लभी तो जागे व्यापार
 चलैगा। न व्यापारी है। मन दलाल। दलाल दुभाजिया होता है। दोनों ओर का
 पाँव करता है। करीर की अण्डो घुरी दला म स्वयं भी बसा हो बनकर घुम बठता।
 कभी करीर बना इसा साध रोना है और कभी बमोर हो अठनोनिपा करता है।
 कभी राजा और एक बन कर मय पर जाना है। कभी जानी और कभी मूला।
 कभी गुप्त और कभी दुनो। कभी साधु और कभी साधक। कभी मध्य और कभी
 साधक है। यह है इन दोना का नाटक। करीर भी अपने का सक्रिय बनाने व निर
 इस बनाता है अपने म। पोषण करता है। मन माना नाबजा है। यह है दोना का
 अपनत्व। यही है दोनों की प्रीति।

अब देखो बचन की बला। बचान है इनकी जान में। मन का बह्य जिघर
 देमा-घर ही बजा दिया गया। जिघरों मन ने बाह्य उसी के यशोगन की सान
 लाग दी। मन ने जिनको बोधा उसकी निगम म बाज नहीं आया। जिघर मन गया
 उघर बचन व बचक बज उठ। कभी घूटे कभी साधु। कभी मुरीले कभी बेनूते। कभी
 रसीले कभी रसीले। कभी दोषक कभी जोषक। कभी साधक और कभी बाधक।
 जिघर बना मन उघर लगा बचन। जो सोचा ओ समझा ओ अनुभव नहीं आया
 बचन में। बचन मन की छाप है। मन जिसे प्यार करता है। बचन उसी पर मगुर हारने में
 म बना ही पड़ट होगा है। मन जिसे भग्न समझा बचन गालियों की लौट्टर म
 हीतम सीकर बनता है। मन ने जिन भग्न समझा बचन गालियों की लौट्टर म
 बाज नहीं आता। जो मा म पड़ गन वह बचन में बन गया। जो मन में रव गया
 वह बचन में उठ गया। दोना एक है बाह्य राह और कय में। लनी ले रहा है
 अगुर बरनी रबह निरगत मुख की बाट। 'बचन मन का प्रकाश है। बचन की
 मंडि बमुंडि मन पर अलम्बित है। मन म म-माद है तो बचन में की पान्ना
 निगम शुभी गूठ छन माया भावि प्रवट हति। यदि मन पवित्र है म-माद
 राम हन है राव-मोव म-माद विहीन है तो बचन प्रयोग में भी म-माद
 ममना रहेह बाग्य-य ग्रेन सामग्रा लोभता और सभ्यता विमल
 लिन होगी। मन के साथ बचन नाबजा है। मन की बलि विधि
 है। उष्य मज्जन उत्तम पुण्यों की पहिचान कभी

है। क्यों ? क्योंकि हमारे इनकी आन है। हम दीपावली या हान्ती नहीं मनाते। बारा हमारे 'आन' है। देव की आन गुरु की आन और भाग्य की आन। आनि।

आन हमारे परम्परागत सम्पूर्ण जिया उपायों का सदन रखने का उपाय है। हम कहते हैं गनपीर दीपावली रक्षाबन्धन होती आनि नहीं मनाते हमारे तो आन है अमृत-अमृत वस्तु आन की भी आन है। पहनने की भी आन है। बानुन आन परस्व का बोधक है। आन भाव न भो विप्रे मेरे आराम भावों के अनाया अय भाव मुझ में नहीं है। यह आन आन हमारे पूरकों के प्रति आत्मा का धीनक है। हमारी परम्पराभा का रखक है। हमारी अनगण प्रवृत्तियों का झंकार है। स्थाय भाव का धीनक है। अपने में रहो आन भावों से क्या प्रयाजन है। हम पर से हटते हैं निज में आते हैं। अपने से अपना ज्ञान जाग्रत करते हैं। विजाति समस्त तरबों का स्वभाव आन भाव है। आन की आन आत्मा की हान है। आत्मा से आन भावों का सम्बन्धन नहीं होने देनी। यह है आन आन की प्रवृत्तियाँ। आन में आन की रहने दो। आप में आप को लामो पर अनृतस मग बन जाभा। अध्यानुकरण नहीं होना चाहिए। आन में विचार परिपक्व होने हैं। आप ॥ और पवित्र बनते हैं। स्थायी परिणति बनती है। स्वत्व जाग्रत होता है।

आन ' स्वाधिकाय का धीनक है। आन पर सर मिटना धर्मियों की शान है। महाराणा प्रताप ने पाठ की रोटीयाँ खाईं किन्तु आन नहीं गंवाई। जो आन पर सरता है वह शान को बनाता है। आन ही नहीं वो आन किसका ? आन पर मान और शान है। आन का अर्थ स्पष्ट है प्रतिभा। इङ्ग-यतिज्ञा मानव जीवन मनुष्य, शत्रु को ही नहीं देवों की भी मन स्मरण कर देता है। मुगलों के बसाने में अनेकों धना गिरी ने प्राण दे शिष्य किन्तु आन पर आँख नहीं आने दी। 'आन खीरव का धीनक है। महाराणा प्रताप ने आन की कि मेरी तलवार और बाण स्वयं छऽपर मेरे हाथ में आये तो मैं कुछ बकूँ। धृती हुआ। जो आन पर सरता है उसकी शान भी अदर हो जाती है। 'आन का पक्का बाह्य उपसय परीयह संकट एवं विपत्ति भादि की परवाह नहीं करता।

'आन आराम बल की धीनक है। अन्तर्बल यदि है तो आन है। आन है तो आराम बल जाग्रत है। जो आन का पक्का और सच्चा रहता है देवता उसकी सेवा रक्षा और सहायता करते हैं। राम की इङ्ग आन ही से सकाधिवर्ति पराजित हुआ।

बनना और बनाना

बनना और बनाना दोनों ही विचार हैं। दोनों में आत्मा का ध्यान है। बनने में स्वयं को ढगा जाना है बनाने में दूसरे का। एक का प्रयोग प्रयोक्ता अपने ही पर करता है और दूसरे का प्रयोग अन्य व्यक्ति पर। दोनों में अपने को दृष्ट और दूसरे को दुष्ट मित्र करने का भाव रहता है। दोनों ही प्रयोगों में मनुष्य अपना द्वितीय और अन्य का अन्तिम सम्पन्ना है। जब हम बनते हैं तो त्रिगुण बनते हैं उसे हानि सम्पन्न है, अज्ञानी मानते हैं, उसे छोड़ा देने हैं उसका अपमान करना हमारा ध्येय रहता है। जिस समय हम किसी को बनाते हैं तो मनोरञ्जन के साथ उस देवकृष्ण मित्र करते हैं। कभी कुछ देखा उसकी भूषणा प्रशंसा करते हैं तो कभी समय कुछ लेकर उसे नालायक की उपाधि से भूषित करते हैं। कभी कभी बिना पर हमका प्रयोग करते हैं कभी घनिष्ठा पर और कभी अपने दुष्टमित्रों पर। यह मनुष्य के स्वभाव का प्रमाण है। वास्तव में यह लोभ की चामरी है। जिसके तार निश्चय दूसरे का सपेक्षते हैं। बनना और बनाने में विमोह छिपा है। कभी बनने के पर में हम अपना विमोह कर बैठते हैं और कभी बनाने में चरित्र में टकराकर भाव पर तोड़ लगते हैं। मजबूती दूसरों का बनाने का विराट् में स्वयं ज्ञान में फलनी है। हम प्रसन्न ज्ञान हैं दूसरों का बनने के पक्ष में निश्चय कर भिन्न हुए देखकर पर यह भूल जाते हैं कि कभी हम भी गिरे थे। पण्डितों को प्रायः एक-दूसरे को बनाने का लोभी न उपक्रम चलता है। कोई भूख से बनाना है कोई मार से कोई ताड़ से कोई शोक से कोई रज्जाकर कोई हसाकर कोई उजागर और कोई लडाकर। इसमें निष्ठा और सुगुणी के साथ असाध्य का पुत्र रहता है। बिना झूठ के न हम बन सकते हैं न बना ही सकते हैं। चोरी स्पष्ट है। क्याकि बनने और बनाने में वास्तविकता का छानना ही पण्डित है। व्यापारी ग्राहक का बनाना है ग्राहक व्यापारी का। मूर्ख सेवन को और सेवन एक दस्ये के साथ को बार दस्ये लेकर स्वामी को बनाना है। मानिक साधना है एक साथ लाना और हम बनाऊँ तो सेवन मोचना है मान उठाकर नीति निवाचने में हमकी अवलोकन कर ।

हे आत्मन् तू भी यही करना आया है। कभी अपने का बनाया है कभी शरीर को। कभी शरीर लक्ष बनाता है। तो कभी कम। तू भी तो कर्म का बनाया बिना नहीं रहता। चाहे स्वयं को बनाया या पर को बनाया म विघात अपना ही है। मायावारी आत्म स्वभाव की धारणा है। अहंकार आत्म मर्दिति का नाशक। धर्म आत्मा का पतन करना है। रचना नित्य जीवन का विधान है। निष्ठा आत्म पतन का साधक है। बनने बनाने की दौड़ में जीवन कचने बिना नहीं रह सकता। नकली बनावट सबक पाठक है। अमली बनाव की धार

बने। वह स्वयं मित्र है। स्वभाव वा ही दुष्ट है। तुम्हारे ही पास है। बना
 बनाया राजा मन्त्राणां। मान प्रशान्त करना है उगाता। बने का व्रत ही बिगडने
 से होता है। जिस समय हम किसी का। के करने की अविच्छाद होगी है किसी को
 जान नहीं मानना होता है। बनी के प्रति दिव्य होना है। बग बने की प्रक्रिया
 शुरू हो जाती है। नगरे प्रारम्भ है। बहो गत्र घत्र बर आते हैं। पुत्रमा
 धत्ने लगता है। सन्नाई बन कर जाती है। नबभी बान बनाने उगार बना
 अपना अपना प्रशान्त करने लगते हैं। बने के समय ११५५ स्त्रय बनना हो है
 अर्पित दुग्दे को बनाता भी है। मन वचन और काय तीनों ही अपवा प्रवृत्ति
 करते हैं। बम भी वैसे ही आता है। आत्मा यज्ञ होने लगता है। बम धनि के
 लिपट कर। न सृष्ट रहती है न ब्रूय। आत्र बर बने बनाने की खासी धूम गयी
 हुई है। व्यापारी सरकार का बनाते हैं। नवली बही गाना जमा लक्ष कर। तो
 सरकार व्यापारियों को बनाती है। अक्षमात छापा डाल कर। पति पत्नी को बनाती
 है कोट मेरिज कर और पत्नी पति को बनाती है तलाक देकर। बर बया को बनाता
 है ना पास कर और बया बर को बनाती है अपनी आवश्यकताओं में अनुत्तीर्ण कर।
 धनी गरीब को गरीब बनादम को बनाता है। यह है समाज की दुर्गति। यही नहीं
 धर्म के क्षेत्र में भी यही नाटक खेला जाता है। साधु त्याग का बाना पहन। मन्त्र को
 सुभाना है और मन्त्र कोरा जय जयकार कर साधु का। एव तपस्या का तेज। तप
 के सहारे प्रदर्शित करता है तो दूसरा सुभाम का शमा पून कर अपनी मन्त्र का
 बिलावा करता है। भगवान का बनाने में पीछे नहीं छोड़ते सत्ता ऊचा केशर का
 तिलक लगाकर सम्भी सी भासा लटकाकर। सुन्दर ता पूजा माल सत्राकर। बिजली
 लगाकर, पला ललाकर पशु बनाकर। बेदी फूटी है। पूजा का क्रम नहीं है। हृदय
 में विकार है। आमदनी महीने में १०००० है लक्ष १००० का। भगवान सुन रहे
 तुम बोलते ही नहीं फिर हिसाब कौन पूछें? स्वयं बनाना है वेद फुलाकर तोव दिला
 कर बिल्किन राजाकर मात उड़ाकर और न जाने क्या क्या करके। रयागी है क्यों
 बुनिया को बनाने के लिए मन्दिर बनवाना है कि क्यों? बूने मिट्टी के साथ मन
 मन्दिर और शरीर मन्दिर का जीर्णोद्धार कराने के लिए शरीर भी तो मन्दिर
 ही है स्त्री, पुत्र माई बच्चे सभी का तो मन्दिर है। इसमें मन्दिर का द्रव्य लगा
 तो क्या हुआ? बनना है कुछ भी बने। यह है बनाने की कला। है आत्मन व
 इस बनन बनाने की प्रणाली का रयान कर। इसमें आत्म बनना है। बर्म का
 अंशाल है विचारों का संचार है संसार का प्रसार है जीवन का भार है दुखों का
 भ्रमण है दुर्गति का द्वार है रुद्धति का रक्षा है। न सुभ ह न शुद्ध मार्ग मान
 है पनन का भयकर मन। आत्म बचना का भय आत्म बिलाव का भूल
 मन्त्र है।

साधु और स्वाधु

हे आत्मन् जीवन उद्देश्यो की ध्यान है। उद्देश्य अनेक है। अितो प्राणी है उनसे असंख्यात गुण उद्देश्य हैं। सभी तो एक एक प्राणी के अपने वर्तमान जीवन में न जाने कितने उद्देश्य बनते हैं और मिटते हैं। यह बनते मिटते का नाम शिरोधार्य की रीत सा बनता रहता है। परिणाम यह होता है कि इनकी तैली में भेज और उद्देश्य में होड़ सी लगी रहती है। सभी भेज पिछड़ जाता है तो सभी उद्देश्य + सभी निगरीत भी हो जाता है। हड़ प्रणिज इस विषय में सावधान रहना है यह अपने उद्देश्य को भी अक्षत रखने का प्रयास करता है। उद्देश्य में वर्णन हो सभी न हो बदल न जाय बदला न हो जाय आन्ति विषयों में यह सावधान रहना है। जाग्रत रहना है। उपाहरणार्थ साधु को सोजिये। मैं साधु हूँ। एक स्वाधु है। साधु साधु है ओ तर्कवा आरम्भ परिग्रह विषय बचाव सोचाया जा मादि का त्याग कर ज्ञान ध्यान तप में लगे रहता है। ज्ञान ध्यान तप की बुद्धि के चित्त द्विविध संवत्स में पूर्ण साधना रहना है। उसका उद्देश्य एकमात्र निर्विकल्प समाधि सिद्धि का होता है। यद्यपि यह अनेक क्रियाएँ करता है किन्तु लक्ष्य बही है जग ही की साधक क्रियाओं को ही करता है अन्य को नहीं। निश्चय है यह अपने उद्देश्य में सफल होगा ही। बही साधना साधु है। इसके जीवन में निष्ठावा नहीं होगा न गन्धर्व होगी है न बनावट न प्रदर्शन है होता न प्रलोभन। सरल सरल व्यवहार। उसके व्यवहार में साधुत्व होगा है परन्तु प्रगारणा नहीं। केहने पर निम्न तेज होगा है किन्तु आर्तन नहीं। सभी में शोक होता है पर नु पर-पीड़ा की संघ नहीं। साधना में व्याप्त होगा है। ज्ञान में समा रहती है। ज्ञान में ज्ञान की विवरणें। साधना में पर गुणों की संपूर्ण साधना और शोक में निमग्न बसितता।

कितना अनीतिक जीवन है साधु का। आचार्य क्रियाएँ है जगदी। सामान्य बुद्धि में परे। जीवन का प्रत्यक्ष ज्ञान महीनता है आत्मीय है किन्तु उद्देश्य एक ही है। सभी ज्ञान बना में ज्ञान बनाना है सभी ज्ञान की अक्षत में प्रविष्ट है। अपने का जगता है। सभी आरित निर्विकल्प में अक्षत विचार करना है और सभी सम्पन्नता का शोकन कर अपनी पूर्ण में लगे जाना है। सभी की सिद्धि के लिए सिद्ध साधना का उपाय करना है। सभी निश्चय करना है। सिद्धि का सुख न करना है। उन का ज्ञान का प्रकाश अक्षय्य करना है। प्रत्यक्ष ज्ञान होती है ज्ञान विचार-परिणामों में कुछ लक्ष्य-विचारणा जगती है किन्तु यह लक्ष्य-विचारणा जगती की जगती बने की लक्ष्य रहती है।

अनिश्चय करने का जगती के लक्ष्य का प्रकाश जगती है। जगती की लक्ष्य में विचारणा है। जगती लक्ष्य है।

साध-मन्त्रियों की कामना है। तब जाता है साह की साह की प्रशंसा कर। जाना जैन भी करता है साधना का प्रशंसा करने के साथ में। पारिवर्तन है यह तबपार की दृष्टि गु आने के साथ में। जोर गया साधना है दुगरी को निगने के लिए। भयूर विषय। रगता है साध कर सोभा के लिए। बिम्ब है यह। तबपार बराने का मनेन है। त्याग म रग होना है उगह। अग्न म स्वादु के अहार भरा होना है तबपार यह सा जाता है। विषय बर्ताने म जवन रहनी है विष्णु अना कोना बन कर। बर्ताने का सोना नहीं होना विष्णु समारवण का जाता भी नहीं छूता।

मयम अग्न दय का होना है। विषय भी पुत्र हों इन्हीं की मूल रहे हैं और मूढ़ भी मुड़ा हो मिसवट जैसा। बन् बगुना मयम हा जाता है। उगी जैसा इमान लगना है। मयवद् मजन करना है सोने के समान। पण्डित हो गया पुन विशेष गुण बोल पतिपति आने के लिए इससे क्या बन् उगह गया बन् गया नहीं तो और रमणीय हा गया आकषक ही गया गुण हो गया। बन् यही हाथ है स्वादु की का। समसी बने त्यागी बहुलाय महाराष्ट्र की उपाधि से भी कपी बचिन होते हैं पूजा हुनी मारार मिला सम्मान मे बयी न आयी पर मारार जहाँ का त है रता। दुय नगी मिन पीडा नहीं गई तो पट्टी बाधना जिस काम का है साधो आरम्भ सावधान हो। प्रजा को सम्मान। बुद्धि का उपयोग कर। प्रमाण त्याग। बर्ताने का मयम इन्हीं का दमन प्राणियों का रक्षण कर। अपने उद्देश्य से गत भूतना। निरोद्धय हुआ कि बस तेरा अम मिट्टी मे मिन जायेगा। हाथ जाया हीरा मारार की तन म ज पड़ेगा।

चेत-चेत आरम्भ। इस निर्वाण भूमि का बन्-बन् तुल्य सावधान कर रहा है। जीवन अगाध तर्कों से व्यापित है प्रत्येक सहृदय तुल्य विमानता चाह रही है तनिक भी बन् सो गया इसके मुख म। फिर ठिठाना नहीं उठा है अब पड़ता नहीं यही मार है। जीवन की समीचीन धाराएँ बरबट बननी हैं। उनकी बर्ताने मतिप्रम बढ़ने म नगी बूझनी। ज्ञानी की दृष्टि म तुल्यो निस्कारना उनी प्रार क्षमरती है अत आर्ति प्रभु व ज्ञान म भीषाजना के पधु। वह दन प्रलोभनों से ऊपर रहता है। उसके ज्ञान बन् सावधान रहने है। इत्यर्थो। आरम्भ नेत्र म काम मे। साधु ही साधु ही बने रहता है। इसी म जीन है मारार पर विरम करना है इन्हीं विरम व बर्ताने में यह सम्भव नहीं हो सकता। जय जय मनोराष्ट्र बिना नहीं? मनोरोष्ट्र मयम बिना बराय बिना भे बिना बिना स्वप्न मे भी नहीं हो सकता। गुम अनन्त बलधारी ही अनन्त ज्ञान के धनी हो अनन्त गुण व बरबट ही और अनन्त दशन के विद्यायक हो। क्या साधु बनना बर्तन है? अने स्वां तो स्वभाव से अनानि काम से बन् ही हा। उस क्या पान करना। इसी प्रम बुद्धि से

जाना सतारी बने। अमर भान हिये अहंत्व को सुख समझा। अर साधन रहो। सर्वोत्तम समय मिला है। कुन जानि धर्म सर्वोत्तम ही उत्तम हूँ है। ही बान इष्य (गरीर) बबन्ध हीर है बिन्तु तो भी परम्परा से मुक्ति के साधन होने में बाई बाधा नहीं आ सकती। तब ध्यान रजाम्याय भक्ति का यथाशक्ति प्रयोग कर साधनय पुण्याजन कर मुक्तिपथ का प्रकाश कर सकते हैं। निष्कटक भाव रहेगा तो बात में प्रवाह आ ही जायेगा। फिर कर्म बरगा नहीं। बड़ना ही जायेगा वहाँ तक जहाँ तक तुम जाना है। दवेया नहीं जाकर जहाँ से पुन तुम नहीं जाना है। उक्त तरा पुण्याय हो कर सजता है। स्वयं तु अपने बल पर अपने ही द्वारा अपनी ही आत्मा में आ ही पायेगा। वही ह्याय सच्चा अविनाशी चिरन्तन गुण। यही है अद्वितीय ज्ञानि। मुक्ति या मोक्ष। बिनामन् आने में आ आये में बैठ आये में रह आये में ही आ है ऐसे मन भूय। यही तेरा धर्म है। यही कर्म है और यही है इष्टम्। इनी का ज्ञान कर। इनी में रन रह बग साधु ही साधु है। साधु भी यही है।

ह आत्मन्, ज्ञान चेतना तेरा स्वकर्म है। तू ज्ञानमय है। ज्ञान से परे तू अन्य कुछ भी नहीं है। आत्म तेरा ही ज्ञानमयी है। आत्मा से भिन्न परमाणु मात्र भी ज्ञान कर नहीं हो सकता। आत्मा भी दिगी भी पर्वत अवस्था में ज्ञान से रहित नहीं हो सकता। अस्तु सुनिश्चित है आत्मा ज्ञान और ज्ञान आत्मा है। ज्ञान कर आत्मा ज्ञान प्रमाण है। ज्ञान आत्मा प्रमाण है। यदि आत्मा का कुछ अज्ञान कर और कुछ ज्ञान रहित कर माना जाय तो ज्ञान रहित अज्ञान जड़ हो जाने से आत्मा को भी जड़त्व प्राप्त हो जायेगा। फिर आत्मा का ज्ञान इष्टा स्वभाव ही नहीं बन सकता। फलत आत्मत्व भाव ही नहीं रह सकेगा। यदि आत्मा से अग्रिम ज्ञान को मान लिया जाय तो निराश्रित बने रह सकता है। अन्य का आश्रय रहे तो वह भा चेतन हो जायेगा। फिर जड़ भी चेतन हो जायेगा। वह असम्भव है। कोई भी वस्तु अन्यथा भाव को प्राप्त नहीं हो सकती। अत आत्मा ज्ञान प्रमाण और ज्ञान आत्मा प्रमाण है। "तत्त्व अज्ञान करना ही सम्भव है। सम्पन्न मन आत्मा का परिणाम ही है।" न भव प्रकार समझना सम्पन्न है और तन्नुसार ही आचरण करना सम्भव चारित्र्य है। अत रतन्त्रय आत्मा ही हुआ। ज्ञान चेतना और रतन्त्रय में मात्र सम्पन्न भेद है अर्थात् कोई भेद नहीं है।

हे साधो ! वस्तु स्वरूप का परिज्ञान कर। यथाय वस्तु स्वरूप को जाने बिना आत्मा का परिज्ञान नहीं हो सकता। भेद विज्ञान हुए बिना आत्मा की सिद्धि नहीं हो सकती। समुक्त पन्थों को कुछ अपने अपने रूप में समझे के लिए सधानी दोनों ही पन्थों का स्वरूप ज्ञात करना अनिवार्य है। गेहूँ करक मिसे है दोनों को

मो मो एक प्रकार की लाजमी दियान की दखलत और उरलाह वृद्धि हो जाती है । हमारे विरतीत लड़ा में मरिच्छक के बाबू हो जाता है । मैं अभी निच रही हूँ । लड़ा मुझ पर सवार है । कभी कनक छतन जाती है ठा कभी मरीर और कभी मन में भय उत्पन्न हो जाता है । मैं अभी भाव हो गया । ठीक है अब अगहाय निद्रा का स्वाप किया अब क्या हुआ ? बस लग्ना आ घेरे । अब लग्ना सवार होगी और अपना तन्त्र प्रयोग कर दूगी । बारम्बार मैं तनिक भी अनावधान हुआ कि गया । निद्रा तन्त्रमयि मन से भयान भयाने जिन कर नाम ।

हरयादि

जीवन यह है । दुर्म प्रकाश है ताप नहीं । शीतलता है अमाति नहीं । शीघ्रता है त्वरीकन नहीं । आन्दा है विवर्ण नहीं । मध है दुःख नहीं । गम्भीर है प्रलोभन नहीं । ह साधो ! अब मन म अमिष पुला है । उने ज्ञानवर । पानी में मयक धर्म जग ने मने ही नजर न आवे कि तु विज्ञान की प्रविष्टा से बह छिपा नहीं रह सकता । तेरे म छिपा तेरा आनन्द धन रस मने ही ऊपर से दृष्टिगत न हो किन्तु साधना पद के शोभी की अल साधना से ओसल नहीं रह सकता । तू सुख कर है । जानाबुन सिद्ध है । आरिचापन मरिछक उदयन है । क्यों मटकना ? विर मय तन । अपने में ही क्या नहीं विचरण करता । आरवा किन कर म न । आह म तो दाह है । आरमा म के आह मुख गानि स तीव्र की त्रिषणो व-रोन माला से व्याप्त आनंद रस वषण कर रही है । विज्ञान व धन स्वल्प है वही छो तुम भी हो । पर म आहूत हो क्यों लालि व्यय छो रह हो । वहाँ है तुम्हारा विवेक ? क्या मे- विज्ञान है यह ? छात्रु बन क्या स्वा- नाम धरान को । मगर लड़ा क्या कमलारों से जग अगमाने को ? शराम्य धारा क्या संघ समूह की लयों म आने को भून जाने को ? माया कर म यकड़ो माय क्या मणियाँ बुझाने को ? मय साधना करी ! क्या दुनिया की बकाशों म डाल अगना मगर बढ़ाने को ? ध्यान का बाँवली से निद्रि नहीं होगी, अपितु स्वय ध्यानमय हो जाने से । ध्यान जीवन का प्राण है । ध्यानी जीवन साधना का स्वाग का मयाव पल प्राप्त करने म मय्य हो सकता है । यह है ध्यान का महारम्य । ह आरमन् ध्यान करो । ध्याना बनो । मोनी बनो । ध्यान और मौन आत्मा क साधक है । आरमस्वस्वाध्यायि ही साधु जीवन का उद्देश्य है । अपने उद्देश्य का सारम्य जीवन का सार है । मानव जीवन स्वाग का माय धयम का साधन मदान् पुण्यान्ध का प्रतिफल है जिसका सन्तुषाग उसी पुण्यफल का मास कर घम उत्पन्न कर मान का साधक बनता है ।

राग मोह का मूलान है । चिन्तार्थ है आगति की । दयम सौ-दर्य है प्रलोभन का । हम इन्द्रियधीन होत हैं । ये अपने-अपने विषया की आर उन्मुख होती हैं । मन राजा बैठा हुआ ताकता रहता है । इसे जान नही है अथ्व दुर का हानि-नाम

तो दूसरे की दुर्लभता बन गयी । क्या ऐसा ? तब तो के प्रतीपाद ? तो शिरो के प्रती
का आशय । एक स्थिति है दूसरी मेरक एक स्थिति है तो दूसरी रंग । क्या क्या
क्या ? जैसे कहें आगे । मगल म क्या ? मीन ? जोर प्रमाण की उपकी विविध
होना है । आशय हुआ कारण क्या ? ? मगल एक ही उपर वसे की विविध
होनाओं का उत्तर । के वसे की ? कहीं मे क्या । और क्या था ? मे वसे का है
और के गुणगुण आगे मोती मे क्या था के विविध मे क्या ही क्या मगल प्रमाण
कर करने है । और के मोल क्याओं के द्वारा वसे था ? क्योंकि उनका प्रमाण
आने का और आकर प्रमाण के माव क्या को था ? तो आगे ? ।

विश्राम का बड़ा व्यापक है । विश्र का जो माग वह है विश्राम । विश्र
किसमें ? विश्र मान म । जाय हो विश्र है । तो विश्राम करना है म जानो है ।
विश्राम्यारी है । संसार जीना है बेना ज ना विश्राम है । जो विश्राम है वही जान
है वही पदार्थ का स्वरूप है । पदार्थ विना क्या है उपर उगी क्या जानना और
मानना यही तो विश्राम है । जह है या चर गुण या अगुण गुण या वा जो
गोता है वो यता है । उसम कोई पद नहीं । शिरो प्रसार का परिवर्तन नहीं हो
सकता । यह है विश्राम । जीव है आत्मा है परमात्मा है सोर है परलोक है
जीवन है मरण है अमृत है मृत है मयम परे गिड है गिड लोक है । मगल मानना
जानना विश्राम है । महा सम्प्रकाश है ज्ञान है चरित्र है । पर राव है तभी जह
हम इस गिडाल पर भ उ रह । निश्चि न रह । इपर उपर न मगल । यह रत्नमय है ।
यही अपना स्वरूप है । यही परमात्मा रूप है । स्वय आत्मा भा तो यही है ।

निद्रा और तन्द्रा—नीच धम दूर करने का साधन और तन्द्रा प्रमाद की
सहचरी है । चलने फिरने, डोढ़ने चेत्यादि की बदना वर्तन आदि करने से बचान
हो जाती है । पूजा पाठ आदि के लिए बचान होना स्वाभाविक है । कि तु नींद लेने
॥ यह बचान दूर हो ही जाती है । धम दूर करने के लिए हम नींद लेते हैं । इसे
ही सोना कहा जाता है । सो मान पर शरीर म सापबता आनी है । शरीर का
भारीपन दूर हो जाता है । मन और इन्द्रियाँ स्वतंत्र हो जाती है । नींद हमें स्फूर्ति
प्रदान करती है । तन्द्रा निद्रा के अनंतर हल्का सा प्रमाण आता है । तन्द्रा म शरीर
म आलस्य भर आता है । स्वातंत्र्य दब जाता है । शरीर म भारीपन महसूस होने
सगता है । किसी भी कार्य मे मन नहीं सगता । स्फूर्ति फूट ही जाती है । तन्द्रता
नहीं रहती । मन तब पडे रहने का भाव करता है कृचित्त्व । यह वह जहाँ तहाँ पडकर
सो भी जाता है । आत्माधीन नहीं रह पाता । परतन्त्र मन गया । फिर स्वतंत्र कहा
रहा ? नींद सी जागो है तन्द्रा आ जाती है । नींद एक प्रकार की ओपधि है जिसके
अभाव में आदमी पागल आकार या मूख बन जाता है । तन्द्रा रोग है । जिसके
प्राप्त बनने पर आदमी अपना अस्तित्व उसी पर पीछावर कर देता है । नींद भर

तो तो एक प्रकार की ताजगी दिमाग की स्वच्छता और उत्साह वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत तन्हा में मस्तिष्क के काम चलना जाता है। मैं अभी निश्चय रहो हूँ। तन्हा मुझे पर सवार है। कभी कभी घबराहट होती है तो कभी शरीर और कभी मन में भय उत्पन्न हो जाता है। मानलो आप सो गये। ठीक है थम अर्थात् निद्रा का त्याग किया अब क्या होगा ? बस ठीक जाओ। अब तो मैं सगर होगी और अपना तन्त्र प्रयोग कर देखी। वास्तव में तन्त्र भी असाधारण हुआ कि गया। निद्रा तन्त्रमय मन से भजने भजने जिन वर नाम।

इत्यादि

जीवन चिन्ता है। इसमें प्रकाश है ताप नहीं। शीतलता है अशक्ति नहीं। सीम्पता है उन्मीलन नहीं। आ-हा है विकल्प नहीं। सुख है दुःख नहीं। सन्तोष है प्रलोभन नहीं। हे साधो ! जवन में अमित्र युवा है। उसे जानकर। पानी में तमक कम जगु से भले ही नजर न आवे कि तु विज्ञान की प्रक्रिया से बह छिपा नहीं रह सकता। तेरे में छिपा तेरा आनन्द अब रस भले ही ऊपर से दृष्टिगत न हो किन्तु साधना वय के रोही की अन्त साधना से ओझस नहीं रह सकता। तू मुम कर है। आनायुग सिद्ध है। चारित्र्यापचन मण्डित उपवन है। बसो भटवता ? विरयन सग। अपने में ही क्या नदों विचरण करता। आरमा दिन कर में नहीं। चाह में तो दाह है। आरमा में वे चाह मुख-गानि, स योग की प्रवणो ब-रोल माला से व्याप्त आनन्द रस वपन कर रही है। विद्वान् र घन स्वल्प है बहो तो तुम भी हो। वर में जाहूँट हो क्या शक्ति व्यय हो रह हो। वहाँ है तुम्हारा विवेक ? कसा भे- विज्ञान है यह ? तापु बने क्या स्वा- नाम धरान भी। ससार तन्हा क्या बमरकारों से जग अवमाने को ? वराम्य द्वारा क्या सप सपूह की लयों में अरने को भूत जाने को ? माला कर में पशुओ मात्र क्या मणियाँ पुमाने को ? तन्त्र साधना करी। क्या दुनियाँ की बकाशीय में डाल अरना समार बढ़ाने को ? ध्यान का काबरी से निद्रि नदों होगी अपितु स्वयं ध्यानमय हो जाने से। ध्यान जीवन का प्राण है। ध्यानी जीवन साधना का त्याग का यथाय पत्र प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। यह है ध्यान का महारण्य। हे आत्मन् ध्यान करो। ध्याना बनो। मोना बनो। ध्यान और मोन आरमा के साधक हैं। आत्मस्वरूपापचयि ही सा- जीवन का उद्गम है। अपने उद्गम का साफल्य जीवन का सार है। मानव जीवन त्याग का माय समय का सापन महान् पुण्यो-य का प्रतिफल है विमला सन्प्रशाम उयो पुण्यरूप का नाश कर चम उत्पन्न कर मान का साधक बनता है।

राग मोह का मन्धन है। विकार है आनक्ति की। इसमें तो न्य है प्रलोभन का। हम इन्ध्याधीन होते हैं। ये अपने-अपने विषया की आर उ मुन होती हैं। मन राग बैठा हुआ साक्षता रहता है। इस ज्ञान नदों है अक्षर बुर का हानि-नाश

का। उत्तम है। पित ज्वरवशी की तरह। उत्तम वस्तु की हीन कहता है। मिष्टान्न को कड़वा कहने के समान हीन वस्तु उत्तम बतलाना है जैसे रोगी अप्य सेवन में ही आनन्द मानता है। अनुकूल विषय मिला रजायमान हो जाता है। उसकी ओर सपकता है। लिपट जाता है उसमें। यही तो है राग। राग का जन्म स्वार्थ से होता है। स्वार्थ में आकर्षण है। निवेष्ट नहीं रहता। कहा जाता है अर्थां शोषान्न पश्यति। अर्थात् स्वार्थी शोषों को नहीं देखता। क्यों राग का परदा पड़ा है। कहा जाता है अमुक वस्तु में राग है पर वास्तव में राग वस्तु में नहीं होता। राग होता है हम हमारे स्वाध में, अपने में। मानवों कोई कहे अमुक व्यक्ति में मेरा विशेष राग है वह व्यक्ति उसकी सेवा करता है। सुन्दर मोय पदाय बना बनाकर खिलाता है। नाना प्रकार के व्यञ्जन सुस्वादु पक्वान्न तयार करने की कला में निष्णात है। अब विचार करिये उस कहने वाले का राग किसमें है? क्या रसोद्भवा में है? पदार्थों में है? नहीं। राग है अपनी जिज्ञा के स्वाद में। यही व्यक्ति सरवादु व्यञ्जन बनाना बंद कर दे तो क्या राग उसमें रहेगा? वह प्रिय होगा? नहीं। कहा गया फिर राग? गया कहाँ? वह था ही नहीं। राग तो जहाँ था नहीं है। भोजन में। उसके स्थान पर दूसरा पाचक मिल गया अब वह प्रिय हो जायेगा। पूर का प्रिय अनिष्ट मन जायेगा। यह दशा है राग की। मैं अपनी चिन्ताई में चाहें जिघर स चाहें जिघो सपेटना रहता है। परिपक्व होने पर मही मोह समा पाता है। मोही जाव हिताहित विवक्षूय हो जाता है। कसता है विषयो के फट्टे में। रसना के समान हाँ अग इन्द्रिय विषयो की चाह है। यह चाह ही राग है। राग ही चाह है। आग में भी डालो भस्मकेगी बड़ेही चाह में राग आया कि आग प्रज्वलित हुई भुलगा कि दाह में तडपा। यह है विषयी आब की अवस्था। हे आत्मन् राग की मूल समझ। यह प्रिय वस्तु है। दशनीय विष है सुंदर जाल है। आकर्षक डाल है। चिन्ता दीवान है। रमणीय पश है। मधुर गान है। मनोरम दृश्य है। कोमल शिरीष फुलभ है। चारो ओर रम्य है अदर हाहाल है। कदम बढ़ाना पर समल कर। विषक की चाल सफ़ाल। घोष से बच। कदम जमा कर रख। सामने दंड। इधर उधर दृष्टि विक्षेप न कर। सार तो यह है राग अपने में कर। पर प्रथम अपने का पट्टिचान, निज का समझ। स्वयं को जाने दिना पर प्रीति से स्वात्म भिद्धि नहीं होगी। हे भाई तू जा है वही है। उसमें परिवर्तन नहीं हुआ न हो सक्ता है। पर में राग द्रव्य का आह्वान है। इन्द्रियो व आधीन आत्मा हाँ पर में राग करता है उसकी अनुरचना सिद्ध न होने पर वही वस्तु द्रव्य रूप पर रणमन करता है ॥ या कहा वस्तु नहीं हमारी भावना ही उस पर पार्य को निमित्त साधक या असाधक मानकर उसमें राग या द्रव्य रूप परिणमन करती है। ॥ परिणत कर्मासव की कारण होता है। आगत कम का स्वागत करना ही पड़ता है। यह बँड गया। यों ही नहीं। हमारा आगमन बनाकर। हम सब दबने। घोड़ा

दबाव पड़ा, उठने की चप्टा किए सब सक और बचन था पड़ा : बग अब पूरी तरह परत हो गए दबकर पड़ा रहना ही सार समझ लिया : जाने दो की सोच ही का भिन्नाना न रहा : यह है रागी की दशा : सड़न आबल ॥ सोच से फने कबूतर की भाँति बस गए जाल में और सोच की भाँति अपनी आल भुसकर भिन्नी में उरटे सटक गए विपरीत में : हे चेतन हम दाब पेच का समझ : प्रज्ञा की जगा : सावधान हा : यही समय है उठने का : अबसर गए पछतावगा :

चप्टा क्या है ? एक विशेष स्थिति है : समय आता है : जाता भी है : किसी दर्ज हम क्या चाहते हैं तो दूसरे सग कुछ और ही : बस अब देखिए जिस सग हम जो चाहते हैं उस समय उससे विरहीत कुछ और ही हो जाना पटना है : पटना गद्दी नहीं जाता तथा पनायी भा नहीं जानी बिना अचरमात हो जाया करती हैं : भाग लेगी स चने जा रहे हैं अपने किसी लक्ष्य की ओर मार्ग में बल का दिन पड़ा था भागना पाव पडा और गिरे ऐसे कि डॉन टूटे बच यही पटना है : कोई साक्षिक पर चला जा रहा है भागे में सगा जाना चहदा निहारने बस टकरा ही तो गया बल से इस स या किसी व्यक्ति से : कोई थोड़ा रहा है गुस्सा रमणी के गुस्से की आवाज सुन एकाएक पीछे देखा क्या जानना था कि यह दासकी के घुसक है मरा : पदम उठा रहा था बल्ला चप्टा और गुना ऊपर देखा बिना सहारे जा रही है : पग बोरी लपका छत्र स गिरा चकनाचूर : घर से निरस्त हो जाने कुछ मिल गए निपट गुना बस उठा गुना : बैराग्य हा गया बाह सगभर में बाया पनट हो गया : मुनिराभा परी भावल निजला आशा थी कद का हो गया फट्टे बस क्या था बन गया निमिष्ट : स चप्टाए जाय निमिष्ट करता है : कभी उपधान की ओर तो कभी पनन की ओर : जीवन मुड जाया करता है मानव का : कुछ व है जो जीवन का न मोडकर पटनाओं का हो जाता लने है अपने पुरपाय से : ऐसे मनीषी हट होत हैं अपने कर्त्तव्य में : उनका ममता की नाइयां झक जाया करती है, आपत्तियां दूर भगनी हैं विपत्तियां सम्पत्ति भगनी हैं : गुन गुन बरपाते हैं सबट आन व आते हैं जोर में बहार मजती है विधाय में उस्ताह बढ़ता है सप्राप्त में पीरप अनवता है अराग्य में तपस्वा बढ़ती है ध्यान में कर्म करत है ससार से पार मिलता है : अस्मा परमात्मा हो जाती है : चप्टा हुआ स्वभाविक है : जीवन पटनाओं से ही गुजरता है : ये गुनागुन दोनों ही रूप हान हैं : कभी जीवन को आटावा की ओर कभी निराशावाणी बना जाती है : जा इसी ज्ञान को समझे वही जानी है : वह अपने ज्ञान बल से इनकी प्रभुता को डा दता है : इह निविश्रय कर अपना माग निकाल लेता है : वह आन बढ़ता है उस्ताह और धय धारण करता है : उपमग परीपह जाने पर ध्यातुन नहीं होता : हे भागे ! तुम सावधान रहो : चप्टा मध सी का तो घ नाए हैं बिना पान पनन स सारनर में विनीत हा जायगी इमे मत भूल : सर्वोपरि स्वानुभव आत्म विनन है : ब्र मेन विज्ञान ॥ उपनम है अन मेन विज्ञान जाग्रत करो :

मनुष्य भव स्वयं सतीना है। फिर उसका प्रत्येक क्षण क्यों नहीं रम्य हो ? अवश्य ही उसमें साक्षित्य है। फिर सदा एक ही महार क्यों नहीं रहती ? यह निमित्तों की करामात है। स्वातिनदान का क्या जल एक है एक ही गुण है किन्तु यथा निमित्त तथा रूप बन जाता है। सोप में मोती बदसी में बपूर, अहि में विष पपीहे में सातोष आदि। इसी प्रकार हमारे जीवन के क्षण पर निमित्तों विविध रूप धारण करते हैं। सज्जन से मिल सज्जन दुर्जन के सहयोग से दुर्जन, शराब के सयोग से शराबी जुआ के प्रभाव से जुआड़ी साधु सगति के साधु देव के सान्निध्य में सन्नयनशील आत्म की प्रीति से जानी और गुरु के प्रसाद से समीप कहलाता है। यह दशा जनादि से चली आ रही है और सब तक चलती रहनी जब तक कि स्वयं आत्मा अपादान अपना विशेष विकास नहीं कर सके। पूर्ण परिपक्वता होने पर निमित्तक स्थिति समाप्त हो जायगी। हे आत्मन् तू स्वतन्त्र होने की चेष्टा कर। उपान्त की परिपक्व करने का प्रयास कर। आत्मा का पूर्ण विकास हुए बिना पर निमित्त दशा नहीं बदल सकती और इसके बिना अविचल रूप प्राप्त नहीं हो सकता।

हे आत्मन् शुद्ध वस्तु तत्त्व की समझने का सतत प्रयत्न कर। हर पदार्थ का परिज्ञान होने से निज स्वरूप की पहिचान सरलता से हो जाती है। गुण दोष दोनों का स्वरूप ज्ञात होने पर गुण ग्रहण में बाधनाई नहीं हो सकती। आत्म भाव पाने का प्रयत्न सत्पुरुषार्थ है। असत्पुरुषार्थ में शक्ति सदाकर व्यर्थ खोना विवेकहीनता है। अपने को अपने में पाने के लिए सतत प्रयत्न करो। प्राथमिक स्थिति में व्यवहार कुशल होना चाहिए। व्यवहार भी सदासत्य रूप दो प्रकार के हैं। सत्य सदाव्यवहार प्राज्ञ है। उपान्त रूप आत्म स्वरूप का साधक है। सराग बीतराग रूप भी मार्ग दो प्रकार के हैं। सराग मार्ग व्यवहार है। सराग साधन है बीतराग साध्य है। अर्थात् व्यवहार साधन है और बीतराग साध्य है। साध्य की सिद्धि साधन के बिना नहीं हो सकती। अस्तु व्यवहार रूप साधन सही रहना परमावश्यक है। यत्न ममिति गुति घम अनुग्रहा आदि सराग चरित्र के भेद हैं। इनका धारण पापन आचरण अनुधि उन करना परमावश्यक है। इन प्रवृत्तियों में दक्ष रहने परमावश्यक है। त्रिनयन व्यवहार परिपक्व होता है उमी का उन्मूलन भी मुहूर्त मात्र है। हे साधो ! ज्ञान की वृद्धि के लिए चारित्र्य की वृद्धि करना परमावश्यक है। चरित्र की निष्ठा से ज्ञान की उज्ज्वलता होती है। जैसे जैसे चारित्र्य बढ़ता है वैसे वैसे ज्ञान भी बढ़ता जाता है। अर्थात् ज्ञान मन पर्याय ज्ञान और अन्त में केवल ज्ञान भी चारित्र्य का ही फल है—निबोध है। हे आत्मन् चारित्र्य की मजबूत बना। ते मज्जन् रहो। चारित्र्य नीका है। भवभाव से दूर होने का एकमात्र यही साधन है। व्यवहार का पतन म निश्चय की प्राप्ति है। निश्चय की पूर्ति में व्यवहार का समाहार।

सरायता से ही बीतरामता आती है। बीरब हो ये ब्रह्म विसृता है। ब्रह्म के दृष्टिकोण की पक्ष की अवस्था बरनी पड़ती है। ब्रह्म विसृति पर पुन उधर उपयोग मगाना नहीं पड़ता है। इसी प्रकार निम्न व्यवहार की कथनी है।

उपयोग तीन से प्रकार है—गुण अगुण और गुण। शुभोपयोग पुण्याश्रय से गुणाश्रय का अगुण पापाश्रय का और शुभोपयोग मुक्ति का कारण है। यह निश्चय सिद्धान्त है। ब्रह्म विनाश का निश्चय है। अब विचार यह करना है कि साक्षात् जीवन में इनका प्रयोग किस प्रकार किया जाय? क्योंकि विपरीत एक प्रणाली है और प्रेक्षणीय—व्यवहार करना दूसरी प्रणाली है। जीव आत्मा शब्द विगुण ज्ञाना दृष्टा है यह ज्ञान अवाप्त सिद्ध सिद्धांत है किन्तु हमारे प्रतिदिन के जीवन में हम इसका प्रयोग किस प्रकार करें यह जन्म समस्या उत्पन्न हो जाती है क्योंकि सभी आत्मा की दशा विपरीत है अज्ञान से विभाव रूप परिणाम करता आ रहा है। अब उस गुण स्वरूप को पाप विना किस प्रकार विरक्त मिट सकत है। नहीं मिट सकते। तो फिर उस अधिकता दशा के लिए हम क्या करना होंगे? शुभोपयोग या अशुभोपयोग? आप या हम क्या यही कहेंगे कि दोनों का छोड़कर शुभोपयोग करना चाहिए। तब विचार की प्रसिद्धि में अशुभोपयोग किया नहीं जाता वह आ जाता है ही जाता है। ही यह विचारणीय है कि वही सब कैसे और किससे हो जाता है। जिससे होता है अर्थात् किस निमित्त से किस ग्राह्यक कारण से होता है यह सब प्रथम महत्वपूर्ण विचार है। कारण सदा कार्य होता है। इस निमित्त से विचार करने पर अज्ञानाश्रय तो किसी प्रकार भी शुभोपयोग का साधक हो नहीं सकता। अब रहा अशुभोपयोग यह भी पुण्याश्रय का हेतु है। आश्रय सदा सकारक है। सब विज्ञान का साधक है और सबरूपक विज्ञान अशुभोपयोग साक्षात् मोक्ष का साधक है। अब देखिए सबर के कारण क्या है? सबर के हेतु भगवान् ने कहा है। 'अज्ञानं सति गुणं प्रमाणं प्रज्ञावरीयं जय आरिम्'। अर्थात् ज्ञान का कारण अज्ञानता का पालन गुणियों का पूर्ण दक्षिण धर्म का सेवन आशानुप्रसादितान और २२ परीक्षा का जय य सबर के हेतु है। ये सभी व्यवहार रूप हैं प्रवृत्ति निवृत्ति रूप हैं। अज्ञान पुण्य के भी कारण हैं। जहाँ क्रिया है वहाँ योग व्यापार है योग व्यापार के हेतु हैं। यदि ज्ञान है तो पुण्य और अज्ञान है तो पाप के कारण है। यह स्पष्ट होता है कि ये पुण्य अज्ञान क्रियाएँ व्यवहार यम योगराग भाव की सिद्धि का सब रक्षक किए ज्ञान पर परम्परा से अशुभोपयोग सिद्धि में साधक होता है। अज्ञान से ही अज्ञानता यम सिद्ध होता है। उपयोग से ही उपयोग निवृत्ति अस्तु अशुभोपयोग-साधन पुण्य का साक्षात् साधक और परम्परा से वह साक्षात्पयोग सिद्ध करा मोक्ष का साधक हुआ जाता है। इतना ही नहीं साध्य सिद्धि कराकर स्वयं सोट जाता है, छूट जाता है जैसे कोई भाँट अपनी बहिन को पट्टा कर सोट जाता है। क्योंकि उसका उद्देश्य भाव उठना ही है।

अज्ञानी भयकर विषयों की फकार, मित्र की भीतवार और नाना प्रकार के विपत्तियों के डका की चोटों की परवा नहीं करता । उमी को अपना कर्तव्य मान लिया है । मार खाना चोट सहना बस यही तो जीवन बन गया है । भोगों की मार रोग विषयों की मार शोक ससार की मार दुःख । इन्हें अहर्निश भोग रहा है । देख रहा है । घबड़ा भी रहा है । बचना भी चाहता है किन्तु उपाय कुछ नहीं करता न करना ही चाहता है । एसा आखिर है क्यों ? मिथ्यात्व के भयंकर प्रकोप के कारण अज्ञान की मस्ती के कारण विषयभोगों व अनावश्यक अम्बार के कारण । यह है ससार का भ्रम । यह है ससार का प्लान । जो हो तू तो बच जाग । सचेत हो । सुबद्ध आत्मन् विवेक से काम ले । अपनी चीज अपने में है । पर मैं वहाँ मिले ? कैसे मिल ? स्व पर का परिणामकर दोनों की पहिचान कर । जो अपना उस ग्रहण करो । पर है उसे छोड़ो । तू खेनन स्वरूप है । पान दान तेरा सस्य है । तुम से भिन्न अनेक चेतन हैं पर वे तुम से सबका भिन्न हैं बाकी अच्युत पदार्थ हैं भसा व तेरे किस प्रकार हो सकते हैं ? एक परमाणु मात्र भी तेरा नहीं तुझ रूप भी नहीं है तेरा अमर्याद प्रणेशी आत्मा ही बस तुझका अवना है उसका भी एक प्रणेश अनात्मा रूप न है न होगा और न हा ही सकता है । यह प्रीत्य सिद्धांत है अतः अपने में अपने को पाने के लिए हो साधुपना है । भूता हो अपनी चीज को प्रकट करने में समर्थ है यदि वह सही रूप में है तो । स्वोपसर्ग होने हो वह भी ग्राह्य नहीं है स्वयं छूट जायगी । तू निर्विकल्प समाधि निश्च करन का प्रयास कर ।

रूप और अनूप—रूप है रंग । यह है भी दय । इसका अर्थ है सावय । रूप मोक्ष का चोतक है । अनूप क्या है ? य० है विशयतर सो दय का प्रतीक है । रूप सामान्य है अनूप है विशेष । कस्म रंग कहा जाता है अछा रूप है । बाहरे तरकारी में रूप आ गया । देखी जो ठा को रंगी का कला रूप आया है । अरे अब नी का रूप तो इस क्या है । वह रंगो रंग अनूप है । एक है विशय दूसरा है विशेषण । शरीर रूप है आत्मा अनूप है । गुडोन आँख बान नाक मुख आँख आँख हैं रूप के साधन निमित्त सहायक और विवेक बुद्धि ज्ञान दशन मति प्रज्ञा विचार आँख हैं । अनूप के साधक निमित्त सहायक । दोनों का समाहार है आत्मा । समस्त रूपवती गुडोन स्वरूप इति यो रूप के महार अनूप की सिद्धि कर आत्मा को परमात्मा बना लेनी हैं । अनूप अस्तुत अनूपम हो जाता है और रूप ? रूप बिसर कर यत्र तत्र समा जाता है । कितनी अतीतिक वृत्ति है । देखने में अद्भुत गुनन में आश्चर्याम्वित करने वाली किन्तु है यथाय । देखो जो जिसमें उपना वह उसका पातक हो ही जाना है । पुण से फल होना है फल आये हो पुण्य का भी दा ग्यारह कर देता है । दही दूध से भी दही से पदा होना है । दही दूध को मिटा देता है । भी दही को । भसा इसमें आश्चर्य क्या है ? तत्त्वविद को आश्चर्य है ही नहीं ।

हे एक रूप है । किन्तु कर्म सम्बन्ध से वह विचारी हो रहा है । कम मल है । सोहे पर जग के समान आत्मा में बिनाट कर उसे विह्वल बना दिया है । जग हटे तो अपम अपने रास्ते पर में स्वयं था जायेगा । इसी प्रकार वाक्यकर्म कम परस यदि हट जाय तो आत्मा अपने रास्ते स्वस्वयं में स्वयं प्राप्त हो जायेगा । जग व हटाने के समान ही कर्म मल को आत्मा से पृथक् करने के लिए भी उसी जग की परमावश्यकता है, सत्पुरुषाव शिव दिना आत्म अपने अमली रूप में मनीं था सक्ता । आत्मा का सोधन स्वतंत्र से हो सकता है । रत्नमय का प्राप्ति ज्ञान ध्यान, तप और सयम हो सकती है । तप अग्नि है आत्मा कुन्दन कर्मविह्वलानिष्ठ आत्मा सवर्ण है । तपानि विना कर्माणि आत्म सोधन न हुआ और न हो ही सक्ता है । तप निर्वाण्य होना चाहिए । बाण्ड्यायुक्त तप मुक्ति के लिए हो सक्ता है मुक्ति के लिए नहीं । इच्छा निरोध ही तप है । तप के होने पर ही आत्मा परिरुद्ध होती है । निर्मल आत्मा एक बार प्रकट होने पर पुन विचारी मनीं होता । विचार मुक्त अनादि से है तो भी एक बार सुद्धावस्था में प्राप्ति हो पुन कभी भी विचारी नहीं हो सक्ता । हे साधो तप करो । गुरु तप । निवेद्यपूर्वक । तप ही कम नाशक है ।

स्वतंत्रता का अर्थ है स्वाधीनता स्वावलम्बन । स्वावलम्बन ही शक्त है । पराधीनता ही दुःख है । प्रत्येक जीव आत्मावलम्बन चाहता है । किन्तु स्वाधीनता का अर्थ स्वतंत्र प्रत्येक मनीं समझ सक्ता । वर्तमान युग में स्वतंत्रता प्राप्त है । प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है दण रात्र रात्र सभी स्वतंत्र है किन्तु देखा जा रहा है कि स्वतंत्रता का रूप स्वच्छता में परिणत हो रहा है । कल क्या हुआ यह प्रत्यक्ष है । सदाचार व स्थान पर अनाचार कर्माचार और दुराचार बढ़ता जा रहा है । शिष्टाचार का पता नहीं है । आध्यात्मिक भावनाएं प्रकृत होने के स्थान पर मुरझा रही हैं । नविक स्तर पुष्प में हार मरणात्मक हो रहा है । आपाद मस्तक मानव जीवन भोग विनाश में आकण्ड निम्न है । एको आत्म ही का राज्य है । भाग्यभोग की क्षणिक रम्य वस्तुओं का प्राप्ति है । इस स्थिति में धार्मिक वातावरण वधित भावनाएं उत्तम विचारों का स्वप्न देवता अमलव सा प्रतीत हो रहा है । हे साधो ! सम्यक चारित्र्य का विकास किस प्रकार हो यह कठिन समस्या है । जीवन द्रव्य, ज्ञान ज्ञान और भाव चारों से प्रभावित होता है । चारा ही आत्मस्वरूप के वातक है । हे आत्मन् इस स्थिति में स्व-पर का विचार करो । स्व चतुष्टय और पर चतुष्टय दोनों ही जीवन उत्थान आत्म विकास में कारण हैं परन्तु पर की अपेक्षा स्व का विशेष महत्व है । स्व चतुष्टय के हृदय मजबूत होने पर परचतुष्टय भी अपने अनुकूल बन सक्ता है । अत आने द्रव्य शरीरस्व आत्मा, क्षेत्र शरीर भाव राग-द्वय विहीन साम्यभाव और काव अपने स्वभाव में स्थिति का नक्षत्रान बनाओ अपना वाग स्वच्छ करो । अपना घर साफ करो । अपनी दूजान सजाओ । अपना माल जमाओ व्यापार स्वयमेव बढ़ जायेगा । स्वास्थ्य निरीक्षण करो । अन्तर्दृष्टि बढो । बाह्य दृष्टि का त्याग करो । बहिवृष्टि में पराधीनता है वही दुःख है । हे साधो ! सुख का साधन आत्म निन्दा कर स्वार्थों का चुन-चुन कर निवासना है । वही सुन्दर व्यापार है । इसी में सगे ।

जीना रत्ना है जीन रत्नाघर । शरीर जाघर है श्रिया प्रयागजाता की
 सचायक । जीन को यही प्रगति कर ॥ हैं । जीन गचातक ३ जीन मन श्रिया
 सचायक । तब जागव ३ जीन जन जागित । बात सगट ॥ । रि नु नामर राजा यति
 अयोग्य हो जाय अपरा उक्त यन पात्र अपनी श्रियागियो का दूतार पर छाड
 तो क्या होगा ? उही जा काप्टागार को राज भर ॥ पर मय धर महाराज का
 दुःशा हुआ थी । हमारे बलाधर महाराज की भा यन की ॥ ॥ उताव चना न
 भी अपनी सत्ता मन व हाथा म गीष रग ॥ ह । वह नगु मर श्रिया पर आधिपत्य
 जमाकर ॥ ह कटपुतली की भाति नचा रहा ॥ य नगाम विषयो म डोडाता है ।
 करें क्या य भी ॥ गूनि व चित्त श्रिया न-नान धा ३ मारा व सरता व अनुसार
 मन मगरी द्वारा नचायी जा रन ॥ । हयापात्य रिजान ॥ श्रूय हा डीड रहा है ।
 मन भी कत्त याकल ध्य का विचार कर क्या मारा छपाय । इमर ता दाना हाथ में
 मोल्क ॥ । फल धुर रय म मन ३ । जनी चा ॥ वही रम । साज शम ३ मही । मुख
 दुःय का चि ता ॥ । यन अपवश ॥ परचा ॥ उही । रन भा क्या ? श्रियापराध
 गुणो ॥ जाता गति ॥ । यन नन हू न प रा पन भागना ॥ जीन राजा का ।
 दुःगति म जाय चाह समति म । अछा कुरा पन भागना । राजा जीवराज । यह है
 इस नमर हराम की चाल हे साध । मारघात हो । मन का च न समझ । इसके
 चार मय नग । इगयी चापनभा म फगा तो समन व बि नी बी द्य की रवताली
 बनान । ॥ की जमा ही तरा ॥ शा हायी । दूड माराई पाययी यह (बिना) जीन
 हडिया रगना नुम । जान धा की जाय रत कर । भम युद्ध छोडा अनात त्याग
 करो मिष्पातव का बमन करा । रतायों म बचा । मोह रिश सजा । सावधान
 सचन जाघन हातर अपना गहरा जाय तो तभी रतनव रुपा घन सुरक्षित रह सकता
 ॥ और गच्छा शिवपुर राज्य भागन म आप समर्थ हो सरत हो अयथा उही ।

॥ भा मन नगुण प्र प्न कर । पनुरता बहा है जा अपन स्वभाव का सिद्धि
 करावे । तरा जान दशमय स गन है । पर परिणति म सिप कर अपन इस स्वभाव
 को क्या भूता है ? चन जाय मावधान हो । अर भोरपन म अनाति से बान
 गवाना माया ३ । नक ता हागियार हो । बिनी बार मुश जगाया । नी ॥ खसी पर
 सदा मही गई । असना ॥ बनी ॥ ३ । उग मारा श्रियागना का त्याग । जान नमून
 पान कर । मोह म विष स्वय उतर जायगा । जान धाना म भा । सम्यक्य भाव
 जागृत कर । इसक प्रभान ॥ परभाव कयी रिहार विनीन हो जायेगे । स्वभाव पूया
 का उच्य हा गया हि पातावता प्रगार जान सगना । भम निर भय कही रह
 छचना है ? निर्भयता हा तरा निर क्य है । जानि स अपा घर म प्रवेश कर ।
 निर्भय रिहार कर । निर भन्ति की विसान गई कि दूमी म रवि रिष हो जायगी
 यग घडा है । जानी जानदारा जान ३ जीन अपन म विधरण हू मय्यर परिण है ।

यही है रतनवत् । शून्यता एकत्र संप्राप्य है योग । मुख अल्प अमित मकर अनन्त
 मुख मानि अल्पम् । शून्य अभाव में आज तक दुःखा होता रहा । अब ता सुख का
 अन्वेषण कर । अज्ञा का उपशान्त कर । जाना अनुमति प्रकट कर । हे साधो ! विषय
 विकार नखर हैं । परब्रह्म है पर निर्मितिक है अतः नश्वर है प्रसन्न रूप है नष्ट
 होन वाले हैं । इनके तनिर भी मार नहीं है । य क्षणिक मात्र आपात रूप्य है ।
 इनमें भ्रमहार अहंकार करना सत्कार बढ़ाना है । दुःख उत्पन्न करना है । पीडाओं
 का पीपण करना है । दुःख बगैर स्वयं कष्टी बनना क्या यह विवेक है । बुद्धिमत्ता
 है । यह घोर अज्ञान है । हे मुन्नागी आरय रहस्य को समझकर निजानुभव प्राप्त
 कर आनन्द स्वरूप में रमण कर इसी में साधना है । साधु वही है जहाँ साधना का
 राज्य है । साधना यथाय ह्यता चाहिए । सम्भव हो ।

हे आत्मन् रक्षाबन्धन पत्र आत्म विमोहि का रक्षोद्वार है । आत्म साधना की
 इतम तान है । अन्तरात्मा की लय है । परमात्मा का संगान है । निजानुभव का
 प्रकाश है । क्षमा का गरिमा है । स्वाय की महिमा है । सवय की विरण है । जीवन
 का आभाव है । बालनव में यह शिन् मानव की पूज मानवता की दानवता पर पूज
 विजय है । एक ओर मिथ्यात्व का पार अज्ञान-प्रकार छाया है तो दूसरी ओर उच्च
 सपन तम का उच्छ्रान्त सम्यक्त्व बालरवि सुन्दरता प्रभात विष्णु मुक्तुरा ग्हा है ।
 एक ओर नीतिगत सिमुआ का कणभेरी करण शून्य सुनाइ ग्वा है ता दूसरी ओर
 मानव विमोह घट गर्मी का मधुर बन्धप्रिय बन्ध एक आनन्दोदर निन्दता सयकर
 अदरहास कर रही है ता दूसर विनाश पर बन्धन्य मानव की जलात तरंगें मनीरम
 सपीत । भाग और योग का अन्तिम विकास है इन पर्व में । क्षमा और मोक्ष की है
 पराकाष्ठा । किन्ता निराना है सुख दुःख का विजय । दाना की मधि पर बना है
 स्वाधीन आत्मा का मुरम्भ भवन । हे साधो अपन का ग्नाता । लीन कर दग्नी हृदय
 भवन का किन्त कोन में छुपा है आपका प्रभुत्व तज अनन्त मुख और शान्ति । आत्म
 हिन पक्षि सर्वात्मन है किन्तु धर्म रक्षणार्थ परहिन की मर्दिमा भा उच्च आत्महित
 की साधक है यह मन भूतो ; अन्तर्गत की रक्षाय दाना सम्यक् विवेक महत्त्वपूर्ण हो
 जाता है जब कभी । यह स्पष्ट है कि भयम-भयम का साधन हाता है बधक और
 रक्षक भी होता है । वास्तव्य भाव ह्यता चाहिए बोरा प्रम नहीं । निस्वाम मेवा धर्म
 हो स्वाय वाचना से दूर । यह पत्र ही नहीं पर्वों का राजा है । इसमें उभय ताक हिन
 समाहित है । इस लोक में कानि और परमात्मा में स्वर्गाणि बन्ध प्रदान करने वाला
 यह दिन परम पवित्र है । पवित्रता-मुक्तिता है श्रोम का परित्याग । तोभी व्यक्ति
 अय की रक्षा नहीं कर सक्ता न यह स्वयं का हो पावन करने में समर्थ होता है ।
 संतोष परम मुख है । क्षामव आनन्दोदर परिणामा का कारण । अब धर्म ध्यान की
 सिद्धि कर मुख ध्यान की ओर हटकर भवन बनाया ।

भयशासन ज्ञान को निमल बनाया । अनादि सा ज्ञान में मगन विषय और
अनध्ययमाय रूप बना नूढ़ा बनकर भरा चला आ रहा है । यह साधारण विकार
नहीं है । ज्ञान घाटा में जल प्रसिद्ध हान से तन्मात्र सा प्रचीत होता है जमे दूध में
पानी । शास्त्रीर का विभाग समझना तुल्य है उमा प्रकार जानाना का विभाजन
समझना करना अनि दुस्साध्य है । जानिन् यन्नि तुम जपन स्वरूप का एक बार पहि
चान लो तो फिर रंग मेल का मयाग को सिमुक्त करन सम्भव न लगता । यही भेद
विधान है । जाना निरीक्षण निराना ही होना है । रमल वाया का प्रम उत्तरी
प्रतिभा उनका प्रतिबन्धन गल हो ता रिता ग हाता है । तभी ता उम कुल कुल
स्वामी भा गरिना रि जसवता बहुत है—विमल है । अर्थात् विषय भोग को
भोगता हुआ भी जाना उनस पर है उनस फल का भागी नहीं है क्योंकि अनागत
रहने में समर प नहीं करना । उनका कर्ता नहीं बनना फिर भाता हा क्यों बने ।
ज्ञानी साधारण जिनाता ना उलामीत भाव में करना रूप ही फल दती है । अपना
गुडि में विषय का मयल पन भा उठाता हा जाना । ज्ञानी सीतिवि विद्या करता
है रिनु उगाता । यह टि ज्ञानरमा में निहित रहता है । ल म यही समार म है
रिनु ह ज्ञान त प पर है तभी अजुन न गधावेध का समय अनेक पन्नों के
रहन पर भा व कान एक नयन रिनु वा नागिका मुवा वा ही दख रहे हियो
विल । जान है । नरकन जाना है मर कर । रिनु जानी की हाट म हा रिमल
हाता है ज्ञाना का मला । न भी ता उधर हा लकाय है जहाँ उमका अपना गुड है । ज्ञाना
मात्र जा मा है । ज्ञाना रमल स्वक्य है । र त्रय मय्यरगत मय्य ज्ञा और
मय्यक विवि स्वक्य है । य ज्ञान रूप भा मात्र अरुणर म समझात क रि है
बल्लुन जाना एक कय है । ज्ञान का साधारण हा अग्रमा है । इन ज्ञान मय्य
पर हा मुनाता का रि रहता है । ज्ञान प्रयत्न विषय भोग रिनु अय मुन दुय
कय जमी क उगाता क मय्य भा व ज्ञान गुड आत्म स्वक्य की आर ही उमुय
रहा है । जाना रिहर म व है । गु व गुन गाव अर्थात् ध्यान तीन भी उमका
मय बन रिहर म लय रहता है । मोटा पान ही उगा ता बग मया फिर उमल नहीं
जाना । बग मया जान है भ विधाना का । प्रज्ञा ज्ञाना का दावता है भा मा और
कय का मति पर । ना टकन हान ही उठन जाना है । एरुन कोय
क अरुन हा उठर उठन कर ज्ञान का समान । फिर क्या भाव उम
कोय का लन म । ज्ञानी कय ज्ञाना क प्रयत्न म उपपाय नहीं लगता । वह मुनेय
ज्ञान मय का साधारण करना है । ज्ञान मय्यरगत मय्य कुल है रिनु उगा क है प्रम
विमल का मय्य । वह निर निर आ हा रहता है । न भी साधार म रहकर भी
उनस पर है कयन व मय्यरगत भा ज्ञान मय्य प्रमविद हाता है ? नहीं । फिर
ज्ञानी का कय बग मय्य मय्यरगत उठन उठन ज्ञान स्वक्य का करो रिहर कर ?

मन और मानव जिनके द्वारा हायात्म्य तत्त्व विस्तार जाय वह मन है जिसे आश्रित यह (मन) रहता है और मानव । मन प्रायेण ही मानव साधारण । मानव के अघात में न, रहता । यह तत्त्व प्रगामी में मन और मानव का तत्त्व निर्धारित हान है । किन्तु मूल्य दृष्टि में विस्तार जाय तो मन और मानव अद्वय एव ही वस्तु है । दोनों अन्योपाध्य है । मन का प्रथम मानव का हाय है । वह चाहे जिधर सगा सकता है मन को । पाप का उद्वेग ही जिनको मन और चाहे तो लिपटा दे दवशास्त्र गुणभक्ति में । मन स्वयं ही पुरा और अत्यधिक मूल्य है । इसलिये मानव को विस्तार शक्ति का गुण मानव मानव रहता सावधान है । अगुना तोर पर एक पाप उठाता तत्त्वज्ञान में दाता मानव रहता है कि मन विस्तार मान और कब मेरा निशाता सही बस । उगी प्रसार मत्पुण्य मानवज्ञान रहता है कि मनमान प्रतीकत पञ्चविद्यो के विषय भोग महाभयकर है पक्ष भर हाय में आये कि मैं हूँ अपने अनुकूल बना पुन उहीं के माध्यम में जाय आत्म तत्त्व को पहिचान समझ और उसे ग्रहण कर । मैं मवजन्मिमान है । यह विस्तार ही मानव मूल्य है । जो जिसस पत्ता होता है उगी का धानक बन जाता है । यथा पुण्य ॥ कनोपग्र होता है और जानने हो वही पत्र पुण्य का निशाता का मूल हेतु बन जाता है । पाप में होता है पुण्य और पुण्य करना ही पाप का धान । धर्म का साधारण है पुण्य और पुण्य ही उसका पोषक है । आत्मा स्वयं धर्म स्वरूप है और धर्म है आत्मा रूप । यह अनादि सिद्धांत है । दग सदा विनयेण मन्त्र पत्ती दिया जाता है । मानव जावन और मन हर क्षण प्रगतिशील रहता है । पीछ हटता जाना नहीं अडकर कर्म पीछ हटता है । अपने में अपनी खाज करत हैं । एक बार राश का मन में आया कि मैं इस धन को किसी प्रकार अपनाकर उसकी स्वोन्नति करूँ ।

साधना और साधन—जा गाथा जाय वह साध्य है और उसके लिए दिया गया प्रयत्न है साधना । यह साधना के हेतु निमित्त कारणों का वर्गीकरण है साधन । स्पष्ट है साध्य और साधना एव एव ही और साधना प्रेरण हान है । आपको जाना है शिवपुर वही है साध्य या नश्य । जाना है यह क्रिया है यह साधित करता है शक्ति की कुछ करना है यह कृति है साधना अर्थात् तपश्चरण । तप तप रूढ़ साधना के लिए चाहिए हमें साधन । साधन निमित्त दो प्रकार हैं—समय और असमय । समय साधन वे हैं जिनके होने पर उत्तर क्षण में साधनापूर्ण फल प्राप्त करने में सफल हो । असमय साधन जान जान हैं सभी साधना को बल प्रदान करत हैं कभी यों ही आकर बन जान हैं । साधक की योग्यतानुसार ही साधन सबल और निबन होने हैं । उपसग प्रतीक-बाधाएं आनी है य साधना को सफल भी बना सकती हैं और विफल भी । साधक का तत्त्वज्ञान शरीर सहनन ही अपेक्षित है । भक्त विज्ञानी विपत्तियों को शका बना है जब कि अज्ञानी स्वयं उनका समझ नमस्तक हो जाता है । वे आश्रितियों विरोधा क्रियाएँ तपस को साधन और अतपस को बाधक हो

जाती हैं। हे गाधन गाधना की निधि करना है ता भेन बिनानी बनो तत्त्वदर्शी और तत्त्वगानी बनो। सच तब स्वभावानुसार प्रतिया करो। इहाँ का नाम है सम्मन्धान सम्मन्धान और सम्मन्ध चरित्र। इन सोना का उत्पत्ति है स्वात्मोपनिषत्। आत्मा स्वर्ण की प्राप्ति। निजानन की अनुप्राप्ति। विद्वानन चतुर्थ का आस्वादन ही परमानन है। यही गित है—भास है। बस यही है तुम्हारा साध्य। हे आत्मन साध्य दूर नहीं यदि तुम साधन सही योग्य बना लो। गाधना की उत्पत्ति बठिन है गहन है क्योंकि इनका समुदाय है। समझा एक मे वभी भी वही भा नहीं हाता विसर्वा अन्तर् म होना है। उप विषय। बुद्धि का नाम ही सम्मन्ध दृष्टि है। जहाँ अनेको साधना का सम्मन्ध निरीक्षण कर मन प्रकार परीक्षण कर अनुकूल साधन को पा लिया कि मन आपका साध्य मिल हो जायेगा। साधना का विविधिकरण आत्म साधना में बठिन समस्या उपपन्न कर देता है। जलन साधक यन्त्र-कदा लक्ष्य चुक जाता है साध्य से हटाकर उसकी साधना दूर ही रह जाती है। अनादि का भ्रम विषयय आध्यवसाय रूप संस्कार उभ उभक्त कर देता है। तीव्र कम विपाक म कि कस व्य विमूर् हो जाता है। यदि तीव्र पुण्योप्य वेग क साथ आया ता विवक हीन हो अहंकर भगवार म पस जाता है और पापाप्य हुमा तो माह मिध्यात्व क जाल म उलझकर घट्टाम मिर जाता है। दुष्यतनों म फल जाता है। शुभाशुभ कर्मों का कर्ता बन-बनकर उनका भोक्ता बनता है। फलानुभव म राग द्वेष करता है पुन पुन कर्मणिन पर बोधित होकर समार सागर मे डूबता है। इस प्रकार साधनों की विविधता मे याग्यायोग्य साधन प्राप्त का विचार लून्य होकर लून्य चुक जाता है। साधना पथ से भटका कि कम दुख का भागी बन जाता है। यह है पुरुषाप विमूढ़ साधक की दशा। हे साधो साधना यथादृष्ट ही बना है बढना है प्रतिक्षण, षड भी रहे ही विन्तु साध्यान रहता लून्य म चुक जाय। एकाप होकर लक्ष्य का ध्यान रखना। लक्ष्यानुसार साधन सचित करो। कारणानुसूय काम होता है। नय विभाग का परिणाम कर विचार करो परमात्मन के पास क समस्त साधन मुक्त मे ही विद्यमान है। साम्य साधन और साधना तीना एक ही है इनका एकात्मक ही स्वात्मभव है यही है अपना रुपात्मोपन। यह साधनापथ विसर्जन तो है हा विन्तु अमोक्ष भी है। साम्य मुनिविषय है मान। इनम विनी का विचार नहीं है विन्तु साधन अनेक हैं। मानप्राना इहाँ क चलन म रखना है। साधन सही रहने पर साम्य भी सही मिल जायेगा यह मुनिविषय है।

आत्मा और आत्मज्ञान

कबहानी जा रहा करने है मेरा आत्मा अति दखी है बन मुछी है निरासा है मनी है दयाणि। य मान विवस्थ परिपाटी का कर्ता आधिरे है बीन ? क्या कारण मे मेरा आत्मा यह कदन जैसे दो पन्नों का अनुभव

कराता है कि एक मैं जिससे कि मेरा कहन जाना अवबुद्ध होता है और दूसरा वह जिसे मैं मेरा कहता है। निश्चय नय से विचार करन पर मैं मेरा आत्मा पृथक् नहीं है आत्मा एक अखण्ड अविनाशा निरञ्ज द्रव्य है वह ज्ञान ज्ञान मुख्य स्वरूप ही है। उससे भिन्न न कोई ज्ञान है न ज्ञान है न चरित्र है। इसी प्रकार ज्ञानी दक्षी और चारित्री भी कोई भिन्न भिन्न द्रव्य या द्रव्यो नहा है। एकमात्र आत्मा ही व्यापक है। मैं भिन्न भिन्न स्वरूप हूँ यह मायना भ्रम है अज्ञान है मिथ्या है। मिथ्या बुद्धि से वह समारा आत्मा पर्याय बुद्धि धारण कर पर निमित्तिक प्रतिरूपों में मेरा तेरा भाव करता है। उनमें इष्टानिष्ट बुद्धि करता है। इष्टानिष्ट बुद्धि राग द्वेष करता है। राग द्वेष में समसार अज्ञान कर कर्मा भाता बनता है। फल मुख्य दुष्टानुभूति कर अपन का। मुख्य दुष्टी मानता है। मिथ्या का माध्यम से इन प्रकार माना भावा में उनका उलझ कर पुनः पुनः कर्मान्वित करता है फिर फिर वही संगार वही जन्म मरण-सुझापा मुख्य दुष्ट आत्मा। इस प्रकार विस्तेषण कर विचार करने पर मध्यम रूप ज्ञान जाना है कि दुष्ट का कारण अज्ञान और मिथ्या प्रप है। अपन स्वरूप का समझ अपने में जा जाय ता। मुख्य दुष्ट की समझ बनना ही समाप्त हो जाय। ता क्या आ मा न्य रूप है? नहीं। आत्मा स्वयं सद्य स्वरूप ही है। उसका अनुमान दोषों पर पुनः पुनः आ नय सकता है। एक बार प्रज्ञा होने पर पुनः आच्छादित नहीं जाना।

आत्मा और आत्मवान में कोई भा भेद नहीं है। निश्चयन होना एक ही है। शरीर में अगन्तव्य बुद्धि ही जन्म भेद इष्टि का कारण है। यही पर्याय बुद्धि है। पर्याय में विचार हा सकता है स्वयं में नहीं। द्रव्य सत्त्व एव स्वभाव हा रहता है जबकि पर्याय परिवर्तित होती रहती है। आत्मा एक होकर भी पृथक् पृथक् अनेक है। हिन्दु एक दूसरे का विभीनयन नहीं होता। गंधा अपन-अपने में स्वभाव एक अखण्ड एक का एक स्वभाव हा है। प्रपक ज्ञाना इष्टा है। ज्ञान व स्वभाव से वह स्व और पर जाना को जानना समझता है। अष्टव गुण से स्व पर का इष्टा है। अष्टव गुण में इन गुणों का समाहार है। बिना अध्ययन का सुझानुभव नहीं हो सकता। अनुभव का नहीं तो अध्ययन का हा माय हो जायगा। सुझानुभव ही तो परमात्म स्वरूप है। सुझा पा न प्रपक ज्ञान दक्ष है और अज्ञान ही मुख्य एव कार्य है। यहाँ एक कीनूह्य जायज जाना है कि आत्मा ज्ञान द्वारा ज्ञानी है इष्ट द्वारा दृष्टा है मध्य द्वारा सुझा है और बीच द्वारा शक्तिमान है ता का व सब पृथक्-पृथक् है इन सब का योग का निष्पत्ति ही आत्मा है क्या? ऐसा नहीं है अगुण गुण आत्मा का ही निव स्वभाव है और सभी स्वभावों का एक माय ही प्रयोग होता है। सभी समझता नहीं है भेद नहीं है। एकमात्र अध्ययन स्वभाव से सब वर्तित है। जाना ही जाना का में परिवर्तन कर ज्ञानी दर्शन का से दृष्टा

मुद्राणि रूप से मुद्राणि सम्पन्न रहती जाती है। वह आत्मा एक प्रगल्भ चान्य विशद रूप में ही है। साधारण आत्मा अनादि में अगुडि है। पर मयोग नि युक्त है। उमक चेतन स्वभाव का विवरणमन हो रहा है। इसीलिए चेतना के मुद्रा ज्ञान चेतना अगुड के रूप चेतना और चमकन चेतना इस प्रकार तीन रूप परिणमन करता है तभी वह अन्त विद स्वल्प की ओर उन्मुख हुआ जान होता है। विकासो मुख होता है।

मनुष्य की मुद्रा पर जावन झुलना रहता है। न तो वहाँ स्थिर है न शान्ति। पुन मनुष्य कही? सहेह कई प्रकार का होता है। इन चोच सम्बन्धी पर लोच सम्बन्धी। लोचिक जावन में माना सगएँ हो जाती हैं। पर वस्तु सम्बन्धी कुन्म्वी भाई वध आदि व प्रति सहेह हा जाता है। प्रति पत्नी का पुरम्पर एक दूसरे क प्रति गये होता है यहाँ तब कि स्वयं अपने विषय में भा जाव प्रणी सहेह स्व हीकर कि बरतिर विमूढ हो जाता है। कभी कभी आत्मघात तब भी कर बैठता है। दूसरे की हत्या भी कर बैठता है। अथ भी माना प्रकार व अयाचार अनाचार भी हो जाया करत है। कभी-कभी अनाचर्यक अनस्य रूप सहेह की प्रिय इधनी जन्मि हो जाती है कि उमका पसना ता दूर रहा उमकी उलझन में फमकर अनस। निरपराधी अपराधी बनकर अपना जीवन पीना समाप्त कर दन है। एम में फ्रष्ट हो जात है। नारियाँ शास सधम स च्युन हो जाती हैं। मन्त्रा के स्थान में उद्घृष्टा स्वच्छदना जा जाती है। मन्त्राविहीन हो पीठना बड़ जाती है। घस हीनता समाव हीनता दस जीर राष्ट्र तब का पनुन इस मनुष्य में ही हो जाता है। उमय लाव घातक इस सहेह को प्रग्न नहीं देना चाहिए। वस्तुतः म मदेह ठगो का मस्त्र है पार और दुराचारिया का समाचरण है। दया माना है किसी भा नाव्यवनी सनी मोमाय्यशास्त्रिनी नापी का दया कि उम पर आक्षेप लगाकर उसका पतिक मन में सहेह पना करा न्त है। परिवार के लोगों का शक्ति कर देते हैं। माना प्रकार में उस साक्षिन कर वय प्रसन्न कर न्ते हैं। पानुन हो वह भी अरना सक्त्वन इन स्वार्थी सक्नों व हाथी में समपण कर देनी है। यह है दुर्गता सहेह राजा व प्रभुत्व की। ह आत्मन निशच बनो। शका रहने पर निमल सम्पत्तन नही हो सकता है। जिना सम्पत्तन क आत्म गुडि कही। आत्म-निरिणाम की निमलता हा जीवन है। आत्मा की उन्नति करने क लिय नि शक हाता परमावश्यक है। शहर भूल है यात्रा है जहाँ से चमक वहीं पर-टोम पना हा जाती है। उस वसव म ह्योपाय्य विवक धून्य हा जाता है। अत आत्म पी की शका का परिहार अत्यावश्यक है।

हे आत्मन तू ज्ञाता हुआ है। कर्ता वय का काम तरा नहीं है। दुध मुख भी तरा नहा उमकी अनुभूति भा तरा नहीं। काम करता है

रूपे विनश्वर है साक्षात् देता है और माया ही सेवा है। क्या भया इतने उमे शोक
हय होता है ? वह क्या उनका माया है ? नहीं। इसी प्रकार तुम ज्ञान को
गमनी। अनादि काल में तुम कर्म राजा के सुखी बन हो। दुष्ट गुण का आय
व्यय का हितकर रूपों हो फिर तुम दुष्टी सुखी बनो ? इसका एक ही उत्तर है
तुमने इस कर्म की श्रियाओं को अपनी माया की साक्षी होकर पर यन्त्र में आनन्द
कर लिया। सोमव्रत पर पण्य में आरम्भ बुद्धि तथा भी। दूसरे का त्याग अपना
मान दिया। जब कर्ता बने तो तन्मय कर्म का भोक्ता बनता ही पड़ता। कर्म
भोक्ता की मायता और उगता परिणाम कोई सामान्य चीज नहीं है छोटी भी नहीं है।
साधारण भी नहीं है। कर्म और जाय अनादि में लक्ष्य है। यही एतत्त्व की
भावना भी अनादि है। इससे संयोग जय गहरार भी अनादि है। वासना
का आधिपत्य ही दुष्ट दुष्ट का मूल है। यह सब हुआ क्यों ? मिथ्यात्व के कारण
अज्ञान के घल पर और मोक्ष के निमित्त ने। ये सब जितने स्वभाव भी अनादि ही
हैं। यही कारण है कि ये प्राकृतिक जग स्वभाव का मय है। आत्मा इही में
रूप पच गया है। विषय बुद्धि होन के कारण यह विषयमय हुआ रहा है। हे मुनि !
आ मन तुम इस रहस्य को समझो। अपन अमली स्वभाव में आओ। निज कर्म
को समझो। पर परिणति का त्याग करा। हर स्वभाव का समझो। अनादि बुद्धि
का त्याग करो। आत्मा बुद्धि अपनाओ। स्वभाव को घट्टन करा। क्या ताप
आदि शरीर के विचार हैं। आत्मा निर्विकार है। स्व स्वभाव ही निज वस्तु है
तू ज्ञान दर्शन को प्रकट कर। ज्ञानी घन दर्शन बन। तटस्थ होकर रहने से
आत्म स्वभाव जाग्रत होगा। निज म निज को परपो। आत्मा ही आत्मा का स्वभाव
है। इस अपन स्वभाव में ही चीन रहा।

क्यों जी पच गया रहत है ? अर इतना भी नहीं जानते ? यह प्रहरी (बीरी
दार) है। बीरीदार शक्ति जय अधकार को वीरता हुआ मुक्त जगत् को जवाता
है। उह सावधान करता है। ये पच जगात बस महारम्भ नि सावध श्रियाओं
में पच माह अधकार में पच प्राणियों को जाग्रत करत है। सावधान करते हैं।
पहरे पर इतनी जागता है कि सात हूण प्रमादिया के घर में चारी डकती डगी
आदि न हो जाय और पच इतनी मगल प्रभात की महारई बताते हैं कि काम
प्राप्त कपाय प्रमाद आदि सुदूर समय विधि को न ठग ल जाय। प्रहरी कहता है
जागत रही उठ रहे इत्यादि। पच भी मानव का बार बार रुकन करत है मोह
मदिरा में मस्त बन रहता अज्ञान का नीव तजा प्रमाद का तटा त्यागो भोगो की
जगत्मा में अपन आत्मा उलझ रही है। कपाया न जाल में सिसक रहा है।
॥ गम्भीर को समझा। तुम्हारे मन अमूल्य रत्न है। आत्मा में समाहित है।
यही भी आपन पृथक् नहीं हुए हैं न है और न हाय। निज तुम्हारा स्वभाव न

उह आवत्त कर लिया है छा रात्रा है । यह रहस्य बड़ा गंभीर है पेचीदा है टरा है । आपकी भावधानी व प्रज्ञा छनी का अनुसर्द स उपयोग करना होगा । अनादि स प्राप्त नरवानि क दुख का आपकी या नही है ? अन्तम परिणति म उत्तमा कर गून नाना प्रकार व दाखन वष्ट सहे है ? उनका स्मरण करो । समार म कितना निरस्वार तराभव तुम मिता ? कुछ मा है ? अर आत्मन तू कता मन (चरन) म भा बिकाया । हमम बड़कर क्या अपमान होगा ? अब यह मानव जय उत्तम उत्तम कुन उत्तम जाति वश गवोत्तम धर्म प्राप्त हुआ है । हम समय धनि तू अहरार और समयार का वन्यन म वन गया ता बस फिर पुन उती दशा की प्राप्त हो जाओगे । स्व स्वरूप को समझो । स्वगवेन की प्राप्ति व प्रयत्न म लया । तभी जीवन की साधकता है ।

॥ आत्मन तरा वण क्या है ? बोध सरा स्वभाव नही है । यह तो विभाव है । विभाव पर निमित्तक होना है । यथा दूध का उबाल । दूध उबलना है क्या अग्नि व सदाग म मनुष्य उठटना मुन्ता है क्यों ? बिछ व डक स भ्रमर नाचता है पना की मध स ह्यानि य मव पर भाव है । विभाव पणि तिया है । मयोमी भाव है । य मव नखर है । क्षण मगूर है । स्व निमित्त के अभाव म निमित्तक का भी अभाव हा जाता है । अत सिद्ध है कि प्रात्र भी पर निमित्तक है इमनिए तरा स्व भाव नही । पर कारण ये होना है । बाहिर म तो निव स्वभाव हुआ नही । बस्त स्वभाव अमि होता है । स्थिर और अपुयक होता है । बाध का अभाव है क्षमा । क्षमा हा जा मा का निव स्वभाव हुआ । हे न नन् तथा धम अपराधी क्षमा क्य हा तो तुम हा । क्षमा हा मुम्हारा धम है । क्षमा से ही जाप रातिमय हा । जहाँ क्षमा भाव है वहाँ सुख और शांति विद्यमान रहती है । क्षमा क रहन म मन प्रफुल रहता है । शरीर म नायना आती है । क्षमायुक्त परिणामा स रिप हया जर तप क्षत नियम अनुष्ठानानि सफन हाते हैं मवाध पत्र प्रदान करन म समय हात है । क्षमा पूवक पुनान साधक है । क्षमा युक्त हा मा आहर नान विजय कन प्रत्ती हाता है । क्षमा नाव सहिन सावध क्रियाएँ भी कठोर समवाय नही कर सकती । जाव दया रहन से सावधानी रहेगी सावधाना विवक हो हाया विवकपूवक की हुई शिवाए जटिन कमवध म कारण नू होत । भावो म सरवता होन स वायायाय का विवक रखा । स चार और शिवावर क्य आवरण करणा । पराडा का भाव नगी रहगा । शानि और सुख की चाह हागी । अपने और पर क विवाम का भाव रहता । वहां भी तू तू में में क पचड म नही पडता । क्षमा भाव वहां लाना नही है वह तो स्वय आत्मा का स्वभाव हा । स्वभाव स्वभावा अमिन्न होन है । यथा अग्नि और गह । अग्नि स गह पयक हो हा वत् मक्ती उमी प्रकार क्षमा आत्मा से भिन्न हो ही नही सकती ।

हे आत्मन् तू उत्तम धामा स्वरूप है। निज स्वभाव में विचरण कर। श्रेयस्क विषय रूप रस वाद्य वाङ्मादि पर रूप अपने-अपने स्वभाव में स्थित है। क्या व कभी तुझ रूप हुए या होते हैं या होये ? कभी नहीं। वे आपसी यह कहने भी नहीं कि आप हमारे पास आइये हमको देखिए भूमिए चूमिए या मुनिये अथवा मोहिए स्पर्श करिय। फिर आप भला क्या बलात् उन्हें ग्रहण करते हो। क्यों उनमें अपना स्वरूप मुद्रि जाड़ते हैं ? क्या उनमें दृष्टान्ति कल्पना करते हो और क्यों रंग रूप मोह का पायण्ड बना कर स्वयं कर्त्ता भक्ता का झूठा अभिमान कर कर्मजिन कर दुष्ट उठाते हो ? महा सज्जा की बात है। बड़ा ख" का विषय है। अर साधारण इति नौ अज्ञानी भी बिना सम्मान के पर पर नहीं जाता और तम शुभोग्य ने शुभमति प्राप्त कर भी शुभाशुभ बाद वगणाओं में अटके हो। विचार करो यदि कोई गाली देता है तो उसका हेतु क्या है ? यदि आपकी भूल है तो टीक ही है उसका गाली देना वह आपकी प्रायश्चित्त दहर दोष से निवृत्त हो कर रहा है। यदि आपका अपराध नहीं है तो वह कम बच कर रहा है और आप यह विचार कर साम्य भाव से मुन रहे हैं कि वह विचारा अपना बचन अपना मुख जीव शरीर शक्ति छव कर मुन गाली दे रहा है अपना पुण्य क्षीण कर रहा है मेरा पूज इत कर्मोन्मत्त ऐसा वा अष्ट दृष्टा इसके निमित्त स उन्मादित आकर निजहित हो आपणा। फिर गाली के विषयता तो है नही। मुन मारा नही मारा भी तो बाँधा नही बाँधा तो प्राण नही हर और यदि प्राण विभाग भी बिना तो धम ता नही हरा। व सब बाँजे तो कर्त्तव्य है। हममें आत्मा का क्या सम्बन्ध ? आत्मा पर इसका काद प्रभाव नही हो सता। आत्मा सुनता है न दण्डता कह जाता है वरतु राधा व पी नही अत है आन जातव्य दृष्टित्व स्वभावानुसार क्षमाशील है। हे साधवा ! इस प्रश्न से निज स्वभाव का अनुमनन विनन कर ता काय का शत्रु का गिरार रहा हुआ। शत्रु तब तक हा बनेवान हावर हाही होता है जब तक विराही नयनोर है। हे। मुन मदन हावर भी निवृत्त कर्त्ता हो रहा है। धामा शक्ति अन्तर्गुह। ६४ की वय की कृपा है। वाग्नि ता ताप जन है। काय की परित ता वय है। इसका स्मरण कर अपना शक्ति का उद्घाटन करा। नमस्ते मनन निरा। करन का प्रयत्न करा।

उत्तम मानैर ! यह भी आत्म भाव है। जहाँ वाचना जाता है विन है वही परिणाम में मन्त्रता होता है वही मानव गुण का विकास होता है। इस विन मन्त्रता का निवन्धन क्या बिना वह अन्तर्भाव पानवी में दया मुना सा प करता है ? अनन्त है वाता। नव निर्विदा ? यन् अमूर्त निर्विद ता वाता है। ६४ है। विन ६४ वरत मर्ति है ? इसका कारण है म न कयाप अन्तर भु ६४ वरत निर्विदा वाता ६४। मन वय व आत्म भाव की अन्तर कर

यमही के दया भाव नहीं आ सकता निम्नी नशस के विन्द क
 दन गुणों के अभाव से मा व घम जैसे प्रकट हो सता है।
 स्वभाव है। बरत हमारा आत्मा है। आत्मा से हो मानव
 कि आत्मा ही मानव स्वरूप है। मदीर्घमानव। बावों
 हो मानव गुण है। मिट्टी में मन्ना है जिन्नु अमिष्यन कव
 पानी बाला जाना है सम्पक प्रवार उतहा मन्न कि
 उसनी बौमलता बिबना प्रकट होना है। हे साया।
 त्याग का मन्न करो समय की पो लगाओ मन्न प्रकट
 तब वही मन्न गुण बढन के अनुसार आत्मा का मन्न
 भूनि जपन हागी। कपूर परिणामो में मान ध्यान
 भाव किम प्रहार उतन नवन है परम मन्न है या
 क्या कभी कबरा परमना ऊपर भमि में मन्न जो
 मुन्न उत्तम पनाय उत्पन्न हो मन्त है नहीं हो
 भोग समार या विरन हो गय अब मान क्या है ?
 बारण है। मन का निशाम करा यह दुर्मात्र
 स्वामी कहन है—

अपमानादयस्तस्य विनया दन क
 पापमानादयस्तस्य न सवा

जिसरा मन अन्तर्य अज्ञान नव
 सम्मान अपमान की कपना बाहर हागी
 नहीं हाते। बारण कि राग द्वय से
 बरन रूप व्यापार में गतन सता है
 को प्रयाजन नहीं रहना। यदि
 बचन बाव का मान सता है मन बरन
 हुतावर तन्धान अने मन्ना
 सावधानी प्रहरी की भाति मन की
 मन परिज्ञान बनता रहना है।
 नू भी मन्नी मोर बरना
 बाव जाना में बरन बरी
 मोर बरन मन्नी निर्वकार
 म मन्नी

।
 १
 ५
 के
 १।
 डम
 भा
 वित्र

बाना
 य क
 र म
 (ह)
 छा
 स
 हा
 जि
 (सी
 र सता

। १ रिग
 २२ रहा
 मान में सता है
 र वा जोर दुष्ट नहीं
 म बाबा से दध प
 दध प पावना
 म ही
 इमान
 १ १ १
 उ प लादी
 न १ १

कपाय भाव नष्ट होकर दया रूप का मल भावा का प्रादुर्भाव होकर मानव गुण आविर्भूत होता । मानव भाव मानव रूपी शस्य का बीज है । मुक्ति की मिडि करना है ता अष्ट प्रकार मन्त्र का मन्त्र का त्याग कर निम्न सम्पत्ति प्राप्त करना होगा । सम्पत्ति का मोन रूप प्रमाण की प्रथम मानी है । अन मानव गुण की प्राप्ति के लिए इनके महायज्ञ अथ ममस्त क्षमाति गुणा का धारण पालन आवश्यक है ।

उत्तम मानव का अन्तर्मित्र है उत्तम जाजा । सीधा सरल अथ ह सरल । सरल मन गरन उचन और सरल वाय रखना । अर्थात् मन वचन काय का एक रूप प्रयोग करना । जिन गरन हैं जिन धर्म सरल है जिन माग भी सरल है । इन लिए य उमी हृत्प म प्रणिष्ट हान हैं जा सरन है सीधा है । जहाँ छन-वपन माया जाल है वहाँ धर्म रहा प्रविष्ट हो सरता । क्या सीधी तलवार टही म्यान म पुन सकती है ? नहीं धुगनी । उसी प्रकार स्वामी का अन्तर्करण म गरम नि प्र पावन जिन धर्म प्रविष्ट नहीं हो सरता । जाने वस्त्र पर दूसरा कन उस चड ? विभाव म स्वभाव तिस प्रकार आड पर वचना यदि ह तो स्व वचना कभी टन नहीं सकती । आरम उचन समार पार हो नहीं सरता । अन हे माघो परमिठन आना राम आप सरन भाव धारण उध । कपट भर छाडा । जा कुछ विचार यही जानो और जा जाना यही विचार तब रहा करो । कयना करनी एर बनाभा । शान्त पौ पड़ाभा । तन्नुमार चना और चनाभा । द्रव्य क्षय वान भाव का मर्यादा विचार कर उमर अनुभूत जना आचरण बनाभा । कपण का उभय लाव गहिन हो जना है स्वत जननी जनन स्त्री पुत्र भी उता । विराग यही करता उसे सरन भाव का दृष्टि न दृष्टा जाता है । नीतिर अग्रहण नन दार आनि मर हा बिड जना है । मा दुवा ता भी परमाद ता नष्ट होता ही है आरम बनना से हम सोच म आ निना आनि हाता है । यह माया छन-वपन मन्त्र का व्याप्य है ।

क्या पुरान कपड पर गुं र रग चड़ा ? जान का कापार यह मरना है ? क्या मूख दयाध म अनामू य वस्त्र मित्रित करने वाला व्यापारी भ्रमता प्रति पा बना मरना है ? मता रिश का छाया ता जाता पुत्र क्या उतरी मर्यादा या मरना है ? मुहुव दृष्टा मरना है ? नाना । जा प्रार म माया मुम अपन का समझो है शान्त मुद का जाना विष्ट कपण कय तपार अन्तर्करण कर आहार विचारानि प्रवृत्ति को कर का ? विन भावान और विरागता रूप म ता रिश का अमूय सम्पत्ति का अर्ज काता हो मरना है ? उन का मरना है ? उनका उभाग कर मरना है ? कर्मा नदा कर मरना है या रक्षा गुद टपा विष्टु मुम हो सरन इतन और रतन (१३३ १५५) प्रदा म व वना नाना म । नन चतुरा अमय दुष्ट हो दार मरना है । त मर सा रन नन भाविता विष्ट तनि भा वन

[illegible][illegible]

का पात्र हो जाता है। उग्रय मन्त्री एवं विचित्र होना चाहिए। साध अवस्था में बाह्य शुद्धि विशेष रूप से योग है। अन्तरंग शुद्धि प्रधान है। अन्तरंग की विषय वासना का परित्याग ही चारित्र्य है। मयम या माधु धम है। मयम विशाल वन है वह भी शुद्ध भूमि पर ही प्रसार को प्राप्त हो जाता है। साध की परिश्रमता या शीघ्र पूर्णता होना चाहिए। उत्तम शीघ्र धम आत्मा का गुणांग है। आत्मा स्वरूप ही है। शुचिता को मानने के लिए मायाचार का त्याग करना बठोरा का त्याग करना अर्थात् मान माया त्रिसोमि का त्याग करना अत्यन्त अनिवार्य है। पर वस्तु का त्याग करने से शीघ्र धम होता है परन्तु महिमा का त्याग करने से शीघ्र धम की वृद्धि होती है। पटकाय जीवो का सम्यक् प्रकार रक्षण करने से शीघ्र धम का पोषण होता है। पञ्चमहाव्रता का धारण पञ्च समितियों का पालन तीन गुणियों का धारण तीन दण्डों का निग्रह आदि से उत्तम शीघ्र धम उत्पन्न होता है। हे साध आत्मन् आप अपनी चित्त क्री भूमिका का साधन करो। पर भावा का प्रवेग नहीं होने दो। ग्या-यया विषय कथाय पथक होते जायक तथा तथा हृत्य शुद्धि के साथ साथ शीघ्र धम प्रकट होगा। शीघ्र धम सम्यक्त्व का साधक है। सम्यक्त्व के अनन्तर सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्र भी उत्तम शीघ्र धम ही से होते हैं। अतएव रतत्रय से ही शरीर की शुद्धि है। न कि मात्र जल स्नान से। रतत्रय के साधन शीघ्र धम का निरन्तर पालन करना चाहिए। शीघ्र अन्तरंग का प्रकाश है। आत्मा की उज्ज्वल निम्न ज्योति है। कम कालिमा व विषाद के नाश का उत्तम फल है। कम कदम्ब का बघन शिथिल होने पर आत्मा निमल होती जाती है। आत्मा की शुद्धि ही उत्तम शीघ्र धम है। हे आत्मन् शीघ्र शुद्धि द्वारा निम्न गुण हैं। उसे पाने की स्वानुभूति को जाग्रत करो। निगान की अनुभूति से आत्म सुख शान्ति प्राप्त होगी। यही चिरस्थायी आत्म स्वरूप में परिणति हो जायेगा। अपना पुरुषार्थ करो। निरन्तर अपने भावा की उज्ज्वलता का प्रगटन करो। यह सभी सम्भव है जबकि मन बल काय का व्यापार कम से कम होगा। यह सभी सम्भव है जबकि सात्त्विक त्रियात्रों से अधिक से अधिक दूर रहो।

हे साधो ! आत्म शुद्धि से सत्य धम प्रकट होता है और सत्य धम से आत्म सत्य ज्ञानिभय। आत्मा का प्रकाश सत्य है। सत्य आत्मा का अन्कार है। चित्त की शुद्धि का प्रकाशन वचन है वचन का प्रमाणना का कारण है सत्य। जिसकी वाणी में सत्य नियम करना है उसकी मूर्त्ता साक्षात्तर हो जाती है। आत्म शक्ति बढ़ती है। ज्ञान का प्रसार होता है। प्रभुत्व शक्ति वृद्धिमान होना है। ऐश्वर्य बढ़ता है। यगापराका पहचान है। तप निम्न होता है। बुद्धिमान फटन नहीं पात। दुर्जगन्तो का जभाव हो जाता है। शुभ भावों का उपवन सञ्चल है। शुद्ध भावा व अद्वय ज्ञान है। ननु न शुभापवाय की सागा में सम्यक्त्वानि रत जगमगान है।

सत्य जीवन विकास की आधारशिला है। मनोविकार को पुनः पुनः वासा कुशल है। विषय वाम विकार सत्यवादी का स्वप्न भी नहीं कर सकत। मायाचारी रह नहीं सकते। लोभ सात्वत भीरुता राम भव अपध्यान निष्ठा विषयवांशति आदि दुर्गुण उसके पास नहीं आ सकत। समता सताय शीत निर्ममता सत्तावा शिष्टाचार आदि अनन्य गुण अनायास ही उत्पन्न हो जाते हैं। वास्तव में सत्य आत्मानुभव का द्वार है। स्वमन्त्र का साधन है। आत्मान और सत्य का अन्योन्य सम्बन्ध है। सत्यवादी के जीवन में कभी छद्म आत्मा नहीं। उन्नी छाना नहीं निराशा में वह डबता नहीं। उस वक्त ही पराजय होना सहाय है। बल व्यनिष्ठ को आकुलता-आकुलता क्या है। आकुलता वही है जहाँ मनुष्य असत्य प्रतिपादन करे। गलत वाय करे बिच्छ आचरण करे दूसरे का या अपरा का ठगन का प्रयत्न करे। क्योंकि वह अपने अगोचर जिया कनापा का छिपाने का प्रयास करता है। उस प्रयास में निष्ठा प्रयोग स्वामाविर् है यही असत्यकरण है। असत्य है। आत्म पतन का कारण है। आत्म पतन को रोचन क निर्मम ही ब्रह्मपतन है। मत्पवादी का मन बचन वाय गमनवन् धुने रहते हैं। स्वच्छ रहते हैं। गुणद्वय अङ्ग और उत्तुग रहते हैं। मातर गमान अथाह गम्भीर होते हैं। वहाँ पर पादा नहीं? विचार कहाँ? कारण व अभाव में वाय का अभाव होता है। निष्ठावानुसार सात्वत भी नहीं हो सकता। सात्वत नही तो अथ विमर्श है। तबिन वाय नहीं तो निश्चयपूर्वक सचिन द्रव्य अथ होगा। जन निजरा भी होना स्वामाविर् है और उस सत्य घम में एकाग्र हयानी होने पर सब कम क्षय भी सम्मन है। सिद्धान्त और तत्त्व स्वरूप का निवेदन करें तो सत्य घम अनादि वानुपिन सविहारा सात्मा की शुद्धि का शक्तिशाली मन्त्राणा है—गान्धर्व है त्रिम समता रस में घालकर आत्मा निज गुण और-वाक् का प्रगलन करने में मग्न होता है। सत्यवादी वस्तु स्वरूप में मोह नहीं करता। सत्य में स्व पर का समावगम होता है। सत्यवादी निर्मोही हो जाता है इमनिष्ठा उसके द्वारा—विपरीत कथन माह से होता है। सत्यवादी निर्मोही हो जाता है इमनिष्ठा उसके द्वारा प्रतिपादित विषय विद्वान या विषय अथवा असत्य रूप नष्ट होता। सत्य वह सत्य कसाकार है जो जीवन व अन्येक पहलू को अपनी सम्पत्क दृष्टि में सही प्रकृति का रूप पर सञ्चा है। कमजोर उमरी मन्त्राव भी मृदम होता जानी है और इतनी कमती हो जानी है कि स्पृह साधन ही समाप्त प्राय हो जाते हैं। शन जन मूढम भी सूम्मत होकर समन पर रूप सामग्री समाप्त होकर वे ही चिन स्व-स्वरूप होते जीवन में उतारो। तुम स्वयं ही इस रूप हो जाओ स्व-स्वरूपोपनिषद् प्राप्त हो जायेगी।

॥०॥

[illegible]

बहु क्या सवार को मन्त्रय स्थान पर पहुँचा सकती है ? नहीं भेज सकती। उसी प्रकार बिना सकल समय धारे बिना जीवन-नीला सवार जनधि पार बिनी भी प्रसार नहीं हो सकती है। हे आत्मन् तेरी तो डोंगी है नीला भी नहीं है। वह भी बिना पनवार की यन्त्रि तनिक भी चक गया तो वहीं सवार बट गया। फिर वहाँ संहारो इसग ही दुमाध्य और प्रतियोग सावधान रहकर अपने पन समय को सवाहक बन कर जीव और जीवन को संहारा नयया बना और बनाकर दोनों ही का समाप्त प्राय हो जायेगा।

मयम शीघ्र पूवक शोभा पाना है और तप मयम से सार्धक होता है। तपम हीन तप कुप्य है समाप्त का कारण है। १२ प्रकार का तप मयम पूवक पालन करने पर ही यथाय फल पाना है। जिसमे आत्मा तपाया जाता है उसे तप कहते हैं। तप से आत्मा का मोघन होना है। मन का हुना ही पण्य की निमलता है। आत्मा म कर्म मन प्रमाण रूप से निरटा ५ बिटा है। इस कम चक्र की निर्जरा तप से ही होती है। तपस निजरा व तप म सवार पूवक निजरा होती है। यों तो प्रतिगण कर्म मान और जाने है। यही कर्मों का निराना सविपाक निजरा है। किन्तु जाना बट नहीं तो बिना ही बचरा कूडा साटते रहा घर स्वच्छ नहीं हो सकता। उसी प्रकार कम जाने रहे और तप भी करते रहे तो वह अशान निजरा कार्य-कारी नहीं होगा उससे आत्मा कम पार रहित नहीं हो सगता। अत मय्यक तप अविपाक निजरा का हेतु है। वाञ्छा रहित निर्विकल्प तपश्चरण आत्म शुद्धि का साधक है। 'तप्य और आत्मनुर भे' से तप दो प्रकार के हैं। प्रत्येक छह प्रकार का है। अत सारह प्रकार तप के मूल भे' हैं जिनका सुनिरात्र पापु जन पूजन पालन करते हैं। निर्वाण पार क्रिया ही यथाय चरती होती है। यावक भी यथाशक्ति द्रव्य क्षेप बाल आवागता अभ्यास करता है। करना ही चाहिए। मकल ही से तो सकल भिन्ननी है। मानव-वाचिका पित माता के क्रिया कानो का निरीक्षण कर सम्यक परिपालन करने का प्रयत्न करते हैं। पुन सन्तुहार आचरण भी करते हैं। इसी प्रकार मय्य यावक आत्मा सुख वाञ्छा से यथाशक्ति तपश्चरण करने का प्रयत्न करते हैं। तप ही मोन का साधक है। तप क बिना सामान्य पुरुष की क्या बात सीखकर भी सिद्धि नहीं पा सके और न मुक्ति पा सकेंगे। मोन तप का पन है। रूप सीनों अर्थों म रहित है। विषय वासनाओं आभा-नृणाओं से विहीन है तो कम निजरा का हेतु होगा। जिस तप म लोकपणा भोवपणा आदि सगो है तो वह तप काय कनेशा उपमर्त्य-मरीदू आदि बष्ट सहेने तप वह है जो उद्योग वृद्धिपन हांग हुआ अम्य करे सुख उपपान को शक्यकर सब प्रमाण बचकर आत्मा को प्रकाशित करे। स्पष्टहार

भी काय को करता समझ जाता है किन्तु पुनः मिटाकर ।। जगाना यह महा कठिन होता है । जीवन का स्वच्छ पटलमणि है उस पर जाना प्रकार के प्रभाव से बिम्बित होते आ रहे हैं — हे मिटाकर उसे अकुर बना करना है । यह कार्य सरल नहीं, परन्तु जानी व लिंग दुःख भी नहीं है हे भाई तू स्वभाव ■ विवकी जानी है । नाता दृष्टा ही तो तेरा पिता रूप है । भ्रम बन्ध आने स्वप्न को भूता है उसे समझ उसकी अनुभूति से तेरा बड़ा पार हो जायेगा ।

कलाओं का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यों तो जीवन भी स्वयं एक कला है। किन्तु इस कला को कलावित्त कर सजाने वाली अन्य कलाएँ हैं। गुलाब स्वयं पुष्प है पुष्पा भी राजा है। यदि इसे जहाँ चमकी भांगरा मातिया आँक के सम समाय जाय तो और विशेष अनानी शोभा बन जाती है। इसी प्रकार समाज की सांत्विक जीवन में चित्रकला संगीत कला नृत्यकला काव्यकला साहित्य-कला लेखन कला आदि का सम्पर्क मिल जाय तो जीवा कला में चार चाँद लग जायें। जीवन के रास्ते अभिजाप्य वर्णमान बन जायें। यदि सर्वोपरि भक्ति बला—द्विज भक्ति कला से युक्त जीवन हो तो रहना ही क्या है। भक्ति की अभिव्यक्ति के लिए लेखन कला सफ़्त प्रणाली है। वाक्य नाटक समीत से मानसिक साधन धुन जाने हैं। जनशर के भी बढ़कर कलम की शक्ति गनी है। कलम का घड़ी स्वस्थान पर मौन से बइर गमस्त विरय में सहनका मचा सजता है। आध्यात्मिक विषय पर कलम बरी हो आरम सत्य का स्वस्थ घर घर में पड़ेवा सजता है। सरसाहित्य कुछ ही काल में देश समाज राष्ट्र और परिवार का ढाँचा बदल सकता है। आज जितनी भी कुश्कल, बग़लतन दुर्गाधार कुराफान पन रहा है यह सब छोटे साहित्य कुश्कल कुश्कली का ही वर्णन है। पना आता माना-वीता खनना फिरना माना जगता कला जाना यनता यनाना ये सभी तो कसाण ही हैं। यतमान साहित्य में सब कलाओं का जेनेर पात्रचार्य मस्तुति अमारनीय प्रभावों से रगा हुआ। फिर क्या कर्म शीत समय का आचार सिग्गाधार प्रम सद्भाव सद्मयी हृदयानुदाग अति उत्तम भावनाएँ जहाँ से किम प्रकार आ सकती है? मनिहता कमे आये? आध्यात्मिक उदाति कमे आये? मणु मन् गन्व त्यागी बड़ी से आये? इन सबके लिए इन्हीं का विचारों का भाग प्रात गता हुआ साहित्य चाहिए। वह लेखन कला की पावनता पर ही निर्भर है। मलता य म विविध धार्मिक आत्मिक भावों से अनुरजित होती ही जगम निमित्त मानस भी उगी प्रकार का होगा और साहित्यकार भी साधु प्रवर्ति का हागा। हे माया! मानता न जीवन का साधनर कलम के घनी बना। स्वीकृत पूर्वक पराजहार मार्ग है अथवा नही।

जावन धारमपुर है। मनु य पना हुना है। म सु साथ ही आता है। प्र-
 ण अनादि मरण का रहना है। यह तो स्वाभाविक नियम है। साथ ही
 अहमिमत धारमों का लना भी मना रहता है। अम धन अणि धानुनाती
 धानर धाई का दून रण मभी ना मुपु के। नाम निर अस्थित है। कव नि

पर वहाँ हमना कर उन्हे कुछ पता नहीं है। भारी-फिरने वाले पीछे सर्वत्र मोर मड़ फाड़े खरी है। इस दशा में मान्य बढता आत्महिन में नहीं लगता धर्मधारा तेजस नहीं करना भावों की मूढि न करना, बिभक्ति में नहीं लपका महा मूर्खता है अज्ञान है तीव्र मोह है प्रमाण है। मृत्यु बोटी पड़के खड़ी है यह समझकर धर्म ध्यान लपक करना चाहिए। धर्म ही सार है। धर्म ध्यान की प्राप्ति बढि रक्षण मनुष्य जग में ही हो गयनी है। मनुष्य भव पाना अति दुर्लभ है जगमें भी उत्तम शरीर धर्मात्मा अवश्य उभर कर उभर जाति मूढ परम्परा का विपना धर्मात्मा गुरुविराजता त्याग भाव ब्रह्म परित्यजित लक्ष्मण भेद विधान उत्तरोत्तर दुर्लभ है। इन सबको पाकर भी यदि आत्महिन प्राप्ति नहीं होती तो मानव शरीर पाना व्यर्थ है। हाथ में आया बिनामक्ति रत्न पारकर समझ कर फेंक देन के समान है। हे आत्मन् ! तने लप साधन मिल हैं रक्षण रूप बोधि प्राप्त हुई है इष्ट्य सौख्य काय भवभाव सभी अनुरूप उपनयन हुए हैं अब प्रमाद छोड़कर आत्म मित्रि में लपार हो। निरन्तर मूढ स्वल्प का आराधना विनय में निरन रं। आत्मशास्त्रि हैं जीवन का सार है। यही एक मात्र उद्देश्य बनाओ।

एक विचार आता है मानव जीवन क्या है ? एक ब्रह्म का दोहा उत्तर का म समझ आता है यही पशु प्रवृत्ति है जो भाव भाग ही चरे।

मनुष्य है वही जो मनुष्य के नियम मरे ॥'

विचार करने पर सामाजिक जीवन में यह मन्त्र सत्य के का म उपरिष्ठा हुआ है। समाज व्यक्तियों की समष्टि है। हर व्यक्ति स्वयं है। स्वतन्त्रता में स्वच्छ रचना प्रविष्ट न हो। इससे निज सामूहिक अन्तर्निष्ठा है जिनका पालन प्रत्येक मानव का कर्तव्य है। सामूहिक जीवन समूह के उत्पन्न से उत्पन्न होगा और समूह का उत्पन्न उसके प्रत्येक मन्त्र के विकास से विकसित होगा। शरीर के पुन स्वस्थ हान से उत्पन्न प्रत्येक अङ्ग स्वस्थ रहना है और प्रत्येक अङ्ग के गुणवत्स्वित रहने से पूर्ण शरीर का विकास और उत्पन्न होता है। एक अङ्ग के किसी एक भी अक्ष म तनिक सी पीका हुयी तो सर्वाङ्ग म उत्पन्न केन्द्र (अनुभव) होता है। एक व्यक्ति का दुर्गरहित भी समाज के सौन्दर्य का घातक है और एक एक व्यक्ति का सगवार मिलकर समस्त समाज का आध्यात्मिक प्रकाश है। अविग्रह स्पष्ट है प्रत्येक मानव को अपने जीवन का शोध करना चाहिए। जीवन विकास का उद्योग करना चाहिए। माय ही यह समझे भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रमाण है कि जगत् विकास के पर म दूसरे की अवनि न हो। अम का परामर्श विना या अपमान कर का कुचक न बनावे। दूसरे का अपमान कर अपना उत्पन्न या प्रजना चाहना अर्थ को औपनि विना होने की भावना के मनुष्य है। यह क्या अभी समझ है ?

तो मैं को ही करना होगा ही पुन उत्पत्ति

सकना

म

है आत्म काय के अनिरित्त अथ किया जायों उसागानी म उमे न तो रवि होती है न आसति । मयम उसका जीवन बन जाता है । तप वमय त्याग भजन और बराग्य बस्य । ज्ञानात्मन पान कर आनानुभूति म निमग्न रहता है । यह है उसकी कता । ससारातीत होने का प्रयास है । हे आत्मन् तू इसी बौध्द म निष्ठात बन । यही सार है ।

ज्ञाना मोक्ष से आचोक्षित जीवन सप्तमया से मुक्त होता है । सम्प्राप्तानी सम्प्राप्तन सम्पन्न होता है । सम्प्राप्तिको विभी प्रकार की उभय नाक सम्प धी आकांक्षा नहीं रहनी । यह आत्म बानन म स्वच्छन्द विहार करता है । निस्पाद गुण म विमोह रहता है । सम्यक्त्व की महिमा अपार है । जिस प्रकार मोह राज समार म जीव को विमुग्ध कर देता है सम्यक्त्व इसका विपरीत आत्म रसास्वादन म तत्तीन कर देता है । हाँ वहाँ अज्ञान दशा रहनी है यहाँ साधधान पान रूप स्व पर विज्ञानी रहता है । पान दशन आत्मा का स्वभाव है । आत्म ज्ञान स्थान स्वरूप ही है । आत्मा साक्षीत्तर स्वरूप है । अज्ञान-वश यह लोक म है । तम्बी पाता म क्या नक ? जब तक मिट्टी का लेप चढ़ा है उस पर । सप हूँ मूँ कि पानी की सतह पर आन म देर नहीं । उसी प्रकार अज्ञान म हूँ मी अनन पानी आत्मा नाक शिखर पर आन हूँ जायगा । हे साधो ! ज्ञान प्रकाशन का प्रयास करो । ज्ञानाभिषेदि के लिए नरन्तर अभीष्टज्ञानोपयोग म रत रहो । ज्ञानाभ्यास ही इसका एक मात्र साधन है । शिष्याय से ज्ञान चतना सत्रती है । वह ता स्वय ही सत्री है । केवन उसकी श्रावट को प्रकट कर बना है । प्रदशन म मन्त्रिण वस्तुएं परदे म रहती हैं । परन्तु ते ही के स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाती हैं । आत्मा म पान चतना जागृत्यमान होती है मोहतम का परदा हटने पर वह प्रत्यक्ष हो जाती है । पानी ही उसका अनुभव कर सकता है आनन्द ले सकता है । जीवन का तोप पहेरी कन्ने हैं समझते हैं किन्तु जीवन वास्तव म पहली नहीं है वह ना अनरा पहनियों का मुनसा रूप है । समझन की कता हानी चाहिए । ज्ञानानुभूति उस समयले का एक मात्र उपाय है । हे आत्मन् ज्ञानानुभव कर । उस ही जीवन त य बना । ज्ञानानन्द में डबकी लगा । यही सार है ।

जन्म शिष्टांत अकार्य है । छद्मस्व व्यक्तिक गम त य परिणति युन होता है । स्वार्थ भाव रह सकता है । कभी भी आ सकता है । इसीलिए हमने ज्ञान निरूपित तत्त्व यथाय नूँ रह सक्त । कुछ मत्स्यता रही भी तो वह सबस समान रूप स अकार्य नहीं हो सकती । मयम तो अपना व्यक्त स्वय ही वस्तु भाव का आन नहीं जानता फिर उसका निरुक्षण किम प्रकार नहीं कर सकता है । हमने यह राक्षी दू पो हान से निर स्वार्थनियार पण्य क स्वरूप का कथन कृष्ण अगुमे स्यात् सप्त घटिहिए । इन विशिष्ट रूप रक्षित कता प्रतिपादक ज्ञान्य निर्माता नहीं हा सकता । यदि मान भी निष्ठा तो उसकी बाणी ज्ञान सदाय म शान र वर आत्म नूँ हो

अनाम हय विद्या उद्यान गता आदि म गद्ययोगी होमा तो वह अभिन और उत्तुङ्ग
 १ होकर गमना रह मरेगा । त्रिगमे गमात्र में सजुता बन रहेगा । मात्र म मानवता
 का संचार होगा । सुगु ज्ञानि का प्रादुर्भाव होगा । अनाति बेचनी नहीं आयेगी ।
 पारस्परिक गद्ययोग अनिराग है । इसमें स्वार्थ का त्याग करना होगा । निस्वार्थ भाव
 जीवन का विकास है । स्वार्थ में अयाय की गन्धी भरी होती है । मोम की लारिना
 छापी रहनी है । दूसरे को टपने का भाव मरा होता है । प्राप्ति की गुत्थियाँ उन्नी
 रहती हैं । यही स्वार्थ का अमिप्राय सांसारिक त्रिपद भोर ॥ सम्बन्धित है । आत्मो
 त्याग आत्म शुद्धि का जहाँ प्रश्न है वहाँ आत्म साधना का स्वयं होना ही चाहिए
 कि तु उसमें पर प्रनाशन का भाव तनिक भी न रहे । आत्मोत्थान में आने वाले शिष्यों
 का रहस्य स्वागत और उन्नतता से बरदास्न करना चाहिए । स्व पूर्वोपाजित कर्मों का
 मुसार ही जीव को दुःख मुक्त प्राप्त होते हैं बाह्य वस्तु निमित्त मात्र है । निमित्तों की
 सफलता और दुःखलता उद्दृष्ट या जीर्ण अवश्य करती है । अतः निमित्तों का
 परिहार अवश्य करना चाहिए किन्तु उनसे द्वेष या घणा करने की आवश्यकता
 नहीं । निमित्त साधन और बाधक दोनों ही होते हैं । यही नहीं फालात्तर में साधक
 निमित्त बाधक और बाधक साधन भी हो जाते हैं । वस्तु स्वभाव एक होने पर भी
 विभिन्न कार्यातरो के अनुकूल परिणामित हो जाते हैं । स्वानि नक्षत्र में गिरने वाले
 वर्षा कण जल बिन्दु बनने में बहुर बन जाते हैं, सीप में मोती सप मुख में विष
 हो जाते हैं । अतः एक ही वस्तु शुभ अशुभ अच्छी-बुरी हो जाती है । विचार करने
 पर सदातिव तत्त्व यही निजलता है कि निमित्तों के प्राबल्य में ही यह प्रज्ञा
 होती है । निमित्त हमारे बाध के साधक हैं उपादान के उत्तेजक हैं । हमें चाहिए
 कि हम अपने साधक सहायक कारणों निमित्तों का यथोचित साधनायी से व्यव
 करे सचित करें । प्रतिकूल कारणों का परिहार करें । इतना ही नहीं यदि बाधक
 साधन न हों तो हम स्वयं उनसे दूर रहे । यह हमारे पुरुषार्थ की प्रक्रिया है । हम
 चाहें जमा कर सक्त हैं । भविष्य का निर्माण हमारे पुरुषार्थ पर ही निर्भर है । आज
 का पुरगाय ही उस का दर बनता है । पुरुषार्थ अनीत स्व को नत कर लेता है ।
 वह उसमें भीत लग होता है । धर्म से उसका नामना करता है और परास्त कर
 बिरतन विजय प्राप्त करता है । उपसर्ग विजयो केवली अन्तर्गत केवली भगवान का
 पुरुषार्थ समभारमप अनीत दव पर पूरा विजय का ही तो फल है । हे आत्मन् सत्य
 पुरुषार्थ बना सत्रिय रने नि ले मग बने पगु मत बनो परमुत्पादनी नहीं
 रही स्वयं स्वयं में जागृत रहो । यही अनुभूति में अपार शक्ति होती
 है । स्थानुभर अमूर्त विनामनि है । इसमें जाने समान बरता निर्भय हो जाना
 है । तराश नहीं म रं या सागर में अघट जाये या तूफान इसमें क्या
 प्रयोजन ? वह जानता है नाव जायगी तो जाय मैं डूब रही सकता । उसे आत्म
 विश्वास है । वह आन में आनन्द है । आत्मानुभव की सम्यग्दृष्टि भी आपत्तियों में
 प्रसन्न रहता है शिवाभा में मुक्तता है सगर के बंधन से उन उन्नीतता रहनी

है आत्म काय के अनिर्दिष्ट अन्य क्रिया-कारणों उद्भासनीय में उसे न तो दबि होती है न आसक्ति। सत्यम उसका जीवन बन जाता है। तब ब्रह्मत्व प्राप्त भवन और वराग्य ब्रह्म। ज्ञानात्मक पान कर आनन्दानुभूति में निमग्न रहता है। यह है उसकी कथा। ससारालीन होने का प्रयास है। हे आत्मन तू इसी बीज में निष्ठात बन। यही सार है।

ज्ञाना लोक में आनन्दित जीवन सप्तमर्षों से मुक्त होता है। सम्पत्तानी सम्पत्तान सम्पन्न होता है। सम्पत्तुष्टि को किसी प्रकार की उभय लोक सम्पत्ती आकांक्षा नहीं रहनी। वह आत्म बानन में स्वच्छ विहृत करता है। निर्यान-व मुख में विमोह रहता है। सम्पत्त की महिमा अगार है। जिस प्रकार मोह राज समार में जीव को विमुक्त कर देता है सम्पत्तत्व इसके विपरीत आत्म रतात्वादन में तत्त्वों पर देता है। हाँ वहाँ अगार दबा रहनी है वहाँ सावधान पान रूप स्व पर विपत्ती रहता है। पान दशन आत्मा का स्वभाव है। आत्म ज्ञान ज्ञान स्वरूप ही है। आत्मा सोचोत्तर स्वरूप है। अगार-वत् वह लोक में है। तम्बी पाना में कब नक ? जब तक मिट्टी का लेप चका है उस पर। लेप हटा नहीं है पानी की सनह पर आने में देर नहीं। उसी प्रकार अगार तम हटते ही अगार ज्ञानी आत्मा लोक शिखर पर आसक्त हो जायगा। हे साधो ! ज्ञान प्रकाशन का प्रयास करो। ज्ञानाभिषिद्धि के लिए निरन्तर अमीशजानोपयोग में रह रहो। आत्माप्राप्त ही इमका एक माय साधन है। स्वाध्याय से ज्ञान चतना सजता है। वह तो स्वय ही सजी है। केवल उसकी सजावट को प्रकट कर देना है। प्रदशनी में सत्रिप बस्तु पर न रहनी है। परन्तु बनते ही वे स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाती हैं। आत्मा में पान चतना जावत्यमात्र होता है मोहनम का परण हटने पर वह प्रत्यक्ष हो जाती है। पानी ही उमका अनुभव कर सकता है आनन्द से सजता है। जीवन का लोग पहेला कहन है समझते हैं किन्तु जीवन वास्तव में पहेली नहीं है वह ना अनर। पहेलियाँ का गुनसा रूप है। समझन की कथा हानी चाहिए। जानानुभूति उस मगने का एक माय उपाय है। हे आत्मन जानानुभव कर। उग ही जीवन नदय बना। जानानन्द में डबकी लगा। यही सार है।

अन सिद्धान्त अकार्य है। छद्ममध्य व्यक्ति राग-द्वेष परिणति युक्त होता है। स्वार्थ भाव रह सकता है। कभी भी आ सकता है। इसीलिए उमका गग निरूपण सत्य यथार्थ नहीं रह सत्य। कछ सरगता रही भी तो वह सबब सपान रूप से अकार्य नहीं हो सक्ती प्रथम तो व्यप्य व्यक्ति स्वय ही वस्तु स्वरूप का अंत नहीं जानता फिर उमका निरूपण किस प्रकार नहीं कर सकता है। दमने यह रागी ही हाने से निर स्वार्थानुसार पण्य का स्वरूप का कथन करेगा जिसमें स्वार्थ स्पष्ट नहीं आ सकता। अन प्रतिपाद्य सबब अनगामी और सर्वोप्ये निरापत्नी ही होना चाहिए। इन विनिर्दिष्ट गुण रत्न वत्ता प्रतिपाद्य आत्म निर्माता नहीं हो सकता। यदि मान भी लिया तो उसकी वाणी रूप रक्षा में न रह सक्ती आत्म नहीं हो

सकती। आपने नहीं कहनाही जिनवाणी नहीं करी जा सकती। वर्तमान में मर्त्य नहीं
न हो हो सकता है। इसनिग सद्य वर्तमानवाणीय अर्थात् जिनना भी विनाश करें न
हो वह मर्त्य नहीं हो सकता उमरी वाणी आगम नहीं बन सकती। अन्तु न कोई
२५वीं सीयरर हुआ है ॥ है और न हा ही सचता है। यह पूजन अगमव है। इसी
प्रकार उसकी वाणी भी मर्त्य नहीं हो सकता। जो स्वय आगम विरुद्ध है वह आगम
वाणी का प्रतिपादन कस हो सकता है? मर्त्य प्रभु न विषय धीतरागी विषय कथन
जिन साधु का गुरु कहा है। इसके विपरीत जा वस्तु धारी है अर्थात् है भव्यामय के
विवेक स शय है विषय कथन राग द्वेषादि न युक्त है और फिर भी अपने का सद्गुरु
कह पूजा कराये अथ जयकार मनवाय वद कया मिथ्या दृष्टि नहीं है? अथवा ही
मिथ्यास्वी-माखणी है। क्या परस्पर की नाव कभी बटन जाने को पार कर सकती है?
जो स्वय डूबगो यह दूसर का क्या पार कर सकती है? कभी नहीं अगमव है।
मिथ्यादृष्टि को दब गुरु को मानन यात्रा जिन प्रकार सम्यक्स्वी हो सकता है? या
नियम से मिथ्यादृष्टि ही होगा। यह वाच विनाहियो का अलाडा है। विभिन्न मान्यनए
यहाँ प्रसारित है। इनके मध्य में सदा माग पर जिनका परम विवकी का ही पराजय
है। हे मुमुक्षु! भव्यामय नू सावधान रह कर जिनगम क रहस्य का समझा। जिन
प्रभु सबन हैं धीतरागी हैं उनकी वाणी अर्थात् है, पूजापर विरोध स रहित है।
तत्त्व व्यक्त्या क्या क्या है। नहीं भी विपर्यास नहीं आ सकता है। मूत्र ठाने
शका नहीं कराना चाहिए। पदार्थ क रहस्य को समझा की चप्पा करना चाहिए।
बुद्धिगम्य न हो तो भागामिद्ध नडा न करना चाहिए। धीरे धीरे प्रया की प्रज्ञा
हान पर धूमिल तत्त्व स्वय स्पष्ट हो जायगा। वातेन पचने बुद्धि समय पकर
बुद्धि परिपक्व होती है। अगम्य विषय बुद्धिगम्य हो जाते हैं।

जन मिथ्यात में आश्चर्य विस्मय कही नहीं है। सबदर्शी और सबगता हाउ
दखे ज्ञान समये विषय का निरूपण है। सब समव है। कोई कहे कि ज्ञान में
बन्धन सा अट पटी बातें हैं जो असंभव सी प्रतीत होती हैं। कुछ लोगों का कहना
है भगवान का रक्त सफा होता है यह कस संभव हो सकता है फिर स्वय
सबका लान ही रक्त दया सुना समझा जाता है फिर भला दूध के समान गाढ़
कस हो सकता है? प्रश्न स्वाभाविक है परंतु तक की कसोटी पर ब्रह्मनिष्ठ रूप
त विचार करने पर बराबर सही उत्तर प्राप्त होता है। नारी के स्तन में प्रारब्ध
स रक्त रहता है विवाह हान पर भी रक्त ही रहता है किंतु जब बच्चा होता है।
सा उठा क्षण व र र द्वारा दूध रूप परिणमन कर आपा आप प्रवाहित होने लगती
है। यह क्या? उसका उत्तर स्पष्ट है बच्चे के प्रति प्रेमता वात्सल्य प्रेम भाव।
आप साक्षात् एक ममान का प्रेमता यदि स्तन का साना का सफा में बल सकती
है। तो ताना सार क प्राणा मात्र जाव मात्र क कल्याण भाव ॥ आपाप्रसरक
निमग्न तार्थिक प्रेम का आपाप्र मन्त्र रक्त भा दूध वन शुभ रूप परिणत हो जाय
ता इसमें क्या आश्चर्य है? प्रभु क प्रतिक्षण भाव सधकल्याण क रहत है। अन्तु

जगत् से ही रहत का सार होना कोई दुसरा या अलग नहीं है अस्तित्व महत्त्व इत्यादि
 विषय है। इसी प्रकार तोषकर प्रथम उनके भाषा विज्ञान की बहस परासपर
 प्रतिनारायण भोगभूमि की भाषा के आहार होता है। किन्तु मोक्षार्थ नहीं होता है।
 इस विषय पर भी भाषाविज्ञान अनभिज्ञ लोग छीटा बसो करते हैं। यह अटारटो बन
 है। क्या ऐसा नहीं हो सकता है। भाषा बन पानी जिये और मोक्षार्थ का मूल न
 हो? भाषा विज्ञान परिये जरा लक्ष्मी की कसौटी पर जगित भाषाविज्ञान भाषा सम्प्रदाय
 का ज्ञानेयी। भाषा सीखिये भाषा का इच्छा चाहिए। एक बार १ मन कपड़े है दूसरे
 घर में १ मन लकड़ी है और तीसरे में १ मन बीजते हैं बीज में १ भाषा कुर है।
 चारों का अलग-अलग ज्ञान तो क्या भाषा सबकी बराबर होती? क्या की सब
 अधिक भाषा होगी उसमें कम लक्ष्मी की उसमें कम भाषाओं की और कुर की
 तो बिल्कुल रहेगी ही नहीं। क्यों ऐसा हुआ नहीं गया वह भाषा तीन? नहीं क्या
 वह क्या? तो जगत् इतना सब तो है। स्वभाव में ही नहीं होता। स्वभाव
 अनन्त होता है। इसी प्रकार नीच पुरुष भाषा में पुरुष भाषा में पुरुष भाषा में पुरुष
 और महात्मा महान् पुरुष इनके भी मध्यम की भाषा उत्तरोत्तर भाषा होती जाती
 है और तीर्थस्थान के कुर की भाषा उनका भाषा पान भाषा विज्ञान ही जाता
 है। उनका मध्यम नहीं होता इगम क्या भाषा है? कुछ भी नहीं। हे भाई साधो
 आत्मन् प्रत्येक रहस्य विशेष तथ्य लेकर ही रहता है। सबका अन्तर्गत कुछ नहीं है।
 अन्तर्गत प्रतिपाद्य ही नहीं। फिर वह भाषा व्यवहार में आ ही बने सकता है। तुम
 इष्टि सूक्ष्म बना। हृन्त क्या सोना। बुद्धि ध्वनित का वदने करो गान प्रकाश
 निवेद विद्या के साथ ही साथ सारी लक्ष्मी का संपादन स्वभाव ही जायेगा।
 बुद्धि और मति सहो होती चाहिए। प्राक्मिक अवस्था की मति का ज्ञान ही उस
 पर बसा ही भवन सारा हाता जायेगा। वहना पेट मोघा रक्ता तो ठगर जाने
 सब सीध-सीध ही रखने पड़ेगे और मति प्रथम पेट उठता है तो ता बाकी ऊपर
 तब ऊपर सब ऊपर ही रखने पड़ेगे। इसी प्रकार शिव विज्ञान में मति प्रथम मति
 रहता तो वह भाषा हुआ मिथ्या का सारा और मति विषय नहीं रहे तो स्वभाव
 लक्ष्मी उसका पीपण करता जायेगा। अस्तु साध आत्मन् मति प्रथम मति ही है।
 सहो गान सच्ची जानकारी करो। जिनवाणी पर विश्वास करा। जिनपद पर
 श्रद्धा करो। त्रिगुण प्रतिपत्ति तत्त्वा में सम्यक् रीति सम्यक् अवगति और मध्यक
 भाचरण करा। तदनुसार आत्मन् तत्त्व श्रद्धा ज्ञान और रक्षण करा। इन भाषा का
 एकाकरण ही आत्मा है स्वात्मोपनिषद् है स्वमति है मति गान चतुर्मास
 मति है। यह विरक्त भाषा है यही मति है। बाह्य प्रथम इसी के साधक होने
 पर भगवन् अमीष्ट सिद्ध होगा। निमित्त प्रवक्तृ चाहिए। बिना साधक साधना के
 निमित्त मत्ततत्त्वतः स्वात्मलक्षण नहीं आ सकता। पूरा स्वात्मलक्ष्मी होने
 पर परिनिमित्त न तो अपेक्षित ही रहता है न व टहर हो पाता है। स्वयं ही जाते
 हैं। जिन साधक निमित्त जुटाओ साधक स्वयं ही जायेगा और साध्य लक्ष्य सिद्ध

मम मुक्त करने में सफल हो सकता है। जिनके घर में तीन कमरों-बिधा नो खुल्ले
 वाली बहावन प्रचलित है वह दूसरे का स्थानिकरण, समाधान और स्थिरी
 करण कैसे कर सकता है भना ? हे आत्मन् मन तेरा साथी नहीं पड़ोगी है। वह
 नेक भी हा सकता है और बन्धनभी। उसका बन्धन तुम साधक बाधक बनाना
 तेरे हाथ में है न कि उनका हाथ में तेरा मुझा बिगाड़ है। तुम परम तत्त्व हृष्टो
 जाना हो। मन की लगाम स्वयं पकड़ा बस कर रखो। सामान्य स वस पर
 सवारी करा। बिघर बाधा स आभा। प्रथम म तत्त्व स्थान निर्धारित करो पुन
 शमन। कसी लगाम रहो। मान सही होगा तो अवश्य म तत्त्व स्थान पर पहुँचा
 देगा। पहुँचने पर तुम्हें उससे उतर जाना है वह स्वयं तुमसे पुष्प हो जायेगा और
 तुम भी स्वयं स्वयं अपने प्राप्य स्थान में निराश्रय पक्ष कर अन्धकार मुक्त में
 सदा के लिए निमग्न हो जाओगे।

“बट्टान क्यों बनी भगवान ?”

बट्टान पक्ष का अङ्ग है। कनडा सरासरी ऊँचा-नीचा देश महा एक
 स्थान में निश्चय हिस्सा। वह अन गया भगवान। किसी ने पूछ दिया क्यों भी तुम
 कैसे बनी भगवान। भरे पूछने वालों को क्या बनी है ? कोई ईर्ष्या से कोई डाह से,
 कोई प्रेम से कोई स्पर्धा से कोई मान अङ्कार से तो वाँ उन्मुक्तता से प्रश्न
 पूछा करते हैं। सबका अनाद-अपना अभिप्राय होता है। सबके हृदय के भाव अपने
 अपने व्यक्त होने हैं। बहुत म बेचन होगी मनाच में ही प्रश्न कर दते हैं। जो हा।
 यही तो प्रश्न है। सामान्य है अपने मन में भी आन करने की उन्मुक्तता है। क्या ?
 इसलिए कि एक जड़ पुञ्ज भगवान की गता प्राप्त कर सकता है तो क्या जीवन्त
 चतन्य स्वयं हम नहीं बन सकते ? अवश्य बन सकते हैं। प्रजया जानना
 होगा। समयन इसी उद्देश्य से किसी का प्रश्न होता है। हो सकता है। जो जो।
 बट्टान नहीं भगवान स्वरूप उसका रूप बीना। भवा मरा जीवन निराशा है। क्यों
 मैं निराशा हुआ अस्मान् निराश व्यक्ति के हाथों में पड़ गया। वह था चतुर
 होशियार साहसी और स्वाधीनी। मैंने (बट्टान से) उसके गुण अवगूण देखे। परन्तु
 गणों पर ही मैंने दृष्टि डाली। वे मानव इस गुण की परले में बाध। परदूषण मन
 देख। अन्धा ही तो निर गया हुआ। मैंने उस पर अन्धा की। इति सप्तम बडी वस्तु
 है। विश्वस्तता विनाश और अन्धगुण की अदमन साधक है। फलत अपने जीवन का
 सरा भार उस चतुर कलाकार के हाथों में सौंप दिया। उसने भी पूरा आश्वस्त
 होकर अपना प्रयोग प्रारम्भ किया। जो छेती से भेरा अन्न अन्न पद आता छील
 डाला। क्या आन साध सकते हैं हम समय की मयिक पीड़ा को। पर उदास क्या
 था ? मात्र सहन करना। उस भल पाण्डु ने जतना ही नहीं किया। पत्र लेकर
 मेरी पिताई शुरू की। पिछले रविवार मंग बुध हान था किन्तु कुछ समय बात
 मेरा रूप सौम्य निम्न उन्न विपरीत पन्न। चिकना खुदा छत्रोता हा गया मंग पान।
 वास्तव में न न गुण बट्टान्। जो विपत्तियों का बीच हँसकर गहरता है वही महता

[illegible]

आत्मा तः ह्यतः तव । अथापि तां विना गुण नास्ति । ते मिय मवती । सव
सम्यक् जीवत वा । तः ते । अथापि ते मृति वा बीज है । निज पद ही निज
वा आश्रय है । गती आत्मा अमरान्त है । हयविभाग है । परमानन्द है ।

यान - यह आत्मा का दुःख है? आत्मा ही मन के कारण। नर
विहारी सुर स्वयं न विहाय रहता है। आत्मा में घमटा है। जिस समय मन का
पथ भ्रष्ट होता है ना नित्यी पर बँध जाता है वम उगम बन्ध ही नित्यी का
जाती है और शुभ राम ओज नाथ गिर और उपर पाँव कर सटक जाता है। यह
दशा है जोय राज की। स्वयं स्वभाव से यह स्वभाव है कि तु माह में पड़ कर म
से निररीत शुद्ध हुआ मगान में सत्क रहा है। स्वयं मोही होता है स्वयं व
घमटा है। अपने जाय ही जाती और अपने ही ज्ञानी बनता है। स्वयं, स्वयं
जाग्रत होता है स्वयं ही साक्षात् है। जिना की मोक्ष में मस्त हाथर भोगों में लल्लपट
स्वयं ही होता है और समय जागरण में परिणत भूत में स्वयं ही ज्ञानमयिनी विम
सम्पन्न रूपी हार समय कर धारण करता है। मोक्षियों की माता ही तो है
भाव माना है जिसके मा पर साक्षात् और बोधराशि की सम्पन्न पराक्षा होती है।
भावो की धारा पर जीवन की धारा टिनी टिनी है। परिणाम शुद्ध होता ब्रह्म
है। भाव शुद्धि का सर्वोत्तम साधन है अष्टांगन का स्थापन करना। अष्टांगन ही
प्रकार है। अय की विमति देखकर उसके नाश का उपाय चिन्तन करना किनी
जय और किसी की पराजय विनाशना विनाशक उद्योग सेना आत्मा का ब्रह्म
निसा के कारण भूत छुरी बटारी जति माता आत्मा धन करना अथवा बली
दना यशोविष्ठा में पड़ कर जो जा अननस प्रशुति हाती है व सब पापोंतर
हाका उपाय करना उपदेश करना आत्मा का बंधन बद्ध करना है। आत्मा स्व
मुक्त है स्वयं सिद्ध है स्वयं स्व का कर्ता और भाक्ता है। अनामक पर का कर्ता
हुआ भोक्ता बनता है और नज्जय कर्णों का सहन कर दुखी होता है। है अष्टा
पर इत भावा का त्याग कर सुखी होना है तो।

[illegible]

नि नया दिन कहा जाता है। क्यों ? क्यों कि श्री १००८ वीर प्रभु ने वह पाया जो उन्होंने अनार्त्तिकाल से कभी भी स्वप्न में भी नहीं पाया था। अबून पूर्व वस्तु मिली निज स्वभाव निजान्त आत्मानन्द। उस अब न कुछ करना है न पाना है न खाना है न साजना है। जप में अपने ही रहता है सदा कान सदा रूप। यही है सत्य आज का। हे भक्त्यो बाह्य दीपक व माध्यम से अंतरङ्ग दीप जलाओ अन्तर्गति ही साधवत है। उस अंतरङ्ग प्रकाश का अनुभव रूप मोक्ष चरा ज्ञाना यह मोक्ष पूजन है। यही वीर का सत्य है उपदेश है प्रत्यक्ष निर्देश है। इसी को पाओ इसी में आओ। तभी यह साकार होया। पर पर दीप जलाओ निज रम आनन्द पाओ।

भगवान वीर प्रभुमुक्त हुए और उनके प्रथम शिष्य गौतम स्वामी हुए जीवमुक्त। कितना प्रभुत्व है प्रभु की बीनरागता का। वातरागभाव शुद्ध स्वभाव है। शुद्ध वस्तु का प्रतिबिम्ब भी शुद्ध ही होता है और उसकी प्रतिच्छाया भी जिस पर पड़ती है वह भी परम शुद्ध हो जाता है। भगवान का आत्मा परम शुद्ध है। उसकी झलक से भी बीनराम परम बीनराग हो केबन्धो बन गये। भक्तों का तार स्वयं भी मुक्त हो गये। यह है प्रत्यक्ष की बात प्रत्यक्ष प्रभाव चिन्तु परोक्ष प्रभाव भी होता ही है और रहगा। भगवान को मुक्त हुए २५ ३ वर्ष ध्यनीत हो गये। आज भी उनकी प्रतिबिम्ब उनकी शांत बीनराग छवि उनकी प्रतिमा में भी की ली विद्यमान है। हम चाहें तो उसका दर्शन कर भक्ति कर ध्यान कर उही के समान अवस्था प्राप्त कर सकते हैं। जिन गुणानुराग ही स्वानुराग है। जिन बिम्ब दर्शन ही आत्म दर्शन है। जिन स्वरूप का परिणाम ही स्वात्म ज्ञान है उनका तत्त्व चारित्र ही आत्माधारण है। या तो कहो जो भगवान हैं वही प्रत्येक भक्त का आत्मा है। अंतर मात्र इतना ही है कि उन्होंने उस पाकर शुद्ध बना लिया है समसारी भव्यात्माएँ शुद्ध हैं विभाव परिणामन कर रही हैं। करना क्या है ? तो हम भी शुद्ध रूप में आने के लिए वही करना है जो कुछ भगवान कर गये हैं। जिस माग में व गुजर गये वही माग हम छोड़ना है और उसी पर चलना है। उसमें कोई सन्देह नहीं कि फिर हम भी वस ही बन जायेंगे।

प्रत्येक मानव नवीनता चाहता है। जीवन के प्रत्येक क्षण में प्रति क्षण उसे कुछ न कुछ परिवर्तित रूप मिलता रहना आवश्यक है। वस्तुन वस्तु अवस्था भी इसी प्रकार है। पर्याय हर क्षण बदलती ही रहता है। तब प्रत्येक अवस्था में कुछ हा है। होता रहता है नया पन। यह नया रूप का प्रकार में होता है—(१) मूल और स्थूल के भेद। स्थूलता हमारे हृदय में होती होती और स्थूलता में मात्र यतिवत् अर्थक होता है इसी वह विस्मृत हो जाता है। जो हा वह सब कुछ होता है हुआ या और हो रहा है। जो पा है और होता वह सब कुछ बन कर रहता है। मूलभूत अर्थ का बार बार पुनः सा पुनः और पुन पुन में पुनः। क्या ही विस्मयकारक तथ्य है। पुराने में नया पन साजना जाता है और जो दास्यत्व में नया है उधर भक्त दर्शित हो नती आभी। आत्म कहता है—वह स्वयं के लीला का बार बार नया छोड़ने दे

यन पश्य विपटितं हुत कि प्रकाश ही प्रकाश । या का विच्छेद वायु है मग्न
ना ही पुरुषार्थ । यदि किन्हीं पर आवरण आता है जाना है । पश्य आत्मा पर
वरण है ता 'नूनाधिक' अवश्य होता है परन्तु यान् मग्न एव बार पृथक् हा जाय
पुन वगैरि आ नो सहता । यह स्वयं उद्घाटन स्वयं अप्रमत्त हा आत्मा ही
सहता है । एवं बार "हृत्" हुआ कि पन आ नो मरना । हृत् है न-म-तान है
वह आत्मा का निज स्वयं नहीं । विषय है स्वभाव नो । र है नि-म-तान है । मि-म-तान
यन्तु दानिब है वगैरि व-तानो मूलव है । सयोग विपति वा वारण है । मि-म-तान
अध्वरपरान्त है जो पन पन पर वट्ट दापी है । अध्वरपी वा भी सा सो जाय तो
वरण वगैरि रान बटती है फिर वना अद्वयव अवस्था जावन को चानर वगै न
होनी ? अर्थात् शरीरमम जय प्राप्ति दानिब है परिवर्तनशील है । तादिव भाव ही
निज स्वभाव है वनी प्रकाश है आत्मा का तेज है वगै इमी वा गामा । वह स्व उद्योग
पर ही निभर है । अपने ही वन पर उमे पाना है । पावन स्वयं हा ता उपभाग भी
करना है । स्वावलम्बन मुख है शक्ति है आनन्द है । निज गु-र-वही है इमी का
नाम है मुक्ति ।

चाह है चाह

चाह वट्ट है जिसमे किसी वस्तु का पन का अभिवापा हो । किसी वस्तु को
पाना यह वाक्यांश स्पष्ट चिन्ति कराना है कि प्राप्य वस्तु निज त मित्र है । पर है ।
वह अपनी नहीं है । निज नहीं ता फिर पर का हो करती है ? पश्यद्विषय व विषय
सम्बन्धी ही हो सकती है । इन्हीं मन्वर है और उनके विष-पी दानिब है । चाह
है । पावा । वसा गया । पुन वन के वन । चाह-पो की रों । तही मिला । आहु
सता हुयी । चिन्ता बड़ी । अनन्य जग । व्याकुल हुआ । वी दुल वा दुल । वही
टीस । वही वना । नूतता रहता है जीव चाह म । यह दग है एक विषय की चाह
में । अनेकों इन्द्रियों के अनेकों विषयों की चाह जय एवं गाय हुयी ता फिर हुए
दावानम भटवना स्वाभाविक है । वनचार पीडा से अभिभूत जावको मुख वही शक्ति
वही । चाह की पूर्ति होती नहीं । हुयी तो दूसरी तीसरी आदि ना-तपाय न जा
है । यह भयङ्कर रोग है ।

दाह क्या है ? अग्नि का ताप । अग्नि का प्रयोग करने में बूझ रही कि
शरीरालस को भस्म कर देती है । जीव जसा कि पारा पडा । पाते भरा । पूरा ।
हुवा । हुयी जलन । अगह हो गयी । राना पडा । चिन्ताहु-पी-ताना-तान ।
क्या है ? भयङ्कर पीडा होने लगती है । हाथ लप कर पड़ता है । उसी में रा
आकुल-व्याकुल रगता है । दानों में अन्तर ही क्या है ? तब का चाह आ
होना है और दूसरी वा भीतरी मन के आलम्बन म । दाह दृष्टिगत है अग्नि
दुन दृष्टिगत है चाह वा विषय और चाह दोनों ही नपु म परे नो इन्द्रिय
एव की पीडा वास्तु जगत समग्र सजता है दूसर का जलन स्वयं को भी स्व
हो पाती । एक का उपचार है पर दूसरी का बाह्य-वचार पछ नहीं । चाह

का उपाय उगकी मृद्धि का ही कारण हो जाता है। यह पर मत्नम मगाये तो फिर
सकता है। चाह प्रत्यक्षित अति जिगा ह तिमम त्रिमना इधन जाना जायेगा मत्न
होता बना जायेगा। दाह पर उपचार करने में उसका कामन हो सकता है। यह है
इस दाह का प्रभाव। चाह का अंत नहीं। फिर क्या उपाय है मृगी शांति का।
यस तक ही उपाय है और यह है समय। त्याग। समय की लगाम और त्याग का
चापुस ही चाह रूपी हस्ती को बस बन सकता है। समय में शांति है त्याग में सुख।
शांति और सुख ही आत्मा का स्वभाव है। यही त्रि भाव है। जहाँ अपनी बीज है
वही भय नहीं। निमयता विवास है। विवास में सतोष है। पूणता हान पर परम
मुक्त है। पूणता की अंतिम सीमा ही आत्म स्वभावापलघि का चरम विक्रम है जिस
की प्राप्ति ही अपना स्वरूप है। आत्मा का स्वभाव ही शांति है वही परम उपाय
है। जीवन की साधना में ही अपना वस्यान है। वस्यान ही परम मद्गत है। आत्मा
ही एक मात्र ऐसी वस्तु है जिसकी आज तक प्राप्ति नहीं हुयी। प्राप्ति नहीं होने का
अभिप्राय यह नहीं कि अज्ञेय हो गया किन्तु यह है कि उसका शुद्ध स्वरूप प्राप्त नहीं
हुआ। यही कारण है कि आत्मा चाह की दाह में गुलस कर अनादि स यह आत्मा
विकार मुक्त हुआ कष्ट सहता रहा। हे आत्मन् तू अब सावधान हो। निज रूप को
भजो परभाव को लजो। चाह और दाह दोनों के मित्तन पर ही सच्चा सुख निज
सकता है। चाह ही करना है उसकी वरी जिग पाकर पुन चाह बरनी हो न पड़।
अपनी वस्तु अपने पास है ही फिर पाना किस है। पाना ही नहीं रहा तो चाह होती
हा क्यों? जत स्वापलघि करने का प्रयास करा।

अर्थात्समनर्थात् घन-सम्पत्ति सम्पूर्ण अनर्थों की जड़ है। घन के प्रलोभन
में पड़ा मानव स्वयं को लो बटता है। उसका स्वाभिमान विनोद हो जाता है।
पराक्रम नष्ट हो जाता है। नमस्विक प्रतिभा क्षीण हो जाती है। धनार्थी पर लोभ
जगा ही जाता है। सुस्थ का निजो गतिथी मुष्टित हो जाती है। धार्मिक प्रवृत्ति
प्राय क्षीण हो जाती है। आध्यात्मिक उत्थय प्रतिक्रियत हो जाता है। नतिव जीवन
सकृन्तिन हो जाता है। घन का सोचुरी पर पीडा में रत हो जाता है। अहिंसा धर्म से
विमुख हो जाता है। सामान्य व्यक्त की बना बान धर्मशासन में नत। स्वाभाविक
भा इसमें बहुत में फस जात है। आरम्भ परिग्रह विरत प्रवृत्ति धारण कर भी
परिग्रह यह क लोभ उत्थय आन पर अनादि कामना वशात् स्वयं प्रवृत्त हो लोभ
जिगाह में वशीभूत हो अपना अनुपम अमर निधि का भूल जाते हैं। प्रवृत्त बान में
क्या उत्थय का जिस अभिप्राय से लगाम धारण किया क्यों पर परिपार धर्म
त्याग इ यदि उत्थय विमृष्ट हो जात है। पारलौकिक उत्थय का पूरा कर लौकिक
प्रिय का ह में मुा सिप्त हो जाता है। इत्थ लिए माध्यम (मीनियम) अथवा बरम
जाना है कि न य होता है मायाधार। जो मायाधार नियन्त्रय मति का ब घ करता
है। मृत्ति में ग्राह तन्त्रि में यो अभिप्राय क फलस्वरूप विलास मग्न हो हुये।
यहां से र मा भोय बाधित है। इत्थ प्रभाव से यह बहुत नती ध्यानी,

भी आँखें भी चनापमान हो जाते हैं। तू इस कर्मगुण की दृष्टि में कमतर लोग
पद में मत्त आ। उपसर्ग परिणाम मर्त्या तेरा बतल्य ही है। उसका बिना कम
पत्रा बहो। कम निजरा बिना सिद्धि कही? अरु विपत्तियों का झुकावना ही ता
माधुर्य है। माधु हो पायी बना। आत्मा ता न माधु है न मोयी न स्वायी न भागी
न रागी न शांति न बारी न बोरी न भूरी न ध्याना आँखें। फिर भमा य प्रयाग
बह बहो नस को हुए? आत्मा विभाव रूप को आँखें म निगो म मोम-नपायी
ते रिक्त बना ही विभाव रूप स्वभाव होने म। पर पत्रा को ग्रहण करना ही उसका
धर्माधिक परिणामन यनाँ स हा रहा है। इन परम्परागत विभाव स्वभाव व पारण
आत्मा स्वात भाव को भुम वर पुन पुन राग रूप परिणाम करने का ताँच हो
जाता है। विषय-नपायो म दोहन को आतुर हुआ यह भव निगम म आ तो नरिक्
भी नहीं निवर्तिताना। वही है नयकी अनादिकथ सिधति। एक भव म पहा सत भा
महामयदूर रूप धारण करती है। मरानो की प्रत्यक्ष दुःखा होता है घम घम भ्रष्ट
हो जाता है ता की लहराहाता मरिषा पान को दोहना है। जभाया कुट पिट कर भी
उमका स्वात बनना मी चाहता परन्तु सगरी विविध प्रकार तिराहृत विम जाने
पर भी स्वाभिमान नहीं सम्भालता। एव-एव न्ययन को यह दशा है विभिन्न व्यसनो
का सेवक अनेक पर्यायों म क्या ली बनना। यह दशाव परिस्थिति जीव की अनादि
म गती आ रही है। इ भाई अब विवर्ण जागा है तो अभी सही तू सम्मन अपन
स्वरूप को समझ। समय सार विमन ही पड़ ला नित्र में नित्र को पहचान बिना सब
निस्तार है। मुक्ति पथ बहुत दूर है। नित्र राग जाति उसम परे है। येत रे
चनन। येतना का उपयोम कर। बिना इनक नाव का च-पाव नहीं हो सक्ता।

सम्पूर्ण पर्वों में समस्त धार्मिक अनुष्ठानों म अष्टादिहा महापत्र परम पूज्य
परम पावन और महाउत्तम है। इस पत्र का जीवन-आत्मा स अनि निवट सम्बन्ध है।
सर्व धर्मों म आने म इनका म सम्बन्ध है। मनीषर हीर में अद्भुत
त्रिनविम्ब श्री त्रिनामय उक्ता है। नागो आर प्रत्यक्ष निग में १३ त्रिन मन्त्रि
है। यह मन्त्रि समस्त भूमि पर म प्रेरण अद्भुत निर्ग दधिमुख और रतिर नाम
बिलान विरि निधारी पर स्थित है। प्र ३४ पत्र म नामाधुमा नामा शुभ्र (मय)
और भूगा समान माय बह है। तब त्रिनम - एव ही आठ तलम
बीच भी धनुष ऊनी विष्णु भूमि सम
ओठ वाली श्याम की और १२
मोक्ष रति मन्त्रि मन्दर १२
वाणि दमकारी है। १३
रत्न माय १४
मन्त्रि-मन्त्रि-मन्त्रि १५
उप १६
कर १७

१८ त्रिनके विम बत
१९ वा छवि श्याम और स्वत
२० आभा समरुता है। नि
२१ वा तब चमकता है। १
२२ वनामनेत व ही निमम
२३ त्रिन १ है। १४
२४ व मन्त्रि-मन्त्रि
२५ त्रि-मन्त्रि १५

भी दुली हो रहा है—यह दुःख जीवाधिक है वी वि कम जय है पर निर्मितिक जो
 प्रतिय है नहर है। अना वन उन अपना मान पवडे हुए है। यह है विहम्बना ।
 ससार के साहचर्य म यह ममारी नाम धरा बठा है। इस उपाधि को पृथक् कर देना
 ही मुक्ति है। अतः ममार में न वास्तविक सुख है न सुख का स्थान न सुख के साधन ।
 सुख वर्णन में आत्मा में है आत्मा सुख स्वरूप ही है। सुखारथ है। अत आत्मा में
 ही आत्मा को आत्मा के ही द्वारा आत्मोच्च सुख प्राप्त करना है। आत्मा स्वभावतः
 गुणाकार सुखमय है। अतः सब सुखाग्राम है। ५० कहना कि ससार म हो आत्मानुभव
 पाता है उपचार है। कर्मोपाधि सम्पन्न आत्मा अज्ञान माह और विषयात्म के बाध
 भटक रहा है। अतः अपने स्वावलम्बन का भूला परावलम्बन म पमा जीव दुलों
 का शिकार हो रहा है। हे आत्मन् साधो। तुम एत रहस्य को योग-साधना के मत
 पर परखो पहचानो और पृथक् करने का प्रयास करा। सुख अपनी निजी सम्पत्ति है
 अपने ही पाम है अपने म ही निहित है। आत्मोत्थ स्वभाव प्रकट करो। अपने ही
 प्रयास म यह बाध सचन हो रचना है। स्वयं पुरपाय करना है। पुरपाय उपपुक्त
 होना चाहिए। पुरपाय तो मान्य करता हो है वि तु प्रान्ति धन सब विषय हो रहा
 है। विपरीत बड़ि क कारण अन्धका और भटक रहा है। मीठी सखी बात है। बुद्धि
 भ्रम निरापन का उपाय ही मही पुरपाय है। उ। भाग पर करने स ही यह सत्य
 प्राप्त होगा जितने अभाव म जाय भटक रहा है। पर पदावी म जितन दूर हते आत्मो
 को तपनी। निजानुमूर्ति मे लक्षणात्म करा। जितने ही मय सय हाते जाते हैं आत्मर
 उनने ही निजम व मरीम अने आश्रय। जितने ही मय सय हाते जाते हैं आत्मर
 का निज प्रकाश उठना ही प्रकट हो जाता है। यो बात है आत्म स्वभाव की।
 बाह्य इत्य कम जो कम भाव कम जितने ही आत्मा से भिन्न दूर होने जायेंगे आत्मा
 का स्व स्वरूप उठना ही प्रकट होता जयगा। आ ता एव दिन पून स्व स्वभाव मे
 आ जायेगा कम फिर अस्तु नहीं हो सारगा। यह आत्मा की निज शक्ति का महारम्य
 है, समारार है। इसी म यह आश्रय अन्तर-अन्तर निमय निबिचार परमानन्द
 योग्य विचारमय सुक्त है। यथा तथा अनन्त बात तक रहेगा।
 ते जीवामन् भगवत दृष्टा त् सगार का गार बन। सगार को गल
 मवाका उम भानाग। ज्ञान प्राप्ताने जो भी प्रति हुई उम पूर का परिणाम तो
 आत्मने जायेगा ही, कम भा देन ही उगका परिणाम भोगना ही होगा। अब यह
 आनी है बाध पत्र भाषने की विरा की। कम भोग। ज्ञान भाव स ध्रुव पृथक्
 गत्य होकर भोग ता व भी सत्य रूप के ही निर्जीव हो जायेगा। यदि इसमें
 पाल देव रूप विपत्तिमय विन ता फिर पुन कम ही पालक आत्मन होने उन्मुक्त
 बंध होगा और बननन शक्ति भी व जायेगी। पुन पुन यही प्रक्रिया कमटी रहेगी
 मसार बढ़ना जयेगा दुःख प्रत्य होता जायेगा। विभाव परिणमि न मिटेगी न ससार
 छोड़ा और न कम शक्ति विन सबने। यह शून्य अन्तिम परिणाम। यह स्थिति है
 इनके विहीन किता हुई तो सगार का बन हो गयेगा। संसारान्तर मरत्वा ही मुक्त

का मूल है। इस सोर सम्बन्धी वार्ता भी दुःख का कारण है यही दुःख का क्षेत्र है। शरीर और भोगों से निष्पन्न मुक्त जीव का आवाम ही सत्तार है। यो तो आकाश ही क्षेत्र है। सोकाश में ही घट द्रव्यों का निवास है। घट द्रव्यों से व्याप्त स्थान ही सोर है। सोर का सम्बन्ध अजुद्धारमा से है। जुद्धारमा का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। निरु मात्र आधार ॥ अत्रयः । वह भी अस्तिष्ठ आधार है। अतः सोकाश ही स्थिति है। ठगमें जाया कगे जाय ? रहा कैसे जाय ? क्योंकि सोर के वस्तिभूत जो कुछ है वह तो मात्र आकाश है। आकाश में जहाँ आनोकाश है वहाँ अत्र कोई भी द्रव्य नहीं हो सकता है न जाना है न जा सकता है। समनामन स्थिति भाँ के हेतुओं का सम्बन्ध है इस स्थिति में वहाँ रह कर सोकाश ही कते कता सत्तार है।

[illegible]

आते आते हैं बलत बिगड़न हैं उधर उधर ह । हैं । क्या भी होता है आराम भी मिलता है । सुख दुःख का परमार्थ अन्तर ही अन्तर आता रहता है । तदनुबन्ध बचन और काय भी परिणामित होने लगते हैं । तीनों का एकीकरण हो जाता है । मन बचन कार्य का प्रत्यक्ष शक्तिर उन्मीलन श्रुतश्रुत बन्ध बर्णनार्थ मरण का चरती है बस निरट जाता है आरामराम चारों ओर से घिर गया । अब क्या है निज स्वका को त्याग पर कर परिणाम का दिया हो गया विश्रवण । जहाँ मयोग है वहाँ योगता पन है । योग के मं मुक्त स्वभाव नहीं ? अनु- ३३ अनुज्ञावस्था का पद है । यही बन्ध है । कर्मों का जन संगार है । दुःख है सङ्गो है । सत्य दशा मं मुक्त शक्ति नहीं ? मन करना आहार छोड़े तो बचन काय भी विमुक्त ह । और तीनों की विपरता ह तो कर्मात्मक रहे । आत्म निरोध से संबन्ध होगा मगर से निजग और निर्जग म योग आत्मव निरोध से सत्ता निरोध होगा सत्ता निरोध से दुःख निरोध । आत्मोत्थ मुक्तावाप्ति । स्वानुमति । स्वसंवेदन ।

आराम विचार का साधन कथाय निष्ठ है । कथाय का दमन करने के लिए सत्यक विवेक होता अनिवार्य है । विवेक विशेष दिग्गज अर्थ ही अयोत्तम होनी है । जीवा अनामि म विषय विचारों का प्रभाव का हुआ है । विचार भासों म उरगा जीवन भारी भोग हो जाता है । आत्म भाव ऊपर न उठ कर दब जाते हैं । सुखी स्वभाव से सत्यक होने हुए भी गोपी मिट्टी के लेन में लपुन होकर गली में दूब पाती है । यही दशा है जीवन की । क्या भार के प्राक्का न समार साधन म विषयिजन हो रहा है । आत्म साधन का विहारी मात्र साधन म दबा रहे यह बनी विद्वन्बना है । मुक्त का आहार दुःखानि म नष्टा रहे मरता यह क्या दुःखा नहीं । विचार करो यह हो क्यों रहा है ? एक ही उत्तर आती ही स्वयं माननी के कारण । अपने अमान में क्या जीवामा मुक्ति विहीन हो जा रहा पर करे क्या ? मिथ्यात्व का संयोग से सविधम हुआ दुःख कि म काय विषय हुआ । मिथ्या दशन मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चिन्त अमाना कर विषय योगों म अगतक हो गया । यह आत्मिक ही समार का कारण है । मिथ्यात्व भाव म मुक्त होने का कारण यदि किसी प्रकार त्याग का परिणाम हुआ भी तो वह अमान मत होने के कारण ज्ञान तप म ही उत्पन्न कर अज्ञान निर्जग का समार का ही पाव बन जाता है । ह आत्मन तू शुभी होना चाहता है तो विवेक प्राप्त कर ।

हे आत्मन ! तू अपने ज्ञान वरण की विमुक्ति कर । आत्म मज प्रयास न करने के लिए विवेक प्रका और गद्विष्टि का सदुपयोग कर । स्वाध्याय कर । स्व अध्याय—अध्याय स्व—निज—आराम अपने आराम का अध्याय—अध्ययन करो । आराम को पढ़ो समझो जानो और मनन करो ।

हे आत्मन विचार मैं क्या ह मैं जीवन मे क्या किया क्या कर रहा ह । और क्या करना चाहिए ? समय धारण किया । वह भी महावत रूप । इतना महान पद । सर्वोच्च त्याग सर्वोत्तम धर्म । पर तिर्यक । अब करना क्या है ? इच्छा निर्वह ।

किस प्रकार ? निरतिशय निराकुन और गमभान में आतक । जीवन के क्षण
 क्षण तक निरतिशय प्रत्यक्ष प्राप्त करना है । उत्तरोत्तर मिलना, परिणाम, और
 पूगता आना चाहिए । बनी हो गये तो श्रिया में पुण्याय में लड़ना नहीं आनी चाहिए ।
 उत्साह भग्न हो । उत्तरोत्तर भाव शुद्धि बड़े तब वृद्धिगत होता जाय तब ही
 नया जोश नया प्रकाश नयी उमर नया-नया अनन्त आता जाय । यदि यह नहीं
 तो समझते जीवन आत्मा विनाश में है । एक दिन पूरा विरामित होकर अन्त में
 स्वरूप में आ ही जायेगा । हर एक श्रिया का फल होता है । फल की पूरा उपाय
 होने तक पुण्याय किया जाता है—प्रश्रिया की जाती है यदा अन्तोदय काता है ।
 जगदीश्वर प्रारम्भ की क्षेत्र पूरा अन गया हूँ टुकट्टर चनाना रूप श्रिया का हो रहा ।
 धाम उगी नरार्थ शुभ धाम पका कटाई हमने सभी सन्निधान में आया कि कटाई का
 दाय हूँ बीज निकला, दाय होना स्वयं का हो गया होना प्रारम्भ हुआ । परमेश्वर
 गया अनाज नाना का । स्थिर हो गया कृपक । निराकुन निरासुर । वस श्रिया
 समझते । शुद्धोपयोग का बीज बीजा है । शुभोपयोग भूमि की जगदीश्वर करी ।
 योग रूप धातु कबल परपर रूप राम देव विषय कपायो को चुनकर विकास को
 पूरा शुभ परिणति में आ गये अशुभ समाप्त । शुभ की भूमिका की पूगता करो प्रत्यक्ष
 समाधि के लक्ष्यधाम में समाहित करो त्याग का समिति मुक्त रूप पीछा के । दा
 करो तब वपनों से । शुद्धात्मा का अनन्त गुण का धाम तब विज्ञान आया धम तब ही
 श्रिया समाप्त हो गई शुभन ध्याना रूप श्रिविका में सम्भर अपने घर स्व स्वस्व में
 आओ । आ चका मध कुछ मात स्वस्व स्थान जान (धारिक) बीज मुन । तब
 प्राप्त हो गया । अब व्यापार की क्या आवश्यकता है । न धमध्यान शुभन ध्यात तब
 श्रिया समाप्त हो जायेगी स्वयमेव । है आत्मन वस्तुध्या करते आओ कार्य समाप्त हो
 पर श्रिया स्वयं समाप्त हो जायेगी । आ पातम तब प्रकट हुआ जायगा । यही स्थिति
 पराधि है । निष्कारण का स्वस्व प्रकट होना ही आत्मोत्पत्ति मुक्त है । अब क्या परत
 है ? कुछ नहीं कुछ करना दोष ही नहीं है । यही निराकुन दशा है । काटना का
 अभाव ही मुक्त है । यही स्थिर स्थिति अविश्वर अदाय अवन भाल स्वस्व है ।
 हममें स्थित आत्मा अनन्त काल तक यथा तथा रहेगा । तब गाओ । आत्मा का श्रिया
 हो रहा है कि नहीं तब पर निष्कारण इति स्वयं । सतत विचार करो । अनुभव
 श्रिया करत आओ । स्थान रह ये श्रिया सतत करत ही नहीं जाना है किनु अने
 धमे स्वानुभव आता जायेगा श्रियाओं का व्यापार भी समाप्त होना जायेगा और एक
 दिन आत्मा कृत-कृत्य हुआ जायगा ।

प्रमत्ता पता उनका दुर्लभ नहीं जितना प्रमत्ता पाकर निम्न रहता बलि है ।
 मन् प्रमत्ता का धानक है । अहंकारी का पतन अवश्यभावा है । अहंकार में दोष है
 धारित है यही कारण है कि वह यन्त्र बनाता का उपर नहीं उगा देता बलि
 विस्तृत कीर्ति को सङ्कुचित कर जाता है । जीवन का समझन पहचान को धम
 बना देता है । मानी का विरक्त होता है । प्रमत्ता आधन हो जाता है । कर्मसिद्धि

हो अकारण हो जाता है। रावण का यही हाल हुआ। ब्रह्म की यही दुर्गति हुई। अकस्मीति अहकाराविष्ट हो अवधुमार से परास्त हुआ। अवध का भागी हो धिक्कार का पात्र बना। अनुत्सुक प्रभना उभयलोक हिनकारी होती है। पूर्व पण्य से प्राप्त हुई। प्राप्त में सरल भाव रहा दया स्नेह ममता और करुणा बढ़ि बनी रही तो निमल उल्लस यश के साथ स्थायी-सातिशय पुण्य भी कारण होगी। इसमें कोई शका नहीं कि वह प्रभना परम्परा ॥ मोक्ष का कारण होगी। मुक्ति मार्ग सरल है। निष्पट है। निम्न है। इसका प्रतिपक्षी-बाधक अह्वार और ममकार हैं। अतः हृदय जगत् विषय भोग तामसो पाकर यदि विनम्र रहे तो धार्मिक आचरण सम्पन्न और पण्या मृगशी पुण्योपासन कर शीघ्र मुक्ति का पात्र बन सकता है। मुक्ति पपारोही आज्ञा गुण मत्त होना चाहिए। सरल परिणामी के मन बचन काम तीनों योग सरल एक रूप ही होने हैं। वह जो करता है वही कहता है और वही सोचता है। वह स्व पर का हिन भी समान रूप से विचारता है। बट बाणी नहीं बोल सकता। मगर बाणी से मसार निज रूप हो जाता है। मरा ठेरा भाव निट जाता है। सधार वश हो जाता है। पुनः शुद्ध परिणति आते ॥ निज र्थ स्थिर हो जाता है। यहीं आत्मानुमति प्रारम्भ होती है जो निज की सम्पत्ति है और सत्त अनन्तकाल तक रहने वाली है। हे आत्मन् पशस्वी बना। पशस्वी नहीं। यश भी चाह सज्जन का गुण है अहंभाव सज्जनता का अभिभाव। यग पाकर भी समम मोह मग्न करो क्योंकि वह भी निमित्तक है। सयोगों है सयोग में शुद्धता नहीं होती है निज स्वरूप का अवभास नहीं होता। सयोग मिथ्या वस्था है जिसमें शुद्धगत्वावभास होना असम्भव है। सु सयोगी सम्बन्ध का श्यामकर ही चिर चुली हो सकता है।

बचनना बचन का हेतु है निष्कम्पता भुक्ति या स्व स्वरूप में आने का उपाय। जहाँ हवन बचन है वही विकार है। आप देतिये रही बचाया जाता है। जामन मयाकर उने स्थिर छोड़ दिया तो जम जायेगा। यदि हिता दिया उपर-मुपन कर दिया तो बस वह नहीं जम सकता अपन वास्तविक स्वरूप को नहीं पा सकता। जीवन पूछ ॥ नवम जामन र्थमिष्ट हावर जो स्थिर हो पडा, विषय-विकाशान्तर कारणों के रहन पर भी विरुद्ध नहीं हुआ मन बचन काय को बचन नहीं होने दिया भा मुक्ति लगी रही अवश्य जम जायेगा अवस्था नमार ही है। योवस्थानों में ऊपर गल पर आत्म स्वरूप स्थिति प्राप्त होती है। सुमानुष पादा का आचर पाकर मन बचन काय भी तदनुसार सुमानुष रूप परिणमन करत गू लना जब तर बननी रहनी है तब तब आत्म बने है। इस का सहाय पाकर बन जाय है। स्थिर होकर है। इस प्रकार इनका व्यापार ॥ सधार है। स्थिति करना चाहिए, कथा का जम प्रहृति का अभाव ही लभाराभाव है।

[illegible][illegible]

आधार में यह अन्तर्मात्र स्वभाव में प्रकट होवे हीन पुरुष प्रत्यक्ष हो जाता है। दे-
 वछादि रश्मि को निर्मल निरावर्ण होने के लिए पवन अनेकित है। वायु
 घटाटोप में छिन्न भिन्न हो जाते हैं। घासकर अपने शुद्ध स्वरूप में प्रकट हो
 है उसका पुरुष प्रकाश व्याप्त हो जाता है शुद्ध स्वच्छ निमल स्वरूप प्राप्त
 जाता है। अब न वायु की आवश्यकता है न उसे प्रकट ही करने की जरूरत है।
 बस यही आत्म स्वभाव प्रकाशन की स्थिति है। जब तक यह प्रकट नहीं होता तब
 तक व्यवहार निश्चय शुभाशुभ में प्रवृत्ति विवर्ति नय निर्णय प्रमाणादि के
 की आवश्यकता है। करने ही पड़ेंगे। इनके बिना वह आत्मनुभव मोहर दे
 सकता। जिस बाल आत्मान अनुभव हो जायेगा आत्मा अपने अपनी रूप में
 जायेगी फिर तब इन मध्यमों की आवश्यकता अनेक स्वयं समाप्त हो
 फरने तब तब बाल रहती है मान नदार नहीं हुआ। काय मिट होने ही
 निरपेक्ष हो जाता है। वही कारण अनावश्यक है। हे आत्मन् तू करीब
 अपने कर्तव्य में मगन जाकर रहकर कम करते जाओ जब काय मिट हो
 कम किया स्वयमेव स्थिति हो जायेगी। इन के पक्षे अपने आप जान हो
 वस्तु मिटान्त यही है। मिटान्त अथवा अस्तित्व एकरूप होना है बगी सत्य
 काय निष्पाद होता है। तू सबसे अलग 'निराश' अपने जमा ही आप है।
 ही आप को पान का प्रयत्न कर। जिस क्षण अपने में अपने को मान लेगा
 ही आप को पा लेगा आप ही आप का हो जायेगा उस क्षण पर सम्बन्ध
 नहीं भवेगा। जब पर संयोग छिट गया तो स्वयं मिट परमात्म रूप निर-
 चेतन्य पुञ्ज मात्र ही तो रह जायेगा। अब उसे अन्ध की क्या आवश्यकता है।
 भर गया स्वयं भोजन से विरक्ति हो जाती है जब विरक्त भाव हो गया तब हाक
 नीरस पत्तियों से भगा प्रयोजन ही क्या है? वे रहें न रहें अच्छ हो या बुरे
 हों या कम? जने-नते जमे ही क्यों न रहें ज्ञानी का ज्ञान ही उधर नहीं
 वह स्वयं, ज्ञान, दृष्टान्त, स्वमवेग, चर्या चर्याना में ही निमग्न
 है। यह आत्मोत्पन्न आनन्द आत्म स्वभाव रूप ही है। इसमें पर का भोग
 है। हे आत्मन् अन्त पर में बगना सीमा अन्त में रहने का अभ्यास करो।
 पत्तियों में रहने के लिए विनये प्रयास करने हो उनमें बहुत कम भी यदि स्व
 रमण करने में व्यय करो तो अनाशास ही आत्म स्वरूप को पा सकते हो।

मन क्यों वेग में गमन की चेष्टा करते हो? क्यों नहीं तथ्य की मर
 पड़ने? बरे भाई थोड़ा पर धड़का है तो लगाम कमनी ही होगी रकार पर
 रचना ही होगा। पूँट जग का मजहार उस पर आसीन होना ही होगा। इन्ने
 आना-कानी क्यों करते है? व्यवहार में ही निश्चय सधवा अन्यथा निश्चय निर
 रहे न व्यवहार वह भी सोचा निश्चयमात्र रह जायेगा। इसी प्रकार निश्चय

की उमेगा कर व्यवहार ही में रमण करने मये तो ममार रणमञ्च ही सजना रहेगा अमडासद न रह कर अमडाभाय मडाभाय ही पने म रह जायेगा । बिना निश्चय बिदे व्यवहार रहेगा न व्यवहार धर्म ही । बिना व्यवहार के सब साधारण रूप ससार मोह घास बिमी भी प्रकाश ममान नहीं हो सकती । कोटू के बन वरू भूमन रहने पर बिदि बही मुन मणि मारन बही ? अम्नु मुभाभुम का निश्चय व्यवहार धर्म का सहाय-महा भेन मारि जानकर सम्यक प्रकार उनका परिपालन करो बिचार ना जीवन मे व्यवहृत करा तभी यथाथ अवस्था सिद्धावरणा सिद्ध होगी ।

त्रिनि न्य वनो । वन जाना है । टोव भी है । परन्तु प्रथम बिचार करो त्रिनि का अर्थ क्या है ? और इन्डि का अर्थ क्या है ? बिमी भी पदार्थ का अर्थ न समझो । उसकी माधना भी नहीं हो सकती । त्रिनि का अर्थ ॥ जीवन, विजय पाना । इन्डि का अर्थ है ज्ञान या ज्ञान का माधन । त्रिनि के द्वारा सब जान ॥ व है त्रिनि । इन्डि के समान के स्वयम् करने व्यवसाय में ममान रहना है इमीनिए इन्डि कहानी है । कोई भी इन्डि करने अधिकार से परे नहीं जाती दूसरे के काम में बाधा नहीं देती । जय का कार्य भी नहीं करती और न करना नाम दूसरी इन्डि में ही करवानी है । अब बिचार बिदे इन्डियों को जीवन से क्या अतिप्राय है ? ज्ञान का बिन्दु इन्डि है । परिचायक है ज्ञान का । ज्ञान उसका हमन करना का भाव मंगन होगा ? नहीं । फिर क्या है ? ये इन्डियां अमुदारा व बिन्दु हैं म ॥ मड के । अमुद ज्ञान का वगैरे भी इन्डियों के संयोग से ही अमड बना है । फिर ज्ञान के अमुदारा के परिचायक किये हो सकन हैं ? नहीं हो सके । इनका अमडारा मे कोई सम्बन्ध नहीं है । अमडारा निश्चय है । जरीर ही नहीं तो इन्डियों का अतिप्राय ही बही रह सकती है । ज्ञान की अमडारणा ज्ञान करने के लिए जरीर संयोग मिगना की होगा और जब जरीर संयोग मिटेगा तो इन्डिया का अतिप्राय स्वयं समाप्त हो जायेगा । जब तक जरीर संयोग है तब तक इन्डियों को जीवन है । अर्थात् इनकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति को रोक कर मंगन करना । इनके ज्ञान मकार को मीनित बनाना । यह कार्य बलम करना होगा । तेरी के साथ बननी हुई लारी को अमानक सब मंग इन्डि ज्ञान तो सब इन्डियों के स्वयं पर अवलम्ब करती बिन्दु छोटे छोटे रकाने का ज्ञान बिना मो इन्डि ज्ञान की और उपविषय मार देता । मड के वना को ही ज्ञानी । इन्डि प्रकार इन्डियों को छोटे-छोटे बिन्दु मंगन बिना ज्ञान मो व बन हो जायेगा । उपविषय इन्डियों अमडन ज्ञान नही करेगा । पुन उनका अमडन की इन्डि व वगैरे सब मंग व मंग हुआ अमडन हो ज देता अमडन हो जायेगी मंगेरे व ने मंगन । इन्डि इन उनको मणि की रोक हो जायेगी । अमडन करवा उनका अमडन इन्डि मड ज्ञान मंगन व मंगन इन्डि मंगन वगैरे देता । इन्डि प्रकार त्रिनि न्य होकर वगैरे सब जायेगा । सब मंगन मंगन ज्ञान का अमडन

है। आत्मा चन्द्रिय रहित और इन्द्रियातीत है यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है। आत्मा में वंश रस गंध स्पर्शादि भी नहीं है। निराकार निर्दिष्ट और निरूप्य है। यह आत्मा सर्वत्र स्वयं सिद्ध है। अनादि अनन्त है। तत्त्व सभी प्रकार अनादि अनन्त है। इन तत्त्वों से अभिव्याप्त अनादि ससार है। यह परमेश्वर बीज वा वत सूतान रूप, परो आ रही है और इसी प्रकार जाती भी रहणी। हमारी जीव गुण ही जायग निरु ससार उद्यो का लो बना रहेगा। ह, साधो ससार बदलना का व्यय बल क्यों काय हो ? अपने को बदलने का पुरुषार्थ करो। रतत्रय मयी आत्मा ही तरा निरु रूप है उसे ही सभाम। यही तरा गांधी निरु सर्व है जो आत्मा पात्र तत्त्वों के साव रहेगा।

पुण्य हेय है ? बयो ? बयो कि वह कम है। जो कम है वह ससार का कारण है। उसी रूप ससार है। सत्य है। कम कमरा जड़ है चाहे वह पुण्य हो या पाप आत्मा चत य है चाहे शुद्ध हो या अशुद्ध। शुद्धावस्था में चत य स्वभाव पूर्णोद्धार प्रकट प्रकाशमान है और अशुद्धावस्था में वह स्वभाव आच्छन्न है उसी शुभाशुभ रूप पल्लव। वना है आत्मा का निरु रूप पुण्य पाप रूप कम से। परन्तु क्या वह रूप हट नहीं सकता ? दूर हो सकता है। किस प्रकार ? तो प्रदर्शन करने से। उपाय बने। उपाय कौन करे। कम स्वयं कर नहीं सकता क्योंकि वह जड़ है। फिर ? अना यो ही पुरुषार्थ करना है। प्रयास करना है। जहाँ प्रयास है वहाँ आत्मा पराश्रय है। पराश्रित पुरुषार्थ भी शुभाशुभ रूप हो हो करता है। अब जाबिर वह पराश्रित कस ? जहाँ श्रिया की वहाँ आश्रय होगा ही। क्यों कि शुद्धावस्था ता श्रिया कर नहीं सकती। जो श्रिया करने वाला है वह शुद्ध नहीं हो सकता बाह्य योगावलम्बन है वही। मन, वचन और काय का आलम्बन लेकर ही श्रिया हो सकती है और वह शुभाशुभ रूप ही हो सकती। अशुभ प्रत्यक्ष दुःख रूप है। शुभ ही पुण्य रूप है वह भी यदि हेय है तो फिर शुद्ध हो वस वह दुःख असाध्य समस्या सामने आती है। इसका स्पष्ट समाधान सत्तो समाधान यो है कि पुण्य हेय नहीं है और सबका उपाय भी नहीं है। पूरा पुण्य का परिपाक हो जान पर वह अपनी अतिथि अवस्था को प्राप्त होकर स्थिति हो जाता है पुत्र स्वयं उसी प्रकार आत्मा से श्रिया प्रयास के पृथक् हो जाता है वस श्रिया अत्रपर या सप का सर्वाङ्ग से लिपटी बँचची अलग हो जाती है और सप का प्रकाश रूप सामने आ जाता है। क्या सप को उस स्थान से घट्ट होता है या हट जाता है ? नहीं ? वस वस वस बिछर निकल गई इसका भी उस आभास नहीं होता भान। जो होता है वस यो दशा पूरा पुण्य पाप पर वस आत्मा का है। वह जिस समय अत्रमान में मत्मान होता है वह पुण्य का बचसी स्वयमेव पूरा आती है और अत्रका शुद्ध रूप निराकरण रह जाता है। ह साधो ! पुण्य सबका हेय नहीं है। पाप सबका है। उपाय पुण्य उपाय उपाय करना होगा कि पुण्य का परिहार में प्रयत्न करने अत्रिथि नहीं। पुण्य आत्मा आत्मा का अतिथि से आया। सब वस

जिस क्षण स्व पर का भेद विदित हो जायेगा। आत्मा की प्राप्ति हो जायेगी। आत्म ज्ञान हो जायेगा। आत्मा में निवास हो ही जायेगा। इन्द्रिय और इन्द्रियविषय दोनों ही आत्म स्वभाव से भिन्न पर कृप हैं। परस्व ही इनका तत्त्व है। आत्मा चेतन और ये सब जड़ हैं। सबका भिन्न स्वभाव तो भिन्न भिन्न है ही किन्तु जीव-जीव समान चतुष्टय गुणधारी होने पर भी एक दूसरे से सबका भिन्न है। सांसारिक जीव तो अशुद्धावस्था में हैं। अशुद्धता प्रत्येक की प्रथम प्रथम है क्योंकि नाना रूप हैं किन्तु शुद्धात्मा भी अपने अभीष्ट सिद्धांतिक भ विराजमान होकर भी एक दूसरे में सबका भिन्न ही है। यद्यपि सब ही अनन्त सिद्ध एक धर्मावगाही हैं किन्तु र ता सबकी अपनी-अपनी स्वतन्त्र अलग अलग ही है। प्रत्येक सिद्धांतगत अपने अपने स्वातन्त्र्य स्वभाव का अपने-अपने में अनुभव करता है। प्रत्येक अपनी अपनी चेतना में तीन ही अनन्त गुणयुक्त होकर भी एक अलग अलग अलग अलग स्वरूप है। न आत्म स्वभाव का कोई आकार है न प्रकार। यह अव्यक्त है तथा एक स्वभाव रूप ही रहने वाला है। इस प्रकार के प्रकार पुरुष स्वरूप आत्मा की अनुभूति जिस क्षण होगी मेरे तेरे का भाव ही मिट जायेगा एकाकार आत्म भाव ही रह जायेगा। आत्मा ही आत्मा का होगा। उसी क्षण मानकता की साक्षकता होगी। मनुष्य भव वाला सपन होगा। जीवन का सही अर्थ प्राप्त होगा।

हे कल्याण स्वल्पे। कल्याण माग पर आकड़ हो। सब प्रथम समकार पर विजय करो। मेरापन मिटा कि तेरापन सहज ही मिट जायेगा। मेरा तेरा है क्या बताया। यह है कुछ नहीं मात्र भय है। डरना छोड़ दे यह स्वयं समाप्त हो जायेगा। मन ही तो बंध और मो है। म ही म और मो है का कारण है। मानसिक विवरूप जीव को आसर्वो म उल्लास कर आत्मा को परत व दिये देता है। अन्तरात्मा की बट-बट करने पर बचन और काय भी निश्चिन्त होकर चुपचाप बैठते हैं। जिनामम इन तीनों के हवन चलन को योग कहता है और मोयो को ही आसव कहा है। आसव निरीध संवर और सवर के अन्तर निजरा और निजरा की समाप्ति मोक्ष है। कर्मों का भय से निजलते निजलत जब सचित्त कम राशि पूज नष्ट हो गई तो शुद्ध आत्मा रह जाती है। घर है बहुत समय स खानी पहा या सिद्धिधियाँ (जयल) धुन से चारों ओर से पवन प्रेरित झूल मिट्टी बचरा आ रहा था। उसे सरी निचा अब मानिक के सब ओर से लीला बिबाड ब द कर साहसा प्रारम्भ दिया तो साहसे साहस अत में समस्त बुद्धा-बचरा निकल गया मात्र स्वच्छ मकान मात्र रह गया। इसी प्रकार समस्त बुद्धा बच कर्मों के झड़ जाने पर शुद्ध आत्मा रह जाता है फिर कर्म पर भी दृष्ट नहीं आता आत्मा से आकर नहीं चिपटना यही अवस्था सदा काय बनी रहेगी। यही मुक्तावस्था है। यही आद्य जीव सतत सुखी रहता है। हे साधो प्रथम शरीर कृपा मकान पर कर्म करो अर्थात् जीव स्वच्छता करो स्वच्छ कर समस्त पर दृष्ट कर्मों का परिहारा कर अपने निश्चित स्वरूप में तीन हो जाओ। यही अन्तिम अवस्था मोक्ष है।

मिलकर नभक पानी वह एक रूप न हूँ और न हो ही सकते हैं । सुस्पष्ट मुनिश्चित है कि प्रत्येक जीव स्व स्व सत्तानुसार अपने पूरे एक दूसरे से सवया भिन्न ही है । बाह्य सम्बन्ध औपाधिक और औपचारिक दार्शनिक असत्याय है । हे भाई अपने टनोस्तीण पावन भाव स्वभाव को प्रकट कर उसमें हा तल्लीन एव भव हाकर रहने का प्रयास करो । अपने स्वभाव को अपने में प्रविष्ट होकर अपने का देशो । आप में अनन्त रत्नों की महा ज्योति है । महा प्रकाश पुञ्ज में अनन्त शक्तियों का परिणाम कर उनको समाल कर रखो । आप अपनी निधि को अपने में आच्छादित कर महा मूल अत्यन्त दीनहीन पतित बन रहे हो । तीन लोभ का नाश अनाय धन कर इस प्रकार दुःखी होकर भटकता फिरे क्या यह तेरे जैसे सज्जन का शोभायमान हाता है ? ॥ मुन पतित से पावन बनो । स्वयं सुम्ह उठना है यचना है अपसर होना है । बढ़त जाओ डरने की आवश्यकता नहीं भाग बगोता बच है अवश्य यद्यपि तुम उठे या ही छोड़ रखता है न कभी साक्षात् न सुहारा न देखा न भासा न सुघ बुघ ही भी । पडा पडा ऐसा भयकर बीहड़ हो गया है । अब आ जाओ कम पथ पर बढ़ते बसो पगडंडी बनती जायगी यहाँ से अनन्तर तृणाच्छादित माघ की भाँति । क्या करना पड़ता है वहाँ । यहाँ आयी पक हो गई, घास उग गई आना जाना हा गया बच भाग भी छुप गया । न गली रहो न घाट न पगडंडी । यहाँ घरी घास घुल गई आना जाना प्रारम्भ हुआ माघ प्रशस्त बन गया । हे साधो ! राग द्वेष का साक्षिणी नि अभिसिद्धि काम त्रौघादि कषाय विचार कपी घास दूबाहि उत्पन्न हो गयी है अज्ञान कपी पक्ष स शिवमग आवृत हो गया है । जैसे जैसे राग-द्वेष कषा बंद होगी काम विषय भोग विचार घुल जायेंगे ज्ञान वैराग्य की सङ्क बन जायेगी निदम सवम की सवारी पर आरुढ़ होकर बढ़ते जाओ आवागमन से भाग स्वयमेव प्रशस्त होता जायेगा । सवेत निमित्त हो जायेंगे । यदि मध्यान्तर में यत्र तत्र कहीं भटकने का समय भी आया तो ध्यानालन से दग्ध झाड़ियों में उलझ नहीं सकोगे । बढ़ो जानिन् बढ़ो साधन बढ़त जाओ राही माग अवश्य भिसेगा, तब भी होना जायेगा । एक क्षण वह जायेगा जब कुछ भी करना न रहेगा । कृतकृत्य दशा हो जायेगी । साधन हो साध्य रूप परिणामन कर जायेगा । आत्मा परमात्मा बन जायेगा । वहाँ कोई भी विकल्प नहीं रहेगा । कर्ता कम की श्रुतमा समाप्त हो जायेगी । मात्र स्वयं एक ब्रह्म भाव ही रह जायेगा । अब न पापय चाहिए न साधो । तुम ही तुम रह जाओगे । कैम ? अविनाश । अविकार अक्षय अजर अमर साश्वत एव निर्विकार निराकार अनाम्य ज्ञानपुञ्ज स्वयम्भू । बस अब जा है बही रहना होगा सनत अनन्तो बल्प काल पर्यन्त । किन्ना यत्र पर निमित्तक ऐसा आयुव हाता आत्मा का कुछ शुद्ध विरास ।

हे साधो ! अपना बचव पाओ । नित्र विभूति प्राप्त करने पर ही सुहारा पुरपाय मायक है । आप आप में नित्राम करो यहाँ तो स्वयन्त्रय है । स्वाधीनता ही मुन और शान्ति है । प्रथम हम समझें कि हमारा जीवन क्या है ? हम कोन हैं ? हमारा बसत्य क्या है ? हम किस उद्देश्य से उत्पन्न हुए हैं । हमारा स्वयं क्या है ?

जिस क्षण स्व पर का भेद विनष्ट हो जायगा। आत्मा की प्राप्ति हो जायेगी। आत्म ज्ञान हो जायेगा। आत्मा में निवास हो जायेगा। इन्द्रियाँ और इन्द्रियविषय दोनों ही आत्म स्वभाव से भिन्न पर रूप हैं। परस्व ही इनका सत्त्व है। आत्मा चेतन और ये सब अदृष्ट हैं। सबका भिन्न स्वभाव तो भिन्न भिन्न है ही किन्तु जीव-जीव समान धर्मात् गुणधारी होने पर भी एक दूसरे से सबका भिन्न है। सांसारिक जीव तो अशुद्धा वस्था में है। अशुद्धता प्रत्येक की प्रथम प्रथम है कर्मानुसार। ॥ १४२॥ नाना रूप हैं विन्तु शुद्धात्मा भी अपने अभीष्ट सिद्धांतों में विराजमान होकर भी एक दूसरे से सबका भिन्न ही है। यद्यपि सब ही अनन्त गिद्ध एक क्षणावस्था ही हैं परन्तु सत्ता सबकी अपनी-अपनी स्वतन्त्र अलग अलग ही है। प्रत्येक सिद्धांता अपने अपने स्वातन्त्र्य स्वभाव का अपने-अपने में अनुभव करता है। प्रत्येक अपनी-अपनी धर्मात्ता में जीन ही अनन्त गुणयुक्त होकर भी एक अलग अलग अलग अलग स्वरूप है। न आत्म स्वभाव का कोई आधार है न प्रचार। वह अच्युत है एवं एक स्वभाव कर ही रहने वाला है। इस प्रकार के प्रचार पुञ्ज स्वरूप आत्मा की अनुभूति जिस क्षण होगी मेरे तेरे का भाव ही मिट जायगा एकाकार आत्म भाव ही रह जायेगा। आत्मा ही आत्मा का होगा। उसी क्षण मानवता की साधकता होगी। मनुष्य भव पाना सफल होगा। जीवन का सही अर्थ प्राप्त होगा।

हे कल्याण स्वकृपे। कल्याण माध पर आरुढ़ हो। सब प्रथम ममकार पर विजय करो। मेरापन मिटा कि तेरापन सहज ही मिट जायेगा। मेरा तेरा है क्या बलाय। मन है कुछ नहीं मान भय है। डरना छोड़ दे वह स्वयं समाप्त हो जायेगा। मन ही तो बध और भोग है। मन ही का और मोह का कारण है। मानसिक विकल्प जीव को आसक्तों में उलझा कर आत्मा का परतन्त्र रिये रूढ़ता है। अन्तरङ्ग की कट-कट दहने पर बधन और काय भी निष्क्रिय होकर क्षयभाव बढते हैं। जिनागम इन तीनों के हवन जपन का योग कहता है और योगी को ही आसक्त कहा है। आसक्त निरोध सवर और सवर के अन्तर निजरा और निजरा की समाप्ति मोक्ष है। कर्मों का जन्म से निकलते निकलते जब संचित कर्म राशि पूरा नष्ट हो गई तो शुद्ध आत्मा रह जाती है। पर है बहुत समय से खानी पडा या सिद्धियाँ (अथवा) धूल में चारों ओर से पवन प्रेरित घल मिट्टी कचरा आ रहा था। उसे खरीद लिया अब मालिक ने सब ओर से शीशा बिचाड बंद कर शास्त्रा आरम्भ किया ता आइते आइते अंत में समस्त कूड़ा-कचरा निकल गया मात्र स्व छ यकान मात्र रह गया। इसी प्रकार समस्त शुभा शम कर्मों के ज्ञान पर शुद्ध आत्मा रह जाता है फिर बंधन पर भी द्रव्य नहीं आता आत्मा से आकर नहीं चिपटता यही अवस्था सदा काल बनी रहेगी। यही मुक्तावस्था है। यहाँ आया जीव सतत मुक्त रहता है। ह साधो प्रथम शरीर रूपा मवान पर ज्ञान करो अधिष्ठित की स्वच्छता करो स्वच्छ कर समस्त पर द्रव्य रूपी अरूपी का परिणाम कर अपने निवृत्त स्वच्छ में जीन हा जाता। यही अन्तिम अवस्था मोक्ष है।

मृग और और मृग बीच बचता पकता आदि क्या हो सकते हैं ? तब ही नहीं । यह यह सब एक दूसरे का सहयोग है । सत्यता भिन्न पदार्थ भी एक दूसरे के साधन साधन हो सकते हैं तो क्या हमारे चित्त के लक्षणों में भी अनन्त गुण एक दूसरे के साहायक बन आना पुन विनाश नहीं कर सकते ? अवश्य कर सकते हैं । सामञ्जस्य करने का प्रयोग उद्योग आवश्यक है । बिना पुरुषार्थ मिश्रि नहीं मिल सकती है । पुरुषार्थ तो प्रायेण आत्मा करता ही है करता करता ही है करता भी है परन्तु यह सत्त्वा पुरुषार्थ नहीं है । सत्य नहीं है । अतुल्य सत्यपुरुषार्थ द्वारा वह अवश्य आत्मा की अनन्त शक्तियों का विकास हो सकता है । पुण्या प्राप्त कर निज स्वस्वात्मस्थ हो सकते हैं ।

ह माधो ! ध्यान करा । ध्यानी बना । पर प्रथम ध्यान ध्यानी ध्येय (प्रमेय) और उक्त परिणामजनक समान हो जाता है । ध्यान लक्षणा है । लक्षणा मन वचन और काय की करता है । पञ्चात्म मन का अग्रतिष्ठन अवाध गति की रोक कर किसी भी एक विषय में निगूँगे जाय ग स्थिर कर रहना मनानिष्ठ है । इसी प्रकार वचन और काय की विविध विविधता का गौरव कर एक ही रूप में काय में समान करना अथवा अगुम वचन अगुम काय चट्टाओं पर बहका करना वचन निरोध व काय निरोध है । जिस क्षण इन तीनों (मन, वी अनवर प्रवृत्तियों) एक जायेंगी पुण्याजन होगा । त्रिगुणियों का । भाव करने लगे आवगा । समस्त शुभा गुण अद्यवसाय जब निमित्त हो स्थिति हो जायेगा उस क्षण स्वयम्ब ध्यान हो सगता । ध्येय चुनो उसी पर दृष्टि धरो ध्या । सामान्य प्रतीत नही है स्फुल भी नहीं है जिसे पाना है उस ही ध्याना है । वही है आत्मा भुव शक्ति, मुक्ति और आनन्द । परम क्लेश है ताप है पीडा है चिन्ता है अज्ञाति है राग है कष्ट है आपत्तियों है तो भी अनादि सत्कार वशात् जोब उहा में जाना है उधर ही श्रुता है उनम ही रमता है उन्हें ही पकड़ता है भागता है और छोड़ता है । यह है परागमूत प्रजियाओं का परिणाम । क्यों यह हुआ और हो रहा है / स्वयम्ब की पहिचान न होने व कारण । पहिचान की बात छोड़िय विपरीत प्रतिभास हो रहा है हम । निज का पर और पर को स्व मान कर बुद्धि में अध्यास कर दिया है । तपस्वि साता बन बिना ध्यानी तपस्वी नहीं बन सकता है । विद्योग की तात्विद् दृष्ट बिना सदागी को भिन्न भिन्न करना कही आ सकता और भिन्न पदार्थों को सदा भिन्न बिय बिना उनमें से किसी का भी सही आनन्द मद्धा मिल सकता । परम पनी पान छनी पाकर भी उसे प्रमुक्त करने की कला जानना होगा । जानो समझा मानो जीर करो ।

हे भग्यारमन् आत्म तत्त्व की पहिचान कर । बिनाप्य उसम श्रद्धान पर अर्थात् जानकर विश्वास कर । विश्वस्त पन्थ में मन निरत रहना है । चित्तरमण की चेष्टा ही परिण है । राग द्वेष आ परित्याग कर एकाग्र होना आत्मनुभव है । विषय बधाय आदि में उलझा मन आध्यात्मिक क्षण से बहुत दूर है । नित्य जीवन में शक्ति लाना मानवता है । मनुष्य जीवन इसी लिए है कि अनादि सत्प्र एत आ म स्वरूप को प्रकट

वर साक्षात्कार करो। शरीर में ही कम है कम प्रशंसा में ही आत्म प्रशंसा उत्पन्न है। एक में एक मिले हैं। ससार रूपी क्षत्र में आत्मा रूपी बीज बोया है इसके पर्याय रूप चारों गतियों स्वरूप पीछा में पड़े दुःख भुक्त मयी घाय में शोक, तापादि बूझा कचरा रोग पीडादि कष्ट पत्थर मित्रता स्वाभाविक है। किसान क्षत्र (धैर्य) में बीज बो देता है वे उपजते हैं उत्पन्न में फल लगने हैं पकते हैं उन्हें निकाला जाता है उनमें साथ ही कष्ट पत्थर मिट्टी गन्ध ध्वनि भी मिश्र हो जाती है किन्तु विवेकी जन इस शोध भोजन कर स्वच्छ कर लेता है। यह है शुद्धाशुद्ध योग्यायोग्य विज्ञान। इसी प्रकार नुस्ते भी भ्रम विज्ञानी चेतना चाहिए। पर सचित्त, अचित्त मिश्र रूप द्रव्यों में मिश्र हुआ अपमा आत्म द्रव्य शुद्ध करना चाहिए। आत्म परितोषन करता ही आत्म स्वस्वोत्पत्ति है। हे प्रभो! आत्मन् तू स्व को पहिचान चेतना प्राप्त कर। शुद्ध ज्ञान चेतना ही तेरा स्वरूप है। कम चेतना और उमकल चेतना का परित्याग करो। ये दोनों चेतना तुममें भिन्न हैं। माय ज्ञान चेतना सरा निजस्व है। अपनी वस्तु छोड़ क्यों पर वस्तुओं में उलझ रहे हो। स्व पर के झगड़ों में पड़े रहने से आत्म स्वानन्द नहीं मिल सकता। हे माधो! साधना रत होकर यथाय साधुत्व को प्राप्त करो अन्यथा साधु होना व्यर्थ है।

भ्रम यथा है। विषय बुद्धि भ्रम है। विपरीत ज्ञान भ्रम है। ज्ञान का विकार भ्रम है। ज्ञान परिच्छिन्न करो भ्रम स्वयं मिट जायेगा। कुछ नम्र आकार का लटकता है तो रहती माय मिथ्या सत्य। ज्ञान में यन् सत्य का अध्यास ही भ्रम है दूध में मट्ठा सीप में चाँदी काँच में रत्न मरीच में आभा का अध्यास हुआ यन् सब भ्रम है। भ्रम कुछ अलग स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। अज्ञान ही भ्रम है मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व कम के अर्थ पूर्वक ज्ञान की विवृत दशा ही है। अज्ञान ज्ञान में विषय या विभ्रम नहीं होता। अज्ञान मात्रा में ये ते दृष्ट भाव अज्ञान में सन्ती होता है। अज्ञान भाव का समाप्त होता है। क्याय-छान हान में आत्मा का चरित्र गुण देव जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व और भाव का कारण में ज्ञान अज्ञान सम्बन्ध मिथ्यात्व रूप हो जाते हैं। यह है कम अविद्यता। कम परिणामि का नाम ही विषय है। विभाव में निज जीवन ससारवद्ध होता है। स्वभाव परिणामि में होता है समाराभाव। समार के बलों से ऊपर उठने का उपाय ज्ञान है। जानी अपने में निरत रह कर निजानानुभव निगम रहता है। पर का वर्त्ता नहीं करता जो श्रित्वा मानिक स्वामी नहीं होता वह उसके शुभाशुभ परिणाम पाने को भोजता भी भोग है। शुभाशुभ परिणामों से रहित दशा ही अपनी आत्म दशा है स्व परिणामि है। आत्म ज्ञप्ति है। आत्मा का ज्ञान दृष्टा पना ही तो स्वभाव है। आप में आपकी पाना आपे में जाना है। अपने धन का स्वामित्व होने पर ही वह उसका भोग कर सकता है अन्यथा नहीं। आत्मा आत्मधन का पावे सभी उसे भोगे अध्यास नहीं।

विहार किया। करना ही पड़ता है। सबका विचार होता है जन विहार, नौका विहार, द्वेज विहार, पैदल विहार यात्री विहार भोटर विहार आदि-आदि।

वृक्ष और और वृक्ष कीज बच्चा पक्का आग्नि रूप हो सकते हैं ? वनाग्नि नहीं। यह यह सब एक दूसरे का सहयोग है। सबका मिश्र पदार्थ भी एक दूसरे के साधक बाधक हो सकते हैं तो क्या हमारे निज के एकाग्र रहने वाले अनन्त गुण एक दूसरे के सहायक बन अपना पूर्ण विकास नहीं कर सकते ? अवश्य कर सकते हैं। सामञ्जस्य करने का प्रयास उद्योग आवश्यक है। बिना पुरुषार्थ सिद्धि नहीं मिल सकती है। पुरुषार्थ तो प्रत्येक आत्मा करता ही है करना पड़ता ही है कर रहा भी है परन्तु यह सच्चा पुरुषार्थ नहीं है। सत्नी नहीं है। अनुकूल सत्यपुरुषार्थ करने पर अवश्य आत्मा की अनन्त शक्तियों का विकास हो सकता है पूर्णता प्राप्त कर निज स्वरूपोद्घाति हो सकती है।

हे साधो ! ध्यान करा। ध्यानी बना। पर प्रथम ध्यान ध्यानी ध्येय (प्रथम) और उसका परिणाम फल समझने की चप्टा करो। ध्यान एकाग्रता है। एकाग्रता मन वचन और काय की करना है। चञ्चल मन का अप्रतिहत-अबाध गति को रोक कर किसी भी एक विषय में निस्पृही भाव में स्थिर कर रखना मनोनिग्रह है। इसी प्रकार वचन और काय की विविध विनियमों को रोक कर एक ही रूप में काय में सन्तान करना अथवा अशुभ वचन अशुभ काय चप्टाओं पर कब्जा करना वचन निरोध व काय निरोध है। जिस क्षण इन तीनों (योगों) की अनवरत प्रवृत्तियाँ रह जायेंगी पुण्याजन होगा। त्रिगुणियाँ होंगी। भाव सक्षेप छूट जायगा। समस्त शुभाशुभ अध्यवसाय जब शिथिल हो स्थग्निमान हो जायेंगे तब क्षण स्वयमेव ध्यान होने लगता। ध्येय बनो उसी पर दृष्टि छोड़ो ध्यान सामग्रा धरोत नहीं है स्थूल भी नहीं है जिसे पाना है उस ही ध्याना है। वही है आत्मा मुक्त शक्ति मुक्ति और आनन्द। परम क्लेश है ताप है पाडा है चिन्ता है अज्ञाति है रोष है बट्ट है आपत्तियाँ हैं तो भी बनाति संस्कार वशात् जीव उही में जाता है उधर ही झुकता है उनमें ही रमता है उन्हें ही पकड़ता है भागता है और छोड़ता है। यह है परागिभूत प्रवृत्तियों का परिणाम। क्यों यह हुआ और हा रहा है ? स्वपर की परिधान होने का कारण। पहिचान की बात छोड़िय विपरीत प्रतिभास हो रहा है इसमें। निज को पर और पर को स्व मान कर मुक्ति में अध्यास कर लिया है। तात्त्विक ज्ञान बन बिना ध्यानी तपस्वी नहीं बन सकता है। विषय की तत्ताविद् हुए बिना सदासी को भिन्न भिन्न करना नहीं आ सकता और मिश्रित पदार्थों को सबका भिन्न विय बिना उनमें से किसी का भी सही आनन्द नहीं मिल सकता। परम पनी गान छोड़ पाकर भी उसे प्रयुक्त करने की कला जानना जाना। जाना समझा मानो ओर करो।

हे भग्यारमन् आरत तत्त्व की परिचान कर। विनाश्य उसमें ध्यान कर अर्थात् ध्यान कर विश्वास कर। विश्वास पदार्थ में मन निरत रमता है। विश्वास की चेष्टा ही चरित्र है। राग द्वेष का परिणाम कर एकाग्र ज्ञान आत्मनुभव है। विषय बर्पाय आग्नि में उसका मन आत्मार्थिक भाव में वन्दन दूर है। जनिव जीवन में जनिव मानना है। मनुष्य जीवन इसी लिए है कि अन्त में प्रत्यक्ष आत्म स्वरूप को प्रकट

बद साधारणतर करो। शरीर में ही बर्मे है कम प्र जों में ही आराम प्राप्त उपमा है। तब में तब मिले है। सगार वही क्षय में आराम वही बीज बोया है। हमने पर्याप्त रूप चारों दानियों सबकष पीछों में वन दुम गुम मयी धाम्य में जोर, तागादि दूहा कचरा रोग तीव्रति बचक परपर मिनना स्वाभाविक है। विज्ञान क्षय (विज्ञ) में बीज को देता है वे उपजते हैं उत्पन्न में वन लगने है एवने है नहे निवाला जाया है उनवे साथ ही बचक परपर गिटी दानु धन 'द' भी मिथ हा ही जाती है किन्तु बिबेदी जन उन्हें शोध रोग बर स्वच्छ कर लेता है। यह है शुद्धागुष्ट धाम्यापोष्य विज्ञान। इसी प्रकार मुझे भी धन विज्ञानी बनना चाहिए। पर तावित अधित मिथ रूप द्रव्यों में धिमा दूहा कचना आराम दूकर शुद्ध करना चाहिए। आराम परिशोधन करना ही आराम स्वच्छोदाम्यि है। है प्रथो। आराम नू क्षय को पहिचान केनना प्राप्त कर। शुद्ध ज्ञान केनना ही तेरा स्वका है। कम केनना और कमरन केनना का परिस्थाप करो। ये दोनों चीजना ज्ञाने मिन है। ज्ञान ज्ञान केनना तेरा निजस्व है। अपनी बस्तु लोड वयो पर बस्तुओं में उपजा रहे हो। स्व वर व शगकों में वते रहने से आराम स्वाभाव्य नहीं मिल सकता। है गाथा 'साधना रत हाकर गवार्थ साधुत्व को प्राप्त करो अथवा साधु होना अन्य है।

भ्रम क्या है। विषय कृष्टि भ्रम है। विपरीत ज्ञान भ्रम है। ज्ञान का विचार भ्रम है। ज्ञान परिशुद्ध करा भ्रम स्वय मिट जायेगा। कृष्ट सम्ये आचार का लटका है ही तो रहती मान निष्ठा शय। ज्ञान में यह मान का अछास ही भ्रम है दूध में घट्टा छीप में ज़ांसी काँच में रत शरीर में जा मा का अस्थाय हाना यह सब भ्रम है। भ्रम कुछ अलग स्वय प्र वर्ण्य नहीं है। ज्ञान ही भ्रम है विध्यास्व है। मिध्यास्व बर्मे के उपाय पूर्वक ज्ञान की विह्वल दशा ही है। अज्ञान ज्ञान में विषय या विभ्रम नहीं होता। अल माया में व ते हुए भा कट अज्ञान में ही होता है। अज्ञान भाव का समाव होता है। कपायच्छन होने ग आत्मा का अग्नि गुण डक जाता है उसी प्रकार मिध्यास्व और मोह व कारण में ज्ञान अज्ञान सम्भवत्व विध्यास्व रूप हो जाते हैं। यह है कम विध्यास्व। इस परिणति का माग ही विभाव है। विभाव में विपत्त जोवन सत्तावच्छेद होता है। स्वभाव परिणति में होता है संगाराभाव। सगार में बप्यों से ऊपर उठन का उपाय मान है। जानी अज्ञान में निरत रह कर निजस्वाम्यमय निगान रहता है। पर का वर्त्तनी में अज्ञान जा जिसका मानिष स्वामी न। होता वह उसके शुभाशुभ परिणाम जन का भोगना भी नहीं है। शुभाशुभ परिणामों से रहित दशा ही अपनी आराम दशा है स्व परिणति है। आत्म शक्ति है। आत्मा का ज्ञाता दृष्टा पना ही तो स्वभाव है। अज्ञान में आपना पाना लाने में आना है। अपने घन का स्वाभित्व होन पर ही वह उसका भोग कर सकता है अथवा नहीं। आत्मा आत्मघन का पावे सभी उसे भागे अथवा नहीं।

विहार किया। करना ही पड़ता है। सज्ज विहार होता है जल विहार मोहा विहार द्वेन विहार, वेन विहार बाड़ी विहार, माटर विहार आदि-आदि।

वृत्त और और वृत्त जीव बच्चा पक्का आग्नि रूप हो सकते हैं ? बल्कि नहीं । यह यह सब एक दूसरे का सहयोग है । सबका मिश्र पन्था भी एक दूसरे के साधक बाधक हो सकते हैं तो क्या हमारे निज के एकाग्र रत्न बाल अनन्त गुण एक दूसरे के सहायक बन अपना पूरा विकास भी कर सकते ? अवश्य कर सकते हैं । सामञ्जस्य करने का प्रयत्न उद्योग आवश्यक है । बिना पुरुषार्थ मिट्टि नहीं मिल सकती है । पुरुषार्थ तो प्रत्येक आत्मा करता ही है करना पन्था ही है कर रहा भी है परन्तु यह सबका पुरुषार्थ नहीं है । सही नहीं है । अनुकूल सत्यपुरुषार्थ परा पर अवश्य आत्मा की अनन्त शक्तियों का विकास हो सकता है पूरता प्राप्त कर निज स्वस्वोपलब्धि हो सकती है ।

ह साधो ! ध्यान करो । ध्यानी उठा । पर प्रथम ध्यान ध्यानी ध्येय (प्रथम) और उसका परिणाम फल समझने की चेष्टा करो । ध्यान एकाग्रता है । एकाग्रता मन बचन और वाय की करना है । चञ्चल मन का अप्रतिहत-अबाध गति की रोक कर किसी भी एक विषय में निरपेक्ष भाव से स्थिर कर रहना मनोनिग्रह है । इसी प्रकार बचन और वाय की विविध विधियाँ की रोक कर एक ही रूप में वाय में समागम करना अथवा अशुभ बचन अशुभ वाय चेटाओं पर कब्जा करना बचन निराग्रह वाय निरोध है । जिस क्षण इन तीनों (योगों) की अनयक प्रवृत्तियाँ एक आर्योग्य पुण्याजन होगा । त्रिगुणियाँ होंगी । भाव सत्केत छूट जायगा । समस्त शुभा शुभ अध्यवसाय जब शिथिल हो स्थगित हो जायेंगे उस क्षण स्वयम्भूत ध्यान होने लगता । ध्येय चुना उसी पर दृष्टि धरो ध्यान सामग्री प्रदत्त नहीं है स्वतः भी नहीं है जिसे पाना है उस ही ध्याना है । प्रदत्त है आत्मा गुण शक्ति मुक्ति और आनन्द । परम क्लेश है ताप है पीडा है विनाश है अज्ञान है राग है कष्ट है आपत्तियाँ हैं तो भी अनादि सत्कार ब्रह्मा जीव उही में जाना है उधर ही श्रुता है उनमें ही रमता है उह ही पकड़ता है भागता है और छोड़ता है । यह है परामिभूत प्रवृत्तियों का परिणाम । क्यों यह हुआ और हो रहा है ? स्वयं की परिचाय न होना कारण । पहिचान की बात छोड़िय विपरीत प्रतिभा हो रहा है हम । निज को पर और पर को स्व मान कर मुट्ठी में अग्र्यास कर लिया है । तात्पर्य ज्ञाना बने बिना ध्यानी तपस्वी नहीं वा सत्ता है । विषय की तात्पर्य हूँ बिना सदायी को भिन्न भिन्न करना नहीं आ सकता और मिथिन पन्थों का सबका भिन्न विषय बिना उनमें न किसी का भा सही आनन्द नहीं मिल सकता । परम धनी गान छोड़ पाकर भी उस प्रयुक्त करने की बला जानना पाना । जाना समझा पानो और करो ।

हे भक्त्यात्मन् आत्म तत्त्व की परिचान कर । विनाश उग्रम अध्यान कर अर्थात् जानकर विश्वास कर । विश्वस्व पन्था में तत्त्व निज रमता है । विस्तरण की चेष्टा हो करिब है । राग द्वेष का परिणाम कर एकाग्रता ना आत्मानुभव है । विषय ब्रह्मार्थ में उमझा मन आध्यात्मिक भाव में दान दूर है । अन्तिम जीवन में शक्ति माना मानवता है । अनुपम जीवन इसी लिए है कि अन्तिम में एतन्नाम स्वस्व को प्रकट

पर साधारण करी। शरीर में जो कम है कम प्रमाणों में ही आत्म प्रमाण उत्पन्न है। तब में एक मिनट है। सत्ता रूपी क्षण में आत्मा रूपी बीज बोमा है इसके पर्याय रूप चारों गतिधों स्वच्छ पौधों में फलें दुस मुख मयी धाय में शोक, तापीदि पूडा कचरा राण पीटादि कचड पत्थर मिटना स्वाभाविक है। विज्ञान क्षण (छेत) में बीज बो देता है वे उपजते हैं उत्पन्न में फल लगने हैं फलते हैं उन्हें निकाला जाता है उनके साथ ही बचड पत्थर मिट्टी धातु धनादि भी मिश्र हा ही जाती है किन्तु विवेकी जन उन्हें शोध बीज पर स्वच्छ कर रता है। यह है शुद्धाशुद्ध योग्यायोग्य विज्ञान। इसी प्रकार नुहें भी भ्रम विज्ञानी बनना चाहिए। पर सचित्त, अचित्त मिश्र रूप द्रव्यों में मिला हुआ अपना आत्म द्रव्य शुद्ध करना चाहिए। आत्म परिचायन करना ही ज्ञान स्वस्वोपनिषद् है। है प्रभो! आत्मन् तू स्व को पहिचान चेतना प्राप्त कर। शुद्ध ज्ञान चेतना ही तेरा स्वरूप है। कम चेतना और कमफल चेतना का परिणाम करो। ये दोनों चेतना तुमसे भिन्न हैं। मात्र ज्ञान चेतना तेरा निजस्व है। अपनी वस्तु छोड़ बसो पर वस्तुओं में उन्नत रहे हो। स्व पर क झगड़ो में फसे रहने से आत्म स्वानन्द नहीं मिल सकता। हे माया! साधना मत हाकर यथाय चायुत्व की प्राप्ति करो अन्यथा साधु होना व्यर्थ है।

भ्रम क्या है। विषय सुद्धि भ्रम है। विपरीत ज्ञान भ्रम है। ज्ञान का विकार भ्रम है। ज्ञान परिपुष्ट करी भ्रम स्वयं मिट जायेगा। कुछ नस्ते आकार का लटका है है तो रस्सी मान लिया सप। ज्ञान में यह सप का अन्धारा ही भ्रम है दूध में मट्ठा सीप में चीनी कांच में रत्न शरीर में आत्मा का अध्ययन जाना यह सब भ्रम है। भ्रम कुछ अलग स्वतः में पत्थर नहीं है। अज्ञान ही भ्रम है मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व कम के उच्च पूर्वक ज्ञान की विवृत दशा ही है। अल्प ज्ञान में विषय या विभ्रम नहीं होता। अल्प मात्रा में वह है हृष्ट भा वह अज्ञान में सी होता है। अज्ञान भाव का अभाव होता है। क्यादृष्टान होने में आत्मा का चरित्र गुण डक जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व और मोह के कारण से ज्ञान अज्ञान सम्भव मिथ्यात्व रूप हो जाता है। यह है कम बहिर्दृष्टता। इस परिणति का माग ही विभाव है। विभाव में निप्त जीवन ससारबद्ध होता है। स्वभाव परिणति में होता है सकाराभाव। ससार के कष्टों से ऊपर उठन का उपाय ज्ञान है। जानी अपने में निरत रह कर निजानन्दानुभव निगमन रहता है। पर बा कर्ता नहीं है जो जो जिसका मानिक स्वासी नहीं होता वह उसके शुभाशुभ परिणाम पर ही भावता भी नहीं है। शुभाशुभ परिणामों में रहित नशा ही अपनी आत्म रक्षा है स्व परिणति है। आत्म शक्ति है। आत्मा का ज्ञाता दृष्टा पदा ही तो स्वभाव है। आप में आपसे जाना आपसे में जाना है। अपने धन का स्वामित्व होने पर ही वह उसका भोग कर सकता है अन्यथा नहीं। आत्मा आत्मधन का पावे तभी उसे भोग अन्यथा नहीं।

विहार क्या। करना ही पड़ता है। सबका विहार होता है। जल विहार मौका विहार ट्रेन विहार, पैदल विहार गाड़ी विहार मोटर विहार आदि-आदि।

विद्य होता है। एक क्षण में होना है तो दूसरे क्षण रोग है। यह सब है क्या। यह मात्र उपयोग का योगायोग प्रयोग है। उपयोग के अनुसार योगों की परिणति होती है। ये दोनों ही विद्यार्थी हैं विद्या परित्याग हैं। आरम्भ के तो हैं नहीं फिर इनके बारे क्यों सनना? इनके साथ-साथ क्यों मटकना। आस्था परमार्थ से रक्षित है। जिसकी ओ भोज ही नहीं उसका उमते प्रयोग नहीं क्या है? फिर उसने उत्तर मुख दुःख ही उसको क्या हो सकते हैं? कुछ नहीं यह वेदना प्रगट है। यह जिस क्षण निश्चय कर तो उपयोग अवश्यमेव बदल जायेगा। भोजन करना पड़ता है। करना पड़ेगा। कारण बदलीय बर्तन का उदय आया है ये छाती है आहार सत्ता का उदय है आनुसता हुई प्रुष की वेदना तोड़कर होने लगी। श्रीवांशराज का उदय भी साथ में आ गया। अब क्या दिया पाय। सहन नहीं हो सता यह दुःख का दुःख। बस, इन अस्वास्थ्य के बल हो भोजन करना ही पड़ता है। साथ है आनुसता का समन करना मात्र यही सत्य है तो आयाव नहीं होगा। अस्वस्थ भक्षण न कर सकेगा। हे आरम्भ विचार करो। दुःख की वृद्धि करना है तो योग्य शुद्ध निर्वोच स्वभाव है उनमध्य भोजन करो, योग्य वेद मनु जगज्जो। उसे पाने का पूर्व संस्कार मत करो उसमें तुम्हा मनु बड़ने दो। मिलने का बाद पुन पुन उसका स्वरूप मनु करो। स्पष्ट है सत्य जाने का क्यों बनाते हो। शान्त पड़ा। आ निवा। पुन आकरवक्ता पड़नी ली देखा जायेगा। उस समय जो कुछ जगज्जगत् सर्वात् कथा-गुहा गूढ विविधम् मिलेगा। पा निवा जायेगा। पहले ही से उसका विफल करना उसके लिए मात्र उपाय जुटाना परस्पर सनातनी करना किसी से पाचना करना अथवा समुद्र समुद्र पार्थ ही समुद्र रीति से मिलना इत्यादि विधियों से उपयुक्त योग और उपयोग नहीं करना चाहिए। मीन से आहार नरे। आहार ने पुन या पश्चात् किसी प्रकार भी भोजन सम्बन्धी चर्चा बार्ता या सफल न करे। विज्ञा इति रमना को पीने का यह सरस उपाम है। रस मीरन विरस कल्पना कथा सत्ता आदि का मन से भी विरस्य मन जाने दा। देने वाले के प्रति उनिह भी रोद लोच सतोष प्रसंगो हर्ष विद्या प्रीति गुणा या राग मेव रूप मात्र मन वचन काय न मन करा। सर्वत्र मध्यम भाव बनाओ। उसे ता मुद्रि करो। अनामक भाव निजपात्रा। यह भावन या भाजन करना मेरा स्वभाव तो है नहीं न तेरा इसत बाँ सगाव है। सज्जम्य पत्र भा तेरा नहीं है फिर भला क्या शुभ क्या अशुभ, क्या अच्छा और क्या बुरा। जाने तुरे की बलना हा मातम स्वभाव से भिन्न है। गद्य मध्य रूप आदि विविध स्वयं अक्ष है विविध है। कोई भी गुणम धावर घुमने नहीं कोई तुन बनात् बुजाने न। न कोई तेरा भावर करना है न निरस्कार। उनका परिणामन उनम होगा है और तेरा तुम न तू तुम में है और ये उनमें। न तू उनका है न ये तेरे फिर उनका जगज्जगत् बुरा तेरे अच्छ बुरे म क्या प्रयोजनीय है। हे मायो। चारों सगाओ से जाने को भिन्न सगाओ। ये सगाया तुमसे भिन्न है। तू इन रूप होगा नहीं हो सक्ता महा और नहीं ये तुम का हो सकते हैं फिर भला इनमे प्रवृत्ति निवृत्ति कर क्या स्वयं अपना भवा बुरा सोचता

विचारता है क्यों विविध कल्पना जालों में फँस कर दुःख उठाता है। सभी इन्हीं जड़ हैं। यों तिर हैं पुष्प के परिणाम हैं जो त्रिसमय होता है वह उसी स्वभाव रूप रहता है। अतः से निमित्त बनना, जड़ से निमित्त जड़। अस्तु आत्मा इन्द्रिय, रचना शून्य है। अतः अनीन्द्रिय भी है। भवा राग, रस, गंध वगैरे उनसे लिए प्रयोजनीय वस्तु हो सकते हैं ? नहीं हो सकते।

सिद्ध का अर्थ है तयार गया सया। आत्मा अनादि से अशुद्ध है, अमिद्ध है उसका निज स्वभाव में प्राप्त होना सिद्ध है मुक्त है। यह स्वस्वभाव निज में ही निज के द्वारा प्राप्त होता है। वह स्वस्वरूप एक है सब से भिन्न है शांत है अविचल है। उसे प्राप्त करने का साधन भी तन्मूक्त एकांत निरापेक्ष शांत, और अविचल-पवित्र होना अनिवार्य है। सिद्धावस्था प्राप्त अवस्था परमात्म साक्षात् रूप जहाँ परिणामी वह स्थान अथाप्य म नीरव शांत, उग्रवन शुद्ध निविभन और एकाग्र शांत होना ही चाहिए। यह स्थान परम पवित्र है नीरव है आकर्षक है मनोहारी है। ध्यान की एकाग्रता का हेतु है। निर्मल भावों का कारण है। परमोपलक्ष्य शेष का वगैरे पवित्रात्मियों के परम पवित्र कल्याणों से अनुस्यूत है। जीवन्त संशय बाह्य की भाँति हमारे अन्तःकरण को प्रभावित करता है। हमारी सत्पुष्ट अनुभूति को जाधन करता है। प्रच्छन्न अज्ञान को उद्घाटित कर अशुभ भावों का नाश शुभ भावों का प्रादुर्भाव और शुद्ध भावों की प्रवर्धन देता है। शांत मन शांत भावों को अग्र देता है। स्वस्थ मन स्वस्थ विचारों का निर्माण करता है। यहाँ के जिन विभिन्न एकाग्र मन के मत हैं मोक्ष प्रयोग हैं। एवं विलक्षण जादू के साधन हैं। अनेक प्रकार सिद्ध स्वरूप के पोषक हैं। शुद्ध शुद्ध स्वभाव का वर्त्तनी हैं। हे आत्मन् इन पावन कर्मों से पावनता पुनः जो भर लो सब लो।

प्रतिमा जिन का प्रतिबिम्ब है। विनेश्वर की छाया है। जिन रूप प्रति की भावति और उसमें विद्यमान शुद्धात्मा की आभा है। पावन जिन सयोगी हैं—अयोगी हुए और तब परमात्मा की ही चुरे। यह प्रत्यक्ष भावति सयोगी जिन का स्मरण करता है निश्चय विग्रह अयोगी जिनका और वीरगाय मद्रा म निहित शक्ति सिद्ध स्वरूप का प्रजापति विनायक कर रही है। हे भव्यात्मन् इस छवि के समान स्थिर होकर एकाग्रता से निहारो एक विल अवलोकन करो निष्ठापूर्वक उसी म तस्मीन हो जाओ इसमें और सुमम की अन्तर प्रतिष्ठापित नहीं होना, कोई भद्र निष्ठा नहीं देना। आत्मा ही परमात्मा है। वह प्रत्यक्ष जीवात्मा की समान है। समान की आत्मा भी शुद्ध दृजन ज्ञान अन्तःकरण असंख्य प्रपेक्षी है और तुम्हारी भी तन्मूक्त ज्ञान-दशन अन्तःकरण मुक्त असंख्य प्रपेक्षी ही है। मान ध्यस्त अभ्यास का अन्तर है। हमें मान इतना ही करना है कि ये जिन जिन प्रकार काय कर इस अभ्यास की प्राप्त कर सके उनी भावों की कर हम भी उसे करें। प्रभु का सिद्ध एक स्थान स्थित वह रहा है हे भव्यो पुनः पुनः आपका स्वभाव है। अब तब जो

पहुँच सकते। हम अपना कर्तव्य मुटु बनाना चाहिए। जो करना है उसी में सम्पूर्ण शक्ति लगा देना होगा द्रव्य, सत्व, कास भाव मन वचन काय आदि एकाग्र करना होगा। प्रारम्भ काय में सलग्न होना होगा सभी कार्य निष्पन्न हो सकता है। जो बीर आगत कठिनाइयों की परवाह न कर अपने पथ पर बढ़ता ही जाता है, निभय होकर वही लक्ष्य सिद्धि करने में समर्थ होता है। उसके समान आपत्तियाँ भ्रम जाती हैं कठिनाइयाँ पार हो जाती हैं सकट नष्ट मस्तक हो जाने हैं। यह है बलिष्ठ पुरुषार्थ का उत्तम फल। हे आत्मन सफल पुरुषार्थी बनो। मन स्वस्थ निद्रा द हो जायेगा।

जन्मोत्सव मृत्यु मृत्योत्सव है। परिवार लोग मनाते हैं। मृत्यु का स्वागत करते हैं। एक ओर मृत्यु को शाली दी जानी है उससे भयभीत होते हैं और दूसरी ओर जोर जोर से उत्सव मनाते हैं। क्या विचित्र विद्वम्बना है जो यह। वास्तव में यह विद्वम्बना नहीं अज्ञान का प्रसार है। ज्ञान बुद्धि का प्रतीक है। बच्चा बड़ा हो रहा है—१ साल २ साल बड़ा हो गया इत्यादि विवरण दिये जाते हैं किन्तु ये सब असत्य हैं। परन्तु लोक व्यवहार इन्हें सत्य का प्रतीक मानता है। व्यवहार धर्म ही ऐसा है। इसमें माना विद्वत्ताएँ समाना सी प्रतिमासित होनी हैं। इन्हीं प्रतिमासों का पुञ्ज सत्कार बन जाता है। घर मेरा है धन मेरा है घरनी मेरी है सगति सम्पत्ति अमुक समुक्त सब मेरा है। कहता है और देखने-सुनने बड़ने वाला न जाने कहाँ नौ बी ग्यारह हो जाता है और सब कुछ जहाँ का तहाँ पड़ा रह जाता है। दूसरा व्यक्ति तीसरा चौथा अनेक इस बीजुक्त को देखते हैं उनकी निष्ठा भी बरने हैं उग बेइमान साबित करते हैं झठा सिद्ध करने हैं और स्वयं उसी निष्ठा में बेचकन निभय निरद्वेष बड़न पड़े जाते हैं। भला इसका बड़नर बद्धि विरपय क्या हुआ ? निष्कारण क्या होगा ? कुछ नहीं अज्ञानी का यही स्वरूप है यही लगण है। जो इसे समझ ले वही ज्ञानी है। जानी उद्बुक्त उपजानों में निराल भाव नहीं करना अद्वैत नहीं मानना। वे जाय पाये तो हृदिन नहीं होता रह गये या या गये तो विनाश नहीं होता दुःखी नहीं होता। यह तो मान जाने को उनका पाता और हृष्टा मान रहा है। सगण्य सुमानुष दिवसों का कर्ता भोला नहा। इसी में मुक्त है। यही ज्ञान विद्यान का फल है।

पर विद्या कभी मनु करो। बगान् अनी बाग मनवाने की भ्रष्टा कभी नहीं करना चाहिए। दूसर का निरस्तार कर अपनी प्रतिष्ठा की चाह नहीं करो। करने आधीन के साथ हुनन बनो। हुननना दुःख का कारण है। पर निष्ठा स्व विद्या का मूल कारण है। पराधन बनेमोरादक होगा है। ह उ विद्यान बनाओ। सहनयोग बना। मदनगीतना उन्नति का सोपान है। आत्मोन्मथन के निम्न प्रयत्न का बद्धि परपादक है। पावन मन के निरु मान्यभाव आचरक है। मनना के निरु सनेन और मनने के निरु त्याग त्याग के बाहे सत्य और सत्य के निरु दया

भाव परमावश्यक है। क्या परमोत्तम है। क्या मुक्त जीवन आदर्श बन सकता है। नैतिक जीवन बिना तो कुछ होता है। आध्यात्मिक उपयोगी सौंदर्यान्वित होकर प्रकट होती है। तत्त्वों की तरफ साधक की साधना भक्त की भक्ति और उपासक की उपासना क्या है ही संपन्न होती है। ज्ञान के ज्ञाता तब तब निवृत्त संपूर्ण पद प्राप्त करते हैं। आत्म साधना को सकलता क्या ही से हो सकती है। क्या धर्म की जड़ है। धर्म आत्मा का स्वभाव। क्या मुक्त की किसी का विशेष नहीं कर सकता, परमात्म नहीं कर सकता। मते में एक दशा सब भव तात्पर्य युक्तों की जननी है। आगम भी एक अविद्या महाजन का प्रधानता देता है और उनी के आधार पर हमारे यही सामाजिक प्रवृत्तियाँ ही गई हैं। प्रथम आत्मीयता और अग्रिम महावीर भगवान का छोड़कर सभी धर्मशास्त्रों ने महाजनों का ही उद्देश्य दिया है। अहिंसा परमात्म। यही मान आत्मा को परमात्मा बनाता है। हे आत्मन् क्या मुक्त प्रकट करो। यही परम धर्म है।

आत्म-आत्मा का मुक्त है। यह आत्मा में ही है। आत्मा के द्वारा ही उपलब्ध है। आत्मा आत्म का भण्डार है। आत्म स्वभाव ही तो आत्मा है। बाह्य आत्म की प्राप्ति है। बाह्य उन्नी है आत्मी भी मूरी भी। योग्य भी अयोग्य भी। यह योग्य अयोग्य शुभ अशुभ की कल्पना हमारे व्यावहारिक जीवन की विवक्षिता है। इसमें परमात्म का कोई मनुष्य नहीं है। वास्तव में बाह्य मान आत्म स्वभाव का प्रतिफल है। आत्मा इच्छा रहित है। आत्मा में कोई इच्छा नहीं। इच्छा उन्नी है—बाह्य जली पूरा हुई तो हृदय नहीं हुई तो विषाद होता है। परन्तु हृदय और विषाद आत्मा का स्वभाव नहीं है। बाह्य ही विचार है। विचार स्वभाव नहीं होता। आत्मा बाह्य से ऊपर है। हे आत्मन् तू पुनः होत वर जो हृदय का आत्म होता है वह भी वास्तविक है क्या ? न तो संपूर्ण नहीं क्योंकि वह विवक्षिता ही नहीं। आत्मा और मया। वस्तु स्वभाव ऐसा नहीं होता। धर्म कभी भी धर्मों से वृद्ध नहीं हो सकता। नैतिकता विवक्षित होता है। अस्तु अज्ञान मनुष्य आत्मा का अवनत वह है जो प्राप्य होकर निवृत्त नहीं मित्र मरणा नहीं। उनी को जाने का प्रयत्न करो उत हो पाओ। यही जीवन का सार है।

एकत्व में मुक्त है आत्मा है। परन्तु यह एकत्व है क्या ? ऐसे समझा। पर वस्तु के साथ मिश्रण जाना एकत्व नहीं है। वह तो स्व स्वभाव अज्ञान है। हृदय और मूला दो मित्र मित्र हैं मित्र दो एक ही मय। यह एकत्व क्या सही एकत्व है ? अरे मूला और हृदय दोनों ही स्वभाव भ्रष्ट हो गये न सकल रहो न विविधता यह तो आत्मा ही गई। आत्मा द्रव्य है (सम-द्रव्य) आत्मवर्णनात्मि अट कव है। दोनों मित्र मय। एक ही मय। क्या यह एकत्व हुआ ? नहीं। यह तो सराबरी आत्मा विलक्षण हो गया। विलक्षण विवक्षित विवक्षितता का समस्त कार्य व्यापार भी विवक्षित ही होने लगा। यह एकत्व नहीं है। फिर क्या ? यह जिससे किसी प्रकार का विवक्षित

मन न हो । कोई भी विचार न उत्पन्न हो शुद्ध एक दशा ही बनी रहे । एक रूप ही रहे । किसी भी प्रकार का विपरीत भाव जाग्रत नहीं हो । शुद्ध आत्मा की उपलब्धि ही एकत्व है । शुद्धावस्था का पाना ही परमात्म वत् है । परमात्म सज्ञा ही मुक्तावस्था है । यही आत्मा की सिद्धि का स्वभाव है । हे साधो ! आत्मा को पाने का सतत प्रयत्न करो । पर का लेश भी न रहे । यह परत्व भावना मोह का फल है । पर स्वता का बीज मोह है । मोह राग और द्वेषोत्पादक है । यही सत्कार है । सत्कारोच्छ के लिए इन परिणामों का त्याग करो । ये भाव एकत्व के घातक हैं । इनसे अपना रक्षण करो ।

जिन दशन पाप नाशक है । पुण्य बढक है । दशन में मन पावन होता है । वचन पवित्र होते हैं । शरीर स्थिर और साधव गुण युक्त होता है । कसे और क्यों हो जाता है यह एक अमृत और अनोखा ही प्रभाव है । सोचने सोचते बुद्धि चकरा सी जाती है । बि तु तनिक सा प्रज्ञा का प्रयोग करें तो कठिनाई नहीं होगी । बड़ी आसानी से समझ में आ जायेगा यह प्रभाव । देखिये सेरोज जी क्षेत्र क य भगवान शक्तिनाथ स्वामी और अनेक अन्य सौम्य बीतराग सात भक्त भूमियाँ कितना अलौकिक माहात्म्य । ओठों की मुस्मान निर्विकार भाव का व्योमन करती है तो नागाग्र दृष्टि एकाग्र चित्तवृत्ति का उपदेश दे रही है । अलक नेत्र दृष्टि उ मीलित अंतरङ्ग दृष्टि एवमात्र आत्मार्जन का राठ पड़ा रही है । सौम्य छवि निमल अनन्त परोपकार दयाभाव का प्रकाशन कर रही है । पर पदाप अपना नहीं यह निश्चल विग्रह बता रहा है । क्या करना है सुनने जब से जब परमाणु मात्र भी अपना नहीं तो फिर बताइये भला कही जाना माना उठना खाना पहना सुनना ही क्या है और क्यों है ? कुछ नहीं । आप भी इसी दशा को पा सकने हैं मेरे जेते बनो । बस अपने में अपने को देखो । दोनों सम्म मुझसे इतकृत्य हो आओ कह रही हैं । दोनों चरण आवागमन का चक्कर छोड़ दो यह बतला रही हैं । जीवन जीने को है वह अमर है । बल्लभा नहीं है । पर मेरे जैना काय करो यह उत्तम अवस्था आरक्षो भी मिल जायेगी । मुझसे और आर में कोई अन्तर नहीं है । तब रूप एक है अन्तर से । बाहर की काँचनी हवा दो बस ।

दैनिक व्यावहारिक जीवन का उन्माद विचारों की पवित्रता है । मन स्वस्थ रहने में विचार भी निमग्न रहने हैं । मन की उग्रकलना शरीर क स्वस्थ रहने और साधो क पवित्र होने पर निर्भर रहती है । चरित्र की उग्रकलना मन वचन और काय की स्वस्थता पावना पर निर्भर रहती है । जीवन क्या है ? व्यवहारों का पुञ्ज ही तो जीवन है । जब लक्ष्य बुरा शुभाशुभ हवासे भ्रष्ट होत है जीवन बीना ही अच्छा या बुरा कहलाता है । आचार विचार ही वास्तविक जीवन है । आचार विचार न ब्रह्म ही होत है और लक्ष्यभाव से भी प्रयत्न साध्य होने है । सम्मर्पित दुष्ट व्यक्ति भी सम्मर्पित बन जाता है । पुण्यद्वार में लीला घाटा बना लेश के

सत्य पर नहीं पहुँचता ? अवश्य ही पहुँच जाता है । महापुरुषों के समागम से
 कार्य मुक्ति होती है । आध्यात्मिक जीवन की उन्नति के लिए विशेष मुक्ति ही परम
 होती है । आत्मा मुक्त बनता है । अनादि से सर्व बानिषा सिद्ध है । राग
 दवादि विचार मनों के निष्ठ है । उनका परिशोधन करने पर ही मुक्त का प्राप्ति
 हो सकता है । इन विविध सर्व मल वर्णों के पूरक करने के लिए तब स्त्री
 बलि समपूर्वक जलाकर लाना । पञ्चमिष विषयों की आहुति दा । ज्ञान की
 परिणाम में दासो सवेय भी पवन का महाराज को । जिना इसी आत्मशोधन नहीं
 हो सकता । इ आत्मन् गन्त विषयों को निवृत्त करो । एकाद मन उपायन की
 कर्तव्य है । कर्मावध वा निरोध योग निरोध से ही सम्भव है । अमुक से बचो मुक्त
 से ऊपर उठने का प्रयास करो । अथ यही उत्तम गम्यक आदि है ।

परम का ॥ है पण कदम । कदम-कदम बढ़ाओ मज्झिम पार हो जायेगी ।
 एक-एक आत्म गुण प्रकाशित करत जाओ अनन्त गुण प्रवृत्त हो ही जायेगे । अनन्त
 गुण ही और अनन्त ही समय । प्रति समय करने विकास का कथन रखो । दृष्टि में
 जमा ला कि पर भावों का उद्भव नहीं होने देंगे ज्यों-ज्यों पर भावों का अभाव
 होगा जायेगा । स्व विभाव प्रवृत्त होते जायेगे । आपे में आने जाओगे । प्रथम पर और
 स्व से सलोवी दृष्ट कर मेरा बनमान स्वरूप है यह निश्चय करो पुनः चोत्रने का
 परिशोधन करो कि य दो पदार्थ हैं क्या और विचार कैसे मिले हुए हैं ? पश्चि की
 पहिचान सही हो जाय तब आनन्द से प्रजा कपी ऐनी का प्रयोग जानू कर दो ।
 सर्व मन ऐनी बनाने जाना जैस ही दास सब सब एक सम दो विभाग कर
 बातना यही पारित की प्रिया की पूति हो जायेगी । आपे कुछ नहीं करना दोष
 होता । इस और पर के विभजन का ही समेसा है । इसी सयोग का सारा माटव है
 ससार है । जो कुछ भी करो सोच सो जिस व्यवहार को हम दूसरे के प्रति करना
 चाहते हैं उसे हम अथ से अपने प्रति करना चाहते हैं कि नहीं । जो कुछ कहना
 है जो कुछ भी सोचना है सबका विचार करें कि क्या हमारे लिए कोई भी कहे
 या सोचे । यदि हम क्या नहीं चाहते तो हमें भी उस प्रकार का व्यवहार दूसरे के
 प्रति नहीं करना चाहिये । यह है हमारे विकास को कुछी । यदि आप प्रमत्त रहना
 चाहते हैं तो आपका कर्तव्य है आप सबको प्रमत्त रखने की चेष्टा करें । यदि ऐसा
 न कर सकें तो हमसे किसी का कष्ट न हो यह तो अवश्य ही करें ।

प्रम आत्मा का भूषण है । अग्रही जीवन भार है । कृपा की शोभा पानो से
 दाहिना का सौ दय पुण्यो स रक्षा की मनोरमता पान से निन की सुपना निनकर
 से कष्ट की शोभा मणि से और मणि की शोभा बलय से इसी प्रकार मानव जीवन
 की श्री है समय । सत्ताचरण स मानवता निरखती है । अग्रत मयमविहीन नर
 निगद्य कुमुदवन आदरणीय नहीं होता । आत्मा एक असीमिक तत्व है । अनादि से
 निज तत्व की पहिचान नहीं हुई । विभाव रूप परिचयन करता आया है । पर

आरम्भ गुणों का सेनाने करो। इसी में रमने की चेष्टा करो। आरम्भ परिग्रह का आशान प्रदान पर रूप है। पर तो मत्ता पर ही था है और रहेगा। उसने तुम्हारा क्या साध्य है? कुछ नहीं। ॥ व्यापार निराधीन है निज में है निज का है इसलिए सतत रहने माना है। स्व व्यापार है देखना और जानना। कितना उत्तम सुगम शान्त निराशुस निर्विकल्प है यह व्यवसाय। सबको देखो उसी रूप में जो जता है। सब कुछ जानो वसा ही जो जैसा है। बस हमने आगे कुछ नहीं करना। यदि आगे बढ़े तो गढ़े में पड़े। दुष्ट में घिरे। फिर शांति कहीं? गुण कहीं? यह विवक्ष्य ही तो दुष्ट है। विषय को देखो जानो पर रहो अपने में। उनमें मत घुलो मितो यही है विवेक-स्व पर भद्र विज्ञान। हे साधो! तुम अपने व्यापारी अपने ही व्यापार के हो। अर्थ को न कुछ देना है न अर्थ से लेना है। फिर क्या करना है? स्वयं ही स्वयं को व्यवहृत करो अपने ही में अपने को निवास प्रदान करो। स्वात्मस्य परिणति ही आत्मोद्योग का सोपान है। आत्मोपलब्धि जीवन का सार है। जीवन क्षण भंगुर है। क्षणिक जीवन से अक्षयिक साश्वत वस्तु या सेना यह एक अलौकिक व्यवसाय है। अस्थिरता में ही स्थिरता पाना है। यह अलौकिक सिद्धांत ही चैद विज्ञान है। हे आत्मन् इसे ही पाने का प्रयत्न करो।

जीवन का वसात है त्याग। त्याग की कारियों में बराग्य के सुमन और बराग्य सुमनों में सयम का सौरभ शोभित होता है। मध्यस्थ आत्म रूपी पराग पाना है तो सयम में प्रविष्ट होना ही पड़ेगा। सयमी का जीवन निश्चरता है जैसे फिल्टर से जल तपाने से शुक्ल और तरासने से हीरा आदि। सबत्र पोष्य का प्राधा य है। प्रजिया का अनिष्टय है। आत्मशोधन में सयमपूर्वक चारित्र ही पुष्पाय है। बिना प्रयोग के समय का सार उपलब्ध नहीं हो सकता। सभी तो आधावों ने चारित्र खसु घन्मो कहा है। चारित्र से आत्मा का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। आत्मा अवगत हाता है। अर्थात् चारित्र शुद्ध आत्म स्वरूप पोपलब्धि का साक्षात् कारण है। कारण का कार्य में आरोप किया देखा जाता है। यथा अ न भै प्राणा' अन्न ही प्राण है। अर्थात् प्राण धारण में प्रधान हेतु होने से अन्न ही को प्राण कह दिया जाता है इसी प्रकार चारित्र को भी धर्म कहा है। वास्तव में निश्चय चीनराग चारित्र तो आत्मा का स्वभाव ही है। आत्मा का अन्य गुण है। आत्मा के सिवाय अन्यत्र नहीं रहता। हे आत्मन् सराव चारित्र के बल से निमित्त ॥ चीनराग चारित्र उत्पन्न करो। उत्पन्न तो है ही जो प्रवृत्त करो बस। यथोक्त असत् का कभी उदाह नही हुआ करता। सत् का ही आविर्भाव और तिरोभाव होता है। आत्म स्वभाव में स्थिति ही चीनरागता है। शुभानुभव कल्पना ही विवक्ष्य है सराव परिणति है। अस्तु चीनराग भाव जाग्रत करो। उसने लिए बस न की बहार अपेक्षित है।

कोविता की कुत्र से मन कूट उठता है और मन की चहक से आनन्द। परन्तु यह आनन्द पर निमित्त ॥ हुआ। अब पर कारण के अभाव में नाश होना भी

अनिवार्य है। जो कुछ परायेया से होता है वह नश्वर अवश्य होगा। वस्तु स्वभाव में परायेय नहीं होती है इसलिए वह स्थायी होता है। जल स्वभाव से शीतल है अग्नि उष्ण जीव चेतन आदि। यहाँ शीतलता, उष्णता चेतनता में अग्न विरोधी का सहाय्य नहीं है। स्वतः सिद्ध है इसलिए इन गुणों का कभी विनाश भी नहीं होता। पर द्रव्य संयोग से इनमें विकार अवश्य हो जाता है तथा अग्नि संयोग से जल उष्ण हो जाता है। शीत संयोग में अग्नि मन्द हो जाती है मिथ्यात्व अज्ञानानि कर्म संयोग से आत्मा ज्ञान दशन स्वभाव से व्युत्पन्न हो जाता है। किन्तु वह स्वभाव सदा मिट नहीं जाता। देखिये जल कितना ही उष्ण हो अग्नि पर पड़ा तो उसे बुझाता ही है। अग्नि कितनी भी मन्द हो बाढ़ ही पदा करती है। यह विकारावस्था पर द्रव्य संयोग तक रहती है। संयोगी पृथक् हुआ कि स्व स्वभाव प्रकट ही हो जाता है। वस्तु स्वभाव का कभी नाश नहीं होता और न नवीन स्वभाव उत्पन्न ही होता है। स्वभाव का आविर्भाव तिरोभाव होता रहता है पर द्रव्य संयोग से यही है पर्याय नय का विषय। हे साधो ! अपने मूल स्वभाव को समझो। उसकी कुछ उन्नी में ही उसकी चहुँक बड़ी है। पर वह सुनाई नहीं पड़ेगी जब तुम स्व पुरुषात्मा से समस्त पर विकल्पों का परिहार करोगे सम्पूर्ण संकल्पों का परित्याग करोगे यही स्वभावोपलब्धि है।

शुभाशुभ कर्मानुसार फल प्राप्त होता है। अर्थ को उसमें कारण मानना सिद्धान्त के विरुद्ध है। स्वाभाविक चीज है। सरलता से अवगत भी होता है। जो पान खाता है उसका मुख ओठ लाल होते हैं। जिसने खोपला खाया उसके कानों और त्रिभुजे स्याही खा भी तो नीले होने हैं। स्याही खाने या सगाने वाले का मुख लाल और पान भक्षण करने वाले का काला और खोपला खाने वाले का नीला नहीं हो सकता। स्पष्ट है जिसने जैसा किया उसने वसा ही फल पाया। इसी प्रकार जो जमा कम करता है तदनुसार उसे फल भी प्राप्त होता है। उसमें पर को निमित्त बनाकर उससे राग द्वेष कर मात रीक्षा छोटे परिणाम करे तो यह अज्ञान है विपरीत प्रक्रिया है जो मिथ्यात्व का पोषण करने वाली होगी। हे साधो ! स्वकृत कर्म के शुभ फल में अनुरक्त और अशुभ फल में अविषर रहो। इनसे कर्म की परास्त होना ही पड़ेगा। नवीन कर्मावृत्ति नहीं होगी। अपने मुख दुःख का स्वयं ही जीव निर्माता है। निःशक्ति शुभाशुभ कर्मों का मात्र भुग्नान कर देता है कोई नया सेन देन नहीं करता है क्योंकि जिस विषय सुख की छु अब तक चाह करता आया है वह सदा स्थायी सुख नहीं है। वह तो नश्वर है। मुद्याभाग है। मध्वा सुख तो वह है जिसके बाद पुन दुःख नहीं आने किन्तु वह "य विषय सुख के भोगने के कुछ क्षणोपरान्त ही त्रास व्यास चाह चाह देखी जाती है। घना वह सही सुख बने हो सकता है। फिर उसमें पर वर तो कोई सम्बन्ध है ही नहीं। हे आत्मन् सदा निज भावों की छान बीन करो। अशुभ से बचो शुभ में प्रवेश करो और पुन

मन्त्रमन्त्रेणात्तम्" कहने का यह सार है। बिना इसके वस्तु स्वरूप ही नहीं सकती। क्योंकि प्रत्येक वस्तु में विरोधी अनेक धर्म विद्यमान हैं जिनका प्रतिपादन स्वाभाव की उपेक्षा कर हो ही नहीं सकता। स्वाभाव ही समझा मरना है निरीत उष्ण पिता-पुत्र मानुष्य भविष्यत्व पत्नीत्व पुत्रत्व जैसे सबका विरोधी तत्त्व धर्म भी किस प्रकार एकाग्रित रहकर अपने अपने स्वभाव से लोभित होते हैं। यहाँ स्वाभाव या अनेकात्त सिद्धांत में द्रव्य योग नाम भाव व्यक्ति सामान्य विशेष आदि किसी की उपेक्षा नहीं की गई है। जब और प्रमाण का यथोचित प्रयोग किया गया है। एक धर्म कहा है यह क्या धुनी है टीक है दूसरा कहा है कि अहित है तीसरा मानवी बोधा धर्तीवी धाँववी मानी छग नन तो सातवाँ मीसी आनि। विधाये पर ये सभी कथन साथ उतरते हैं। यद्यपि मुझे य विरोध का प्रतीत होता है। किन्तु अनेकात्त की अपेक्षाएँ कसौटी पर सर्वथा खरा उतरना है। मित्त मित्त व्यक्तियों की अपेक्षा सभी बातें एक ही कथा के साथ सिद्ध हो जाती हैं उनमें कहीं भी बाधा नहीं आती न कोई हानि होती है। अस्तु वस्तु तत्त्व स्वच्छ स्पष्ट, धमा हुआ सामने आता है। हे भाई सद्धान्तिन ज्ञान ही टोच और मचाय है। इसी से स्व पर भद विज्ञान आगत होकर आत्म उत्थोपलब्धि हो सकती है भयमा नहीं।

आनन्द क्या है? बाह्य विज्ञान और अन्तरंग लक्ष्यों का अभाव होना आनन्द है। पर पदार्थों का परिमाण आनन्द है। नहीं पर पदार्थ ज्ञान के आच्छाद या साधक नहीं है अविशुद्ध बाह्य पर धर्मों में इष्टानिष्ट बुद्धि होना आनन्द का कारण है। अनिष्ट बुद्धि या आनन्द की घातक हो सकती है किन्तु इष्ट बुद्धि आनन्द घातक किस प्रकार है? मध्य है। समस्त सत्ता का समस्त एकाग्र मातृत्वान है, शक्ति है। नश्वर स्थिर रह नहीं सकती। अस्तु इष्ट पदार्थों का नष्ट होना विशेष आनन्द का घातक है। अनिष्ट संयोग और इष्ट विरोध दोनों ही आनन्द के शत्रु हैं। फिर दूसरी बात यह है कि इष्टत्व और अनिष्टत्व भाव भी निरन्तर एकसा रह नहीं सकते। एक समय एक पदार्थ इष्ट है दूसरे समय वही अनिष्ट हो जाता है। सही का प्रयोग हुआ जगत् की तपन सुगन्धी मगनी है श्रीमन्माल में वही आग भीषण ज्वलन का कारण बन जाती है। विपरीतता का द्विस्तव ही और भी विविध है। लोग सामग्री उपयोग सामग्री भोगोपभोग नाम में सरस और विषाक समय में नीरस प्रतीत होने लगती है। भोगानन्तर दृष्टि शक्ति मिलित हो जाती है शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं आयास धम आनि का प्रकीर्ण होता है। अतः बाह्य शुभाशुभ सामग्री ही स्थायी नहीं जो भी पसंद है उनका स्वभाव भी कोई निश्चित नहीं फिर भया के आनन्द साधक कमे हो सकती है? फिर आनन्द है क्या? स्थाय होना आनन्द है। आने स्वभाव में स्थिर होना ही आनन्द है। आने स्वभाव में उत्थीन होना ही आनन्द है। स्वभाव च्युति नहीं हो सकती, आनन्द स्वभाव में स्थिति परमाण्व

है। आत्मानन्द तो यहाँ भी मिलता ही रहता है किन्तु परमेश्वरी विवर्तनों से वह छिन्न चिन्न होगा रहता है। सबका परावतम्बन का त्याग ही परमानन्द है।

आवक स्वभाव प्रती है। अग्रती सम्पत्ति अन्तर्गत प्रकृति नहीं करता। कारण कि वह अष्टमूल गुणधारी होता है। पाँच पाशों का परिहार करता है। प्रती होने पर ही पाप त्याग होगा, यह नहीं है। जिहें यह प्रम है कि प्रतिमाधारी-प्रती नैष्टिक आवक का पच-पाप त्याग है वास्तविक को नहीं होता यह निमूल है। वास्तविक आवक सतत पाप भोज रहता है। हाँ जिस प्रकार प्रती नैष्टिक आवक अन्तर्गतों का त्याग करता है उस प्रकार वह निरतिचार त्रत पामन नहीं कर पाता किन्तु जान बूझकर प्रमादी हुआ दोष नहीं भगता। सब प्राणियों के प्रति दयालु होता है कष्टना भाव नहीं भाव गुणीजनों में प्रयोज आनन्द भाव रहता है। सत्त्व देव तारन और गुरु के प्रति अवाटम पद्धति न रहता है। अग्रत्य भगव नहीं करता। किसी के भी साथ दुर्म्यवहार नहीं करता। बहुत बकम निष्ठुर, परव भाषा का प्रयोग नहीं करता। बाय से कुपेष्टा वगैरे बचन आदि छोटी क्रिया नहीं करता। तटार शरीर मोक्ष में आसक्त नहीं होता। पञ्चपरमेष्ठो को मन-व शरण मानता है। वतमान कुछ धुन-गु निवर्तयवादी अपने को सबका सम्पत्ती भीषित करत है किन्तु खान-पान आचार विचार व्यवहार आदि को पूरा उपेक्षा करत है और दूसरा को भी ऐसा ही उपेक्षा देकर आचार विहीनता सिधित-चार सिधात हैं। यह प्रक्रिया स्वयं अपनी आत्मा को प्रभावित करने वाली है और दूसरों को भी दोष में डालकर कुमार्ग का पोषण करने वाली है। हे आत्मन् ऐसे पाछगिवा से पूरा सावधान रहकर अग्रती तत्त्व को पहिचानो और अनुसार प्रक्रिया करो। सम्पत्ति आवक अग्रती होकर भी तम विचारों में निरत रहना है। गृहस्थायम मन्त्र-प्रकार आरम्भ परिपक्व की विचार्य करता हुआ भी उनमें विषय को लीन नहीं रहना। आत्म स्वयं पान का सहज स्वभाव धारण करता है। प्रमा तत्त्व स्वभाव को प्रीति अव्यक्त गुण गुल्ल वपा परम धीनरानी निन्द्य निष्ठम गुरुता की वशी भी निष्ठा आलोचना का निरन्तर कर सकता है। वना न गता करता। गुरु निष्ठा की बाण तो दूर रहे वह अपने साधनों आइरा स भी किसी प्रकार विशेष करने को तैयार नहीं हुना और न विधियों विराधियों का हा अकारण निरन्तर का विशेष करना है। हम दूर शन आना करो। न करें। अपने भाव विचार का भोजन करें। अरों किरा-वचारों का ध्यान रखें कि कही हम चकार का को अव्यक्त तो किसी के प्रति नहीं हो रहा है जो हमार सम्पत्ति व गुण का व नक है। सावधान रहकर व्यावहारिक विचारों को करने स हम न गत नहीं हुना भी हुना उनमें अग्र निष्ठा और अवधान पशुता। यह मंगार का कारण न ह टर मुक्ति का मायक होगा। विषय विरक्ति का हेतु होगा। पदम स नैष्टिक साधकों का प्रयोग हमार उपर न प्रतिक न हो मरता। यह है ताम-वचन का महत्त्व। सम्पत्ति शार्वारिक वास्तविक विचारों को ही जाता है उपेक्षा नहीं न उ के करने का देना है।

शरीर शासन के उपाय अनेकों प्रचलित होते जा रहे हैं किन्तु क्या कभी शरीर शुद्ध हो सकती है। शरीर के सम्बन्ध से तो जड़ पदार्थ भी अशुद्ध हो जाते हैं। ऐसा युगित अशुद्ध शरीर भला किस प्रकार शुद्ध हो सकता है ? क्या वि नहीं। जिसकी उत्पत्ति स्थान धोनि-बोज ही अशुद्ध है उसकी शक्ति भला क्यों कर हो सकती है ? शक्ति तो आत्मा की करनी है। आत्मा मूल में शुद्ध है। पर सयोग से अशुद्ध हो रहा है। दो वस्तुओं के सयोग से जिसकी शक्ति है वह शक्ति के योग्य है। सयोगी वस्तु को पृथक् पृथक् करने के लिए उपाय करना बुद्धिमत्ता है। बुद्धि व्यवसाय का उपयोग आत्मबोध में ही है। किन्तु बाह्य नौबो जिसको शुद्ध करना है जिसमें सफ्यता मिल सकती है उसमें तो प्रमाद कर रहे हो उधर दृष्टि ही नहीं है उधर उपयोग लगाना ही नहीं चाहते हो और जहाँ निष्कल प्रयत्न है विपरीत परिणाम निकलता है शक्ति समय बरबाद जाता है। हे मुझ जन हो बड़ि बधन का सदुपयोग करो। विचार शक्ति अमूल्य निधि है। जल चिन्तन के माध्यम से जीव अचिरं दशा को प्राप्त कर लेता है। चिन्तन और मनन भी पराबलम्बी है मन के द्वारा होता है। मन पौष्टिक है—पर है। आत्मा से भिन्न है फिर भला वह आत्मा का क्या कर सकता है ? कुछ नहीं करडा तो भी मन की शुद्धि आरम्भ शुद्धि में सहायक अवश्य होती है। यद्यपि आप भी पथराज की तुलना को जा रहे हैं। ऊपर दृष्टि जाते ही मन हुताश हो गया इस अत्युच्च थोड़ी परकसे पहुँचा जावेगा ? शरीर पसीना पसीना हो गया और आप साठा टक जहाँ के तहाँ बैठ रहे। हमी समय दूसरा यात्री आ पहुँचा और आप के मन की प्राप्ति को निकालत हुए घोला अरे जी कुछ दूर नहीं है मैं कुछ भारी है आप जमोकार मन्त्र पढ़ने जाइये अभी अभी पहुँच जायेंगे। बल मुझ भी ऐसा हुआ पर मैं तो मन की मुनी ही नहीं और एकाग्र चित्त कर चलता ही गया वस बड़ा पार। उठा जसो आ जाओ मेरे माय। विश्रुत रहो आप अवश्य बचता कर लेंगे। अब आप देखिये विचारिय क्या उस शक्ति ने आप को पकड़ा या उठाया या बंध पर बठाया वह भी तो पर है सबका भिन्न है आप ही। आपका कोई भी तनिक भी सम्बन्ध नहीं उसमें फिर भला क्या किस प्रकार सहायक हो गया ? आप में उसका बंधन से एक प्रकार का आन आया उत्साह बढ़ा। वेग बढ़ा आप अपनी ही शक्ति से बड़ने लगे स्वयं चल पड़ आनंद आ रहा है चलने में हय उमड़ रहा है उमड़ छाई है मन बना है शरीर आनन्द नहीं है विशेष शक्ति प्रकट हो रही है। जिन दशन का अनुभव आनंद आनंद स रह है। दिनना समकार है पर निमित्त का फिर भला मन की शक्ति हमारी अत्यंत विशुद्धि को सहायक क्यों नहीं होती ? मन आत्मा से जुड़ा है अर्थात् घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसका अनिप्राचीन कास से परिचित भी है। यह पक्का भिन्न है। इसका गुणगुण करने से हमारा भी भाग्यमय हनु होना है यद्यपि मन्त्र प्राथमिक भूमि में इसका व्यवस्थान अनिवार्य है। उसके लिए इसकी प्रविष्टता सत्यता सन्तान भी अपावश्यक है। बिना इसको सहायक बनाये हमारे अन्तःस्वर परिभाजित नहीं हो सकत है। अतः

आर्त, रीढ़ परिणामों का सर्वथा त्याग करो। धम ध्यान में विलुप्त हो के संलग्न करो। निरंतर शुभ भावों का अङ्गन करो, अप्रम्यान मत मानो। मन की एकाग्रता होने पर कर्म बालिका आत्मा से वृषक होनी आत्मशुद्धि होनी और क्रमशः परम विशुद्ध शुभल ध्यान के बल पर परमात्मरूप प्रकट हो आयेगा, अनन्त अद्यय रहने वाला।

मोहाविष्ट ज्ञान स्वभाव परीक्षा नहीं कर सकता जिस प्रकार कौनों के मन से उभरत प्राणी स्व स्वभाव को नहीं पा सकता। मोह नशा है। मधुर बराही है। इससे स्वाद में आसक्त प्राणी स्व पर का भ्रम भूल जाता है। अपने स्वभाव से ध्रुत हो जाता है। जो स्वयं को न पहचाने मत्ता वह पर को क्या जान सकता है? ज्ञान का स्वभाव दीपक समान स्व और पर दोनों का प्रकाश करना है। क्या कभी दीपक को देखने के लिए अन्य प्रदीप चाहिये? नहीं। और न दीपान्तर अन्य पत्तियों को प्रकाशनाय जुटे दीपक की आवश्यकता होती है। जो दीपक स्वयं अपने की चार्ता है वही अन्य पत्तियों का प्रापक करता है जो अन्य को प्रकाशता है वही अपने (दीपक) को भी स्पष्ट ज्ञानवाना है। यही है ज्ञान का वैशिष्ट्य। ज्ञान भी स्व-पर अब भासक है। ज्ञान ज्ञाता है, जय भी है। सबको जानता है इसलिए ज्ञाता है और अन्य ज्ञान का विषय होता है इसलिए ज्ञेय है। ज्ञान इसीलिए आत्मा का अन्त्य गुण है। या कहिए कि ज्ञान ही आत्मा है और आत्मा ही ज्ञान है। दर्शन और चार्ति भी ज्ञान की ही पर्यायें हैं जिस वजह ज्ञान जीवार्ति तत्त्व तत्त्वों के अज्ञान या भास्य तत्त्व के अज्ञान रूप परिणामन करता है उस काल में यही आत्मा का अज्ञान या सम्पन्न भाव है। यही ज्ञान जब तत्त्व तत्त्वों के जानन रूप परगत होता है तो सम्पन्न बहुलाता है तथा जिस वजह तत्त्व-तत्त्व रूप परिचय का परिचय कर देता है ज्ञान निर्मल होता जाता है सम्पन्न हो जाता है उसी का नाम सम्पन्न चार्ति है। इन तीनों का एकिकरण ही आत्मा है क्योंकि तीनों गुणक अस्तु नहीं हैं अस्तु एक ही आत्म स्वभाव ज्ञान की ही सब पर्यायें हैं।

ज्ञान-वचन स्वयं आत्मा यही अस्तुत्वत्त्व है? वही ही अतीतिवत् आरवत्त्वत्त्व ज्ञान है। ज्ञाना निवार द्वारा ज्ञानी ज्ञाना निह देवत्त्व तत्त्व आरवत्त्व नहीं होता? अज्ञान ही आरवत्त्व की वजह होती अति आचारमन विवचनीय भी नहीं वही जा सकती। यह विवचन अज्ञान है अस्तु अज्ञानत्व नहीं वही जा सकती। आत्मा के समान अतिशारी गुणक प्रत्य है। इनके २३ विधों में २ प्रकार विज्ञान कार्यकारी है। इन अस्तुत्त्व गुण का नाम ज्ञाना है। ये २३ प्रकारों में विवचन है जिनसे आत्मा के अस्तुत्त्व सम्पन्न रहने वाली है २ ही। अज्ञान वर्तना ज्ञाना ज्ञाना ज्ञाना वर्तना कर्म वर्तना और मनोवर्तना। इनमें भी प्रमुख अथ वर्तना रूप गुणता पर्याय है। वर्तन में अपने अस्तुत्त्व के अज्ञान को अज्ञान रहता है। आत्मा जिस समय जैसे इन में अज्ञान रहा अज्ञान के वर्तन में है। वही कहा जा सकता है कि जिनसे

किसको अपनाया और किन्ने किसको अपने पास में रखाया । अतः हम इसे अनानि सम्बन्ध ही कह सकते हैं मुख्य और विद्वानिमावत् । इनमें कोन प्रथम और कोन द्वितीय है यह भी कहना असम्भव है जैसे कोन प्रथम हुआ कि वृक्ष यह नहीं कहा जा सकता है । जो ही आत्मा परतः है वह तु सतत पराधीन नहीं रह सकती । पुरुषाय करने पर आत्मा निज स्वरूप को प्राप्त कर सकता है । हे आत्मन् तू मावयान हो । अपने स्वरूप को समझ । निज का समझ बिना उसे कम से पृथक् करते कर सकते हो । आत्मा और कम दोनों की जानकारी हुए बिना मित्र मित्र कैसे किया जा सकेगा । अतः सुनिश्चित होता है ।

बाह्य जन्म अन्तरङ्ग भावों का साकार रूप है । यह विषय चित्रकला मूर्ति कला में स्पष्ट परिलक्षित होता है । चित्रकार विविध चित्रों में अपने अर्थ करण का प्रकाशन करता है । उसका रागभाव व विरागभाव चित्रों में पूजित अभिव्यक्त होता है । वीरराग भावों से अक्षिप्त चित्र दशक की बीरता का उभाड़े बिना रहा रह सकता इसी प्रकार राग रजित आकृति रागभावोत्पन्न होती है । वीरराग भाव में अनु रजित चित्र सवेग और बराब्य का जीता जागता दृश्य होता है । यह है भाव निष्ठा का प्रतिफल । सत्परिण आध्यात्म रक्षित चित्रकार की सुनिश्चिता मानो उसका अर्थ करण की आज्ञाकारिणी होती होती है । उस सुनिश्चिता से प्रतिबिम्बित चित्र दशक की बीरराग भावना आध्यात्म्य वसि एवं बराब्य परिणामों को उद्घाटित अवश्य करती है । इस प्रकार के चित्र मानो बोधत हैं । इसी प्रकार विलासियों के द्वारा निमित्त चित्र विलास भीता का साकार रूप उपस्थित करते हैं । कामोद्देव भाव से समाये चित्र अवश्य ही अपने कला की कामवासना प्रशिक्षण करने हैं । बन्धुन चित्र किसी भी विषय की अनुपम भावना का पवित्र सार है । जो बन्धु मनाभावों का प्रकट रूप है । यही कारण है कि चित्र निर्माण काम में चित्रकार के शरीर अवयवों की आकृति जिस भाव रूप होती है उसी प्रकार का चित्र तयार होता है और अतः तक वने ही भाव चित्रकार उद्घाटन करने में प्रवृत्त होता है । शुभाशुभ चित्र शुभाशुभ भाव व्यक्त कर शुभाशुभ कर्मों की प्रेरणा प्रदान करने हैं । ठीक यही बात मूर्ति कला के सम्बन्ध में है । सराय भाव में निहित मूर्ति सरायता और विलासिता का संकेत देती है ता वीरराग भावों की अलङ्कार सार शरीर पोषा से विरक्त कर शान्त भावों को उभाड़े वीरराग का उद्घाटन करती है । दशक की मूर्ति कला आगम का निबोध है । समार का मूर्तिमान् अत्यन्त-भास्वर प्रशान्त है । एक ओर राग रज है एक ओर भोगों की काण्ड अवस्था तो दूसरी ओर बराब्य का अभिव्यक्त । वीरराग मुग्ध के मध्य विह्वलता मीम्व छवि अन्तरङ्ग विशिष्टि का मानो प्रशिक्षण करती है । ओठों की मुद्राण लम्बा उत्तम लम्बा का पाठ पढ़ाता है । मयनों की नासाय छवि अन्तर्गत शान्ति का बरगमन प्रदान करती है । उन्नत सलाह उन्नतलोक का आलोक प्रदान करता है । आशानुलम्ब मुद्राण कृतकृत्यता दर्शा रही है । स्थिर चरण मुगल ध्यान की अन्तिम पराध्यात्म स्थितिकर स्वस्थ (निर्वाणस्थित) होने का

उपदेश देते हैं। बीतराग प्रभु के समवशरण में सरस्वती और लक्ष्मी का अविरोध प्रदर्शित होता है। साथ ही श्री बाहुबलि स्वामी के समक्ष करबद्ध आश्वीन राज राजेश्वर भरत की भावभीनी थढ़ा भक्ति भोग और योग में समन्वय प्रकट करती हुई सी प्रतीत होती है। भोगों में भी योग खोजा जा सकता है यदि भोग मर्यादित हो। कमल कीचड़ से ही प्राप्त होता है। ससारपूर्वक ही भोज होता है। बंधन से ही मुक्ति मिलती है। अपने में अपनी दृष्टि पसार अपने को समझने की चेष्टा का। आपा जानने पर ही पर को जाना जा सकता है और सबको जान लेना देख लेना ही परमात्म दशा है। भगवत् अवस्था है। इस अवस्था की प्राप्ति त्याग तप, सधर्म और वराग्य धारण कर ध्यानस्थ होने पर ही हो सकती है। यह सिद्धांत प्रत्यक्ष जिन बिम्ब कह रहा है। देवगढ़ स्थिति जिन प्रतिमा क्या प्रत्येक पाषाण मुखरित है उपदेश दे रहा है सरस वाग्म्या बहा रहा है। हम सुनें या न सुनें। कुछ लें या न लें। कुछ समझें या न समझें पर तु वे अवश्य ही हम कुछ न कुछ कहने ही हैं सुनाते ही हैं और श्रोते ही हैं। यही नहीं यही की कला-गण्डीकारी एक अद्भुत दशनीय है। मानो अपना वस्त्र उगार हृदय से मुक्त हस्त वितरण करना चाहती है। आतिथिक प्रसाद गुण ससार को वितरण कर रही है। अपने में नहीं समाया आनंद भुग रही है। यही प्रकृति का अणु अणु बिम्ब ब ध्रुव सवर्जीव आत्मन्य प्रभ की त्रिवेणी बहा रहा है। कण कण में वराग्य भाव अमर शान्ति का स्रोत बह रहा है। एकाग्र अनुबिम्बन की प्रेरणा प्रदान करता है। ध्यान और मोन ही जीवन की साधना है मुख और शान्ति ही इस साधना का मध्यम कल है। अनुलोम आनंद यही उद्यमता प्रतीत होता है। आत्मा हस्ता होता सा नजर आता है। कामुद्यम प्रभ से रहे हो। जान पड़ना है पाषाण पट्ट मुखर तक्षक रही है विरने ही जाती है बड़ गई धूर गई। कसे टिपनी यही के पुष्पपुष्प से मुक्त करना उसकी शक्ति के बाहर है। अनिरुद्ध वनस्पती सीढ़ार्य का सन्देश दे रही है। वेदका की जीवन धारा भयों को जिन करण कमल दुर्गम प्रगाथन को बाध करती है। अनुचित स्वर्गीय धर्म है आत्मीय शान्ति है नैतिक परिवर्तन है। लोगों की रमणीयता ॥ ओ अनुमेव मेवम का प्रभव मान कर रही है। सरतस्वर का अक्षुब्ध उल्लेख है। येना वन गन विभूता पडा है उस पर त्याग और सधर्म को आनंद का विमान उड्य लोह की चरता प्रवर्तित करना ॥ भक्ति की का वक्ष्य निम्नकार कर उस पर सवार है। अनुराग हृदय है। अनुबल विनय है धीम और मान का। आश्वीन प्रभ का उग्र मुकुट पुष्प प्रविष्टि शरीर वराग्य की वराग्यान्ना सुनिष कर रहा है। ससार और भोगों की निवारणा बनना रहा है। जीवनान्ना पुष्प आत्म उपाधि प्राप्त कर सधर्म का उपदेश दे रही है। मोन रोक बर्द्ध है। वराग्य जाना है ता वर मोन का नही मोन में ही शिव लक्ष्मी। उन ही धर्मो-धानी। धर्मो की अन्तर्मुखी उपदेश को। पर नृपद बननी है। उद्यम का तेज लक्ष्मी पर लक्ष्मी है। विरह प्रभ बनने में लयल रहा है। यह है अनुबल हृदय ॥ अनुबल की वाचन सुनि का। लय लक्ष्मी पर अनुबल हृदय

भरा पड़ा है। जो जो चाहे वह यहाँ पाये यदि पाने की योग्यता है तो। नदी बहती है जिसका जितना पान है उतना पानी भरता है और जितनी जिसकी क्षति है उतना जल भरकर उगा सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक भ्रम्यात्मा अपने अपने पुण्यापे पाप और प्रतियोग अनुसार आत्म बलवत् पाने की प्रक्रिया को पाता है और संप्रसादा है ग्रहण करता है और क्रियामित्त कर आनन्द पाता है।

बीनराग मु। आत्मा के बीनराग भाव की प्रतीक है। प्रत्येक आत्मा की एक स्वभाव है। यही कारण है कि यथा निमित्त नवमित्त की मिष्टि होती है। जिन विभिन्न कभी बीनराग निमित्त से हमारे-दर्शक व बीनराग भाव आगम होत है। पुन पुन माध्याह्नि से जिनस्वरूप दशन न निजात्मा कर जिन प्रवृत्त होता है। आत्मा अहम् स्वभाव है। परमात्म महान है मुक्त स्वभाव मुक्त निर्विकार निरुत्पन्न है परन्तु यह स्वभाव आच्छन्न है आवृण है। उस आवरण का दूर करने के लिए जिन विभिन्न निमित्त है। जो जिन स्वरूप का अवलोकन करता है अहम् स्वभाव अपने स्वभाव का भी दर्शन हो जाना है। निजावलोचन से स्वर्ग ज्ञान भी हो ही आयेगा। हम स्व का ज्ञान पर का भी ज्ञान होगा। स्व ज्ञान होने पर कौन बुद्धिमान अपनी बन्धु स्वभाव पर बन्धु दशन कोगा ? स्वभाव छोड़ कोन पर भाव में आने की चेष्टा कोगा ? कोई नहीं। ज्ञान स्व पर ज्ञान विज्ञान का मूल विज्ञान दशन है। पर पश्चिनि विद्वान् ही पर भावों का निरोध होता है। राग द्वेष आदि भाव ही तो पर भाव है। ये ही तो आवरण पुरुष जगत् के बाधक है और जगत् ही संसार का हेतु है। यह सब आवरण स्वभाव का बाधक है। हम ज्ञान में बसाने काया जिन विभिन्न दशन है। जिन दशन स्व दर्शन का मूल है। हे माधव्य बीनराग मुग का रक्षक करण करो। जिन निमित्त की परम करो जिन विभिन्न की छवि अपने में उतारो उन लोभ्य मुहा से अपना विज्ञान करो। जहाँ जिनकी बन्धी है उसे दूर करने का प्रयत्न करो।

बाध विहार बाध भाव राग दुःखानि विद्याव ज्ञानादि से जीव निवृत्त है। वे मुक्त हो सकते हैं। कब ? स्वभाव अपने पुरुषार्थ से। पुरुषार्थ क्या हो ? उनका स्वभाव। स्वभाव होने पर विहार स्वयं दूर होते। विहार नैव न मे वे हूँ नहीं सकते। उदाहरणार्थ—जब चारुता है मैं कभी लोभ न कर। पर निरा हो क्या वह मृत्ति लता के लिए हो ली ? नहीं। पुन काय हुआ और कही बिना दित का भी। परिणाम क्या दिक्का। पुन पुन कभी अविज्ञान होने की और कोन-काल-हम-ज्ञान होकर हम जगत् होना क्या ज्ञान निर्विकार पूर्व कर-दश में ज्ञान क्या। यही ज्ञान का और यही ज्ञान का ही दित-जगत् होना फिर हमारे निराव क्या हुआ ? कुछ नहीं। निराव विद्या। स्वभाव है। कोन-काल का कोन-काल में उन स्वभाव का ज्ञान करने का बल-पद होना है—जगत् होना है फिर दशन क्या है और दनि-दशन क्या है दान काव की और नहीं तो दद क्या ज्ञान-कभीन क्या नहीं। बल-पद और काव हुआ ही नहीं। बल-पद से पुन बल-पद काव-करोना नहीं। निराव ही ही। कोन-काल कभी

भावों को । एवं स्वरूप से अतिरिक्त—जिनके भी भाव विभाव परिणाम राग-द्वय मोह और इन विभाव भावों के कारण भूत अष्ट वन अष्ट बर्गों के साधक जो बर्ग इन सम्पूर्ण पर जिनके विजय प्राप्त कर भी वही है अर्थात् । इन ज्यों भूताभाओं का अनुसरण करने वाला है जन । अर्थात् जिनका उपासक जन । उपास्य कौन है ? वो उपासक को भी उपास्य बना दे वह है उपास्य । 'जिन का अर्थ अह भी है । अह का अर्थ है पूर्य-योग । जिसमें उपास्य की योग्यता हो उसे अह कहते हैं । उन जिन' के द्वारा प्रतिज्ञान्ति उपदेश या सिखाएँ जिसमें वर्णित हैं जिन प्रणीत सिद्धांत तत्त्व निरूपण जिसमें है वह है जिनायम जिन दत्तन जिनवाणी । उस जिन बचन का पटन-पाटन अनन अनुचिन्तन जो करता है और अनुसार साधरण भी पालन करता है वह है जिन मुह । जिन जिनके जिसने पाठित्य बर्गों पर विजय पा भी है और उनके नाम से भवज्ञत्व प्राप्त कर लिया है । समस्त चराचर को जिन्होंने जान लिया है और देख लिया है । अर्थात् सबका भाता सबदर्शी अनन्त दान के धारी । अनन्त भान-भजन प्राप्त होने से अनन्त सुख सिद्ध प्राप्त हुआ है और उस अनन्त सुख की अनन्तता को अनन्त का उपभोग करने को जिन्हें अनन्त कीय भी प्राप्त हो चुका है । वे हैं अहम् परमेश्वरी । इन तीनों की उपासना से तीन गुण प्रकट होते हैं—१ सम्मानजन २ सम्मानजन और ३ सम्मान जाति । इस प्रकार इन तीनों का सम्मान पूरा बिकाम के ये तीन समर्थ निमित्त कारण हैं । कारण भी इन तीन रूपमयी हैं । अर्थात् ये रत्नचय हैं और आभा भी रत्नचय ही हैं । रत्नचय आभा के अतिरिक्त अर्थ कुछ नहीं है । मुनिविद्वान् हैं कि ये सच्चे देवशास्त्र मुह ही सच्चे रत्नचय का साधक हैं एकीनिष्ठ साधक को साध्य रूप परिणामाने में पूरा समय है । वे ही उपास्य हैं, प्राज्ञ हैं ।

शरीर और व्यक्त्या अनादि से एक भेद हो रहे हैं । यह सयोगी पक्षत्व इतना गहरा है कि पक्षकान्ति ही समाप्त हो गई है । दोनों का मिश्र भिन्न बना ही अनुभव में नहीं आ रहा । इस मुहद सत्कार वन जीव भान्य हो रहा है । प्रान्ति वन पर का ही भान्य भान रहा है । मैं कौन हूँ कहा हूँ कहाँ हूँ यह विचार ही नहीं कर पाता । शरीर को ही मैं माने बैठा है जबकि शरीर मेरा है वह बोधता है । मोचना नहीं कि मेरा रूप ही द्वित्व का बोधक है । एक वह जो भग कह रहा है और भूमेरा वह विभे मेरा भान रहा है । विजया दण्ड है सदिन भूनाविष्ट वन् स्वय को ही शरीर रूप मानता है उसके भूनाभुम का प्रयत्न करता है उसके सुख-दुःख से सुखी और दुःखी होता है । अद्वित्य उपास ही पालन-प्रेषण बद्धन रण्य करता रहता है । अतिवश निद्र मिथारों का गुलाब वन जाता है गन्ने का साथ गण्ड वन बैठा है वही दशा इस जीव की है । उन जाक जमान बधक-वेग-बटी जाति जितन कम वय शरीर जय सम्बन्ध है उन सबको ही जिन मानकर उनमें राग-द्वय करता है स्वय को उनका कर्ता भोऽऽ मानकर नवीन-नवी ५५५५ कर समार

परम्परा बढ़ाता रहता है। हे आत्मन् इस भ्रान्ति बुद्धि का त्याग कर। स्वार्थ तप को समाप्त।

सत्य जीवन का प्रकाश है। बाणी का सार है। संसार का उपहार है। समाज का उत्थान है। राजा की शोभा है और प्रजा का कल्याण है। सन्निध्य में मानव जीवन का प्रत्येक पहलू सत्य की ज्योति से ज्योतिमय है। जहाँ सत्य है वहीं जीवन का प्रसार है। विकासोन्मुख जीवन ही उत्थान की एक अछिन्न धारा है। प्रवाह है जो दीर्घ मत्ती के कूट में प्रवाहित होकर अपने अंतिम गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर सदाकाश को गतिहीन हो जाता है अर्थात् आना-जाना बहना आवश्यक ही नहीं रहता। व्यावहारिक जीवन में सत्य परमावश्यक है। एक शून्य भी एक बार भी जीवन में प्रयुक्त हो गया तो वह एतन् कम से कम सहारक नहीं होगा। असत्य का टीका उसे लग ही जायेगा। वह अविवशस का पात्र हो जायेगा। गृहस्थाश्रम समाप्त देश राष्ट्र आदि सबका मानव मान उसे हेय दृष्टि से ही देखने लगता है। एक बार का असत्य भाषण जीवन भर का विश्वास नष्ट कर देता है। वह चारित्रहीन की श्रेणी में आ जाता है जबकि सत्यवादी पूजा प्रतिष्ठा आदर और सम्मान का पात्र बन जाता है। असत्यभाषी को कोई भी मान्यता नहीं देता। वास्तव में सत्य में दया क्षमा शील सत्यम तप त्यागादि सब गुण समाहित रहते हैं। इन्हीं गुणों के आधार पर आत्मगुणों का विकास होता है। आत्म शक्तिर्षा प्रकट होती है। स्व स्वरूप का प्राप्ति होती है। स्वानुभव प्रकट होता है। स्व का गान होता है। स्व की जानकारी से पर का ज्ञान अनाम्यता ही ही जायेगा। यही स्व पर भेद विनाश है जिसका आधार पर आत्म कृपी सुख तप कर कुटन बन जायेगा। कम कालिमा जो कर्म बाल भाव द्रव्य रूप कम नष्ट होकर अनन्त चतुष्टयधारी आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट हो जायेगा। एक गुणाभित यय समस्त गुण स्वयमेव प्रकट हो जाते हैं। हे आत्मन् सत्य गुण का आत्मजन लेकर निज स्वरूप प्राप्त करने का प्रयास करो।

मग्नमय अनुभवि प्राप्त करो। यह स्वानुभव ही आत्मा का ध्येय है। इसकी उपलब्धि करने के लिए राग द्वेष विषय कषाय मोहाकाशा, मन क्षोभ आदि का त्याग करना अनिवार्य है। दमन शमन यम और नियम से दमित जीवन आत्मा का निज स्वरूप पाने में समर्थ होता है। जिसकी प्रवृत्ति इन बाधों की ओर झुकी हुयी होनी है वही संसार सागर के तट पर पहुँच रहा है यह सुनिश्चित है। विषय कासनाश्रम में उसका प्राणी चाहे कि मैं अब जलधि के पार पहुँच जाऊँ तो यह नितांत असम्भव है। उसकी जीवन नौका भव सागर में निमग्न हो जायगी। उसे तो पर भावा के बोझ से रहित होना चाहिए। पर कप विचारों का भार लगा और अज्ञान मन बचन बाध के छिन्न खटे हुए हैं फिर भला नाव किस प्रकार पार होगी ? क्या वह डूबगी नहीं ? अवश्य निमज्जित होगी। तो क्या श्रमास्तन पार पड़े रहने पर भीतन नहीं होगी ? होगी अवश्य कि तु वह जपमग्न हो जाय यह

मुनिविषय नहीं है मानिसय दुःखवासक के कारण भूत भुव ढार सम्प्रकाशपुष्क होने ॥ मोटा को घबरा मयावर ने जाने बाते होते हैं जहाँ छट बायेना वहीं मोटा बाँधकर स्वयं उससे बिरत हो जायेंगे हट जायेंगे : क्योंकि वे मोटापोही को विभ्रम में नहीं जाने दे अविशु सावधान सचन बाधत दिये हुए थे : बस्यवर सकेत करत हैं मेषा में तुम्हारा सेवक है तुम जब तक असत्य हो तुम्हारी सहायता करता है जहाँ तुम्हारा : स्वतामय्य पुने हो बायेना बस हमारा-तुम्हारा सम्बन्ध समाप्त : मापोही इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं रहता : प्रतिपक्ष इस साक में बटा रहता है कि जब मय बाय सिद्ध हो ओर जब इस विन को अवकाश दे दिना कर दूँ : यही जानी का स्वरूप है : ज्ञान ही एक मात्र उसका अभिन्न भुज है : ज्ञानमयी जीवन ही उसका आत्मा है नहीं उसका निज भाव है : फिर ज्ञान के अतिरिक्त अन्य पदार्थभाव को मत्ता क्यों सहारा देगा : निरात्म बनने वाला पडा पर चढ़कर बठठा है उसे सुरक्षित रखता है कब तक जब तक उस पर चढ़कर अपने काय (दिकान की चिन्ताई) पुति में सफल न हो जाये : जहाँ कार्य सिद्धि हुई कि पडा खोलकर फेंक देता है अवका पडा-पडा स्वयं ही धुन धुमावर मयाप्त हो जाता है : यही हाल है उन भुव भाव-परिभाषी भाषी का जो अपरिपक्व बचराय म अल्पम अनिकार्य हैं : और सिद्धि होने पर उसने ही अनावश्यक हैं : यही है नवी की पद्धति जो निश्चय व्यवहार के संयोग से ही सम्भव ॥ सकती है :

मन धर्म का गुलाम है : छप सम्मोह का बाध : सतोप सोम का विजयी : सोम राग द्वय के सम्झौ पर अपना भवन निर्माण करता है : राग-द्वय की परिणति रहन पर शान्ति नहीं हो सकती : अज्ञात जीवन में कुछ वहाँ ? है भाग्यम् तू अपने स्वरूप का विचार कर : तू सोमाग्नि म भू व है : तुम में तेरा ही बास है : अन्य भाव आ नहीं सक्ता अर्थात् तुमसे घुन नहीं सक्ता : तू भी अन्य में आ नहीं सक्ता : फिर क्यों सोमाविष्ट होकर पर म मय्यम क्यों करता है : यह तेरा कसब्य है नहीं : तू अपने स्वरूप को सम्हाल : अपने में आया मान : उसी में प्रीति अनुमान स्नेह कर : यडा न कर : लक्ष्मी लवन से नियमित रूप से कार्य से सफलता मिलती है : निरात्म भावों में उल्लेख रहा : यही उत्थान का सोपान है : जीवन क्या अस्तित्व है : विविध मृत्पियों में उसका जीवन सुभाषाया मरन नहीं : ही अठि-गाँठ निघर से निघर लगी है यह अवगत हो जाव तो सुमसाने से भी डेर नहीं लग सकती : आत्मा का सुधार इसी माध्यम से सम्भव है : हे अभ्यात्मन् अपने अठरङ्ग में पड़ी हुई उत्तमनो को सुमसाने का प्रयास करो : परस्व भूद्धि का परिपालन करो : परस्व भाव पराधीन कृति है : पराधीनता से सुख शान्ति कभी भी किसी भी प्रकार नहीं आ सकती : स्वतन्त्र बनो : स्वावलम्बी बनो : स्वावलम्बन के बिना आत्मा का किसी प्रकार भी बस्यान नहीं हो सकता : यही एक मात्र आत्मात्मान की कुञ्जी है :

नवीन जीवन का प्रादुर्भाव हो सकता है क्या ? सम्भवतः सामान्य जन यह कह सकता है कि रोज ही देखा जाता है अनेकों का नया नया जन्म फिर-हमारा न हो यह कैसे ? बात सही है प्रत्यक्ष प्रमाणित ही भी है । किंतु जानो की भाँति विज्ञानो की दृष्टि इससे बहुत ऊपर है क्योंकि वह सम्यक्त्व युक्त यह सही उतरी हुई है । वह समझता है कि यह प्रतिनिधि का जीना-भरना न तो नया है न अपरिवर्तित । वह अनेकों बार मुक्त भोगी है । इन पर्यायों में प्रत्येक जीवन केवल सध्याय बार बलिह्वनन्तों बार भटक चुका जन्म घर भर चुका । फिर भसा नया क्या ? सत्य तो सत्य है । नया जन्म वही होगा जो अब तक घरा नहीं है । अनुचितनीय है वह कौनसा भव-जीवन हो सकता है ? आरम्भ में उल्लिखित है कि तोषमंड उसकी शक्ति दृष्टिभेद सर्वापसिद्धि के अहमिन्द्रा लोकपाल एक भव धारण कर अर्थात् मनुष्य भव में आकर दिनभर मुग्धर कमनाय शिव पद में जा जामते हैं जहाँ से पुनर्जन्म नहीं होता । तो फिर सुनिश्चित है कि वही स्थान नया है, वही का जन्म नवीन होगा वही जीवन नूतन होगा । तोप में नवीनता वही ? हाँ तो नया जीवन हो सकता है यदि इन स्थानों में पहुँचे तो ? और हाँ लोकपालों अमरों का प्रवेश भी अभी तक अप्राप्य ही बना है वहाँ पहुँचे तो नवीन जीवन की शाही मिल सकती है । उस नवीनता में ही सच्चा रस है आनंद है सुख है शान्ति है । परन्तु यह भी पूरा नहीं है क्योंकि यहाँ से पुनः प्राचीनता की धारण में आना पड़ता है । बिना पूरे परिवर्तित जन्म धारण बिना अमर अमर और अविनश्यत नवीन जीवन प्राप्त नहीं हो सकता । ह आत्मन् इन नवीन जीवन में कौन प्रवेश कर सकता है जब कर सकता है किम शक्ति कर सकता है ? किस विधि प्रयोग से कर सकता है किने काल को कर सकता है । इत्यादि प्रश्नों का परिशीलन करो परिज्ञान करो तन्नुसार आचरण करो । अवश्य सफलता प्राप्त होकर ही रहेगी । कौन अने में नवीनता सामग्री विद्यास हर्षित आश्रितिका और उरसाह नहीं चाहता ? हर आत्मा चाहता है । निर को प्रथम पहिचान करो । उस पक्ष तक पहुँचने का मार्ग निर्धारित करो । सुनिश्चित पक्ष पर बहुत का उपक्रम करो । न तो अज्ञात कर चल पड़ा । जहाँ तो करो मग पीर हुआ मग कर्म स्थिति न हो इगका पूरा पूरा ध्यान बनाए रहो । कम बहुत आशी । सुनिश्चित एक नि नवीन जीवन मिल जाएगा बिनाह तुम्हें भा उनी मग पीर कर बिना साधो बना नया उसम और मुसम बाई मग बाध न हुआ । मरे बा और कुछ नहीं अर्थात् मुदा बाध । कम यहा तो एकत्र विभक्त कहहागा कि पाकर उनी कर मुन हा जाया । यहाँ का कारण मग न रहेगा । करान ध्याना और काम एक बन हा हुआ । मगान कर-मगानी जीवन हो गऊ जीवन हागा । यही मुक्ति निर का है गऊ बरकर है मगान बरकर है । निर बरकर हो मगान जीवन है जो बरकर बरकर नहा हुआ क का नहीं रहता किमी प्रकार परिवर्तित नहीं हुआ । यही है अर्थात् निर मुक्त आश्रितिका उपम जीवन ।

पुरुषार्थ दो प्रकार है विषय चोपक और आत्म साधक । प्रथम विषयपारायक पुरुषार्थ तो जीव जनादि काल से करता आया है । किन्तु आत्म साधक पुरुषार्थ तो अभी तक इस जीव की दृष्टि में ही नहीं आया । यही कारण है कि पुरुष अभी तक प्रमित हुआ घुम रहा है । भ्रम मिटे तो भ्रमण भी मिटे । भ्रमण शुरू तो मुख और शान्ति मिले । हे आत्मन् विचार तो कर आज तक कोशु क बैस समान महानिष्ठ अथक पुण्यात् कर शक्ति का अवश्यव करता आया विबुधन कुछ न मिला । मिलता कैसे ? भला दुष्ट कटने से क्या ज्ञान मिल सकता है ? बाधु पवन से क्या हम प्राप्त हो सकता है ? कोन ऐसा है जो मुक्तों से आशान कटकर लज्जता पा सके ? कोई नहीं । सब उद्योग व्यर्थ ही है । इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी सुखाभाव से ज्ञान प्रवर्तन कर अथक प्रमित हो समय सो रहे हैं । हे आत्मन् अब जाग्रत हो । तही पुरुषार्थ का अन्वेषण कर सम्यक ज्ञान परित्याग कर और तन्नुसार तही पुरुषार्थ कर । समार के बच-बच में बिचरी अपनी शक्ति को उचित कर । सम्पूर्ण शक्ति के फैलाव को रोक कर एकाग्र कर । सब ओर से आकर्षित कर निजालय स्वरूप प्राप्त करने वाला एक भाव उद्योग कर । इस उद्योग में सम्पूर्ण लौकिक दृष्टियों का परित्याग करना होगा । पर भावों से सबका विमुक्त हो तभी पुण्यात् तत्त्वज्ञान एक भाव आत्म स्व भावोपनिधि रूप तही पुरुषार्थ होगा यही है आत्मा के धान का उपाय । जो कुछ जहाँ पाता है उससे पाने को नहीं एकाग्र होना होगा । तब ज्ञानात् आत्मा सुखम हा है अत अपने में अपनी शक्ति अपने द्वारा खनित कर एकाग्र कर अपने को पाने का उद्योग अवश्य ही लक्ष्य होगा । यही सम्भा समर्थ उद्योग है ।

पुण्य क्या है ? एक प्रकार का कर्म । वह क्या करता है ? यदि सबका-सम्यक पुण्य है तो आत्मा का पवित्र करता है और पुण्याभाप है तो आत्मा को धान पवन में एकैक देता है । सम्यक्त्वपुण्य अमित्र पुण्य साधितय पुण्य है जो परस्परया आत्मा को परम पुनीत बनाकर शुद्ध बना देता है या यों कहें कि इस सानितय पुण्य के पुण्य स आत्मा इतना बलिष्ठ हा जाता है कि लज्जालय स्वरूप धान में समर्थ हो जाता है । एक प्रकार उसी शक्ति विकसित हो जाती है जो शक्ति अमिट होती है । इसी ॥ बल ॥ आत्मा हम पुण्य न पुष्ट होता है कि जो पर रूप हान ही नहीं देता । सुन्दर बच से बड़ सुमट जिस प्रकार सन्नाम में लीला भाव दर्पा में भी अलूना असंख्य रह जाता ॥ अर्थात् असंख्य भाव चारों ओर से बरसते हुए जो उस निर्मय योद्धा का रोम का चलायमान नहीं कर सकत सभी प्रकार सानितय पुण्य रूपी बचनधारी मुमुक्षु विषय-विचार-कथनों के ताण्डव बाण्ड में रहकर भी उनसे अलूना रह अपने रक्षण में पूरा समर्थ हो जाता है । भला कुछ विजय कर बचन कोन पड़े रहेगा ? कोई भी नहीं । उसी प्रकार सदा समर पर विजयी आत्मा ज्ञान पुण्य रूप बचन को क्यों धारण कर रहेगा ? नहीं रहेगा । अत पुण्य मित्र का मायक है । साध्य सिद्धि पदम अद्वय साधु उपाय है ।

आरामा की अनन्त शक्तियाँ हैं अनन्त गुण हैं। इस सभी में ज्ञान शक्ति ही एक मात्र प्रमुख है। कारण ज्ञान ही ज्ञाता है सभी को जानने वाला है। अनन्त पदार्थ है यदि उन्हें दशानि वाली प्रणीव प्रकाश ज्योति न हो तो उनका क्या महत्व है ? क्या उपयोग है ? कुछ नहीं। यही बात है आरामज्ञान के आलोक की। ज्ञान गुण शक्ति जाने नहीं तो वे समस्त अनन्त शक्तियाँ मात्र दशनीय पुनसी है। ब्रह्मक पत्थर है बीच में रुई है दूसरी ओर पत्थर है। दोनों को रगड़ने पर आग रुई में ही लगी रुई न हो तो रगड़ मात्र बितनी ही लगाने रहो क्या प्रयोजन। यही समस्त सत्य सद्गुरु सम्पूर्ण और सम्यक चारित्र्य का महत्त्व। सम्पूर्ण सत्य में स्थित है। देहली पाय बत सम्पूर्ण सद्गुरु और सम्यक चारित्र्य को चोखित करता है। दोनों को योग्य योग्य बनाता है। एक ज्ञान ही सबजता का पसानुभव करने में समर्थ है। इस शक्ति की पूर्ति करो। यह शक्ति जब रूप रूप नोचने के मध्य पड़ी धूमिल हो रही है। पत्थर से पत्थर का रगड़ वन अपने से अपने को रगड़ ज्ञान ज्योति जाग्रत हो जायगी। स्वसवेदन का अनुभव आयेगा। यही आराम क्या है यही स्वानुभव है। स्वानुभूति ही आत्म स्वभाव है। हे विजये ! विजय चाहिए तो अपने पर विजयी बनो। जब चेतनात्मक पर पण्य तेरा भसा बुरा कुछ करने वाले नहीं है फिर क्यों निरपराधों पर आसन करने का व्यर्थ परिधम कर इस पराक्रम का अपभ्यय करते हो ? सावधान हो। ज्ञानी बनो।

उपकार और अपकार कौन करता है ? किसका करता है ? क्या कोई इसकी परिभाषा बना सकता है ? निश्चित सिद्धांत बना सकता है ? यदि यह नियमित सिद्धांत हो जाय तो फिर इससे विपरीत किया न देखी जाय। किन्तु सबत्र प्रत्यक्ष विपर्यय देखा जाता है। गी जन्मते ही बच्चे को चाटती है मन चाट कर साफ करती है एक क्षण उसे छोड़ना नहीं चाहती उसका अपाय सहन नहीं करती किन्तु देखा जाता है अपने पाँव को ही उसका बचक छूटा बना देती है। अधिक हलन चुना कि सात से छबर लेती है कुछ और बड़ा हुआ कि सींग में मारने लगती है। यह है विचित्र ब्रह्म संसार की। अनुभूति विवेकी माना जाता है किन्तु यही भी यही विपर्यय देखा जाता है। आज का मित्र ही कल का शत्रु बन जाता है। वहीं भी एकरूपता नहीं है। यही संसार का चरित्र है। इन वचिथ्य में उपकार और अपकार क्या और उपकारी और अपकारी कौन ? यह है विचित्र परिस्थिति इन प्रश्नों पर सहृदय से विचार करें तो विदित होगा कि सात्त्विक विषय भोगा में कोई तथ्य नहीं कोई यथार्थ नहीं। इन संसार शरीर और भोगों के सम्बन्ध में न उपकार और अपकार की कल्पना ही नहीं होना चाहिए। अतः आराम सम्बन्धी विचारा में तथ्यों में उपकार और अपकार का प्रयोग है। जो आराम तत्त्व का उपकार करे वही मित्र है और जो आराम स्वभाव के विपरीत करे आरामा का अहित करे वही अपकारी है। यही उपकार और अपकार का यथार्थ अर्थ है। इन कसीटी पर बगने पर स्पष्ट

विदित होता है कि धम ही सच्चा मित्र है और अग्रम ही भयकर शत्रु है। अब विचारणीय यह है कि आखिर धर्म है क्या ? धम कहा है जो आरम स्वभाव विकास में साधक हो। अमरत्व सहायक ही निमित्त कारण है। आरमा है क्या ? यह भी विचार परमावश्यक है। आरमा वह शक्ति विषय है जो पंच सायक भाव समन्वित होकर अखण्ड विदुषता का 'योतिमय' पुञ्ज है। स्वयं एव होकर भी अनेक है। अनन्त शक्तियों का समन्वय रूप एकरूप भाव को प्राप्त है। उन अनन्त शक्तियों में ज्ञान शक्ति जाता और अन्य समस्त अनन्त भुज शय हैं। ज्ञान गुण आरमा का अनन्त है और अन्य अनन्त भुज भा अमर हैं। विस्तृत सब प्रत्यक्ष होकर भी एक रूप हैं यही। विमलान स्वभाव है। यह आरम भाव अपने भ पुण है। समस्त प्रयोग पदार्थों का भी जाता दृष्टा है किन्तु अमर रूप परिणमन नहीं करता। उस जाता दृष्टा स्वभाव पर अनाद्यविद्या का आवरण पड़ा है जिससे मेधाच्छन्न रश्मिस्तु वह पुण प्रकट नहीं है। यह आरम का अविवक्षित स्वरूप है। इसे विकसित करने में जो सहायक हो वह है 'धम'। आरमावरण अनादि से है और लवीन-लवीन विविध निमित्तों से आते भी रहते हैं और जाते भी हैं। इन निमित्तों में प्रवस है—योग यय। ये लुभाशुभ रूप से दो प्रकार और मन्द मन्दतर मन्दतर, तीव्र तीव्रतर और तीव्रतम आदि तरतम भावों की अवस्था अक्षय्यात लोक प्रमाण हैं। इनका सारा आने जाने का दूर क्षण लगा रहता है उस काल में किस प्रकार का जीवार्त्ता का कषाय रूप परिणाम होता है तदनुसार कर्माश्रय आकर स्थित हो जाते हैं। अग्निप्राय यह है कि जमाशय योग शमाशुभ कम कर परमाणुओं का आकर्षण करता है और कषाय उन्हें अपना साधो बनाकर यथायोग्य आसन प्रदान करता है। इसी का नाम है कर्मका प्रकृति प्रदेश और स्थिति अनुभाष 'यय'। अब यही तो शृङ्गारमा का विचार परिणमन है जिस निर्विकार कर स्व स्वरूप को पाना है और पाकर पुन पररूप में न आता है न रहता है। इसी का नाम मोक्ष परम लुप्त स्वरूप परम धाम। यह आरम स्वभाव या वस्तु स्वभाव है। यही धम है। इसे पाने की प्रक्रिया में इसके दो विभाग ही जान हैं—(१) ध्यय हार धम और (२) निश्चय धम। इसी प्रकार इन्हें साधन और साध्य धम से भी निरूपण किया गया है। इसका ही नाम व्यवहार मोक्ष माय और निश्चय मोक्ष माय कहा गया है। इनके स्वरूप का यथाय समस्ततर तनुमान वतन करना जीव का कर्तव्य है। कर्तव्यनिष्ठ उपायय शक्ति धर्म स्वरूप प्राप्त कर ॥ तुरुप-नूप ही हो जाता है जहाँ शृङ्ग निश्चय का विरयमुक्त शृङ्गारमा ही मान रहता है और पुन अमर ही हो नहीं रहता। यह है जोव की अवीरक विद्याश्री-मुयी सख्यता प्रदिता त्रिकके आधार पर परमात्मा बनकर परमप्राधिकारी हो जाता है।

उपयोगमयी आरमा एक है और उपवास दो प्रकार हैं। यह विरोध कथ ? आरमा यय-ययमा है। वेचना का परिणमन या कार्य भाव भजन रूप होता है अत्र धर्मोपयोग और ज्ञानोपयोग रूप उपयोग है यह कहा जाता है। दमन सामान्य है

और ज्ञान विशेष । प्रत्येक इच्छा गुण वर्तमान मत्ता मान सामान्य विशेषात्मक उभय
धर्म युक्त ही है । सामान्य विशेषात्मक मनुष्य धर्म है । अतः आत्मा भी तब इच्छा है
अपने में समर्थ है और सामान्य विशेषात्मक है । वर्तमान ज्ञानमयी है । वर्तमान विचार
है—अनर्थात् है—अर्थविनाश है अर्थात् अर्थहीन वस्तुत्वोपर है प्रत्येक ज्ञान
गुण विशेष-माकार प्रतिपाद्य या निर्विघ्न है । वस्तुत्वोपर है । वस्तुत्व सामान्य
वस्तुत्व है ज्ञान विशेषात्मक । ज्ञान का वर्तमान विचार या लक्षणा है परन्तु वस्तुत्व का
मान अनुभव । बहु स्वरूप स्वरूप में वस्तुत्व आगे में ही समाहित रहता है वास्तव
प्रकाश उगता नहीं कर सकता । वस्तुत्व की शक्ति एक ही रंग की अनेक वस्तुत्वों
को देख रहा है वे विशेष वस्तुत्व का अर्थ अतः में है सब जगत् की दृष्टि में ह परन्तु
उनका अन्तर ओ अन्तर में बहु अनुभव कर रहा है उसे वाणी से प्रतिपादन नहीं
कर सकता । उनके अर्थ विशेष धर्मों को बहु कर अर्थ समझा सकता है । अतः
एकानुभव ही दर्शन है और उनके विविध अर्थधर्मों का प्रतिपादन विशेष ज्ञान
ज्ञान है । हे अर्थवस्तुत्व उभयत्वोपर ही स्व स्वका का सम्बन्ध परिज्ञान कर उन्हें
संस्तुत हो ।

आत्म निरीक्षण गुण का साधन है । स्वरूप की भूषण पहिचानो । अपने वहाँ हो ?
कहाँ रहना चाहिए या ? और विचार रह रहे हो ? यह विचार करो । अर्थ के गुण
धर्मों की आलोचना करने से आरम्भ प्रयोजन ही बना है ? आपको अपना विचार
करना है । स्वरूप निर्णय करो । आरम्भ स्वस्वता में पर के विकार प्रत्यक्ष करने लगेंगे ।
आपकी प्रभा से उन्हें भी गुण रूप होने का आलोक मिलेगा । आप पर के दोष निरी
क्षण में लगे रहे तो जीवन समय समाप्त हो जायेगा पर दोष का पार पा नहीं सकोगे ।
आपने सुधार की प्रक्रिया ही नहीं की फिर मना बदलाव तो आपको क्या मिला ?
कुछ नहीं । कोरे रह गये अपने तो । यदि कोई अराम करता है तो उसका फल तो
बही भोगता । उसकी बिता हम क्यों करें । अराम ही । आज आप साधु समीक्षा में
लग्न हैं । अहर्निश इसी स्वप्न में डूबे रहते हैं कि किस सन्त में विचार क्या बर्मा है
उसको कैसे प्रमाणित करें । दुनिया को कैसे सिद्धाये उस कैसे बतायें ? किस प्रकार
उस माग पर लामें इत्यादि विचार तो करिये आप में कितने दुःख है । वे क्यों आये ?
कब और किस प्रकार आये ? क्या हैं हृदय से लगाई ? त्याग दुःख या ग्रहण कब ?
ग्रहण करने में क्या-क्या शक्ति होगी और परिणाम करने में कितना क्या साध है ?
इन प्रश्नों पर विचार करते ही आपके समक्ष एक लक्ष्मी नीचे अवगुणावली छिप
जायेगी । असंख्य दोष आपके प्रत्यक्ष होने लगेंगे । आप अनुभव करेंगे कि मैं अभी
मनुष्य भी नहीं बन पाया, गृहस्थ भी नहीं बहाने योग्य है । व्यापक की तो चर्चा ही
बुझ है । पञ्च पाप छूटे नहीं सप्त व्यसनों से नाना तोका नहीं । अर्थ का त्याग
नहीं समय की छाया नहीं । आचार विचार पवित्र नहीं सामने पतन है घोर यातना
वे दुष्णा की भट्टी जल रही है । योगों की बाजूना बढ़ रही है । विषयों की चाह चाह

ही घटक रही है बेचन हो रहा हूँ अतृप्ति का छांटा सना है फिर भला किस प्रकार आप सत्तों के माग दक्षक बन सकते हैं ? आपको स्वयं नेता चाहिए । मोक्ष मार्ग निर्देशा चाहिए और उसकी चिन्ता छोड़कर मागदशक की समीक्षा करने बैठ जाएँ तो क्या इससे आपको संपत्तता मिल सकती है ? आपको उसकी बेचनी क्या ? अमव्य मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिङ्ग के बल पर असंख्य भयों को पार देता है । उसके उद्देश से अनेको भव्यात्माया अनादि सत्तारोच्छेद कर निर्वाण प्राप्ति कर लेती हैं । वह यथा तथा सत्तार में ही एरिभ्रमण कर घटवत्ता रहता है । उसने द्रव्य सिंग को मोक्ष माग समझा—अपराध किया तो बचन किसे हुआ ? अपराधी को दण्ड भोगना पडा न कि उसके निर्दोशानुसार चलने का न भव्य भोने प्राणियों का । उन्होंने ता उसके माध्यम से अपना काम सिद्ध कर लिया । क्यों ? क्योंकि उन्हें अपने कल्याण की अभिलाषा थी न कि उसके सुधार का । अपनी भूल मिटाओ । अपना काज समाप्त । अपनी गठरी देखो । कितना असली और कितना मक्ली मान उसमें भरा है । अपनी को रख मक्ली को निवाल फेंको । यही आपका साधकता पुरुषाप होगा । आपको आवश्यक बनना है आवश्यक धर्म का उपदेश सुनो साधु बनना है यतिमाय उपदेश सुनो । उपदेश जिन बाणी के आधार पर है । जिनबाणी सत्य है जीवन्त है । उसके विपरीत भला नहीं जा सकता—जायेगा तो फल भी पाये बिना रह नहीं सकता । परीक्षक कीन हो सकता है ? जिसको परीक्ष्य विषय का सर्वाङ्ग ज्ञान होगा । सोना की परीक्षा सुनार और हीरे की जाहरी कर सकता है क्यों कि मुक्ता और हीरे का बाह्याभ्यन्तर दशाओं का उन्होंने परिचाम किया है अभ्यास किया है । यदि आपने (आवक या गृहस्थो मे) संत और सत माग साधु और साधु धर्म का परिशीलन किया है उसे जीवन में सनारा है द्रव्य या भव्य लिङ्ग का अनुभव लिया उसके आनन्द का आ स्वान्न किया है तो अवश्य ही आप साधु भग की बाह्याभ्यन्तर दशाओं किया बनावों आचार विचार आहार विहार की समीक्षा कर सकते हैं करने के अधिकारी बन सकते हैं । यदि आप उन गुण धर्मों में शून्य हैं या आपको समीक्षा का अधिकार नहीं है । उन्होंने बाह्याभ्यन्तर दशाओं की सोच दिया निम्बर मुग्धा में आगवा पय प्रदान कर रहे हैं । आपको मुक्तिपथा रुट में लगे हैं । सम्पत्तक का धून कीज दिया करना रस आपकी दीन दशा पर सरस भरत रहा है । आर क्या इनकी चर्चा कर सकते हैं अरा मन्त्र होकर ही तो देखो बाजार में एक दाण की नग्न हो जाइये घर में हो आओ । अरे जाने दो बाण रूप में ही खिडकी बिना लगाये बिना बन्द बन्द बिना नग्न हो जाइये तो । फिर देखिय आप अपनी नाडी हृदय की छहकन चहरे की दशा शरीर की अवस्था मन की क्या क्या होती है । आर स्वयं करने ही सहन करने को समर्थ हो सकते हैं क्या ? परीक्षा परीक्षा हो जाइयेगा प्रकम्पन चाबू ॥ जादया । समानता में समर की मोमा है । समव्ययक में मन्त्री है । समभावों में एक दूसरे का ज्ञान है । समान स्वामी में प्रतिबन्धता है सार सभी निरुपता है ।

सरितासरिता दध्ने सहस्र और असहस्र दध्ने में आरोप करना तदाहार और अतनाहार स्थापना कर्म है तथा कर्म रहन मदन बनाया, कोठों का नाम रख दिया मनुष्य २ कम बा । उनमें तद तद कर्म को स्थापना पुजादि स कर लिया यही तदाहार कथ स्थापना ह । कम बिही ने देख लो ॥ नहीं कि जिने ह बिम्ब समान उसका आकार बना लें । मूर्ति दध्ने ही विषय कथ से है । यही वस्तु स्पष्ट है । सातवें मरक का नारकी उपाय होने के अनमहत कास को छोड़कर सम्भवत्व पदा कर मरण के अन्तमहत पहले तक सम्बन्धित रह सकता है । चारों गणियों में सद्य बरब हो सकता है परन्तु चारिन् मनुष्य पर्याय ही में प्राप्त होगा । प्रवचन सार

जो जानहि अरहत गुणरथ पयार ॥ ८० ॥

अरहत भगवान की अन्तिम अलङ्कार व्यञ्जन पर्याय हैं । दण्ड म चेहरा दीखता है । ओट वस पर लगे छत्र भी दिखायी पड़ते हैं । मान जीवित अरह न भगवान की प्रतिमा भी दण्ड है । इस दण्ड में देखन वाले को चेहरा नहीं आरमा दीखती है । आत्मा दीखता है तो उसमें लगे छत्र भी अवश्य दीखते । जिन दायों को छुराकर दशाव भगवान बन सकता है । इसलिए आचार्य कहते हैं जो यशस्वि अर्थात् जो यशस्वि अरह ह तो यशस्वि अर्थात् इत्यादि ।

मुक्ता बाँधी आग से पिखलत हैं । गरमी से पिखलते हैं परन्तु तभी गर्मी जब पर्याप्त गर्मी मिल जितनी गर्मी चाहिए उतना ही ताप मिलेगा तभी गल सकता है अर्थात् गरम हो हो जायेगा पर गल नहीं सकता । इसी प्रकार भगवान की भक्ति कभी ताप से हमारे अंगम कर्म गल सकते हैं किन्तु भक्ति उतनी होनी चाहिए जितनी आवश्यक है । भक्तमतज्ञ स्वामी ने भक्ति की पर चन्द्र प्रभु ही क्यों निकले क्या अन्य भगवान के प्रति उनकी भक्ति अपूर्ण की कम थी ? क्या उनकी दृष्टि में भगवान के प्रति कमोवेश का भाव था वश ? नहीं सभी अरहणों में प्रति अलङ्कार भद्रा है भक्ति है किन्तु वे भक्ति के परमाणु बल अभी पूरा नहीं हुए जितनी भक्ति बल चाहिए वह चन्द्रप्रभु तक पहुँचने पर ही आयी पूरा हुयी । इसीलिए चन्द्रप्रभु भगवान ही प्रकट हुए । यदि यह भक्ति इससे पूरा हो जाती तो वहाँ भी यह कार्य हो सकता था ।

जिन्ही गोल मवान का एक दरवाजा है उसमें एक व्यक्ति जिसकी आँखों पर पट्टी बधी है जो बाहर निकलने की इच्छा से घूमने लगा । दीवार पकड़ कर चला । दरवाजे पर आया दीवार से हाथ सटाय आगे बढ़ने को टटोलने के लिए पर हुआ यह कि सभी सग तिर में खजनी उठी और हाथ खजाने में पहुँच गया दरवाजा भी खूँ गया और फिर हाथ वहाँ आ गया दरवाजे के आगे दीवार पर । इस प्रकार बार-बार होता रहा । चाह कर भी न निकल सका । इसी प्रकार यह मनुष्य भव

रूपी एक दरवाजा है इस सप्ताह घोर तमोच्छन्न कमरे से निकलने का। इस अवसर को विषय भाषों की चाह रूपी खुजली मिटने में मर्वा लिया तो फिर छूटा ही छूटा है। पुनः वही भ्रमण शक है। चारित्र्य धारण कर पार होना चाहिए यही हमकी साधकता है। मानव जीवन अमूल्य निधि है। पाना ही दुलभ है और पार हो गई तो और दुलभ है।

आपने दण्डन में चहुरा देगा। चेहरे पर दाग लिया। उम दाग को छुड़ाने के लिए दण्डन को उधसी से रगड़ने लग तो क्या वह दाग दूर हो सकता है? कभी नहीं। हे आत्मन् तू विचार कर अरे दाग चहरे पर है न कि दर्पण में। यथा स्थान प्रमान साध्य होता है। ठीक सही पाट पकड़ कर चेहरे को रगड़ना तो लग छूटेगा। दण्डन तो माग माग दसा है दर्शा दिया अब उमे छुड़ाने का प्रयत्न तो पुष्पाय तुम्हारा सहो होना चाहिए। निमित्त साधन या व्यवहार नमित्तक या निश्चय का सहायक है परन्तु उचित दाय्य यथावसर मही प्रयोग किया तो सिद्धि बरा सफाई है अन्यथा नहीं। ज्ञान प्राप्त किया। जानी बन। ज्ञान का प्रज्ञा बना लिया—मोक्ष घोकर स्वच्छ कर लिया। स्वच्छ ही नहीं किया उमे बना भी बना लिया। यह प्रयोग करना है कहीं कम और आत्मा के पञ्चकरण करने में। ठीक सही सध पर बार हुआ तो शीघ्र ही तमू हूँ ही मैं दा भाग हो जायेंगे। चूक गए तो फिर क्या होगा एकात्म विपरीत हो जायगा। हे अन्तरमन् मन् विज्ञान जड़ चेतन की पक्ष धारण कर। यन् मही होगी पहिचान तो क्या हानि होगी? एक दृष्टान्त स्पष्ट कर देगा इस विषय को। एक लठ्ठी के। उनकी परम मत्त मनी सीमवती परम बजुर पत्नी था। लठ्ठी विषय लम्पटो जलम अत्यासक्त थे। पत्नी विदुषी भी थी। उमो पत्निय को विषयामति से मुक्त करने का उपाय सोचा। वह अपने पत्नी की बर्तन के यही लठ्ठी और उसमें लगी अन्न माग जीव को पुनर्जीव बनवा ला। रात्रि में एक दिन उस पुनर्जीव को चेतन पर मुखा दिया स्वयं छिप गई। पत्निय आये देखा दूधरा ही लठ्ठी के विचार मरी पत्नी प्रतिनि मरी प्रतीक्षा में बाध जोड़नी रहनी भी आज क्या बात है सम्भव है बीमार हो गई है क्यों जवाब दे। घोंरे से पत्निय पर जा पड़। विचार आया मरी पत्नी प्रतिनि मरी पक्ष दबानी थी आज रण है तो चलो मैं ही दशा हूँ। अब उठो और चार उग्र पक्ष दशान लगे। पत्नी न अवसर पाकर प्रवृत्त करने ही कहा क्याकी यत्र क्या कर रहे है? सेन चौड़ा अन्धरा यह क्या मुन मुन टगा मुन। पत्नी बाकी मैं नहीं टगा आग ही करने को टगने आर आज विम प्रहार इस जड़ की सेवा कर रहे है उगी प्रहार क्या मर जड़ रूप इस जरीर का सेवा नहीं करने रत? पत्नी अज्ञान है भूत है। भूत समझा विचार दिया विषय भाव नश्वर है रत उर के पुनर्जीव कारण है पुनर्जीव ही है। विज्ञान हा बने। पुनर्जीवको म नर्तक कर रता धारण कर ली। यह विज्ञान जग तो मनेव है। जग प्रवृत्त है। विज्ञान अन्तर का अन्तरान मान उमक रदाक का भाव नहीं हो

सकता। समार बिना अनोछा है—कोई बीमार हुआ, औषधि सेता है बच ने न
 नि का आश्वासन दिया रोग क्यों का क्यों रहा। तब उससे ऊब जाता है। अरे
 अब दूसरा इलाज करना चाहिए। चला जाता है उसकी दवा दाह छोड़ कर। किन्तु
 आश्चर्य है चाहु दाह रोग शमनार्थ रात व दिन विषय भोग रुकी औषधि भोजन कर
 रहे हैं हम लोग। पर रोग मिटने के स्थान पर बढ़ता जा रहा है तो भी उनके प्रति
 उदासी नहीं आती विरक्ति नहीं आती? बार बार उर्दों के सेवन को धुसे जा रहे
 हैं उर्दों में। यह भयंकर विहम्बना है। इन भोगों से उत्पन्न आहुतना रोग का
 उदाय विषय-भोजन नहीं अपितु स्थान है। बादिराज मुनिराज को कुष्ठ रोग हुआ
 रोग और तब क बन वे उसक शरीर मन में उस भयंकर रोग क शमन की शक्ति
 प्राप्त हो गई। यही हुआ श्री सनकुमार चक्रवर्ती मुनिराज का। ह आत्मन् समार
 रोग बड़ा भयंकर सन्नामक रोग है न जान कितने भय भटक चके हो। निगो पर्व
 में १ अतमुहूत मास समय में ६०१२ भव धारण किये। विभिन्न पर्यायपेक्षा
 ६६१३६ भव एक अनमूहने में धारण कर जमा मरा। विचार कर कितना कष्ट
 सहन किया। फिर भी उर्दों भोगों की ओर ललक बच रही है। यही पारमजान
 है मिथ्या बुद्धि है विपरीत प्रथम है। जानी बनो। विभिन्न सम्बन्धों में निरस्त
 बुद्धि का श्वास करो। जहाँ बुद्धि में स्व और पर सब जायगा वहाँ वही स्व में
 निवास हो जायगा स्व में स्थिर हुआ कि पर अनायास छू ही जायगा। स्वकीय
 चान्द का अवबोध होने हो परकीय चान्द छोड़ने में विरम्य नहीं होता।

अज्ञात सिद्धांत के साथ कम सिद्धांत वस्तु स्वरूप प्रतिपादन का अद्वितीय
 साधन है। मनी सिद्धि उभयवय स होती है। शरीरयोग की भूमिका में स्थित
 साधु को निश्चय तपावपम्बन आवश्यक है जबकि शुधोरयोग साधक साधु को अथ
 हार नपावनम्बन भी अनिवार्य है। शरीरयोग की भूमिका में विचरण करने वाले
 धावक को व्यवहार में विज्ञान प्रयोजनीय है य २९९० हो जाता है। आचार्य
 श्री कुव कु ९ स्वामी ने लगभग सार महाय व १ २४७ वीं गाथा एवं २५० वीं गाथा
 में स्पष्ट करन हुए मित्रा है जो जीव यह मानता है कि मैं अथ जीवों को जीविन
 करता हूँ या अथ द्वारा मैं जीवित किया जाता हूँ यह अज्ञानी है इससे विपरीत
 मानन वाला जानी है। क्योंकि किसी भी जीव का जीवन मरण उसके आयु कम के
 उभय रूप रूने और न रहने पर आश्रित है। जब तक आयु क नियम है तब तक
 जीवन है और आयु कम समाप्त हो गया तो मरण है यही सत्य सिद्धांत है। इस
 पर यदि एतान विज्ञान कर लिया जाय तो हर एक को उच्छलति निरकुश प्रवृत्ति
 हो जायगी। चाहु जो चाह जिसकी चान्द उठाकर भी अहिमक बना रह जायगा
 हरित कायाति का निस्कोच में न करें। म प्रकार भयंकर अवस्था हो
 जायगी। तब फिर है क्या? स्पष्ट है कि व्यवहार में से एक दूसरे के मरण जीवन में
 निमित्त है। बिना निमित्त के नमित्तिक की सिद्धि नहीं हो सकती। जो त्रिके

निमित्त से होता है वह उसका कर्म कहा जाता है और करने वाला कर्ता। यही कारण है कि कर्मभ्य बुद्धि से कर्मास्त्र होना है। कर्मास्त्र ने बाघ और बाघ से तसार तसार से दुःख। दुःख से भीत मानव द्विगादि त्रियात्रों से बचता है। पाप भीरु हो शुभ त्रियात्रों में प्रवृत्त होकर शुद्ध स्वभाव पाने की चट्टा करता है। समयसार गुडोपयोगस्व माधुत्रों की अने ॥ से सिखा गया है। शुभोपयोग की भूमिका में परिपक्व साधु नहीं अटक कर न रह जाय हमने लिए उन्हें शब्दावस्था में स्थिर करने के हनु आचार्य श्री ने प्रयास किया है। यद्यपि उन श्री का यह शिष्यानुष्ठान उपकार भी शुभोपयोग है। इससे विन्ति होना है कि स्वयं ज्ञाने को स्थित करने के उद्देश्य भी हम महान विशिष्ट अद्वितीय य य का निर्माण किया है। स्वाम्त सुसाय" लक्ष्य आचार्यों का सर्वोपरि लक्ष्य है। हे साधो ? बनमान युग में गुडोपयोग प्राप्त करना अति दुस्सम है और उससे भी अति दुस्सम है उस अवस्था में स्थित रहना। हाँ आप अपना लक्ष्य अवश्य उसी को पाने का बनाये किन्तु उसके प्राप्त होते के प्रयत्न में फिसल जाओ। इससे बचने को सावधान रहना उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। आपन पर्वतराज की चाटी पर पहुँचने का लक्ष्य सुनिश्चित कर लिया अब एक टक लगाय ऊपर मुह फाड़े खोदने लगे और वहाँ पहुँचने की धुन में यह भूल गये कि माग में रोड काटे भाटे खाड चड़ाई उतराई आदि भी है तो परिणाम क्या होगा ? लक्ष्य पर पहुँचना तो दूर रहा पटकी की चोटों में बना हुआ मत्स्य ही विस्मृत हो जायेगा। इसी प्रकार गुडोपयोग की रोड में बेहोश उमत्त सा हो तरतम भाव जम रूप मार्ग व्यति का विचार न कर एकाएक उसे पाने की चट्टा करेगा तो सम्भव है कि माग व्युत्त हो शुभ से हटकर अशुभ रूप गर्त में जाकर पक जायेगा। निखर की अपेक्षा रमातल में जाकर पक जायेगा। हे साधो अपेक्षा समझो। निरपक्ष पुष्टपाय कार्यकारी नहीं हो सकता। सापेक्ष किया ही सफल होनी है। अस्तु सत्य व्यवहारपूर्वक ही निश्चय की सिद्धि हो सकती है। हाँ व्यवहार अवस्था परिपक्व होने पर जिस समय निश्चय में साधक काम रलेगा उस काय व्यवहार स्वयमम दशक बना वहीं पर स्थिर खड़ा रह जायगा। उसे प्रवक्त करने का प्रयास करने की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर तुम्हें तुम्हारा साध्य सिद्ध करना है। साधन सही बनाये रहो साध्य तो सिद्ध हो ही जायगा। शरीर बराय परमावश्यक है परन्तु शरीर व माध्यम से ही बराय पुष्ट करना है। यह धृष्ट है। भला देना ही होगा जा से जितना से से दो परन्तु काम सेना मत भूलो। काम सेने में बनी रही तो समय तो तुम्हारा काय सिद्ध नहीं हो सकता। यही लक्ष्य बनाकर तन्तु सार पुष्टपाय परमावश्यक है। पुष्टपाय हीन लक्ष्य सिद्धि नहीं हो सकता।

तत्त्व त्रिवेचना अनिवार्य है। मू म वस्तु स्वरूप का अध्ययन करने से मन पचाप होना ॥ निज की भूम पक्क में आती है। भूल परिणाम ॥ उसका परिहार

होता है और तब होता है आत्म परिवार । आत्म भी एक तत्त्व है जिस पर मन
 बड़ा है जल सपा है बड़े और । वह जल भी तत्त्व है बड़ा है । जिस प्रकार वह
 भी एक तत्त्व है आया है जिस प्रकार रुखा है कसे टहरा है बने जाता है कसे और
 पूरा हटेगा कसे ये सब भी तत्त्व हैं । इन तत्वों के मध्य उत्पत्ता है हमारा स्व तत्त्व ।
 आत्म तत्त्व जो निकल कर हो जायेगा परमात्म तत्त्व बाने ही जिसे हम बहुलायेगे
 अजर और अमर । यही है शिव मोक्ष । इस तरह की प्राप्ति करने के लिए हमें सभी
 तत्वों की व्यवस्था परमावश्यक है । स्व जाति और पर जातीय तत्वों को समझकर
 ही उनसे भिन्न भिन्न का जोड़कर निकाला जा सकता है । अथवा नहीं । आत्मा
 विशाकार विमय है । अतः ही भूमिका में बड़ा चेतन अपने ही अनुराग से बड़ी
 बना है अपनी ही भूल सपझने पर स्वयं उनका परिहार कर बचने मुक्त हो सकता है ।
 इस इसी प्रक्रिया का नाम तत्त्व व्यवस्था है । स्व का अवयव है स्वामोपनिषद् का
 पात्र है । स्व सदन के बिना आत्म रस नहीं जा सकता । स्वाद चले बिना पुष्पाय
 नहीं जायत हो सकता । पुष्पाय (सम्यक् चारित्र्य) के अभाव में आत्मतुष्टि नहीं ?
 स्व स्वभाव परिज्ञान नहीं ? और उसके बिना आत्मा का पात्र भी किस प्रकार हो
 सकता है भला । अतः तत्त्व चर्चा मात्र अनुरञ्जन का साधन नहीं अपितु मनो
 निग्रह का सत्य प्रयत्न है । मन का सयमन होने से बचन का और बचन निरोध से
 काय का निरोध सरलता से हो जाता है । हे आत्मन् शम दम नियम और परिणा
 मार्ग तत्त्व विवचना में हर क्षण रत रहो । कम सिद्धांत की जटिल मूर्तियों को
 समझो । नियम और समय प्रवृत्ति की काय प्रचाली का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करो ।
 आत्मा इन्हीं दोनों के बीच उत्पत्ता है । कर्म मोक्ष आत्मा की सच्चि का परिणाम
 करो । प्रजापति से छेद भ्रमकर आत्म तत्त्व को पारा किया जाता है । यह तो सही
 है परन्तु सच्चि का ज्ञान हुए बिना काय मन का तन हो गया तो क्या होगा ? विपरीत
 जन्य हो जायेगा । जाने के स्थान में छो जायगा । इस परिस्थिति में आत्मा का
 परमात्म स्वरूप कम उत्पत्ता हो सकता है ? हे साधो ! साधना का सदैव समझो
 काय कारण भाव साधो साध्य साधन की माध्यमता में अपने स्व स्वरूप को पहचानो ।
 पहिचान के बिना पाकर ही ग्रहण नहीं कर सकते । पुन छिटक गया तो फिर कहाँ
 पाया जा सकेगा ? मना विचार तो कर । मुख मत बन । मनत जाग्रत रह कर
 अपने को समझने का सकल उद्योग कर ।

जीव न जस्यदात लोक और अनन्त लोक प्रमाण अव्यवस्थान परिणाम है ।
 इनकी रचना सयोग प्रसक्त है । मोक्ष और योग के सयोग से नाव विविध भाव करता
 है । कपाम अनुरञ्जन से योग प्रवृत्ति में नावात्त्व प्राप्त होता है । यह योग प्रवृत्ति
 कपाम नियंत्रित हो एव एव बर्तीहृत भावों को भी असंख्य रूप परिणामी है ।
 प्रथम सयोगी दशा का नाम सवगवाणी में गुणस्थान रख १४ भावों में उनका वर्गी

करना दिया है। पुनः एक एक वर्ग में कथाओं से मिल्य योग प्रकृति की संज्ञा देना बड़ी है जिन्हें ६ भागों में विभाजित किया है। कृष्ण गीत काण्ड, गीत पद और गुणन। इसी तरह काव्य भी अर्गन्तान लोक प्रमाण है। एक एक गुण स्थान में छद्मों की तरह काव्य से पायी जाती है। यथा प्रथम निष्पत्त्य गुण स्थान इस छद्मों का बहान करती है। एक एक के परिणामों का गुणमीकरण करने से अन्तर्गत लक्षण प्राप्त होते हैं। शुभाशुभ रूप में छद्मों को भागों में विभाजित किया है। प्रथम गुण स्थानी निष्पत्त्य की मन्त्र काव्यात्मक धारण कर मन्त्रात्रा का निष्पत्त्य भोग घर कर लक्षण संज्ञा का निम्न भाव धारण करती करती हुआ। तबसे वैयर्थ्य पर्यन्त दोष लगाकर पहुँच जाता है और गुण स्थान भरकर कृष्ण लेखा के परम अन्तर्गत भावों में विवरण करता हुआ ७ वें तरह में जा विराजता है। एव ही गुण स्थान में रहकर १३ रात्र की कीर्ति जाना कर लेता है। यह महा विषयकारी परिणति है। बहिर्गत समानी मही अलङ्कार के कि किंग प्रसार होने प्रसार होते होते परानु कीर्ति जिन की म इनका एक एक अक्ष परमाण मात्र स्पष्ट और मही शब्द रहा है। हे मन्त्रात्रा इन सूक्ष्मतम भावावली का परिज्ञान करने की योग्यता सेरे अन्तर भी विद्यमान है अन्तर्गत छोलने का प्रयास कर। इन सङ्घियों को काटता है तो इनका परिज्ञान भी परमावश्यक है।

आनन्द अनेक है विषयानन्द भोगानन्द उभयभोगानन्द श्रीरानन्द हास्यानन्द जीवानन्द आत्मानन्द मनानन्द दयानन्द सदा परमानन्द और परमात्मानन्द आदि। आनन्द मात्र ही सुख है क्या? विचारणीय तो यह है। जो पर निमित्तिक है वह सर्व ह्य और त्याग्य है। जिसमें पर की अपेक्षा न हो स्वतः जिसका आनन्द है उसी वस्तु के उत्पन्न हृदय तत्त्व से उत्पन्न हो बही सत्यानन्द उपादय भूत है। इस विषयानन्दक लक्षणा से विदित होता है कि आत्मानन्द और बही विस्तार की प्राप्त परमात्मानन्द स्वतः उद्भूत केवल असहाय पुण स्वाधीन है। यही मही उपादेय भूत है। जहाँ तनिक भी परावन्धन का लक्षण है वहाँ पुण स्वाधीनता नहीं। वह स्वाधी भी नहीं। तबवर स्व स्वभाव नहीं। स्व स्वभाव अभाव में स्वाधी आनन्द नहीं फिर भला यह सच्चा कैसे हो सकता है? हे साधो मन्त्रात्रा विज्ञेय आनन्द त्रिं मा निकाल स्वा जाड स्वानन्द धाने का प्रयत्न करो। इसका सरल यथोचित उपाय पर का उपयोग स्थान। बाल बोटि अग्रभाग मात्र भी अपना न समझ। इस समझ को बुद्धि म जड सो और प्रज्ञा की तीव्र धारा से पूर्य सचित सम्बन्ध की सधि पर डालकर दो भाग कर डालो। अपना ही अपना रह जायेगा। बस।

मनुष्य पर्याय म सर्वोत्कृष्ट मनोबल उपलब्ध होता है। मन का विशेष उपयोग हेयोपादेय वस्तुमाकस्य का विवेक करता है। बुद्धि व्यवसाय मन की सामर्थ्य से वृद्धिगत होता है। मन की विभूति से मदन और काय की भी निर्मलता होती है।

चित्तका मनोबल चित्तना सभाहित होता है उसना ही वह एकाग्र चित्त वृत्ति करने में समर्थ होता है । एकाग्र चित्त होना ही ध्यान है । ध्यान ही कर्म निबन्धन का एक मात्र उपाय है । ध्यानी तपस्वी होता है । इसीलिए तपसा निबन्धन कहा है । ध्यान और तप का अयो-याग्रव सम्बन्ध है । ध्यान यत्ति युक्त ही होता है । तभी न ज्ञानी के क्षण माहि त्रिगुण से सहज टरें और ।" यह सिद्ध होता है । कोरा ज्ञान कर्म निबन्धन का हेतु नहीं हो सकता । ज्ञान के साथ चारित्र्य होना चाहिये । चारित्र्य तप ही है । तप के बिना कोरा चारित्र्य क्या काय साधक होता है ? नहीं । निश्चय स्पष्ट है मन बचन काय को एकाग्र कर ध्यान करना । समयमूलक तपश्चरण करना मुक्ति का हेतु है । तप सद्यस से ही मोक्ष प्राप्त करता है । इन सबके साथ सम्भव होना ही है । मनोबल के प्राकट्य से सम्पूर्ण चारित्र्य सिद्ध होती है । हे मध्यात्मक भीम जाग्रत करने के लिए मनोबल-वृद्ध सक्त्यो बनो सभी सुन्दर महावत यथार्थ फल मोक्ष का साधक होगा । मोह और लोभ से रहित परिणाम ही हम भाव है । मोह से अनिष्टाद तत्त्व विचार शून्य परिणति । मोह का अर्थ भ्रम विवेकहीनता । मोह का विवक युक्त रहता है । यथा मत्ता पान करने में जान विहृत हो जाता है विवक प्रच्छन्न सा हो जाता है वह भावे को भूल जाता है । अपने को न समझने से पर को भी नहीं समझ पाता है अथवा यथा तन्ना स्व और पर को मानता है । उसकी दृष्टि में किसी भी पदार्थ के प्रति स्वयं नहीं ज्ञान पाता उसी प्रकार मोहो मानव भी तत्त्व परिणाम विमुक्त हो जाता है । आत्मा को पर और पर को आत्म रूप मानने लगता है । पर के साथ अपने कुछ-कुछ का मझा जोड़ता है । विविध कल्पना आत्मों में अपने को समझाकर कष्ट उठाता है । तत्त्व मात्र न वाचक भटकता फिरता है । मन तन नाता मानियों में ८४ लाख योनियों में पच भ्रष्ट हो भ्रमता रहता है । ३६३ पापघटों को आत्महित साधक समझकर उनमें ही उसन जाता है । एकाग्र पद पकड़कर हर क्षण उनकी ही तरफ़दारी कर अशुभ अमर निरर्थक परिणाम करता जाता है । यह है मोहो ज्ञानी जोष की दुःशा । आत्म स्वरूप बिंदु स्वभाव के परिचय बिना आत्मा अपने निज रूप में नहीं पाती है ठहर नहीं पाती स्थिर नहीं हो पाती । फिर क्या स्व स्वरूप कैसे मिले ? किस प्रकार रहे ? क ? ठहरे । हे भाई मोह की चादर उठार कर देख । गुरु का फेंकने पर गुरु नागिनी दृष्टिकोण हाथी है बाँधली फेंकने पर सर्पराज चित्त प्रसार प्रत्यक्ष होते हैं सभी प्रकार माह का ताना-बाना दाव हीच धुर करते ही आत्माराधन करने स्व स्वरूप में परिणत होने मयेदा हममें वन्दे नही ।

चित्त है एक शुद्ध विषय मेह हो होय ॥

विषय मेह वेतन अवेतन रूप हो होय ॥

शरीर का समोच रूप विषय बहिरङ्ग होय ।

विपरीत विषय काय दृष्टि भी विरुद्ध होय ॥१॥

सोनी ॥ बनर मये निगना बन बरिचये ।
 येनन को अह बन मागछन दिन करे ॥
 अह को लयेन जाय दिन ते छत्रन करे ।
 बलही के जान बड़ो येनन विमान करे ॥२॥

जनि घम बना करो रागी में लने करे ।
 बानु में मोर देखे सोनी में बूब परे ॥
 संदय ते दूर नारी बारी ते प्रीन करे ।
 मर तन न नेक बाते सुनना की जान बड़े ॥३॥

जाना को मुन जाय दर में ही जाय मान
 राग दिन सेव अच पायें बहूँ जाय जान
 कलस उनस बरे गतिपों की राह बाहे
 निज को बितारे मन बौड़ बौड़ बहो जाय ॥४॥

हुआ क्यों-विचारों देता मान्य हो ?
 मोहू महिरा का तारा खेन ज्ञान ॥
 राग हुँक मोहू मित्र रपागो उरसाह ते
 ज्ञान बीच जले तो अज्ञान हुँक आपकी पहुँचान हो ॥५॥

॥ = ॥

आराम को जोयन करो । क्यों क्या छोड़ी बनें ? बाहू जी अच्छा कहा मुझी
 महाराज मनुष्य पर्याय उत्तम कुल उत्कृष्ट योग में पना हुए सर्वोत्तम घम पाया
 और आप हुँक नीच छोड़ी का सुष्ठु कार्य बता रहे हैं । जना यह कैसे हो सकता है ?
 अरे भोले भ्रष्टारमन्त्रू अनादिवासीन बपाय भाव का परित्याग कर शान्तिविज
 हो उत्तमता मत कर, तनिक गम्भीर बन । मरी बात बर्तमान मे बहुत अवश्य है किन्तु
 अत म विपाद कास म अशक्त सुमधुर होगी । देखो यहाँ तीव्र बनना से प्राप्ति
 रोगी भोगि पीठा है वीन के काल म बहुत ही पर भी रोग निवृत्ति रूप बन
 काल मे वह अरुण त रिय होती है । हे भाई यही परिचाय छावी घनन म है । तू मुन
 क्या छोटा है आराम गुल निजगुण कपी स्वस्व का प्रणालन कर । विरामे छोड़ो 'म'
 शान दही सामुन लो समरस नीर का सरोवर करो स्वय अन्तरात्मा बनो । बहि
 रास मुद्धि रपागो । बहिर शक्त ही कहना है कि तुम अपने से बाहर ही अपनी शक्ति
 का उपयोग कर रहे हो । यह पर है । हे भ्रष्टारमन्त्रू स्वामन्त्र का परिणाम करो ।
 निजाम तरव को समझो स्व स्वच्छ का दर्शन करो । ध्यान करो होगा उस पर
 अनादिवासीन बपाय मत अपान मत और अविरल रूप कातिमा जय सदा जमी,
 हुँक है उसे स्वच्छ करने में भव विज्ञान कपी छोडा सामुन ही समर्थ है । इस सोडा
 सामुन को येनम बनाने वाला समता रस है । यही जल उस अनादि कातिमा के

स्वयं करने में समर्थ है। हे साधो, मान्द स्थिर बित हो प्रज्ञाच्छेदी तयार करो। और उपयुक्त उपायों से निज अप बहवान कर प्रज्ञाच्छेदी को बड़ी सिंघानी से बर्ष और आत्मा की सगि पर बात को बस तुम तुम और कम बर्ष का स्वयमेव प्रयत्न प्रयत्न हो जायेगा। यही संसारोत्तीर्ण का है।

सर्वद्वि के जीवन्य प्राण दात्र है। जन्म में जन्मा सोम्य दिव्यता पदा है। नीतरायणा और सरायणा का सुन्दर साकार समन्वय मिलन कला में अहित है। यत्र सत्र जीवन जन्मा प्राण प्रतिष्ठा पा रही है। देवदत्त सदान अतुराहो धीन का पुण्यजन ब्रह्म दक्षनीय है। आत्मा का विकास कर्म जानना है तो हे भग्न इन चन्द्रहरी से काठाभाष करो। अरुनी विधि उत्पन्न की उत्तम्यि चाहिए तो इन भग्न त्रिनविम्बों का सङ्गुण्य नुनो। इनसे मनोत्र दिव्यो की मुक्तान न अति रम्य मान्द सिंघु सकारे से रहा है। स्वानुपुष्टि का सम्मीर और मानिक हनु यदि चाहिए तो इन प्राचीन प्रतिविम्बों से प्राप्त करो। यही हमारी मोरब गाथा बिछी पड़ी है। अन्तरात्मा की अन्ति भूत्र रही है। आत्मा जिस प्रकार परमात्मा बनता है। पुण्य का जन्म क्या है पाप का परिणाम क्या है? उभय का का जन्म क्या हो सकता है और उभयप्राप्त का प्रतिकूल क्या होता है यह इन बिहसते हुए चन्द्रहरी में अनायास प्राप्त होता है। कलाकार को समस्त भिन्न भिन्न भावनाएँ पापाण प्रस्तरी में अङ्कित हैं। एक-एक मुक्ति में श्रुमार रत्न साकार हो उठा है। त्रिन प्रतिमाओं न मान्द रत्न प्रवाहित है। श्री १००८ शान्तिनाथ प्रभु के महा विमान काय प्रतिविम्ब कराय भावों का चद्रेक करने में पूर्ण सत्तम है। परम मान्द अन्त्य-विचारक आत्मा की अलङ्कार साकार हो रही है। राग द्वय भाव अनायास दशन मान्द स नष्ट हो जाता है। भूषा-भूषा की बाधा शमित हो जाती है। अन्म नष्ट हो जाता है। आत्म साधि वृद्धिपत्र होती है। सिधरों की छवि मनोबो है। अति मनोहर मङ्गल वस्तु सब स्वानि सागात् समय शरण के धूप घटों का स्मरण कराती है। सुख कवा पुन पापाण छत्र चमर जायो और बित्रकारी मानो पुष्टिमान का धारण कर पवारी है। स्वापत्यकला का अरुनो रूपे विकास सीमा को प्राप्त हो चुका है। यही (अतुराहो) की त्रिनमयन जन्मा अरुने पूर्ण ब्रह्म से प्राचीन मान्द, उत्तनीतम कला का प्रदर्शन कर रही है। भग्न धीन काम भव और भाव का सही उचित और योग्य उद्योग इन्हीं कलाकारों का है जिन्होंने अपने हृदय की भावावली को साकार कर प्रत्यन कर मान्द की दिसलान योग्यता का परिचय प्रदान किया है। नि रत्न का मुखम सौन्दर्य यह है। तिली की जीवन कला यही प्रशिक्षण रही है। आत्मसाधि का सीर यह रहा है। अन्तरात्मा का प्रधान है। रमाय संयम जीवन साकार हो उठा है। अन्तर की प्रतिमा मानो बन गई है किन्तु उत्तम बोधि की नि रकला है यह र नवनाथी की भी मान्द कर दिया है इस पञ्चीकारी ने। पृथ्वी का लज्जुन भी रर पृथ्वी अर नव नव हो गया क्या?

हो स्व स्वरूप में उपलब्ध हो समस्त मनों से रहित हो। मत ऊपर से निम्न है
 ये तो नकार है। नकार उगार कर फेंक देना है कम धम स्वरूप आत्मा प्राप्त हो
 जायेगा। पुन क्या करना है? कुछ नहीं। भावों की परख करा मिथ्यात्व भाव
 और शुभम लेश्या एक साथ रह सकती है। भसा बाह्य विग्रहों से क्या परख करें।
 बड़ा अद्भुत सा प्रतीत होता है। विष्णु तो भी तारतम्य की अपेक्षा सूक्ष्म विचार
 करें तो प्रतीत होता है। सम्यक्त्व के साथ ही शुभ लेश्याओं का प्रादुर्भाव हो
 जायेगा। जहाँ चतुर्थ से उन्नीस तक गुणस्थान हैं वहाँ नियम से शुभ ही लेश्याएँ होती
 हैं। विष्णु वहाँ शम लेश्या हैं वहाँ ये गुणस्थान ही हैं यह जल्द ही नहीं है। अर्थात्
 उनकी विषम व्याप्ति है। आठवें से तेरहवें गुणस्थान पर्यंत तारतम्य रूप से शुक्ल
 लेश्या होती है। यहाँ लेश्या और गुणस्थान की असम व्याप्ति है। अर्थात् जहाँ
 गुणस्थानों का स्वरूप है वहाँ नियम से शुक्ल लेश्या ही है और जहाँ शुक्ल
 या हो वहाँ ये गुणस्थान रहें यह कोई आवश्यक है। दिवंगा रूप कथन अवगम
 भागम का स्वरूप समझना चाहिए। भावों की पवित्रता अत्यन्त अनिवार्य है।
 प्रमाण है। उनसे अधिक प्रमाण है उन भावों की पक्क और उल्लेख भी अधिक
 प्रमाण है उनका पाकर उनमें स्थिर रहना। स्थिर रहकर भी उनमें अल्प रहना
 योग्यायोग का निषेध कर अनुपम भावों में अपने आपकी समायें रहना उपाय
 से तटस्थ बूझें।

जीवा समस्यते य यैव वा त जीव समासा ॥

सम्पूर्ण जिनकाणी चार अनुयोगों में वर्णित है। भगवान एक हैं, उनकी वाणी
 । फिर चार भावों में विभाजन क्यों किया? क्या भगवान ने चार प्रकार
 किया था? यह बात नहीं है विषय भेद अवेला चार अनुयोगों में सप्रतीत है
 । ११ जिन प्रभु का चार रूप उपाय है। वस्तु स्वरूप का प्रतिगान एक ही
 रूप है विष्णु उसे सरल रीति से हर्षगम करने प्रयोगों का उद्धार करने के लिए
 सर्वोपकारार्थ उसे चार भावों में संवहीन किया है। प्रथमानुयोग पुण्य पात्र रूप पत्नी
 का निरूपण कहा साहित्य के माध्यम से करता है। १२ जलाका के महापुरुषों का
 जीवन चरित्र जिस प्रकार मुख-मुख के हिरोनों में झूलकर घटकर शुभाशम
 गतिवों में गमनागमन कर स्थिर हुआ वह प्रथमानुयोग अति सरलता से स्पष्ट करता
 है। पुण्यभाष के आधारभूत जीव तत्त्व पुण्यत तत्त्व एवं अन्य भावक बाधादि का
 भी प्रासंगिक निरूपण होता है। सम्यक्त्व ज्ञान और चारित्र्य धर्मियों के चरित्र विवरण
 में रत्नत्रय की प्राप्ति, वृद्धि समय रूप ध्यानादि का भी नाति अल्प विवेचन होता
 है। शुभाशुभ कर्म प्ररित जीव जहाँ जहाँ जन्म मरणादि करता है उन स्थानों—
 सोर सत्रों का भी निरूपण इस अनुयोग में पाये बिना नहीं रहता। परिधान विवेकी
 जीव समयमाराधना कर जिस प्रकार अल्प सुख स्वरूप आराम तत्त्व की उपलब्धि करने
 में समर्थ होता है वह भी इस अनुयोग में सुलभा रूप प्राप्त होता है। संनयन म प्रथमा
 अनुयोग में चारों ही अनुयोग वर्णित हैं। प्राथमिक अवस्था में प्रथम इसी अनुयोग का

है। बाह्य निमनता बाह्य बुद्धि धारिणी के सहज ही रहनी है। पर तब दबा हुआ मोह राजा तक लगाये छिपा रहना है। उपरम यभी का काल अतमूहत पूरा हुआ नहीं कि पट जीव को छेदने लेता है पमत गिरता पड़ना पुन अपनी प्राचीन भात भूमि पर आ पड़ता है। यह अतोधी दशा हम द्व परम्परा मे जीव आत्मा को अपार कष्ट उठाने पड़ने है किंतु यहीं तक पहुँचने के बाद उसी भव मे दो बार से अधिक पराम्त नहीं होता है और अनेक सवायेगा ५ बार से अधिक परामृत नहीं होता है। ५ वीं बार अवय एक सवायेगा तीसरी बार नियम से अपने उद्देश्य म सफ़्त हो जाता है अर्थात् बार पानिया कर्मों का सार पर पूण ज्ञानी बनकर शेष कर्मों का नाश कर अविनाशी पद प्राप्ति कर सता है।

आत्मा पुष्ट्य और ब्रह्म की स्वतन्त्र सत्ता है। सबवा भिन्न है फिर भला मेरा तेरा व्यवहार क्या ? स्वभाव भिन्न है काय भिन्न है तो भी अनादि सम्बन्ध होने से दोनों का एक रूप व्यवहार होता जला आ रहा है। यह एवत्पना ही मानो निज स्वभाव हो गया है। यथा ज या घ पुष्ट्य मे पडा कभी देखा नहीं मान भी का पडा नाम सुनता रहा तो वह पडा भी का ही है ऐसा विश्वास कर बैठता है। वास्तव मे तो पडा भी का नहीं है अपितु मिट्टी का है परन्तु उसकी मानता में तो भी का पडा आ चुका है। जमी प्रकार जीवात्मा में प्रविष्ट ब्रह्म सयोग की धारणा हो जाने से वह इस सयोगी दशा को ही अपना मानकर व्यवहार करता है। उसी निय स्वय को लेता है। मिट्टी दशा को अपना मान कर उसी में तल्लीन रहता है। मैं उस रूप हो हूँ ऐसा विश्वास है उसे यह है जीव की दुष्टता। ह ज्ञानि, अब अबसर आया है अनन्त पर्याप्त म घटक चुकर, सब कष्ट सहे मुक्त भाव में रचापमान हुआ हो रहा है पर ज्ञान बुद्धि बस विपरीत परिणामन करता रहा है। अब अपने निज स्वभाव को पहिचानने का प्रयत्न कर।

प्रात खिरस्मियों के प्रसार पुर्व ही जब कृद कुहने लगते हैं उनकी बहर खिरल स्तुति रूप म प्रारम्भ हो जाती है क्या प्रापना है यत्ता उनकी ? सध्या समन भी यही हान है यत्ता इसका कारण तो अवगत करना चाहिए ? हों विचारणीय है। प्रात उनका स्वर इसलिए मुखरित होता है कि रात्रि मे जमनावस्था मे हमने जो भी अनर्गल प्रवृत्ति की है उसे सन्धान समा करे। साथ दिनभर क कार्यों म जने दोषों के परिहाराप स्तवन करते हैं। दिन भर लड़त है बिना यातिन की आत्मा के पर बन्तु ता सेवन करते हैं भोजनानि भी इसी प्रकार खाते हैं। योउलानि के लिए लुणादि संघय कर परिपह पात्र भी करते हैं। नील समय विहीन जीवन है। जिसके साथ भोग किया इसका भी उन्हें ध्यान नहीं। मन है किन्तु उसका प्रयास नहीं रूप म नहीं कर पाते। योग्यता नहीं हान उ विवेक आपठ नहीं हो पाता। तो भी य परचाठाप करते हैं दुष्ट निवृत्ति क लिए ईश्वर भवधान की आराधना करते हैं। ह मानव सुता ज्ञानी है। दोषों को जान रहा है, समझ रहा है। उनकी अनुभूति भी

जोध बर्ग आया ? जोधकपाय बाहनीय का उदय आन है । आया उन्नी ठा
 बना आता बाहिन उन्नी ठाण रहा बर्गो की ? अरे बाई स्थिति और रक्षण का समय
 नियुक्त होता है । तब सबको समान रहना चाहिए ? नहीं जिस समय बर्गपाय भेदा
 ॥ उग बाण म उगके रक्षाबाद म बाई की जैनी अनुरक्ति या विरक्ति रहनी है
 आमापी कामावधि पम्पान समय स्थिति आनि भी तदनुबन्ध निर्धारित हो आती है ।
 पुन अर्थात् काम समाप्त होने पर उसी के अनुबन्ध पन अधिक या कम अधिक समय
 या अवकाल तक प्राप्त होता रहता है । यह है रसोत्पन्न मरचण का क्रम । जिससे
 आपकी प्रीति है उगका काम करने उससे बाताचार करने आनि म आप अधिक से
 अधिक समय लगाने है । अवकाल नहीं होने पर मन-मन प्रकारेण समय निश्चयते है
 बिन्तु जिते अधिक मात्रा है उसका प्रति आप निश्चय रहने हुए भी आना-जानी कर
 टाल देके उसके काय म सह्यता ता दूर रहा और बिन्ध डालने की व्यवस्था करेंगे ।
 इस धरो हान है बर्गपायकपायों का । जिनका स्वागत करा अधिक बाल तक पन
 देके राग नहीं किया या अन्य किया तो तदनुसार पन भी नहीं देके और निया ता
 अन्य ही देंगे । तीव्र नहीं देते । सभी व्यवहारों म यो बात है और सभी भावों म भी
 यही भाव दिया है ।

दुमरी बाण बाण निमित्त है । जोध आया, वह जिस निमित्त त आया वह
 जितना ही शक्तिशाली होना निमित्त भी उतना ही शक्तिशुक्त रहता । बाण कारण
 कई ॥ उक्त है । मया—१ मान हानि २ अल्प शक्ति ३ बिर्बिर्बाहट ४ मया
 बाणी ५ सोमाधिक्य ६ अनि प्रीति ७ मन शोध ८ अमान्य बाताचारण ९
 शासन बिहीन सन्तान एव १० व्यापारानि में हानि और स्वार्थ की हानि इत्यादि ।
 जिस समय मनुष्य क्याति प्राप्त अवस्था में कार्यारम्भ करता है और उसका सम्मान
 यथेष्ट नहीं होता तो बाध का जन्म हो जाता है । किसी के साथ तुमनामक क्रिया
 प्रारम्भ की और अल्प या हीन शक्ति होने से बराबर हो गया अथ अप सामर्थ्य के
 कारण बदला से नहीं पाता तो जोषान्ति की स्थिति में झुलसने लगता है । शक्ति से
 अधिक धम करने पर बिर्बिर्बाहट होती है और उस समय यदि किसी ने उसे सहयोग
 देने की चेष्टा की तो अवश्य वह जोधराम का विचार हो जायेगा । किसी का अहित
 कर कोई वस्तु छपने पर उसने द्वारा उस छपाई के विषय में बर्ग बाता हुई तो वर
 बिन्तु जोध म परिणत हो आती है । मुख्यतः पराई वस्तु अपहरण कर लेता है पुन
 माध करने पर असत्य भाषण कर लाभ-लाभ ओखें दिखाने लगता है । भयकर जोधा
 मन भद्रक उठता है । किसी के प्रति अत्याचार होने पर यदि वह अपने अनुबन्ध नहीं
 बना तो अवश्य ही वह जोध का विचार करता है । राग के साथ द्वेष होता ही है
 द्वेष काय का ही तो अकार है प्रीति का ही तो मुरम्बा है । किसी विशेष सम्बन्ध
 म मनुष्य अमान्य ॥ आता है उग समय गुन से गुनर या उत्तम से उत्तम उपर

द्योतक है। आत्मा एक तत्त्व है। बट स्वतः है। एकाकी है। पूरा एतत्त्व हो गया
एक मात्र स्वप्न है। एतत्त्व विभक्त स्वरूप ही जो इसका लक्षण है। यही जीवन है।
आत्मा ज्ञान दान का पुञ्ज है इसी का नाम चमत्ता है। केवला आत्म स्वभाव है। वह
प्राणी मात्र के अन्दर विद्यमान है। प्राण को जो धारण करे उसे प्राणी कहते हैं। प्राण
आत्मा का लक्षण या स्वभाव नहीं है किन्तु आत्मा के विभाव परिणमन का विचार है। प्राण
इसे समझो प्राणोच्छ्व को मरण कहा जाता है किन्तु हमने आत्मा का तन्त्रिक भी जान
नहीं होता यही रहस्य है।

उपयोग आत्मा की निज परिणति है। वह स्वाभाविक शक्ति है। इस
परिणमन दो प्रकार में होता है १ स्वाभाविक और २ कर्माविक। पर निमित्त का
परिणमन विभाव रूप है और पर निरपेक्ष परिणमन स्वभाव रूप है। स्वभाव को
विभाव दोनों रूप उपयोग ज्ञान और दान दो रूप में विभक्त है। ज्ञान स्वभाव को
परनिमित्त से सत्सद रूप विभावित हो जाता है। कर्माविक दान में सत्सद रूप
विभिन्न दशाओं में प्राप्त होता है। सम्प्रज्ञानोपयोग मति धृति अविधि मन एत
और कवल ज्ञान रूप विभावित हो जाता है। जसे-जसे पर निमित्त हटता जाता है
वत वह विशुद्धता लिए स्व स्वरूप में आता जाता है। पूरा शुद्ध होने पर स्व निज
एक रूप हावर विरतन सत्य रूप परिणमित हो जाता है। जसा का लक्ष्य बना रहता है।
उपयोग में स्वच्छता है शांतिता है स्वयं है शक्ति है यह उसका विविध प्रयोगों से
प्रतीत होता है। ध्यानावस्था में चाह कर शुभ हो या अशुभ जिस विषय का चिन्तन
किया जाता है उसका महार्य में उत्तरात्तर तृप्ति होती जाती है स्वाभाविक बड़ा बड़ा
है प्रसरता जाती जाती है। ही वह अवश्य है कि यदि यह शुभ की प्रारंभ हो पाई
तो आत्मा का साधक हो रहा है या अपने स्वभाव में ज्ञान की तयारी में है और यदि
अशुभ रूप परिणम रहा है तो स्व स्वरूप में दूर हो रहा है दुःख और सारा का
कारण बन रहा है। अशुभ रूप दुःख पुञ्ज और कुप्रवृत्ति सत्ता वाकर सारा बड़ा
हो जाता है। ज्ञान की दशानुसार ज्ञान की भी कभी दशा होती है। यही दुःखसारा
का प्राप्त हुए कि आत्मा का स्व स्वरूप उपस्थित हो गया। अस्तु ये स्वाभाविक स्व
इष्ट का निरक्षण है। गुण गुणा से पूर्ण होकर रह नहीं सकत। आत्मा केवल गुणों
और बन व मन से युक्त है। यही तत्त्व स्वरूप है। शुद्ध स्वरूप का निर्वाण इष्ट
गुणाग्रही अव नहीं तो फिर वही ज्ञान का उत्पत्ति होने का है यदि पास हो भी सके तो
गत्यामयी अव नहीं तो फिर वही ज्ञान का उत्पत्ति होने का है यदि पास हो भी सके तो
पुन सत्सद से रहित हो गया। दिसा किता प्रकार उपयोग परोपका की लक्षणा व
कुछ पुस्तकें दिसा उनमें मन २० तो अन्त नम्बरा में उत्पत्ति अक्षय हो नय परन्तु
अव भा विचारन दिसा उपाधि तो हाथ में पूरा हो गई। विचारन आया जो तो वह
सद्व्यवसाय का अवयव सीमित दायर में। भला हम प्रकार की 'प्रेमीजन' में

उत्पत्ति कैसे हो। पावर किस प्रकार बड़े ? प्रभुता कहाँ से आवे ? नहीं आ सकती। यह है उपयोग की विविध धारा। ये निमित्ततायें जिस क्षण आत्मा के ज्ञान में सुस्पष्ट होनी वह साक्ष्यानी से अनेक में एकीकरण कर अपना स्वरूप सिद्ध कर सभा। ये विविध धाराएँ मिटकर नहीं अपितु मिलकर एक रूपकवत ज्ञान या स्वरूप हो जायेंगी। अपना स्वभाव उपयोग है यह तो सुनिश्चित है। देखा जाता है कि कठिन साध्य काय तो क्या असाध्य बाध भी उपयोग की श्रितता में सुलभ हो जाता है। चाँत जिस एकाग्र है यदि हम विचार करें तो फिर विस्मृत स्मृतिर्था भी ताजो हा जाती है। वहाँ से अनपेक्षित हिसाब अर्था विषय भी एकाग्र चिन्तन से सहज ही समझ में आ जाते हैं। उपयोग का सम्बन्ध बाह्य से मन व साधन द्वारा रहता है। मन शरीरस्थ है अतः भवन और बाध से भी उसका (उपयोग) का चनिष्ट सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। इस स्वानुभूति में आत्मा अपने निज का आभास पाता है। एकाग्रता में आनन्द है सुख है शान्ति है यह प्रत्यक्ष देखने में आता है। किसी भी तत्त्व विषय पदार्थ के विषय में विरमति हो जाती है। देखा जाता है कि क्षण भर भी उपयोग की एकाग्रता पर विचार किया तो तत्क्षण उसका समाधान सोमवेदन हो जाता है। यदा-कदा प्रभु की मूर्ति करत समय पूजा पाठ स्तुति श्लोकान्दि की कड़ी या शान्ति विरमति हो जाता है— भूल जाते हैं विन्तु-यों ही कुछ क्षण एकाग्र टाकर बैठ कि तत्काल स्मृत हो जाते हैं। यह क्या है ? उपयोग का श्रितता और नियतता की शमना। उपयोग जिनका सबल और श्रित होना हमारी स्मरण शक्ति उत्तनी ही तीक्ष्ण होती और धारणा शक्ति भी उनी अनुपात से शृंग शक्तिशाली होती।

धारणा या धारणा दोनों का चनिष्ट सम्बन्ध है। धारणा मन की परिपक्वता है और धारणा मन का निर्माता है। विचार पुञ्जी का जहाँ निवृत्तता किता जाता है। उनका गण दोषों का निवेपना की जाती है उग हा हम धारणा कहता है। धारणा शान्ति का अर्थ ग्रहण करना या धारण करना है। प्राप्त वस्तु विचार भाव हा धारण विषय जा सकते हैं अशान्त का मनो। भाव विचारों का सुमासुख-अच्छावुरा आनयान व अनुसार हीना है। बाह्य प्रम्यो के सत्तरी स सुमासुख परिणति जोर की होती जाई है और मात्र भी हो रही है। इसे निवारण करने के लिए तत्त्व विचार धारणा और शुद्ध विचार धारणा परमावश्यक है। बिना इनका स्व स्वरूपोपार्जा नहीं हा सकती। इन स्वभाव की उपलब्धि के लिए हमें प्रयत्नशील होना होगा। मन और दशन का हास निवृत्त परिणामों से विशेष होता है। सकलता भावा का उत्पादन अतिशय ही दृष्टा है— अनुपता है कहता है। जिनका बाह्याङ्ग्यर रहेगा विषय-अपाय-नाश माएँ उत्तनी ही अधिप बहती जायेंगी, सकल विषय उत्तने ही उत्तन रहेंग विचार स्मरण धारणा शक्ति भी उनी अनुपात से शीघ्र होती जायेंगी। हे चम्पेलम तत्त्व परिज्ञान व निये धारणा शक्ति का होना परमावश्यक है। इनके निये हृदय परम

होना चाहिये । जाने गवय म जो जिनना मुग्ध, पत्ता मुनिचित रहेगा उसको धारणा उत्तरी हो मन्त्रोत होगी और आत्म विज्ञान भी उनी अनुपात में उपोय होना चायेगा । स्वतर्कित स्व स्वर्गोपसर्ग भी उसी प्रकार जायत होगी । वत नियम, यम तम दम की धारणा प्राप्तना बढ़ाना आदि में मुदक मन्त्र अटल अवल रहना धारणा का फल है । आपत्तियों से बच जाना विपत्ति में मुग्धने टेक रेता उगम परीषर्तों में स्वरूप से गितल कर गिरना है । पर कोई स्वाभिमानी मन्त्रज्ञानी या परमार्थी का लक्षण या वक्तव्य नहीं । धारणा की पृष्ठभूमि पर आत्मान व के कुसुम बिल स्वाभुषित का पराग बिखरे चिन्तन की सौरभ बिखरे और निघरे तब है मन्त्री धारणा का सत्य फल । हमारी धारणा इतनी विशाल और गुलामी रहे कि स्व स्वभाव के गुण पर्याप्त क अतिरिक्त अथ कुछ भी राग द्वेषादि विषयों के दाग धब्बे तनिक भी न रहने पायें । यहो निर्मलता है । फिर दक्षिण अनन्त ज्ञान की अनन्त वधारियों में अनन्त भीनी मध्य में आत्मा मस्त हो चिरकाल मोन हो रमाध्वान्न करता अमरत्व को प्राप्त होगा और यथा तथा परिणमित रहगा ।

अनादि तत्त्वाचार्य से उद्भूत अम्यास के कारण यह ओष प्रथम तो गुप्त क्रियाओं का भागता है । किरी तरह पुण्य प्रवृत्तियों का सचय हो भी क्या तो उहे क्या नहीं पाता उपलब्ध दत्ता है । जिस प्रकार कुत्ता भी पी लने पर उस पत्ता नहीं पाता दत्त कर देता है । इस प्रकार ओष की त्रिधा का उद्भवन कहत हैं । चुनी हुई १३ प्रवृत्तियों में ही मन्त्र यम लाभ होता है । व प्रवृत्तियाँ हैं—१ सम्प्रत्यक्ष २ आहारक ३ आहारक ४ वैजिदिक आधोपाय ५ मनुष्य यति ६ मनुष्य मर्यादुपूर्वी ७ वैजिदिक ८ नियन्त्रक यति ९ तिर्यञ्चक मर्यादुपूर्वी । अधिप्राय यह है कि शुभोपयोग में प्रविष्ट होन के लिए बुद्धिपूर्वक उत्तमा ही उदाय करना होगा जितना कि अनुपयोग में से तान तावजान रहकर बचने का । जित काल अनुप का असत्य अभाव और गुप्त का पून पर्याप्त होन पर शुद्धावस्था में प्रवेश होगा । प्रविष्ट होते ही वहाँ स्वयमय स्वयं का जायगा । उस स्थल दत्ता में ज्ञान शुद्धावस्था ही दृष्टिगत होगा अथ कुछ भी प्रत्यक्ष भी होगा । पुन एक अनुप दृश्य चायेगा अपना शुद्ध स्वरूप स्वच्छ कर में तावध आया नहीं कि समस्त सत्तार में ज्ञानकन सत्तवा । सब और पर के ज्ञानकने में कोई बाधा नहीं होगी । किसी प्रकार का व्यथ न होगा । उदात्ता न होगी अतिशय परमात्मक दशा देगा । पर वही उग निवर्त में पड़ने से जाना ही ज्ञात होगा । अन्य कोई उगे प्रवेश न पड़ा सत्तवा के म कद सत्तवा है । हाँ यह कह सत्तवा है कि अनोक्ति

चाहिये वन विचार करता जा रहा था। अचानक कास जगमगाने लगा। उसने हठ म कास का दुर्भाव आ टकराया। उसने निश्चय कर लिया यह धाम मरी चाहिये है। मुझ मुछी हुआ है ता इस बचनयी हेतु का सुनोच्छन्न करना ही होगा अथवा मुझ निराकुलता नहीं आ सकती। अब वह उसने आसून उत्पाटनायें पट्टे मट्टे से सींचने लगा। हे आनिन तू विचार कर तरे आत्मस्वरूप का घातक कीन है ? राग हव माह ही स्व स्वरूप के धातक है। जब यह निश्चय है कि आत्मस्वरूप के ये जानु हैं फिर क्यों इनका मचन कर पोषण करते हो ? अरे अमान दशा म पोषा ही पाया परन्तु अब ता तू मुवद है हेतोपायेय मनि समन्विन है। ह भोर अकारमम् हव अवसर को व्यर्थ मय जाने ? यद् राग हव भोर से अमिर्तिविन शरीर वृण तेरा भयकर तात है यह मधुर लक्ष्येय मे — यद्वय म पगाने वाला मट्ट निम्नी घोषबाज है। तू इसी का प्रथम मकार कर। मका हेतु द्रव्यरूप है ये भी इसी में प्रच्छन्न है इसी के निधान म छर कर मो अमर घन पर छाया कर रहे हैं। रोग और कज को काने वाला का मछी हा मचना है ? कानि नहीं। यह शरीर सबसे बड़ा रोग है। इसे मय पानी मय पोषा अस्ति अह म उमूनन करने का प्रयास करो समार शरीर मोचो की वैराग्य कय विरस भाव कय मट्टा मे हका मेचन करो। इसी दशा का नाम हो मचना है। अथवा नहीं। इस भाव का करने म स्थायित्व प्रदान करो। मकेग और निर्वेन ही लक्षर को कगम मीर म परो। जानाम्बुनि हैं मर मर पान करो कृति होनी आवेगी। यह कृति अभी गुन अनुक्ति हो ही नहीं चरेगी। अर्थात् लक्ष्मी कृति आपकी गण होनी। हे आत्मन् ! यह ज्ञान बराम्ब यद्दान नहीं अथवा नहीं है अस्ति तेरे स्वभावरूप मट्टे हा मका कय ही बीटे है। फिर क्यों मट्टवत हो बीटा ? अपने पर दस्य करो हव ? दशा करा करने से करने का पान का प्रयास करो पावन ही चरी। अही अह जैममम वन भी मक दार म पार मय हो मय फिर यह तुमसे पूछत नहीं हा मचना। मय ममम हव मही मचना तुम ही यह कय ही हो। मय मही मय म है यह मो निश्च है मही निश्च गुड निश्चय। स्वयं है। इसी को पाओ। समार दशा ही मुहारी है और म भाव का नी मम अमहि है है। अब अनारि वान मे मय दशा का मय १६३१ है ता अह व। मकराये हो करार दशा मय मे मयको मय निश्चि पर मयका है मय मय मय मे ही निश्च हो मकोमे। इस निश्चि की मयि मे निश्चि निश्चय मय मय की मयमममका है। मयका मय को मे मयममम मयका मय मयि मे मयमम मय मय मे निश्च हो मय है। मय मयमम को ह मय मयका ही मयमम है हव हो दशा मयमे है मयममि हवमे ही मय मयमम है।

निश्चयमम मयमे है। मयममम मे है। मय निश्चि मयमम मय मयमे है ? मे निश्चि मे मयमम मय मयमे मय मयमे है। मयमम मय मयमे मय मयमे निश्चय मय ही ही मय मय मे मयमम मयमे मय निश्चि मयममम है मय

अपनी ध्वनि सुन । अपना स्वर सुन । अपनी श्रृंखला में अपने को धारा । यही अवनत है
 स्व स्वरूप को पहिचानने का यही समय है । पूर्ण मतक हो जाओ । अपने में अवनत
 लाओ । स्व ॥ प्रीति लगाओ । निज में निज को ध्याओ । कुछ न करो तो मत करो
 किन्तु अपने को मत भुसाओ । प्रज्ञा जैगना में स्नेह जोड़कर शिव सतति को कृत्रिम
 करो । धूरी पत्रो बड़ते चत्रो । पत पत प्रतिफल अपने ही में अपनी जाँच पड़ताल
 करो । त्रिवेक रूप ज्ञान की छिहनी और चरित्र की रोचनी में बिहार करो । तुम्हारा
 परिहार तुम्हारे में है उसे ही पालो पोषो सजाओ गवारो बस स्व में स्व ही दृष्टिगत
 होगा । हे भर्मा तू सचेत हो अपना नकाब उगार पोंक बस अपना ही शरीर रूप
 आपने समस्त उगस्थित हो जायेगा । आज तक जिनको नहीं पाया उसे पाओ । जो
 नहीं मिला उसे खोजो । जो नहीं देखा नहीं जाना उस देखो जानो समझाओ और
 ग्रहण करो बस यही एक मात्र तुम्हारा पुरुषार्थ है—नसत्य है । बस अपना सही
 पुरुषार्थ करो । प्रितना भी आत्म साधक पुरुषार्थ है वह समस्त शुभोपयोग ही तो है ।
 शुद्धोपयोग में निष्कियता है, कृष्ट हरपता है अथवा क्रियाश्रमा की शयता है । मात्र वहाँ
 एक स्वानुभूति है वह क्या और कभी है यह न कहा जा सकता है न लिखा ही जा
 सकता बस जो है वही है । क्या है वह तो पान पान के ही अनुभवमय है । यह है
 आत्मा का अनोखा रास्य अनोखी लक्ष्य अनुपम द्रव्य अमृतपूज करण और अमृत
 मात्र । उसी का उपभोग करो जो आज तक उपयुक्त हुआ ही नहीं हो उसे ही भोगो
 जो अब तक भोगने में नहीं आया है । उस रस को पछो जिसे आज तक कभी पछा
 नहीं गद्य लेता है तो चिन्तन की मद्य सूखो जिनका मधुर पराग आज तक तुम्हें
 मिला ही नहीं । वह देखो उसका अवभोरन करो जो अभी तक तुम्हारे दृष्टिपथ से
 गढ़ा गुजरा हो तुमने जिनका निरीक्षण नहीं किया हो उसकी ध्वनि सुनो जिसका
 स्वर तुमसे आग्रिचिन्त है जो तुम्हारे अन्तर में आ रही है और तुम्हीं की सुनाई पड़ती
 है । यह समस्त अग्रहम तुम्हारा निज का वसन है अपनी निजी सम्पत्ति है स्व का
 पुरुषार्थ है अपना काय आज साधा सभी तो सद्य सक्ता है । अपना पुरुषार्थ आप करो
 सभी तो मिटि जिन मचती है । स्व कल्याण में सदा । आत्म साधना में मिहो ।
 परमाय में विचरण करो । आ पराम बिहारी बनो वनी न भूय न न प्यास न गन्ध है
 न रस स्पृश गन्ध वन । न जाना है न जाना न करना है न भोवना फिर क्या है
 अपना ही अपना है एक मात्र शुद्धात्मा ।

‘पुरुष’ शब्द अपने में अनन्य शक्ति छिपाये है । पुरुष=आत्मा पते—सेवा
 करना अर्थात् आत्मा की सेवा करने वाला है पुरुष । सेवा तो करता ही आया है कर
 रहा है और कराता ही रहगा । परन्तु किसकी कर रहा है । आज तक पुद्गल और पर
 जीव की सेवा में लगा रहा है । कल पर स्व पक्ष उस पानियों में भटक रहा है ।
 भ्रमण का भ्रम कारण यही प्रान्ति है । आत धारणा के बस होकर यह जीव अपनी
 शक्ति पर में भी नगाता चला रहा है । उन्हीं में आया मान रहा है । स्वयं को भ्रम

रहा है। पुण्य का अर्थ है आत्मा। आत्मा का स्वभाव है ज्ञान और दया। इस दृष्टि से परिणति अर्थात् ज्ञान है अपना भाव है अन्य सब परभाव है वही—अज्ञान है जो ज्ञान के लक्षणों को नष्ट कर देता है—अज्ञान है भ्रम है अज्ञान ही अहितकर है ससारवर्द्धक है बन्धनकारक है। इस ममत्त्व परेशानियों से रक्षा चाहते हैं तो अपने स्वभाव में आओ। कर्माणि मो हारने की चर्चा वाजिब छोड़ो। स्वचरित्र से सगमो। एक विचार जो ममत्त्व अधिन कष्टकर है वह है भूल को भूल न छोड़ना। अपराध को अपराध नहीं मानना। आ व्यक्ति नृत्ति को ब्रह्म स्वीकार में लाता है उसने अशुभ गुणों में परिणत हो जाते हैं। ज्ञान ज्ञान समस्त ज्ञान अविचार रूप धारण कर सामने आते हैं। यह है उत्तम उपाय। तन्मय अर्थात् पुण्य छोड़ते रहो और जानकर मानकर छोड़ते आओ इस शीघ्र समस्त आत्मगुण प्रकट जायेंगे।

जब आत्मा को परतन्त्र बनाये है। पर कर्म शुभाशुभ रूप धारण कर रहा है। वास्तविक में यह दो प्रकार का प्रतिभाविन होता है किन्तु प्रभाव में अज्ञान ही कारण विचारने पर दोनों समान हैं। इनके समानत्व को चार प्रकार में विभक्त कर सकते हैं—१ हेतु २ अनुभव ३ आशय और ४ उत्पत्ति। 'शुभ पुण्यस्याशुभ पापक' शुभ रूप विभाव परिणामो मे पुण्याशुभ होता है और अशुभ रूप विभाव पापों के रूप अशुभ-आपासक होता है। शुभाशुभ परिणति दोनों ही शुद्धात्म स्वभाव से भिन्न औरत हैं। अत आत्मा के विचार होने की विभाव रूप हेतु से आते हैं। कर्म सामान्यतः दोनो एक ही हैं। निमित्त साधारण होने से दोनों में समानता है। पुण्य या शुभ का और मुर नति का भ्रमण करता है और पाप अशुभ कर्म नरक और निवर्णक को आशय कर जीव को नष्टाता है। दोना का आशय है ससार ही। बहुमति से ससार भ्रमणा दोनों के अभाव होने पर ही मिट सकती है। अज्ञान आध्यात्मिक शुभ कर्म एक ही प्रकार है। एक की अनुभूति दृष्ट विषयो मे अनुरक्ति जात करती है तो दूसरे की अनुभूति अनिष्ट मे बलात् प्रवृत्ति कर विरक्ति उत्पन्न करती है। राग द्वेष दोनों ही ससार चक्र के कारण हैं। सुख-दुःख दोनों ही भाव-आत्म स्वभाव से भिन्न भाव परभाव हैं। अत अनुभवभावना दोनों एक ही हैं क्योंकि दोनों ही भाव स्वभाव से भिन्न हैं। उत्पत्ति की अनेका विचार करें तो दोनों की जन्मभूमि एक ही है। दाना ही एक रूप है। पीडनार्थ कर रत सद्य स्वयं पुक्त है जबकि आत्मा के स्वयं सर्वथा इसमें भिन्न ॥। चारों हेतुओं से पुण्य पाप ससार के ही कारण हैं। ससारभाव का कारण तो बीजराग भाव है जो शुद्धोपयोग अज्ञान है। बीजराग सम्बन्ध मुक्त ज्ञान और चरित्र का तत्त्व योग का कारण है। इस पक्षों की अनेका पुण्य का कारण चारित्र्य अथवा शुभ कर्म के समान हेतु ही हो जायेंगे तब तो सर्वथा स्वयं ही है। किन्तु यह बात नहीं है। अशुभ का अभाव बुद्धिपूर्वक करने पर ही शुभ भाव आता है। शुभ भाव भी बुद्धि पूर्वक ही उत्पन्न करना होगा क्योंकि इसने बिना अशुभ

वही सृष्टा । पुनः शुभ भाव पुण्य भाव शुद्ध भाव का माधव है हेतु है । जिस प्रकार मयन अघकार को खीर कर आने वाला उपाय का अंधरा । यद्यपि उपाय काल का मुर मुग भी अघकार ही है क्योंकि प्रकाश तो सूर्योदय होने पर ही होता है परन्तु वह मोघुनि का छिछना अंधरा ॥ प्रकाश का निमित्त है सूर्यकारी है । उसी प्रकार अशुभ भाव कर्म घोर अज्ञान अघकार है और पुण्य शुभ मराम भाव अशुभ रूप बाधोघकार को फाड़कर उत्पन्न होने वाला आत्मा की मराम परिणति है जो मात्रा व प्रचरण से शुद्धात्म ज्ञान प्रकाश को उत्पन्न करने में समय पारण है । हे भव्य उस साराग समय ज्योति की चमक से अन्तर्ज्योति जलाओ । यह साध रचना उससे प्रकाश का उपयोग करना उद्यमे सामान्यमान सेना तेरे स्व पुन्यार्थ पर ही निर्भर है । अनुत्पन्न भाव से सेवन करने हुए वह बीतराग परिणति की साधक होती है और आसक्त भाव हो गया तो रमातन म पहुँचाने में नेता बन जायगी । शुभोपयोग का सरमुटा भूषणभुषणा से कम नहीं है । यह चक्रमूढ़ है जो पगवर निवन्तना नहीं जानता वह मीठ के घाट उतर जाना है । जो प्रवेश कर निवन्तना जानता है वह मुनिश्चित उस पार हो जाता है वह लौट कर नहीं जाता । आरपार हो जाता है इस पारपार के । शुभ भाव वह निश्चिच्छद तरी है जो निर्विघ्न भाति पूर्वक आराही को तत् पर से आती है । किनारे पहुँचाकर वह आरौही को कर ग्रहण कर उठारती नहीं क्योंकि वह स्वयं अह है— अचेतन है । तब यहाँ क्या होगा ? होगा क्या ? यदि सवार बिबही है भेर बिबानी है प्रज्ञावान है तो उस मोका सहार का मोह छोड़ कर अपना पुरवाये कर घाट पर उल्ल जायगा मोका जहाँ की तहाँ वहीं स्वयं रह जायेगी वह बन्म बड़ा अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जायगा । आया समन में । साधो ! सावधान रहना होशियारी से मोका बिहार करा शुभोपयोग की भूमिका को पार करो जीवन नव्या कम मगा न जाय वहीं अहं छिन्न हो जाये अहंकार ममकार के लुपान न भा मकराय क्याति पूजा लाभ की चाह व पड़ियालीं छ न टकरा जाय । इसका पूज ध्यान रचना । सम्यक् ज्ञान विवेक की ज्योति जलती रहे । अज्ञान अघकार खीरत हुए बढ़ते जाओ कहीं छतरा नहीं होगा । स्वशक्ति का उपयोग करो ।

ससार क्षय है । इसका कपण जीनने वाला है कपाय । कपाय हून है । इसे प्ररणा देने वाला है कर्म । जीवारमा कम में ही सहयोग से कम क्षय को जीत कर नवीन कम बीज को बोना है । राग द्वेष कपी जल का सिक्कन कर पल्लवित करता है । मोह अज्ञान की पवन पावर से कम बीज तेजी से पनपते हैं । यह बड़ाने वाले ये राग द्वेष मोह मिथ्यत्व अज्ञान कपायादि हैं । इन बिचारों को दूर करने का उपाय है मोह को मम धम क प्रतियोगादि चिन्तन करना । मेरा स्वरूप क्या है ? मैं एक चैतन्य स्वरूप शुद्धात्मा हूँ । यह कथन शुद्ध निश्चय नय से है । परन्तु यह दशा वर्तमान तो उपलब्ध है नहीं । फिर आप हैं क्या ? यह प्रश्न आत ही हमारे हृदय में एव मौजूद उत्पन्न होता है विशेष विज्ञाता आनून होती है उत्कटा आगनी है नि

नीच गुणा बहिरा विग्न मूत्र वनाकार चतुर भूङ्ग पन्नि आनि नाना शुभाशुभ
उपाधियों से विभूषित किया जाता है। जो कुछ भा है वह सब उ व पीछे लगे थोपा
धिय बह है। शूद्रात्मा की विभाव परिणति व निमित्त से बाह्य वम शुभाशुभ निमित्त
भाव को पाकर आत्मा का विविध रूप में रजायमान कर है। आत्मा उस पर रूप
मज्ञान मिथ्यात्व भाव को अपना मानकर दुखी हो रहा है। इसे सम्यक प्रकार
समझो।

हे आत्मन् बाह्य इव्यों को छान बीन करने दृष्ट तो अनादि ज्ञान हो गया।
अब तो तू बैठ अपने को पहिचान। पर भीन कुटुम्बी परिजन-पूरजन आदि स्वाधी
हैं यह सम्यक् विनि है पर इन जानकारी से नाम क्या है। यदि सब जानने-जानते
शक्ति वा अप्रम्य्य करते रहे और करने रह्यो तो भना हमने क्या तुम्हारा निज
कार्य सिद्ध होगा। श्वानुभव मिद्धि होना स्वात्म जान होना? नहीं हो सकता। तू
इस जीवन की घड़ियों का महत्त्व समझ। प्रति क्षण की महिमा का महत्त्व अनुभव
कर। तेरा एव एव समय अपूर्व है। जितने सब स्वरूप पा चुक हैं वे स्वय अपने ही
पुण्याय मे पा सके हैं। सभी भगवान बनने हैं बोर भी बनाये न जाते हैं। भगवान
बोर अपूर्व अपूर्व वस्तु है क्या? असद क्या उत्पन्न हो सकता है? नहीं फिर क्या
है? जो अज्ञादावस्था में मज्जात्मा है वही अपने निज पुण्याय स कर्म कालिमा का
प्रक्षालन कर अनमयी जा पुञ्ज परमायाति रूप परिणमन कर जाती है उसकी
अचित्त शक्ति भी अनादि स आत्मा सब निर्गोहित हो आविभूत हो जाती है। उस
बादिये एकमात्र सम्मन पदवाच। यथोचित उपजय योग्य प्रशिक्ष। इससे भीम ही
बाप निद्धि हो जायेगी। सब सब समय दान भीन आनि सम्पूर्ण प्रशिक्षाभा की
साधकता एकमात्र आत्मज्ञान प्राति हो है। भन ज्ञान व दिना स्वयम का यथाय
जन प्राप्ति नहीं हो सकता है। आत्मा का पाना ही तब निष्पत्ति कये।

ह आत्मन् लक्ष्मीयोग में निरत रहो। हूँ यह ध्यान रखना उसी में भीन
होकर बैठ न जाता है। उससे ऊपर भी उठना है और उती पूरक अर्थात् शुभो
पयोग पूरक हो उठना है। यदि पुष्प आत्म-शानि समन्वित करना है तो सावधान
रहो प्रथम लक्ष्मीयोग रूपी सत्र में अज्ञात भन आत्मा का ह नहर भनी प्रवार स्वच्छ
साफ कर तो तदनन्तर टीनोरात स्वानीय साक्षात्पयोग में द्वारा सब वही धमक
जायेगी। अरे कष्टे कष्टे को सीखा मे जाकर टीनोरात में दान दिया जाय तो क्या
का बचक भजना है? नहीं। लक्ष्मी प्रवार जो बिना-कषाय योगा धनम विद्युत् में
कते हैं वे चाहें कि हम सीधे अज्ञेयताय में जा हिराजें ता क्या का पण्ड हो सकता
है? कर्म कालिमा दूर हो सकती है? नहीं हो सकती अत्रिनु का साध प्रयत्न ही
स्पष्ट हो जाता। यह प्रयास कष्ट वे रहती भाजने व समान है। अब कोई अज्ञा
एव और मे रहती कालिमा है तो दुखी कर मे सब खनना जाता है। सब दान हान
अनुभवशीली का है यह स प्रथम लक्ष्मीयोग—ता पुञ्ज में—मा पुञ्ज पुञ्ज से अपना

आत्मा को पवित्र नहीं करता। निम्न गढ़ो बनाना तो वह बड़ा ही गड़ोपड़ो की उपलब्धि प्राप्ति नहीं कर सकता है। अब सिद्धांत मनोवैज्ञानिक है किमिक है। निम्न सिने बार विराम होता है विविध बलों से उत्पन्न होता है। उसारी पुनर्जाद एव ही निम्न में क्या सम्भव है ? नहीं संभव पाकर ही होगी। पर यह भी कोई एकांत नहीं है मान लीजिए कोई मंदिर निर्माण करना चाहता है उसका समय २० चौब सप्ताह है। अब बनाने वाला चाहता है कि मैं ३ ही दिन में तयार कर दू। तो क्या नहीं कर सकता ? कर सकता है। कते ? मजदूरों की संख्या और काम का परिमाण बढ़ाकर। ८ के स्थान पर १६ घण्टे कर दे और १०० के स्थान पर ३०० मजदूर लगा दे। यत क्या है इच्छित समय में काम निश्चित हो जायेगी। इसी प्रकार तपश्चर्या की दृष्टि बन जारी आराधनाओं का आराधन कर विमर्श के उत्कृष्ट बल से जन्म पुनः कम निजरा पर सब बलों का शय कर देगा मान मध्य है उपयोगी और उन्नत है परंतु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करिये मूल सिद्धांत में कोई करक नहीं आ सकता है। निम्न तीव्र तन्नि ने गड़ोपड़ो परिपक्व होगा उगी हिसाब से अग्रिम बलों का लाभ और शुभ बलों का आगम होगा। ये आगम अभिक्रम क्या करेंगे ? यत यही कि ब्रह्म रूप बचै और उनके गस्कार लपी प्रति को निश्चय करेंगे। जितनी तेजी से तपः पड़ोय काम करेंगा उतनी ही तीव्रता और प्राच्य से शुद्धीपमाय भी मायेगा और आत्मा को शुद्धादर्या में विराजमान कर ही देगा। परंतु पुरोपाय कम यथाक संही आकर्षक और सज्ज होना चाहिए। इ भव्यात्मन् स्व कृत्य और मुक्तसंघ की प्रणाली को समझो हृदय में उतारो उसके अनुरूप विधा करो। ऐसी विधा करो कि उसके पूण होने पर अज किमा न करनी पड़े और वह भी छूट जाय।

मनोराज्य सर्वोच्च है। इसे मान्यता हो ता न हो सीमा बढ़नी जाती है और असीमन्ती हो जाती है। मन का काम और बाय प्रणाली दोनों ही निराली हैं। अपूर्व होन है इसका जय विषय। कभी अपनी सीमा से रहता है ता कभी सीमा के बाहर न इसका प्राथम्य पता चलता है न तो अतः। विविध क्या है जी इस मतका की। तनि भी अति गाय है। एक समय में १४ रात्रि पार कर जाय और तो की और उतना ही दूरी हो ता वही तर भी पढ़ने की शक्ति रखता है। मह है इनका माहात्म्य। तनि प्रति ज्ञ तन्नी से बननी जाती है कोई हिसाब नहीं है इसकी बात का। है तादा उतना तीव्रताभी अत्य सुदृढ़ उपनय हुआ इतनी तेज उतकी बात है फिर भी भाव अपन कल्प्य स्थाना पर नहीं पढ़ने पा रहे हो वह महान आकर्ष है। पर इगम आकर्ष को बाध हो क्या है ? मन तीव्रताभी है परंतु इसमें दूर दक्षिण नहीं है विवर्धन। है स्वच्छ - है स्वच्छ नहीं। पर तु स्वय आत्मा चाहे तो इस पर सकारा इतर ज्ञान कृष्ण में दक्षिण कर अपने हृदय स्वल्प को निश्चित कर सकता है। भा मा इस पर सकार हा स्वयं पार हो जाय पार पढ़ने पर मान पर उतना नही कि मर (५५) की ताकत रह जायेगा फिर क्या इनका क्या बल बन लक्ष्य

ई ? कुछ नहीं। यह स्वयं स्वयं में और आत्मा स्वयं आत्मा में। वस दोनों स्वयं हो जायेंगे। यही है अपना अपना राय। अपना अपना काज। फिर कोई परावनम्य नहीं रहेगा—परतन्त्रता भी न होगी।

योग आत्मा की परिणति है। यह गुडागुड रूप में निविष्ट है। अगुड भी गुणागुम भन्त रूप है। अगुड परिणमन पर निमित्तक होता है। पर निमित्त गुम और अगुम के भेद से दो प्रकार हैं। इसीलिए गुम निमित्तक योग धुमोपयोग और अगुम निमित्तक अगुमपयोग कहा जाता है इनके निमित्त में आत्म प्रवेशों में प्रवृत्ति होना है अतः यही गुम योग और अगुम योग में वर्तमान में कारण होता है। आगत कर्मों में एक प्रकार का संघट्ट होता है उस काय आत्मभावा में विस तर्ह का जितने पावर शक्ति रूप कयाय राग-द्वेष परिणति हानी है उसी प्रमाण से उसी अनुपात से उन आगत कर्म रूप पुद्गल परमाणुओं में स्थिति और अनुभाव शक्ति प्रादुर्भूत हो जाती है। आत्म प्रवेशों का संकल्प होना निज स्वभाव है कि तु उनका तीव्र तीव्रतर तीव्रतम मन्त्र मन्त्र और मन्त्रतम आत्मा विस्फाटक होना परापित है पर निमित्तक है। यही कारण है कि स्व स्वभाव स्थिति सुनिश्चय होने पर भी सत्ता दशा में बचल हो जाती है—यहूँ ही है वह चाकस्य बाह्य निमित्त कारणों के अनुरूप अन्धा भूरा कम या अधिक होता है अतः उसे स्थिर करने के लिए बाह्य उपकरण निमित्त का सुधार नियमन और त्याग परिहार परमावरण हो जाता है बिना उन्हें सयत बिदे अन्त करण सयत किस प्रकार हो सकता है ? स्थिरीकरण बिना शुद्धि कहाँ ? आत्म-प्रवेशों की बचनता और स्थिरता बाह्य मन बचन काय के प्रयोग और अप्रयोग पर ही निर्भर है। मन बचन काय की प्रवृत्ति और निवृत्ति भी विवेकपूर्वक सम्यक तत्त्व स्वरूप अवगत करने और नहीं करने पर आश्रित रहनी है। हे भाई देखो बाह्यजननमन में ही योगी में चावत्यभाव आश्रित होने हैं वे भाव भी पूर्व मस्कार और अविवेकता पर आधारित हैं। जिस समय निर्मल सम्यक्त्व किरण स्फुरायमान होती है इन प्रयोग रूप चारों की दोड़ धून स्वयमेव अनायास ही बन्द हो जाती है। मोह शोभ, राग द्वेष आदि विचार सभी तक मन पर अपना प्रभाव जमाते हैं जब तक कि वह भेद विज्ञान की साफल के मध्य प्राप्त नहीं होता। आत्म भावों के मध्य प्राप्त मन पुष्पाप आगाकारी सेवक की भाँति स्थिर हो जाता है गुपति के परास्त होने पर अवशिष्ट काय विरत सत्ता की भाँति अब सभी ईर्ष्या हस्तप्रभ हो अपने-अपने विषय से विरत हो शांत हो जाती है। कारणभावा कायस्यापि न युक्ति के अनुभार भासव रूप काय भी उपरत हो जाता है। करेटीविहीन इन्विट्रक के तार क्या काय प्रकाश का अन्य काय को मिट कर सकते हैं ? कभी नहीं उसी प्रकार निरात्मवी योग प्रणाली भी आत्मा का घातक या बाधक सिद्ध नहीं हो सकते। सुनिश्चित है बाह्य और अन्तरंग गुमल कारणों के गुमपन प्राप्त होने पर ही आत्म स्वरूपोपनधि रूप कार्य सिद्ध होता है।

प्रत्येक पदार्थ को स्वतन्त्र न समझा है। बहुत मत र्ण है। जो सत्य है वह सही है यथार्थ है। यही प्रश्न यह उठता है कि सत्य मात्र जब यथार्थ है पात्र अपना रूप द्रव्य अणुदण्डों में तो पदार्थ है सत्य है फिर ये भी सत्य सत्य होने चाहिए। इनको भी ग्राह्य कहना चाहिए। फिर मर्यादा तो कुछ हुआ ही नहीं सब ही तो सम्भव रूप है। यन् विस प्रसार व्यवस्था दोषी ? यह मर्यादा है कि जो त्रिम रूप में सत्य है वह उसी रूप में सत्य है कि पर रूप परिणामन हो जाय। पाप-पाप है, पुण्य-पुण्य रूप है हिमा नित्य है अर्थात् आर्हमा है गाबर गोबर है मिठाई गुड़ गुड़ है। अपना अपन स्वरूप सत्य से सत्य सत्य है न कि ग्राह्य अग्राह्य उपादेय हेतुपात्र सब एक है। जहाँ जिसकी उपयोगिता है वहाँ वह प्रयुक्त है और जहाँ अनुपादेयता है वहाँ वह गौण है। भोग्य करते समय वह ग्राह्य है मुख्य है किन्तु गड़ की विपश्चिन्ता के जमीन घिसकने लग तो उसको चोपने में गोबर उपाध्य मुख्य है गुड़ गौण है। अतिशय मात्र होने से सब समान है कि ह्योपादेय उपयोग-अनुपयोगिता की अपेक्षा। यही कारण है कि अनेक कारण होने पर भी निमित्त सब नहीं करते अर्थात् उग दाण जिस काय की निवृत्ता के उगको निमित्त में जो सहायक सिद्ध होता है वही उसका निमित्त कहलाता है। निमित्त काय में पुन नहीं जाता—तद्रूप नहीं होता। काय निष्पत्ति के अनन्तर भी यन् अपने स्वरूप रूप पृथक् सत्ता लिए रहता है। त्रि प्रसार अक्षरोक्षी अक्ष के निमित्त ने अपने गतस्थ स्थान को जता। दो बार बने हैं यन् अभीष्ट प्राप्ति में पहुँच गया। उसकी समस्त क्रिया समाप्त हो गई वह अपने काय की निवृत्ति कर चुका। अब यन् निमित्त रूप अक्ष अपने स्वभाव में जाता का सत्ता विद्यमान है। निमित्त मात्र गन्तायता देता है यन् भी अपने स्व स्वरूपास्मिन् की रति रघन हुए न कि अपने को अपना कर। अब यन् घोड़ा मू में दृष्टि से विचारित कि क्या उस स्थान पर स जाने में घोड़ा ही समर्थ था ? नहीं गाड़ी मोटर तो सार्वभौम भादि अनन्त साधन थे किन्तु उन् हय उगने लिए निमित्त नहीं वह सत्ते क्या कि वे उगव न नव्य स्थान में पहुँचाने में सहायक नहीं हुए हैं। फलतः अनेक साधन हा सक्ते हैं न। परन्तु निमित्त नहीं होता है जो जिस कार्य की निष्पत्ति में सहायक होता है। यन् निमित्त कारण जिसमें सहायक होता है वह कार्य इसमें सर्वथा भिन्न हुआ। काय रूप का परिणामन हुआ यन् भी तो सत्य स्वरूप है। वह क्या है यन् वही उपायान्तर कारण है। भाग्य भाजन बनाया मान लोहित दात भात बना वही भाजन में कारण लक्षित विषय—जब ता जवन तब विमर्श लक्षणा कुँहा वाली व कोई रसोईपर इत्यादि। अब इनके दात मान में सन्धियों कोन-कोन हुए ? भाग्य भाज कुँहा बन्धा और लानी बाँध। हा सत्ता में मुख्य योग की दृष्टि से विचार करें तो अग्नि मुख्य है और प्राय योग पार्थिव सर्व साधन लक्षित कर लेने पर भी वह अग्नि प्र अग्नि न हो तो दात भाज का काय निमित्त नहीं तो सत्ता। अग्नि प्रत्यक्ष है कि प्रत्यक्ष वशात् में मुख्य योग का अपेक्षा सम्बन्ध है वही साध्य-साधन

भाव है निमित्त-नमितिक भाव व सम्बन्ध है। ज्ञान धनिष्ठ सम्बन्ध हान पर भा
अग्नि अरता स्वभाव गता त्रिण दान भाव रूप वाय स सबषा भिन्न स्वत न स्वभाव
म स्थित है। दान भाव रूप नहीं परिणमी। अस्तु दान और भावन जो स्वय न रूप
परिणामन की शक्ति युक्त है वे ही ज्ञान भाव बन न वि निमित्त। निमित्त भाव
सहायता कर देता है। वाय स्वय अग्नी स्व वायवता स्व स्वभाव स्व शक्ति हैं
परिणामिन हाना है। ज्ञान भावन म दान भाव हान रूप वायवता है नो अग्नि आदि
सहायका ने उन्हें उग रूप परिणामन करा दिया सहायक हो गये यदि उनका साथ पर
आटा गड हाना तो क्या ये निमित्त दान भाव बना देने ? नहीं कभी नहीं बना सकते
थे। निष्कर्ष यह निम्न कि स्वय वस्तु की योग्यता हान पर ही बहु परिणामन करती
है। उस काव म अन्य सहायक साधन आ अनुकूल गड निमित्त बन जाता है। वस्तु
स्वय अपन स्वभाव स वाय रूप परिणामन करती है। ह गाय। ' तुम स्वभाव रूप्य हा
आमा हा ज्ञान चेतना ज्ञान चेतना रूप हो। इन रूप तुम्ह स्वय ही परिणामन
करना है इनम भिन्न जो भी परिणामन है वह तुम्हारा स्वभाव नही है। यदि तुम
बुद्ध कि मैं चाहता नहीं तो भी न जान किन कारणों व परिणामन कर लेता है ?
क्या बह ? कुछ मन करा उस परिणामन के ज्ञाना दृष्टा बन रहा। ये भूते नहीं हैं
इनका यदि दृष्टि मे रहा तो न तुम्हारा कुछ भी बिगाड न कर सकते हैं। शुभा
शम रूप परिणामन म वस्तु स्व भाव नये ज्ञान ॥ भाक्त स्व भाव स्वय भाव तावता।
कर्ता भाक्ता दाना भाव नहीं ना फिर मुक्त-मुक्त रूप पत्र ना तुम्हारा नहीं हा
सबता। तब क्या हागा तुम स्वय अपन हो निज स्वभाव के वता और भाक्ता
बन रहोगे। यही ता आपका अपना स्वरूप है। यही उपायान सिद्धि है। ध्यान म
राग ज्ञान म राग भक्ति म राग पूजा-अनुष्ठान म राग परहित म राग स्वहित
म अनुराग म सारे विवरूप भा तर मूढ स्वरूप व नही है अन्य की ता बात ही क्या
है ? हा इतना अवश्य है इन विवरूपों का भाग्य बनाकर इनका निमित्त बनाने
या मानकर ही अपन स्वरूप का प्राप्ति होगी। परम मानराग दया का प्राप्त करने
का लिए परमवीनराग भाव और परम वीनरागा त्रिनगर का अवतग्नन निगल
आवश्यक है उसका बिना परम वीनराग दया सिद्ध नही होगी। अब निमित्त नमितिक
साहा भस्वरूप का ज्ञान कर स्वय ज्ञाना दृष्टा बना।

आत्मा नाश है। पणथ जय है। ज्ञान म ज्ञेय ज्ञानकृत है। उनकी प्रतिद्वि
आती है ता क्या नय ज्ञान म सम्पादित हा जाते हैं ? नही ऐसा ता न्या नही जाना।
अन्यथा जिस समय ज्ञान म नय प्रकाशित हो रहा है उस समय वह नय युक्त स्थान
रिक्त हा जाना चाहिए परन्तु होना नहीं है। तो ज्ञान उनम जाता है क्या ? यह भी
नहीं है कारण ज्ञान हान आत्मा नग हा जाती है। फिर क्या है ? पणथ की छाया
ज्ञान म प्रतिबिम्बित होता है ता क्या उसका बस भावर क्षलकता है यह भी नहीं है
क्योंकि यदि ऐसा होता तो पणथ क्षीण ॥ जाता यह होता नहीं। क्षण नय हा जाता

प्रत्येक पदार्थ की स्थायिता सत्ता है। वह मरता है। जो सत् है वह सही है यथाय है। यही प्रश्न यह उठता है कि मर मात्र जब यथाय है पात्र अथवा राग द्वय अथवा हिंसा भी तो यथाय है मर है फिर ये भी सर्व सत्य होने चाहिए। इनको भी साक्षात् कहना चाहिए। फिर विचार्य तो कुछ हुआ ही नहीं सब ही तो सम्भव है। यह किस प्रकार व्यवस्था होगी? यह सत्य है कि जो जिन रूप में मर है वह उसी रूप में सत्य है कि वह मर का परिणाम हो जाय। पात्र-पात्र है पुण्य-पुण्य रूप है हिंसा हिंसा है अहिंसा अहिंसा है गोबर गोबर है मिठाई गुड़ गुड़ है। अपने अपने स्वरूप मर हैं सब सत्य है न कि ब्रह्म ब्रह्म उपाध हेतु सत् सब एक है। जहाँ जिसकी उपयोगिता है वही वह प्रमाण है और जहाँ अनुपयोगिता है वही वह गौण है। भोजन करत समय गड़ धातु है मुख्य है किन्तु गुड़ की विपरीताहता से जमीन विपकी सगे तो उसको खोदने में गोबर उपान्य मुख्य है गुड़ गौण है। अतिशय मात्र होने से सब समान है कि हेयोगाथे उपयोग अनुपयोगिता की अपेक्षा। यही कारण है कि अनेक कारण होने पर भी निमित्त सब नहीं बनते अनिष्ट उग लण जिस काय की निषेधा है उसको निमित्त जो सहायक निमित्त होता है वही उसका निमित्त कहलाता है। निमित्त काय में पुन नहीं जाता—तत्पू नहीं होता। काय निषेधित के अनंतर भी वह अपने स्वरूप रूप पृथक् सत्ता निष्ठ रहता है। जिस प्रकार अश्वारोही अश्व के निमित्त ने अपने गन्तव्य स्थान को चला। दो चार घंटे में वह अभीष्ट ग्रामाणि में पहुँच गया। उसकी गमन क्रिया समाप्त हो गई वह अपने काय की निमित्त बुरा। अब यह निमित्त रूप अश्व अपने स्व स्वभाव में जैसा का सत्ता विद्यमान है। निमित्त मात्र सहायता देता है वह भी अपने स्व स्वरूपास्वित्व को रक्षित रखत हुए न कि अपने की अपण कर। अब यहाँ थोड़ा सूक्ष्म दृष्टि में विचारिय कि क्या उस स्थान पर ल जाने में थोड़ा ही समय था? नहीं वाही मोटर ताँगा साइकिल आदि अनक साधन थे कि तु उह हम उसके लिए निमित्त मरी वह सकते क्योंकि वे उत्तर गन्तव्य स्थान में पहुँचाते में सहायक नहीं हुए हैं। फलतः अनेक साधन हो सकते हैं जो परतु निमित्त नहीं हाना है जो जिस काय की निषेधित में सहायक होता है। यह निमित्त कारण जिसमें सहायक होता है वह कार्य हमसे सबका भिन्न हुआ। काय रूप का परिणामित हुआ वह भी तो मर स्वरूप है। वह क्या है ब्रह्म वही उपान्त कारण है। आपा भोजन बनाया मान सीकित दान प्राप्त बना मर। बहुत से कारण एवमित्त नियम—चर। वेतन तथा निम्न सबकी पूँहा पानी बरनोई रसोईपर इत्यादि। अब इनमें दान भाग में सहयोगी कौन-कौन हुए? आप आग पूँहा बरनोई और तनी आग। इन सबी में मुख्य गौण की दृष्टि से विचार करें तो अग्नि मुख्य है और अन्य गौण क्योंकि सर्व साधन एकत्र कर लेने पर भी यदि अग्नि प्रकृत न हो तो दान भाग काय काय निष्पत्ति नहीं हो सक्ता। अभि प्राय यह है कि प्रत्येक पदार्थ में मुख्य गौण की अपेक्षा सम्बन्ध है वही साध्य-साधन

भाव है निमित्त मिलित भाव न सम्भव है । इसी कारण सम्भव ही न पर भी
अभिप्रेत अर्थात् स्वभाव मत्ता कि भाव भाव रूप कार्य के मर्मका भाव स्वभाव सम्भाव
य स्थित है । दान भाव रूप हीं संज्ञाया । अस्तु दान और दान्यता का स्वभाव नान्य
परिणामन की शक्ति युक्त है वे ही भाव भाव का न कि निमित्त । निमित्त भाव
सहायता कर देता है । कार्य स्वयं अर्थात् स्वभावदाता स्व स्वभाव का शक्ति के
परिणामन होता है । दान दान्यता न दान भाव हीं स्वभावदाता है या अभिप्रेत
सहायता । ने उक्त उक्त रूप परिणामन करा गया सहायता हो गये यदि उक्त भाव पर
भावात् युक्त होना तो क्या य निमित्त दान भाव का देना ? नहीं नहीं नहीं क्या ताकतो
य । निमित्त यह निमित्त कि स्वयं वस्तु की योग्यता हीं न पर हीं यह संज्ञाया करती
है । उक्त भाव न अन्य सहायता साक्षात् जो अनुमान पड़े निमित्त न जाता है । समु
स्वयं भाव स्वभाव न कार्य रूप परिणामन करती है । हे भाव । तुम स्वभाव स्वभाव हीं
अपना हीं भाव यथा यथा यथा यथा रूप हो । इस रूप तुम्हें स्वभाव हीं परिणामन
करना है स्वभाव भिन्न जो भी परिणामन है वह तुम्हारा स्वभाव हीं है । यदि तुम
कहा कि मैं चाहता नहीं तो भी न जान कि कारणों न परिणामन कर लेता है ?
क्या कर ? कुछ गान करा उक्त परिणामन के भाव । पुष्टा करो वहा । य मने नहीं है
इतना यदि पुष्टि न रहता तो न तुम्हारा कुछ भी विचार नहीं कर पाती है । तुम
तुम रूप परिणामन न वस्तु स्वभाव न भाव का भाव स्वभाव स्वयं भाव यथा
कर्त्ता भाव दान भाव नहीं तो फिर तुम कुछ रूप न भी तुम्हारा नहीं हीं
रावता । तब क्या हुआ तुम स्वयं अपने हीं कि स्वभाव के कर्त्ता और भाव
का सहाय । यही तो आपका अपना स्वभाव है । यही उपादाय निमित्त है । भाव न
स्वभाव भाव न स्वभाव, भक्ति न स्वभाव नान्य-अनुमान न स्वभाव परहित के स्वभाव स्वहित
न अनुमान य सारे विचार भी तारे शुद्ध स्वभाव के नहीं है अन्य की ता भाव हीं क्या
है ? हीं स्वभाव स्वभाव है हीं विचारों का आशय क्याकर हीं निमित्त क्याकर
या सात्वत हीं अपने स्वभाव की प्राप्ति होगी । परम भीतराण दाना नो दाना करे
के निमित्त परमवीरराज भाव और परम भीतराणी नितराज का अर्थात् नितराज
आशय है उक्त विचार परम भीतराज दाना सिद्ध नहीं होगी । य निमित्त निमित्त
हीं स्वभाव का भाव न स्वयं भाव पुष्टा करो ।

आत्मा जाता है। यदायं जय है। ज्ञान व जय सावनी है। उसी प्रतिष्ठान
 आती है ता क्या ज्ञेय ज्ञान व समाहित हो जाने है? नहीं ऐसा ता देखा। ही। ॥ १॥
 अथवा जिस समय सात व जय प्रकाशित हो रहा है उस समय वह सब पुनः रथा
 रक्त हो जाता बाह्य परतु होता नहीं है। तो सात उभय जाता है क्या? यह भी
 नहीं है कारण ज्ञान ही आत्मा नहीं हो जाती है। फिर क्या है? यदायं की छाया
 सात व प्रतिबिम्बित होने है ता क्या उसका अन्त आकर समझना है यह भी नहीं।
 क्योंकि यदि ऐसा होना तो पदार्थ भी ॥ जाता यह होता नहीं। शीत व ॥ हो जाता।

है इसका कोई दृष्टान्त है क्या ? हाँ है दसो एक शीशे का महल है चारा ओर दीवारों में हजारों कीचड़ के टुकड़े जड़ हैं आप कमर के ठीक मध्य में बिराजे हैं । प्रत्येक कीचड़ के टुकड़े में आपकी प्रतिमा झलक रही है दस दशा में आपके अग यन्त्रि हा जाते हैं तो आपमें क्षीणता आना चाहिए दुबलता होना चाहिए । पर क्या कमजारी होना है क्या ? आप में अशक्तता आती है क्या ? नहीं आती । फिर क्या व्यग्रता है ? ज्ञान का स्वभाव हा निमल है ज्ञान की स्वच्छता ही मात्र पदार्थों के सन्नयन में कारण है । यथा दपण में मयूराणि पण्य जनकते हैं तो इसमें न मयूराणि दपण में प्रविष्ट हात हैं न दपण उनमें आता है न उन मयूरादि का अंश ही आता है अपितु मात्र पदार्थों के झलकन में दर्शन की निमलता ही कारण है । दर्शन जितना स्वच्छ हाता उसका स्वच्छता रूप पर्याय के अनुरूप ही पण्य भी प्रकाशित हाता । यह उसकी निमलता का ही परिणाम स्वभाव है । अय पदार्थों का ता ज्ञान प्रकाशित करता है फिर ज्ञान का कोन करता है ? ज्ञान स्वयं प्रकाश है प्रकाश्य ता है नहीं फिर उस प्रकाशन का क्या उपाय है ? एसा नहा है । ज्ञान स्वयं प्रकाश और प्रकाश्य है । यथा प्रदीप : तापक स्वयं अपने का दितताता हुआ ही अय घट पटाणि पदार्थों का भा निमलताता है । तापक का देनने के लिए अय दपक की आवश्यकता नहीं हाता । वह ता स्वयं हा स्वयं का स्पर्शकर अय का भा दर्शाता है । यही ज्ञान स्वभाव है । ज्ञान आत्मा की पर्याय है । सगरी आत्मा की पर्याय अगुड है अस्वच्छ है वह अया-अया स्वच्छ निर्मल हाता जानी है ससार के ससयान अमश्यात और अनल पण्य अपना-अपना जनन पदार्थों सहित उगम प्रकाशित हात जाते हैं । ज्ञान का पून निमलता गुडनम पदार्थ है वरन ज्ञान : यह आत्मा की सब विगुड दशा रूप पर्याय है । दसक अतिरिक्त चेतना जा मा का गुण है वस्तु व्यवस्था सम्यक प्रकार समझ बिना यथार्थ ज्ञान न । हा मरना : वस्तु स्थिति का परिज्ञान करने के लिए महा अभयन करना परमावस्था है । न पदों की गहराई में जात्मा स्वच्छ हाता है जात्मा विगुड हा सब विगुड का हनु है स्व स्वस्थापनाध है ।

आत्मा और जामानुभव एवं स्वानुभव का हेतु यह ज्ञान कर हा आत्मा स्वमर्दन का रसास्वा न सज्जा है । स्व का जाना है ता सहज प्रयत्न उठता है वह स्व है कहीं नीर कहीं गहरी कि वह है उम स्वान नर पट्टेका का माग कहीं और कोन है । न प्रयत्न के उमर का छात्र हा पुण्याय है और उम पुण्याय का सहा-गही कर हा जात्मा के स्वभाव का साधक है । जा मा है आत्मा य उम सब पट्टेके व पा भा है जा मा है जोर उसका माग है न यय जा जा मा के निर स्वभाव का हा है आत्मा के व जात्मा है और वह जा यका है । सम्यग्जन सम्यग्ज्ञान है और सम्युक्त ज्ञान हा जा मा का स्वभाव है । नहा प्रकटाकरण हा जात्मा का यय के अतिरिक्त गुडन : अय रनयन जात्मा स्वभाव में काद निर सता जाना नहा नहा है । न यय जा मा न और सता न यय है । वसा कारण हाता है यय भा वगा है

हाना है। गफन गूब ता थाया वरन भी शुक्ल हो होता है। रसगप से निर्मित आत्मा भी रसवपात्मक हो होता है। यही है उपागन हेतु। अन जो हेतु स्वयं काय रूप परिणत हो वह है उपादान। उन सिद्ध करने के लिए अन्य निमित्तों का आवश्यक करना है वे एक भा हो सकते हैं और अनेक भी। अनेक कारणों से एक काय को सिद्ध हानी है। उन अनेक में जो काय सिद्ध में निकटतम होता है वही यहां निमित्त हानर सहायक निमित्त कारण मज्ञा प्राप्त करता है। छन यह प्रपञ्च है। इस साधारण भाषा में कष्ट कहते हैं। कष्ट वरन का अर्थ है घाम्बा। छन कष्ट घाम्बा दगा बड़चना य मय पर्यायवाची है। चाहे तीव्र जीवन हो या अतीव्र जीवन साधना में। इनका प्रयोग सबत्र अशुभ असाता एवं अन्तराय कम के आसन का हो कारण होता है। यही नहीं ज्ञान दशन के रिषय में यदि इनका प्रयोग हुआ तो ये ज्ञानावली और दशनावरणी कम के भी कारण होत हैं। जीवात्मा कम बचनपुन होकर ही समार चक्र परिचयन में मदद रहा है। इन बचन का भूत हेतु स्व वचना ही है। जिस हम पर बड़चना कहते हैं वास्तव में वह आत्म वचना है निज का ठमना । हम निज स्थाय सिद्धि के लिए अन्य व्यक्ति का विरस्त करत हैं अपन कलव्य के लिए कष्टवद्व हो जाते हैं भूत-भूत आचमन दत हैं हमारे विकास में सहायक देने का हमारे साथ गरन मय व्यवहार वरन का उपकार बराबरी का पन प्रगन करने का अपने व्यवहारा का सरन एवं उचित बनाये रखा का यही तब कि उनका अन्यधना-अचना-भूत गुरु के समान करने का अधिक करा लिया जाय, वरन स्वयंवर समस्कार कर विनता और स्तुति कर आनि नाना पापानुमी कर अपन कम में करने का प्रयत्न करता है कहत है? अब तब कि स्वयं अगत कमजोर रहता है। नहीं स्वयं में समार्य आया नहीं कि कम वतका ही निरस्कार करने लगता है। समस्कार के स्थान में अपमान कर उनकी वृद्धि का घान करने में उताऊ न जाता है। यह प्रवृत्ति न बचन साधारण जन में देखी जाती है अपितु साधु जन भुनि गुरु की उपाधि पान वाल निस्मग साधुओं में स्पष्ट नियाई दना है। शान कर पुरुष कम में। क्या कि वह तन से नारी ज्ञान के प्रति अग्रहिष्णु और अनुगर रहता चरा आया है। उस क्षण भय रहता है कि बहा नारी सच्चा तपस्विनी बहणी बन गई तो मरा सम्मान नही होगा और यदि हुआ भी तो प्रमूत माया में सबोपरि नहीं रहेगा। वह भूत जाना है सिद्धा का कि चरती और तीव्रकों का भी मान गतिन हुआ तो हम जन उपाकरण की क्या क्या है जो हो मरे जीवन का गन्धा अनुभव है सत्य घटना है यथाथ निषण है, पुरुष हर क्षण में अचाय करने पर उताऊ हो सकता है और नारी हर क्षण में उमर उत्थान ही की कामना करती है। एक मय सरन हुन्या मचो माँ का जीवन अष्ट उपाकरण है अष्टतर उपाहरण गुरु का और अष्टनम नमूना है धीनराग भाव मयप्र स्थायि वस्तु की अन्वयक गुरु भगिनि सरी साध्वी महावृत्त पवित्राङ्ग मयमी साध्वी। मद है का हुनक काय में पुरुष वग इतना निम्न स्तर पर उतर चुका है कि उह

भी बट्ठा न मुक्त नहीं छान्न । स्वयं अध्ययन अध्यापन का न भ्रम अपनी असमयता प्रकट कर उनसे मना कर उनका नाम भी प्रकट करना तो दूर रहा सुनना भी नही है । प्रियकार है ऐम विन्म्विन जीवा को ।

तत्प्राय मूत्र म ६ वें अध्याय म आश्वक प्रकरण म देवायु के आश्वक कारण म सम्प्रकृत का भी कारण कहा है । सम्प्रकृत च यह मूल है । प्रथम अध्याय म मा तमाग कहा है । सम्प्रकृत ज्ञान चारित्र्याणि मातामाग । इस प्रकार का कथन विगोषाभास मा प्रतीत होता है । किन्तु मूत्र विचरन - स्पष्ट हा जाता है कि यहाँ आश्वक थी का अभिप्राय यह रहा है कि सम्प्रकृत ब्रह्म का कारण है किन्तु यह है । सम्प्रकृत मूलक शुभाशयास स्वायु के आश्वक का कारण है न कि सम्प्रकृत । क्योंकि आश्वक का कारण योग है और ब्रह्म का कारण कर्माय नहीं है । पुराण म विद्वानुपाय म भी स्पष्ट किया है कि जितने ज्ञा म सम्प्रकृत है उनसे ज्ञा से ब्रह्म नही है और जितने ज्ञा म राग है उनसे ज्ञा म ब्रह्म है । यह शुभाशयास का अर्थ राग है । जगताधी का मन्त्रा मित्रा चाहिण । प्राय दत्ता जाता है कि अरराधी को तो अरराधी का दण्ड मिलता हा है किन्तु आ जगताधी का साथ देना है उस भी राजा भागता पड़ जाता है । म्गी प्रकार शुभाशयास स्वायु के आश्वक का कारण है और सम्प्रकृत मित्र न सम्प्रकृत म होता है मन्त्रिण उस भा य ध मा आश्वक का हनु कह दिया गया है । विद्वान् परिज्ञान के लिए मूत्र १२ परिज्ञान परीक्षण परमावश्यक है । तत्र विवेक व विना वस्तु व्यस्तथा गही रही बा सहा । अत तत्र विज्ञान अवश्य अप र्नाय है ।

आश्वक न प्रकरण म २५ विप्राया का उक्त किया गया है उहाँ सम्प्रकृत किया और सम्प्रकृतन किया व नाम । २५ विप्र मिलन है । इससे प्रतीत होता है कि सम्प्रकृत ज्ञानमगन की अभिव्यक्ति है और ज्ञा विज्ञा २५ दाया से रहित उग का जीवन म प्रयाग करना है । विज्ञा भू है । सम्प्रकृत आश्वक विराहिता गुण या ब्रह्म प्रकृत हा गया । प्रातुभूत जस्ति का वनि उपाया न किया जाय कारी विन नहीं किया जाय न। फिर उगक प्रकृत और प्रकृत म्म म का ज्ञा नही हुआ और मात्र भा कुछ नही हा गयना । अन्तु ज्ञाया व उडा गुण का प्रातुभाव सम्प्रकृत है और उसका जीवन म म कर प्रयाग हुना-मनन उग कर लभ्य बना रहना यह दशन भावना है । भावना का अर्थ अनुचितन बार बार वि नवन करना । पुन पुन विचारना । मागन म प्रविभक्त सावधानता बरना और उत्तरात्मक ज्ञान स्वभाव का कृति होना जाना भाग का वी का ज्ञान जाना मन्त्रवस्तु भावना है । जीवन का यह प्रकाश है । ज्ञान का भाव न म म वर स्वकृत विज्ञा प्रकाश सम्पन्न वा मयना है व ज्ञा म विज्ञा न हुआ गया है । ज्ञा उपाय सम्प्रकृतन ही है । सम्प्रकृत व विज्ञा न म ज्ञाया का मन्त्र भी जीवन म नही हा गयना । विना सम्प्रकृत व मन्त्र जीवन है विज्ञा है नही वा पद्वि है । अनिवार्य है ज्ञा म प्रकार का

बन्धिर दशा में आत्म स्वभाव का भाव बिना प्रकाश हो सकता है ? कभी नहीं हो सकता है । सम्पूर्णता वह जोति है जो ज्ञान व माध्यम में जीवन का समस्त रूप परमात्म स्वरूपोपलब्धि करती है । अनन्तबुद्धि आत्मा के परिणाम में मानिस्य पुनः परिणत हो जाता है जिसके मध्यात्मा के सर्वोत्तम गुण्य प्रकाश । मोक्षरूप का आवरण होता है । जिसमें स्वयं को अविच्छेद कर परोक्षप्रतिफल प्राप्त होता है । अद्भुत है परमात्म इस जगत् का अध्यात्म आकाशका वा अ । वर्षादि प्राणम करने में प्रथम अकार होता है वायुमहाप्रण में अँ आता जाता है । शुभ कर्म में भी का प्रथम स्थान है उमा प्रकार त्रिनायक में आत्मज्ञानावस्था में सम्पूर्णज्ञान का प्रथम स्थान है । अ व बिना बलमात्र का ज्ञान हो जाता सकता है । अँ का कर्म करने का प्रयत्न कर ना पावत ही समझा जावेगा । इसी प्रकार सम्पूर्णता व बिना कोई आध्यात्म शास्त्र में परमात्मज्ञान का अध्ययन करता चाह तो बर्दाश्त हो रही जानना यदि होना का प्रयास कर ना वह उसका मात्र लक्ष्य है प्रोत्पन्न-ब्रह्मा है उसका पथ है । परिश्रम व्यर्थ है । अतः जो समय और ऊर्जा गार पाना चाहता है उस प्रथम सम्पन्न व हान पर समस्त ही पुण्याव प्रिया जाता साधक हो सकने हैं अथवा नहीं । यह है आत्म शासन की प्रणाली । आत्म स्वयं पाता का महत्त्व । आत्मप्रतिबिम्ब होने का मार्ग । सहा यथाय पथ । इस पर चरकर गति अंतर गार पहुँच सकता है ।

सम्पन्न की भूमिका में आने वाला भक्त अपनी पञ्चवर्ण्य जीव उत्तरातर परिणाम बुद्धि करण हुआ प्रवृत्त करता है परिणाम की निर्भरता में ही जीव स्व स्वरूप की ओर उद्युक्त होता है । समस्त प्राणिनों व समस्त वा ही का माय है—ना ही विषय हैं । स्व जीव २ पर । आत्मा की ओर प्रयत्न और परवर्ण्य की ओर उपाय । शार सकार व शगड़ त्रिना-नभाव हैं व सब पर ही में गति हैं । शय मात्र आत्म-रूप प्रथ्य अपना है । मैं म न एह का निराकन है यह कोई थोड़ी जान नहा है । हृदय स्वयं अपनी श्रम बुद्धि कर डाली है । उमन की भांति हम विम्वता कर रह है । पर का करना माना और फिर अपना ही उगे गिद्ध भी करता चाह रह है । निज का पर में फनाया और पर को अपना बनाया यह है हमारे विद्वान् स्वभाव की परिणति हम पर में निज्य घुम टहर रम रहे पथ और इतने तनीन हो गये नि बग निज स्वयं का भी भूत गय । अन भूत कि गुरु उपाय का भी अध्यक्षा वहन लग । आन्त्रि माहनीर की आन में पसर करण दिग प्रकार मून भाई का भी जीवन कहता है किनी का गुन का तयार नहीं अपितु मन कहन जाने का ही स्वरी स्थानी गुनाता है फिर भला दशा मान्योय मिथ्यात्व व नश का ता कहना ही क्या है ? यह तो मय माँ मर है । यह नशा साधारण नहीं है । तीव्र अराव व तीव्र नशे को उतारन व निज जेव का मात्र आवश्यक होती है । वही प्रकार मिथ्यात्व मोह मन्त्रि का नशा उतारन व निज गगार मार आवश्यक है । जब जीव गगार गुण में गतन होगा तभी निज का साज में उतरेगा । इस उपलव्य परीक्षा की मार सहता हाया । तप

की आप में जाता गया होगा तब भी आप में आता है। आप में आने के लिए
 नया उत्तरना चाहिए। जसा कि विचारों की शक्ति का प्रयोग और कर्म का
 इन्हें उत्तरे के लिए सफल बनाने के लिए। मन्त्रात्मक उपाय पर जोर होना। गुण अपने का
 मोक्ष की आशा है। १ मन्त्रात्मक उपाय पर जोर होना। गुण अपने का
 छानने का बाधा है। क्या है ? पर का छोड़ने की बाधा है। जो जो पर नहीं है
 वह बनकर निश्चय होता है। अपने में प्रकाश करी कर होता है। उनमें प्रीति मन का
 वह फिर गुण ही गुण बन जाता है। आप में आप ही का प्रमाण। अपने में आने ही
 का देना। अपने में अपने ही का जागृत प्रमाण और समानता। यही है स्वस्व
 पक्ष। आप का वधन में नहीं है वह वधन का ही नहीं। पुनः से पुनः ही
 वधन है - कम से कम वधन का प्रमाण है। अरे गाय बैठा है पर क्या सचमुच
 गाय बैठी है क्या ? रस्ती की रस्ती में गाँव है रस्ती से रस्ती ही तो बैठी है।
 इस वधन में गाय तो स्वतन्त्र अलग है। रस्ती की रस्ती से गाँव लाली तो वह स्व
 गाय स्वतन्त्र वधन मुक्त हो है। यही बात आत्मा की है। कम से कम वधन है उह
 सालार अलग कर आत्मा आत्म रूप में स्वतन्त्र नियंत्रित निर्विकार रह जायेगा। मैं
 छोटें में छूट ता रटन का पर मैं छोड़ मैं जोड़ वह तो विचार करता गुण जब तक
 छोड़ता ही पर छोड़ता कस वह तो जो है निर्जीव है अविचलित है तभी तो आप
 इसारे पर नाचता है। निश्चय आपका मन वचन और आप चल विचल हुआ कि वह
 वह आत्मावारी नाकर व समान आपका उदाहरण है आपका चरणों में न हो
 हो जाना है समा करने का। अनादि से आपका सदा करता आ रहा है। आप
 साधन या बहुते अच्छा सजा है अपने समान हम भी समान का दास बना दिया
 दुस्त भय मत में डाल दिया। पर सब का वहिग इगम उन बेचार का क्या दास है ?
 पहिचान न कर सकार हा जाए और हस स बात करने वाला अलग अपने वेग से
 उठन लग आप गिर पड़ें दिन दूरे जाय हडिडियाँ कर कर हा जायें रक्त बहने लग
 प्राणा व ताव पड़ जाय तो भना इगम उन बेचार छोड़ का आराधन क्या ? वह तो
 अपने स्वभाव से काम पर रहा है। यही तो आपकी है आप क्यों चढ़ें चढ़ें तो
 विचार क्या नहीं ? पहले परसा क्या नहीं समझा क्या नहीं उस ? ह भय अपने में
 सावधान हा निज का निज में परध वेग समझ और स्वतन्त्र बना यही शिव है।
 क्या है वधन का वधन ? दया सुना और समझा ? वधमान गुण का वधन क्या
 है ? प्रथम विचार। दो नम्बर की कमाई प्रथम प्रकार धूसरारी दूसरे प्रकार
 की कमाई। अन्तर्मात्रिक तीमर प्रकार का अब चारा ठकनी प्रकार चौथा श्वेत
 प्रतिकूल व्यवहार दाराट मित्र साया भुटा की जटी मिनी रंगी कनार साव रव
 निमित्त मित्र पात व बीर काम का ती मिरच आदि। छ व प्रकार औपधियाँ
 ऊपर दोन भीतर दोन भीतरियाँ पक्ष ६ ७ वीं प्रकार शाली दादुआ के व्यापार से

उत्पान्ति न्यय तथा ताही व ताही का बुढ़ शायर बीजा जमीन घनुरा आनि
 ८३वां नाच-नुच्छ तासां समझ का घोड़ी मारि तुमार, वन् आनि वा धधा ये हैं
 प्रमुख धनोपायों के साधन दा व नये भी बनवान भवत्वपूर्ण और वनमान का राखा
 है सविन-नौकरी । इसके वजीधून राजा महाराजा भी हो गये हैं । भना अय की
 क्या जान है ? अब विचारिण्यन सोतों से बापत घन कसा हो सरना है ? माग
 जमा हागा उगत प्राप्त वस्तु भी वमी ही होगी । जिस मार्ग से पानी बहकर आयेगा
 नदी की स्थिति शुद्धता बंदगी व अगदना बगी ही हो जायेगी । तन्नुमार वह
 वेप या अयेर रहणी । प्राह्य अपाह्य हित अनहित कर रहेकी । वम यही दशा है धन
 की कमाई की । जिस निशा से गजरेगा वसा ही पन बुद्धि मनामात्र व क्षान्ति
 जिशाभा का करन न करने वाला होगा । यह है उसका प्रभाव । आज पल्पक्ष इसका
 अणु हमारे देश समाज गहस्वी घर कुटुम्ब परिवार म, धार्मिक सामाजिक राज
 नलिक अध्यापित नैतिक धा म स्पष्ट दिशा दे रहा है । सर्वत्र अविश्वाम का
 बोधवाला है प्रचारण और धालावाजी आनि है । एक दूसरे के प्रति घृणा और
 निरस्कार का व्यवहार देखा जा रहा है । येम स्नह वागल्य और अनुराग का नाम
 निशान भी नहा है । पारस्परिक मत्री प्रभाव काक्ष्यानि भाव ता मानो भू से कम
 को प्रमाण कर गये हैं यह क्षमात्र भव का चमत्कार । वनदा की सजावट होटनों की
 बनावन साविता की चमक जूगा की हमक और होटों की सली, चाल में नजकन
 बाल में बनावन खेहरे पर लकनी मयना म गरीबी नयना मे परस्व और व्यवहार में
 उदान भना यह क्या भारत का आश्रम है भारतीय गन्तुति है ? नहीं । नहीं तो
 फिर जनरद की छाया कहां मिलेगी ? और समाज का निर्बन आनुत्व स्नह मानु प्रम
 धम का गौरव उपाश्रम की महता बाधो का सौष्टव वचन का प्रमाणत्व शरीर
 का दुष्टत्व पक्त्व का दुः अघा भना विम प्रकार पाया जा सकना है ? इसका
 प्रत्यक्ष प्रमाण यदि दाना है तो एक गावर सा विनाय शहर को पकडा और मनी
 का सा छोडा गाव म्ता दान की सुरता कर दिखल कर परण करा एक म आरता
 वभव पीडा उठा धधना या नर प्रतीत हागा और दूसरे म मुकना-नयना विन्तु
 मत्रीव बड़ी निमकता करक बनाता और मन्-मन् मुकता ।

अर्थाधीन प्राणी स्वाम्या क बल्लाण का घूम सा जाता है । वह मात्र सप्रह
 का लक्ष्य रगता है जबकि परिणह भरकाधु का प्रधान कारण है । दुगा की भी गात
 है । नाकरी एक कीट की टिमकार मान बाल में भी मुक्तानुभव नहीं करने न कर ही
 मरन हैं । ऐसी दुगति मे पडे का क्या भना सम्बत का बनस्य है ? नहीं । क्या
 नहीं । धन नहा पान बावा उगे ज्ञान करने व निष् अनेत्र आयों म प्रवृत्त होना
 है और पान बावा उसी वृद्धि के उपायों म भस्न रहता है एवं उनका रसाणध नाना
 विह्वना कर गिच्छि दुनों म चमकना रहता है । यही नहीं पर गण्य देल अपनी
 पुनता कगता है पर भारो धनरा देम मिसूरता है आह ईर्ष्या और घृणा की मही

[illegible]

अर्थात् प्राणी राज्याभा व कर्माभा का भूत भाग जाता है। वह भाग मरत
का मरत रहता है जबकि गरिष्ठ मरवायु का प्रदान कारण है। दुष्टों की भी प्राण
है। प्राणकी एत ओष्ठ का टिमहार साथ प्राण व भी मुक्तानुभव नहीं करते व वर ही
मरत हैं। ऐसी दुर्गति व मरते का क्या भसा सम्भार का प्रलय है ? नहीं। कर्माभा
नहीं। धन नहीं प्राण प्राण उक्त प्राण करते व गरिष्ठ अनेक मरवायु व प्रवृत्त होता
है और प्राण प्राण उक्त की वृद्धि के उपायार्थ भाग रहता है एवं उक्त राज्याभा प्राण
विहम्बता व गरिष्ठ प्रवृत्त ॥ प्रवृत्तता प्रवृत्त है। यही नहीं वर मरवायु देत अर्थात्
प्राण का भाग है वर भारी प्रवृत्त देत प्रवृत्त है। यह ईश्वर और प्राण की मरती

उत्पत्ति का यथा तारीख तारीख का कुछ शराज नौका जमीन घट्टा जाति
 8वीं नीच-नुठ शराज चमक का घोबो गार्द मुहार, वन् आति का घन्था ये है
 प्रमुख घनोपायों के साधन का इनमें भी बनवा महत्वपूर्ण और बामान का राजा
 है सविन-नौकरी । इसके बारीकून गन्ना महाराजा भी हो गये हैं । मला अय की
 बना बान है ? अब विचारिए इन सानों में भागन घा कसा हो सक्ता है ? मार्ग
 जसा गगा उगले प्राण वस्तु भी बगी ही होगी । जिस मार्ग में पानी बहकर जायगा
 नौ की स्रच्छा शुद्धता गन्गी व अजडना बगी ही हो जायेगी । तन्नुसार यह
 वेप या अनेक रहती । ग्राह्य अग्राह्य द्वित अनर्हिन कर रहेगी । बत मही दशा है घन
 की बनाई की । जिस निष्ठा से बुद्धिरेखा बसा हो पत्र बुद्धि मनाभाव व दानाति
 विद्याभा का वन्न न करने वाला होगा । यह है उनका प्रभाव । मात्र प्रत्यक्ष इसका
 अर्थ हमारे देश गमात्र गृहस्थी पर बुद्धि परिवार में धार्मिक सामाजिक राज
 नतिक अध्यात्मिक नतिक क्षेत्रों में स्पष्ट निष्ठा दे रहा है । राजव अविराज का
 बानबाना है प्रचारण और धावावादी आति है । एक दूसरे के प्रति घृणा और
 निरस्वार का व्यवहार देना आ रहा है । येम स्नह वारण्य और अनुराग का नाम
 निश्चान भी नहीं है । पारस्परिक मनो प्रभाव, वाक्प्राति भाव ता माना भू से नम
 को प्रमाण कर गये हैं यह कनमान प्रय का समत्व । बनको की समावट होटनों की
 बनावट साबिया की समक जुना की समक और हाटों की साली चात में नम्राकत
 बान में बनावट चेहरे पर सकेदी मयना न गरीबी नयनों में परत और व्यवहार में
 उमान बना यह क्या भारत का आत्म है भारतीय संहति है ? नहीं । नहीं तो
 फिर जैन्य की छाया कहीं मिनेगी ? जन समाज का निर्मल प्रभुत्व स्नह मातु प्रेम
 धर्म का गौरव वचनार्थों की महत्ता बाणी का गीष्टव बचन का प्रमाणत्व गरीर
 का पुष्टत्व एकत्व का दुः संघन बना निम प्रकार गाया जा सक्ता है ? इसका
 प्रत्यक्ष प्रमाण यदि दलता है तो एक मात्र सा निश्चाल गहर कोइ पकड़ो और नमी
 का सा छोटा गांव जसा दाना की चुनना कर शिवार कर परत करत एक में आपका
 बमव पीका उडा प्रियता या नष्ट प्रतीत होना और दूर में दुःखता-गनता किन्तु
 गजीव कहीं मिमकता कणवट बनना और मन् मन् मुम्माता ।

अर्थाधीन प्राणी स्वात्मा क वपाय का भूल भा जाता है । वह मात्र सप्रह
 का लक्ष्य रचना है जबकि परिग्रह नरवानु का प्रधान कारण है । दुःख की भी गान
 है । मारकी एक आग्र की टिमकार मात्र बान न भी मुनानुभव नहीं करते न कर ही
 गहन है । तेनी दुर्गति में पडने का क्या बना सज्जा का बनव्य है ? नहीं । कदापि
 नहीं । धन मही पाने वाला उसे प्राप्त करते क लिए अनेक अनर्थों में प्रवृत्त होता
 है और पान वाला समी वृद्धि के उपायों में मस्त रहता है एवं उन्हे रक्षणाय नाना
 विध्वना कर निविध दुर्गों में मनमना रहता है । यही नहीं पर सम्पत्ति देख अपनी
 चुनता कम्ता है पर भारी पल्ला देम बिसूरता है खट, ईर्ष्या और घृणा की मट्टी

म जलता रहता है। अथवा रुद्रमात्र कर दुःखी होता है। इस प्रकार विचार करने पर स्पष्ट होता है कि वित्तस्पर्धा एक प्रकार की दाह है जलती आग है जो ईश्वर पालर भी नहीं है और नहीं पान पर भा जलती रहती है बड़ी विचित्र अनीसी कहानी है यह अथ विष्णु की। अर्थात् प्राणी की भी बाजी लगा बठा है। नहीं साध पाना कि जीवन (वर्तमान पर्याय) समाप्त हो जाने पर उस सम्पत्ति का आशिर का होगा ? क्या मैं उसे भाग सक्ता हूँ ? उससे लाभान्वित हो सकता हूँ ? दूसरी बात यह है कि चञ्चल अथ क्या सभी स्थिर हो मरता है। जबकि मैं—निजामा अमर हूँ फिर नश्वर धन का मुझसे क्या सम्बन्ध ? कुछ भी नहीं। ह भ्रष्टाचार प्रभव म तेर साथ एक वण भी नहीं जा सक्ता फिर क्या कृपा शक्ति समय व्यय पापन करता है। अथविष्णु का परिव्याग कर। पूर्व पुण्यजन अथ का पाप उचित तत्त्वपूर्ण उपमाग कर। दा-भूजा तब नव-बाओं व मन्त्रिणादि म नगार गुणुपयोग कर। यही है तेरा अपना साधन।

प्रतिष्ठा स्वाभिमान अहभाव प्रमुख समकार आधिपत्य आदि एव समाज पर्यायवाची शब्द प्रज्ञात हात हैं किन्तु सब अपन अपने म स्वतन्त्र हैं। कोई भी किसी अपन रूप परिणामा नहीं सक्ता। साधारणतौर पर लाग इनका प्रयोग प्रतिष्ठा करने है। दश की प्रतिष्ठा समाज राष्ट्र विश्व परिवार समाज और देश की प्रतिष्ठा के आधार महत्त्व चरता रहता है अपनी प्रतिष्ठा का भूत इनका जवर हो जाता है कि आधार महत्त्व चरता रहता है अपनी प्रतिष्ठा का भूत इनका जवर हो जाता है कि फिर मनुष्य जगत् का सर्वोपरि मान बठा है और दूसरे का सम्मान तो दूर रहा किन्तु पर का अपमान की जार भी उसका सध रही गता। साधु जन की बात ता मित है साधु मतो की भी यक्षो की कीमत नहीं करता। साधु का उपहास होवे ता हा जाता किन्तु हमारे का हमारे समाज की नाम हमारे धर्म की इज्जत और हमारी बात की आन रहनी चाहिए किन्तु तत्त्वपूर्ण बाय हम करना नहीं चाहते। गुह्यता का सम्मान कर नहीं सक्ते कशकि स्वयं को बुद्धिमान विगन दूरशी और तत्त्वप्रतिष्ठ मान व है। हम अहंकार की दाह जगत् म साथे रहते हैं। मंहोग हा मान म अज्ञान मान छिन्न मान और कारे दम्भ की दशा। मनुष्य अज्ञान मानरव पर ठेठ सधन ही काहुता हा उभा है छापान सगता है उसत पुन उसकी आर दुष्टि नहा मनी। कारे दम्भ व चतुन म ज्ञान मानव प प पर टोकर साता है और हाथ मज मर कर पछाता है। अहंकार पन का पूर रूप है। माती का यग क्षीण हो जाता है। प्रतिष्ठा मा मारी है। प्रभुत्वशक्ति क्षीण हो जाता है। अज्ञान मित्र गन हा जा है। पुषा का पाव हा जाता है बाई उसका नाम भी नहा लेता चाहता रागन दाहा उगटरण है। विष्णुशक्ति हार भी दुर्बल का पाव बना। अत म अभिमान का पान मुक्तिव है। अत भाव म दा जाने कामा मानन अपनी भूष-भूष और बुद्धि का का व-ता है। विवद शक्ति नहा रह पातो। निम समय योगा साधन

गिरना है तब हाथ आना है । ऊपर मुह उठाव चलाव करना जिस समय गत में जा पटना है तब अवन आना है कि मैं नानानी की है । नीच गत बढ़ाकर चलावान की अवन तब मुहमा हानी है अब लम्बे से टकराना है और उलाट में रक्त बहने लगना है । यह टट्टी गति का टेढ़ा पत्र । मञ्जुल विहार होना चाहिए । जिसका भाई आरमा का ? नहा शुद्धता स्व प्रवेशो म स्थिति स्व ही प्रवेशो म निवास करता है मना उमका मगन विहार क्या ? तब फिर क्या पुद्गल का ? शरीर का अरे वाह जड़ भी कोई विहार करता है क्या ? जड़ तो जड़ ही है शरीर जड़ है पुद्गल है वह स्वयं विहार कर नहा सकता । गाढी में बस जात बिना क्या यह चल सकती है पक्का शरीर बिना क्या पतल उठ सकती है ? नहीं । इसी प्रकार जीव का सहारा लिए बिना शरीर का विहार-मगनामगन नहीं हो सकता । अस्तु सुनिश्चित है कि शरीर में स्थिति कमबद्ध अनुदात्ता का मगल विहार सम्भव है । अनुद रूप सङ्घटी सभी अनुद होते उनका परिणामन भी प्राप्ति अनुद रूप ही होगा किन्तु ध्यान रहे सम्मादृष्टि की भावना प्रज्ञान रूप दियाए सभी अनुदावस्था में ही होती हैं । जहाँ शुद्ध स्वस्वोपस्थि हुई कि बस मगनामगन भावना प्रज्ञान सेन-सेन गयी समाप्त हो जाते हैं । व्यवहार व्यवहारिमा का हा धम है व्यवहार में ऊपर उठन वारों न दिए निश्चय प्राप्त है किन्तु व्यवहार सापेक्ष निश्चय होता अनिवार्य है । निरपेक्ष नय मिथ्या होते हैं । मिथ्या मया का समुदाय भी झटका हो जाव तो भी वह वायवारी नहा हुना अस्तु सापेक्ष मया की व्यवस्था अति उत्तम ढंग में चलकर आरमा का अपने निज स्वभाव में ही जायगा ? काय बिना ही स्वतन्त्र रहें तो वस्तु व्यवस्था सापेक्ष ही होती है । निरा नर अब का है निरा नर का है । हर अवयव काय समाधान किम प्रकार कर सकता है भना ? नहीं ।

आत्म मुक्ति करा । आत्म शुद्धिपथ मस्तुका करना । सभी आरमा बड़ी १ गुण पहिना है । इस जिन मक का मचे बीनारागी हिनोपदेशी मज्ज प्रभु श्री पीरनाय भगवान की वेश्या उपमा उमोमनेन प्राप्त हुआ था । प्रभु की उदमागती भावा छिरी थी । दिग्भवति प्राप्तमून हुई थी । यह है अविज्ञान देशता का मगन पवित्र जिन । भगवान ने अपने जीवन को तपा कर कुम्भ बनाया पातुञ्ज स्वस्व बनाया बीनारा मना की प्राप्ति का पूरा दशन हु । सम्पूर्ण मज्जरावर उनके पात और दशन के मुग पन दिया बन । सभी ना मग भाव सम्पूर्ण का देखा और जाता । आत्मा निभारण हुआ । निभारण हुआ और उसका मगपारी पुद्गल भी उनसे साहचर्य से परमोन्निर्वा रण में प्राप्त हुआ । यह है आत्मा का प्रज्ञान, शुद्ध समाज का प्रवटीरण निज भाव की उपन । फिर शुद्ध हावर ही तो अन्य को ही शुद्धि पथ प्रदशन कर सकते हैं । यह समय शुद्ध शुद्ध विरञ्जना चिन्तनावस्था में पहुँचे री कि ममस्त विचार दण भग म नष्ट हो जात है । मग मुन जाते हैं । प्रवर आत्मा परमात्मा का मकना है ।

आत्म साधना में निमग्न हो सरता है एवान् म निरुपही ध्यान द्वारा अनंत कर्मों की निजरा कर सकता है। कम विषयों को भी हनका बनान म समथ हो सकता है। धनि बलघारो माछ इस काज म विशेष भाव शुद्धि करना है और अमख्यान गुणी निजरा भी सहज ही म कर लेता ह। निजरा ही ना तप का फल है। बारह प्रकार का तपस्वरण ही आत्मा की तपाना है। आत्मा न्न तपो स तप्य हो धीरे धीरे बुद्धन बनता है। जत्र तत्र अन्तिम पाक यही आया तब तक ८१० २० कितने ही पाक चने जायें किन्तु यथानुरूप अन्तिम शक्ति म ही प्रतिन पाक पूरा नहा होगा आत्मा निर्वल नहीं हो सकता। यह काज आत्म तत्त्व शोधन का है आत्मा का स्वच्छ बनाने का है अन्य भी इत्यादि मयम का नाशक है ह साधो। आत्म निर्गमण करो स्वयं योग देवो और निवासो यही सर्वोत्तम उपाय है।

स्व स्वभाव में रहना है। अब परभावों का त्याग करो कि कल्पों म स्वस्वरूप नहीं नजर आ सकता है। विक्षय का कारण क्या है? ममकार और महकार। जहाँ अपने से मेरापन है तेरापन है वहा उन उन विषयों के प्रति इष्टानिष्ट बुद्धि होती है। उनकी प्राप्ति अप्राप्ति हाने पर राग-द्वेष परिणाम हान हैं। राग-द्वेष आत रौन का हेतु होता है। मानसिक धनि मयत्थ है और बाह्य उपायनों की प्राप्ति न हाने पर क्षुमिन हाना या उन्हें पाने का प्रयत्न करना विक्षय है। इन सकल्प विषयों में उत्पन्न है ॥ भय सरन बना विषयों स सरन। वक्ता छाडा। निज घर म आना है तो सीढ़ बना। मय सुधार में भयवता है चटना है तो टेडा ही टडा चटना है किन्तु जिस समय अपने विन में प्रवेश करता है सीधा होकर ही चमता है। आत्मन्! सावधान होकर अपने म अपने का पाने का प्रयत्न करो। स्वयं अपने की अपने में प्रविष्ट कराश। टडापन विभाव है। सीधापन है स्वभाव। विभाव है पर और स्वभाव है निज। निज में निज के गग निज को प्राप्त करा। मुक्ति नगर की डगर पर चडत हा बडने जाओ अपने का अपने साथ लहर बने। अपने से मेरा तरा भाव छाडकर स्वयं को पहिचानी। अपने स प्रीति करा। अपने ही का जाना समथा अनुमद करो। आत्मा में प्रीति करन से आत्मा मिनेगी और आत्मा को जानने से उगने प्रीति होगी। यही सत्य उपाय है।

मन का भाव जीवन का लोड। राह और बाह। बाह से राह बनती है। बाह मन म हानी है। मन विचारा ना राजा है। शुभाशुभ अच्छ बुरे ममस्त निषारों को प्रभा देना है। न्यम भरना है मम मी होने का। गाम्य भाव का अब शिष्टा को दण्ड और अतिश्या का अनुग्रह करना है क्या? नहीं। जिसका जसा स्वभाव है जिसकी जमी करती है जो जिन योग्यता का पाव है उमने प्रति उनी प्रकार का व्यवहार करना यथाकिन साम दाम भय दण्ड नीति म सामान पर गगाना साम्य भाव का अभिप्राय है। ममता धारी अन्याय न करगा और न करते हुए स प्रसन्न ही होगा। राजा का कत न मय प्रजा का पावन करना है साथ ही उमे बाप धर्मत्मा और शिष्ट बनाना भी है। धर्म जब काम और भा। चार पुण्याव हैं चारो का

अविरोध रूप में शक्ति करना प्रथम बनव्य है। प्रथम धर्म पुण्याप सेवन करने और उससे पावन के साथ साथ अर्थ काम का शयन करने हुए भा १ का ११ यज्ञान-न्याय बनाये। माया उन्मूल ही आत्मा की सिद्धि करने में समर्थ है। प्रथम तात्का पुरदायी का अविरोध भाव करने पर अन्तिम पुण्यार्थ अरुण ही सिद्ध हो सकती है। यही तो असली सुख का साधन है। आत्मोत्पत्ति सुख अविनाशी है। शाश्वत है अतः अन्त टकोत्पत्ति है। मन का उन्मूल बगो सब सिद्ध होगा प्रत्यक्ष आत्मा जाना है। स्व को भी जानना है और पर को भी। परन्तु अनुभव अपना ही अपन में कर सकना है। चाहे शुद्धात्मा है या अशुद्धात्मा पर के सुख-दुख को जान सकना है अनुभव से ही नहीं सकता। हम ज्ञाती आगमाधार से सिद्ध सुख का जानते हैं बचन अपने निज ज्ञान से समस्त जोशों व सुख-दुख को जानते हैं परन्तु भाग तो अन्त-अपने ही आनन्द ज्ञान सुख दुःख का ही करत है। तात्का-दृष्टापना ध्यानी है किन्तु स्वानुभव सुखानुभूति आनन्दानुभूति निज निज की स्वयं अपनी अपनी आत्मा में ही होती है। किन्तु अनात्मा सिद्धांत है अटल सत्य है। हम प्रत्यक्ष देखते हैं रागी व रोय को बच डाक्टर परीक्षण कर जान लेता है एक दूसरे व सुख दुःख का हम रोय की देखते जानते हैं परन्तु विषाद पत्र तो बड़ी स्वतः साधना है अनुभव करना है। इन अन्य पत्र ही अपना आत्मोत्पत्ति स्वयं ही स्वयं का अनुभव करना है। शिव लोक का वासी तीन लोक के समस्तवासी जीवों के सुख-दुःख से परिचित है किन्तु वे इन्द्रियजन्य विषय भाग बच सुख दुःख तक नहीं जानती अनुभूति में नहीं आते। हे साधो! व स्वतः है अपने सुख दुःख का स्वयं आप विधाना है। आप ही अपना सुधार विधान करने में समर्थ है अपने बल पर अपना विकास कर। आत्म ब्रह्म अनुभव है। अनन्त है और अविनाशक है। अरुण सुख विष्णु है प्रलय कर प्रवृत्त करो। आत्मा जाना है दृष्टा है किसका जाना दृष्टा? क्या सत्कार का नहीं-नहीं उसे क्या कर शक्ति है पर के जानने देखन की। आप बीते होये कि आज तक तब हमने यही सुना यही पढ़ा यही समझा। परन्तु यदि आपका का मयि तत्त्व पान का प्रयत्न किया जाता तो कमजोरी की आवश्यकता न होती। शुद्ध परिष्कृति कर देना समझा अनुभव करा। आत्मा अपने स्व आत्मा का ही दृष्टा है और स्व आत्मा की ही जाना है। अत्यन्त नय से यह कहन है कि सबज्ञ तब पण्यो को युक्त जानते देखते हैं। वास्तव में निश्चय-परमाय से वह स्वयं अपनी ही आत्मा का जाना दृष्टा है। पर पण्यो समरी भावजित्ति निमग्नता होने से निश्चय हय भाव नोचम रूप में हो जा। स ज्ञानन लेते हैं प्रतिबिम्बित हो जाते हैं। न भवतान शुद्धात्मा जानना है सदाय है वाकि उा वाञ्छा ही नहीं है जाना देखन की। यदि जान देखन का सनाय मान निज जाय ता फिर रम्य अरुण पण्यो व प्रति दृष्टा, अनिष्टा भागी होती और इस प्रथम स्वीकृति में राम-देव हो जायगा। शीतराम परिष्कृति नष्ट होने से परमा या दसा ही नहीं बरगी। अन्त स्वयं में स्वयं का स्वयं देना जा। वाय परमात्मा की शक्तिशुद्धि में अन्तर्गत अन्त पण्यो एक समय में एक

साथ विद्यालय परीक्षाओं सहित स्वयंसेवक बनकरने लगते हैं। यह स्वभाव ही है ज्ञान का मतलबाने का और पढ़ाई का उनमें बनकरने का। यथा सृष्टि में मणि। ज्ञान दीने पदार्थ का सामने आवे बनकरने लगती है। आत्मा ज्ञान स्वभाव है आदि से मणि है। उसी का स्वच्छ हावा पर पदार्थ स्वयं बनता। मणि : व सत्य का न बनकर बनता—तुलना बना प्रयोजन इसके। हे साधो ! भवन को स्वच्छ बनाओ। जीवन चारित्र्य प्रकट करो चारित्र्य धनु धम्मा है वह चारित्र्य आत्मधर्म गाम्य धर्म है। जीवन मरण साध-अनाम साधन विद्या साधु विदुः समान-महान कवि-कवचन आदि में समान बुद्धि हाता साम्यभाव है। यह साह साध विद्या परि ज्ञान में ही प्रकट हो सकता है। साह साध साध- है। यही आत्म स्वभाव है आत्म स्वभाव ही धर्म है जैसा ज्ञान है। यह स्वभाव धम्मा : यही स्वात्मोत्पत्ति है यही स्वमिति है। स्वात्मोत्पत्ति यही है। हे साधो ! इसी में आत्मा सभी पदार्थ साधुत्व का आत्म का मणि है। सभी साधुत्व का अनुभव हो सकता है पदार्थ साधुता का साध हो सकता है। साधुता का विद्या आत्मधर्म का कारण है जीवनभाव का ज्ञान है। स्वमन्त्र का ज्ञान है अन्तु क्वालि पूजा का भाव मन्त्र साध और मन्त्र साधन यह इस भवकर भूत है। धर्म वस्तु का स्वभाव है। मन्त्र स्वभाव ही धर्म है। आत्मा तत्त्व है—वस्तु है। यह भी परिणामन मन्त्र है। जिस का यह स्व स्वभाव का परिणाम करता है यही धर्म है और पर स्व परिणामन धर्म है। पर पदार्थ दो प्रकार का है शुभ रूप और अशुभ रूप। शुभ में आत्मा परिणामन करता है ता शुभ परिणाम हुआ 'शुभोत्पत्ति' कहता है। यह शुभ भी दो प्रकार का है मिथ्या रूप और सत्य रूप। मिथ्या रूप शुभ प्रियार्थ शुभसाध शुभ परिणामन निश्चय में मन्त्र बद्ध है दुष्ट का कारण है। जिस पर साधन करना-करना मन्त्रों के वर वर ज्ञान का पूजा साधना पठन-पाठन मन्त्रन यथासाधन आदि शुभ किया नहीं जाने पर भी पदार्थ शुभ नहीं है। अर्थात् इनसे होने का भाव शुभ मन्त्र बद्ध है। स्वर्गादि में में ज्ञान विद्यातत्त्व कर दुष्टता का पाप बना देता। अन्तु इसमें विद्यातत्त्व गम्य-विद्या का पुण्य वनमान भागी को मुन्यता से प्रकर मात्रा में प्राप्त करा देता उनमें यथावर्तिता साध का प्राप्ति या मोह पद नहीं होने देता। पर भव में भी पञ्चेन्द्रिय विषय-आहार का प्राप्ति प्राप्ति कराने का किन्तु उनमें विद्या नहीं होने देता न आवश्य है न मोह शोभ। अन्तु शुभ साधन-साम्यस्व पूजा उपाजित पुण्य स्वयं साधन है उच्छलित की सीढ़ियों का काम देता यदि तुम चाहोगे तो। यही समझो तो। हे आत्मा शुभा शुभ का समस्त समस्त प्रक्रिया समस्त तदनुसार ग्रहण करो तदनुसार व्यवहार करो तब यही समस्त ऊपर का भाग प्रकट होगा और शुद्धात्मा में पहुँचने में समर्थ हो मन्त्रों के अर्थ में जीवन में विद्या का ज्ञान। साध साम्यस्व या जीवन साम्यस्व पूजा जो विद्या होगी यही चारित्र्य है। यह मन्त्र चारित्र्य न जीवन चारित्र्य हावा।

की मृगिरा सर्वोपरि है। शुभाशुभा के भी ऊपर है। शुभ की भीमा पर बार पुन नहीं कुछ काल रह उस स्थिति का घुट्ट करने का यत्न कहा शुद्धोपयोग की दशा प्रकट हो जाती है कि वह स्थिति में आर्यो। उस मकेरी का समय उह पनगान या प्रयत्न निय जान पर व बढ़ेंगे और घुट्ट हांग तब कहा उस शुद्धोपयोग का रसास्वादन करने का मिलेगा उसका स्वाद ज्ञायका पुन उनमें अनिदानुभूति हागी और वह ज्ञानामृत लेमा हागा कि फिर ममान का कुछ भी नी मुहायका। एक मात्रा बड़ी हागा उसी में तब लयता आयगी। यही अतमुहूत की क्याई चिर अनन हागी अवन और अटल रहेगी एव एर समान मनन रहकर परमात्म स्वरूप वन विराजमान रहेगी। है आत्मन तू तर स्वभाव का विचार कर किता प्रवार म पर वारक सम्प्रदाय स रहित है। चित्त चतुर्थ अनात्मान आत्मा का उत्पत्ति मैं हा किया है। अत म स्वय स्वय का कर्ता है। मया विमान धन चतुर्थ आत्मा भवन हा का आत्मा आत्मा द्वारा अवगन किया जाता है साधक तम धरण आत्मा (मैं) ही है। सब पर जय भावो स रहित निर्विकल्प आत्मा ही अपनी निरात्मानुभूति म निमग्न हा। आनन्दानुभव तीन हाता है अत अपन लिए हा सम्प्रदान का है। ध्रुव अपन ही तान स्वभाव की विपरि मन्न रूप मति धृति अतीति मन पयस ज्ञान का विविध विपरिमन्न करता या अथ उन पर द्रव्यो स सत्रमा भिन्न हात से स्वय अपने ध्रुव स्वभाव का ज्ञापक भाव हाता म अपादान है। अपने ही स्वतन्त्रता का स्वातुनवानुरन्ध्रित होने से स्वय निज म हा अवल-अटल रहकर आत्मशोधना करता है। अस्तु अयाधिकरण का अभाव है। स्वय ही स्वय म तीन है इस प्रकार सभा बारका का समाहार इन आत्मतत्त्व का स्वभाव। म ही समान हा जाता है। अर्थात् हर क्षण विचार कर १ मैं आत्मा है २ मैंने हा भरे मुद्राप याग रूप भावा का स्वय प्रकट किया है। मैं ही कम है। मैं ही मर आत्म स्वभाव को परिपुष्ट बनान का प्रयाग किया है मैं सतत स्वय अपन हा म रहता है। अपना-अपना को आभय है स्वतन्त्र कृति होने स। स्वाधीनता म ही सार है।

आत्मा एक तन्त्र है। अत द्रव्यो स भिन्न है। समस्त तन्त्र अपनी-अपनी सत्ता म विद्यमान है। निज निज स्वभाव म स्थित है। पर द्रव्य अन्य द्रव्य रूप कर्तापि नहीं हाता यह अज्ञान्य नियम है अन्यथा द्रव्य छ ही हाते है कम या अधिक नहा होत यह नियम नहा बन सकता। द्रव्य अपना द्यता का कभी भी नहीं छाडती। अस्तु आत्मा अतन्त्र है। अतन्त्र ज्ञान-दर्शन का परिणमन करना है आत्मा भी ज्ञान-दर्शन रूप हुआ। ज्ञान जिन ज्ञान निज स्वरूप को प्राप्त करता है वह सर्व-पर्यायो युक्त सब पदार्थों का ज्ञान हा जाता है इस ज्ञान के आधार भूत चामा को मन्त्र-य प्राप्त हाता है। ज्ञान अतीन्द्रिय है परात्ममत्वा रहित है सर्ववि शीकर है अत अवगन है ज्ञान सहकारी आत्मा भी सब व्यापक है। सब व्यापक भी ज्ञान आत्म द्रव्य स रहितु ति नहीं है। आत्मा निष्ठ ही है। आत्मा है अधिक या कम ज्ञान नहीं है

अथवा अधिक ज्ञान में बढ़ता हुआ जायेगी और उसका प्राप्ति स्वभाव स्पष्ट हो जायेगा। स्वभाव नाश होने से स्वभावों का भी अभाव अवश्यम्भावी है क्योंकि निराश्रय कसे रह सकता है? उभय का अभाव हो जायेगा। ज्ञान शून्यता का प्रयत्न हो जायेगा। अतः ज्ञान प्राप्त प्रमाण है यह निश्चित है। आत्मा में ज्ञान कम भी नहीं है यदि आत्मा ज्ञान विहीन है तो ज्ञातृत्व स्वभाव नहीं बनेगा और तत्पश्चात् ज्ञान का भी अभाव हो जायेगा।

इस प्रकार जोर दोषों का उन्मादन होने में तब व्यवस्था नहीं हो सकती। आत्मा स्वयं सिद्ध है वगैरे ही उसका स्वभाव है। आत्म तत्त्व का परिज्ञान करने के लिए सब तरह व्यवस्था जानना परमावश्यक है। हे आत्मन् तू निज आत्म स्वरूप का परिज्ञान कर। निज स्वरूप को जाने बिना स्व परिज्ञान नहीं हो सकता। अस्तु आत्मा व्यापक है और ज्ञान व्याप्य है। ज्ञान आत्मनिष्ठ है। आत्मा में ही समावेश रहता है। किन्तु ज्ञेयों का ज्ञाता है इसलिए ज्ञेय प्रमाण है जैसे लोकानां प्रमाण है ज्ञानिण ज्ञान स्वयं है। ज्ञान-धन आत्मा परमात्मनः कारण अनन्त सुख-क्षय दान युक्त है। अनन्त ज्ञेय और अनन्त पर्यायों व भी व वाचस्वी और विनोक्तस्वी उन सबका ही एक साथ आत्मा देवता और जानता है। यही नहीं अपितु वे सत्य पदार्थ पर्यायों ज्ञान में प्रतिबिम्बित हाने हैं ज्ञानस्वी हैं। यही आत्मा का शुद्ध तत्त्व स्वरूप है। जय विभिन्न मनावस्वी विविध आत्म स्वरूप मानत हैं वदन्ति प्रमाण आत्मा है या अगुण्य प्रमाण अथवा व्यापक प्रमाण आत्मा यह विद्वान् अग्रमाण है अतः उपयुक्त वचनानुसार आत्मा का स्वरूप ही यथायथ मानना चाहिए। अस्तु आत्मा स्वरूप का निशेध कर नष्टान करना ही सम्भव है। बार-बार चिन्तन करने से स्वस्वरूप की प्राप्ति हाना सम्भव है।

व्यवहार और निश्चय की अपेक्षा नय २ भू है। नयाना समीप उपनयाना नयो के समीप में रह व उपनय है अर्थात् आत्मन उपसाय प्रमाणादोना व तेया मुपसमीप नयतीति उपनय । जा आत्मा व या उन प्रमाणात्मा को अत्यन्त निवृत्त पहुँचाता है वह उपनय है। उपनय ३ भू है—। (व्यवहार नय)-तन्मून भदापचारतया वस्तु यमहिमून इति व्यवहार । अर्थात् भद और उपचार व द्वारा जा वस्तु का व्यवहार होता है वह व्यवहार नय है। जा भद द्वारा वस्तु का व्यवहार कर वह सद्मून व्यवहार नय है। एव जा उपचार द्वारा वस्तु का व्यवहार कर वह उपचरित असद्मून व्यवहार नय है।

सत्ता सत्या स्यात् प्रमाण का अपेक्षा वष और गुणों में भद करन वाला नय सद्मून व्यवहारनय है। इस प्रकार पथाय पर्याया में स्वभाव-स्वभावा में कारण-कारकी में भी भू करना सद्मून व्यवहार नय है। यथा उच्यते स्वभाव और अग्नि

प्रभावी न भवति । तथा मृगिण्य की लक्षि विषय कारण म औ मृगिण्य कारणों म भेद करना व भव अदभुत व्यवहार नय व दुष्टा न है ।

असदभुत व्यवहार नय—अयत्न प्रसिद्ध धर्म (स्वभाव) का अयत्न कारणों करने वाली असदभुत व्यवहार नय है । जैसे पुष्पन आदि म जो धर्म (स्वभाव) है उतका जाति म समावेश करना । इसका भेद है—

१ न्य म न्य का उपचार ।

२ पर्याय म पर्याय का उपचार—अस पुष्पन म जो व का कारण अर्थात् पृष्ठा आदि पुष्पन म एतन्मय जो व का उपचार करना । जो व का व पर्याय म अन्य व प्रविष्टि का उपचार ।

३ गुण म गुण का उपचार—जो व निमित्त मूर व यही विज्ञाति जो व गुण म गुण गुण का कारण किया है ।

४ न्य म न्य का उपचार यथा—अर्थात् जो व न्य जो व न्य विषय म वही आसीत जीव इत्य म जो व गुण का उपचार है । आराध है ।

५ न्य म पर्याय का उपचार—अस परमाणु बहुवचसी म अर्थात् परमाणु इत्य म बहुवचसी पर्याय का आराध है ।

६ गुण म इत्य का उपचार—यथा अवन प्राणा मही प्राणा न्य का वन गुण म आराध किया ।

७ गुण म पर्याय का उपचार—जान गुण के परिचयन म जो व पर्याय का पहल करना गुण म पर्याय का आराध है ।

८ पर्याय म इत्य का उपचार—स्वय का पुष्पन न्य इहना यही पर्याय म न्य का उपचार है ।

९ पर्याय म गुण का उपचार यथा इगता करीर रगमान है । यही करीर रग पर्याय म रगवान गुण का आराध उपचार किया गया है । य सब असदभुत व्यवहार नय है ।

उपचरित असदभुत व्यवहार नय

मुरगमावे एति प्रयागेन निमित्ते भोगार प्रचनन मुक्क व अभाव म प्रयागेन वन अथवा निमित्तक उपचार की प्रकृति हानी है । जैसे बारव का मिह कहना या मार्वर का मिह कहना ।

सदभुत व्यवहार नय व का भेद है—शुद्ध सदभुत व्यवहारनय और अशुद्ध सदभुत व्यवहार नय ।

शुद्ध गुणी और शुद्ध गुण म तथा शुद्ध पर्याय-पर्यायी म जो नय भेद का कथन करता है वह शुद्ध सदभुत व्यवहार नय है । यथा सिद्ध जीव और सिद्ध पर्याय म भेद कथन करना ।

अशुद्ध गुण और गुणी एवं अशुद्ध पर्याय-पर्यायी म भेद कथन करना यह अशुद्ध सदभुत व्यवहार नय है ।

अगद्भूत व्यवहार नयन ३ भू है—१ स्वज्ञाति अगद्भूत २ विज्ञाति
असद्भूत और स्वज्ञाति विज्ञाति अगद्भूत ।

हे आत्मन् ! आज प्रमाण आया है । प्रज्ञात पाया है । लयम पाया है । य
रतन है । सरासमस्त युक्त है । हाथ म आया है । अब तरावता मान लेप है । विवेक
ज्योति स निषय कर मन विचार विजना कहीं-कहीं मित्त है ? तरी इति म यह
जैव गया ता फिर भन बन म नया देर हा सजगी है ? कुछ नहीं मान अनमुह
म सब विशुद्ध परमशुद्ध परमात्मा द्वारा उपलब्ध हा जायगा । अनाति से यह मनि
है विकारी ह विचार भी अनाति है कोई नय नहीं है । नवीनता प्रकट करना है
जा पुष्पाय साध्य है । स पुष्पाय न बन स जन वा अनाति तरा का अलग-अलग
कर देना है बस इतना मान काय ही तुम करना है । ह मुन अनाति मिथ्या को
काट छाँट कर शुद्ध रूप म लाना है । इसी का प्रयोग करा । यह काय सरल भी है
और कठिन भी । कठिन तो इसलिए कि भव भव के प्रयास अभ्यास स यह कौशल
पात हा सजता ह और सरल इसलिए है कि अभ्यासनिष्ठा होने पर मात्र एक
अतमुद्धत माय बाल लगया बस । ह भाई अभ्यास कर तत्व चिन्तन का । तत्व
चिन्तना न लिए तत्व परिज्ञान परमावश्यक है तत्व परिज्ञान विषय विरक्ति
हिंदासाति-मुखाभिलाष त्याग अत्यावश्यक है । तत्व और तत्व विवेचना की स्थिति
नया न आनित है । इत्यादि नय तत्व का विषय करता है और तत्व विवेचन
व्यवहारानित है । विषय तत्व विवेचक ज्ञान द्वारा ही सम्भव है । तत्वावधारण आत्म
साधना का साधन है । स्व पर भद विज्ञान ही अपर नाम है । यह स्वतन्त्रि का
उपाय है । आत्मा ज्ञान है ज्ञान आत्मा है यही तत्व है, तत्व पदार्थ का सार है । सार
निचाही पदार्थ का चिरतन स्वरूप है । जा चिर है वही अमर है जा अमर है वही
सत है सत है वह परिणमनशील है परिणमनता वस्तु का स्वभाव है स्व स्वभाव निर
स्वरूप । स्वरूप स्वभाव सिद्ध है स्वत सिद्ध है परायेगा यहाँ कुछ कार्यकारी नहीं
है । जहाँ पर अये ता है वहाँ स्व स्वरूपावस्थि नहीं हा सजती । हम स्व स्वभाव
बाह्य है स्वतत्वापनधि की बाधता करत हैं किन्तु वह मिल कस ? नयो का पपाप
छूना नहा स्व पर का भू हाता नहा । दुराग्रह स हम हटत नहीं । फिर वस्तु
स्वरूप सिद्ध हा किम प्रकार सजती है । साध हात पर भी पूर्व सत्कार आने है
बनाव् आत है हम विज्ञा करत हैं हम जनम पुन जात है मिन जात है निज का
धूल जात है पर म हा आग भान सत है और फिर विभाव की वह लड़ी-कड़ी जुझी
जाती है बढ़ती जाता है यहाँ है समार ससार की परिपाटी ससार की वृद्धि और
दुःखा की अग-छाँटि हम परमाय स हट विषयो म प्रवृत्त हा जात हैं यह है
सत्कारा की निरलता विचार की अपरिपक्वता और सद्भावना की छाप की दुबलता
पराभा-पराभा पुष्प का पुष्प न कारणा का साधना का चारा बार म पुष्ट करा
परा करा जाना बढ़ाया करा नि साधन हा जाय पुष्पपना निरवपरा । यही

है गिड़ान्न यही है अमर फल पाने का साधन । यद्यपि कृष्ण फल पानिबन्ध गुण क्ली
 वृत्त का ही फल है । फल पाने पर वृत्त की आवश्यकता तभी किन्तु फल पाने के
 लिए वृत्त का हाना अत्यनिवार्य है । बिना वृत्त के फल प्राप्त नहीं हो सकता । यही
 पुण्य उपाय है साह्य है आवश्यक है अत्यावश्यक है परमावश्यक है । इसका मूल
 है शुभोपवास । आठ बोरा सा फल हा वृत्त नहीं हा जाता है और त ही साक्षात्
 फल हा प्राप्त हो सकता है अतितु धैर्यपूर्वक विविध प्रयत्नों के अन्तर्गत अनुष्ठान
 साधना के उपायान्तरों से होनी है बस यही है मुक्ति का अमर फल पाने
 का विधान । पुरुषार्थ श्री गार्हपत्यम् अनुष्ठानम् में प्रयोग मुद्रिगुणक प्रदान करने
 उद्यम को पुन उद्यम आरम्भ न रहे । सत्य रह फल पर । अन्तर्गत गिड़ हागी
 शीघ्र होगी तभी हागा और वह फिर अमर रहेगी । यह है हमारा निज पुण्यार्थ का
 समस्तार स्वात्मोपनिषद् का उद्देश और परमार्थ प्राप्त ।

ज्ञान और आत्मा क्या भिन्न है ? या एक है । यदि भिन्न है ना यह ज्ञान अमूर्त
 का है अमूर्त का तभी यह किम प्रकार व्यवस्थित हागा । किन्तु अतगा ज्ञान विधान जिस
 समय हागा ता वह जड़ का हा जायगा । जड़ में ज्ञान गवाय से ज्ञानापना आता ना
 अन्य जड़ पदार्थों में भी नयक स्वभाव आता चाहिगा । परन्तु यह गलत भागभर है । किन्तु
 ज्ञान अमूर्त और आत्मा भिन्न है ता अमूर्त ज्ञान अमूर्त आत्मा का है यह निगम का
 हागा ? अथ आत्मा न ता वह भी जड़ है जड़ जड़ में गवाय किम प्रकार बसा सकता
 है ? क्या कभी टेबुल कुर्सी में ज्ञान जाड़ सकता है ? बाण्ड-बन्धन में साम ज्ञान का
 सायाग बराबर बन्धन का ज्ञानी बना सकता है ? नहीं फिर क्या दाता एक है ?
 यदि हा ता ज्ञान और आत्मा का व्यवस्था नाम क्या बसा हात है । आत्मा और
 ज्ञान मात्र क्या प्रमाणी का भद है । यथाय म दाता अभिन्न है । दाता में व्याप्य
 व्यापक सम्बन्ध है । अयोध का अस्तित्व एक ही है । आत्मा ज्ञान प्रमाण है ज्ञान
 ज्ञान प्रमाण । परन्तु कुछ दशा में स्वानुभव समुचित के अवसर में दाता एक है ।
 ज्ञान ज्ञानकार परिमणन करता है स्वन स्वयं तथा क्य शक्ति वाता हान ता ज्ञान
 अनन्त है और अनन्ता पर्यायों में सम्पन्न है । इस दशा में ज्ञान को अनन्त पदार्थ
 और पर्यायों का जानने वाला जाना ज्ञानानुसार परिमणन करता है । उन अनन्त
 आकारों का अपना ज्ञान मा अनन्त है । आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी है अतनु ज्ञानान्य
 भाव ज्ञान भग मुक्त हाकर मवस्था है । किन्तु बाल जिन समय ज्ञान पर पदार्थों
 को आवश्यक करता है—ज्ञानता है युग्मन सब वह सब दर्शी या शब्द है । सबका
 जानता हुआ भी गता में सञ्चाल अग्रगण्य प्रविष्ट तभी हाता अथ आत्मा प्रमाण हा
 रहता है । अतितु जितना ज्ञान है उनना आत्मा है और जितना आत्मा है उनना
 ज्ञान है । यथा अथवा गभीरीन टक्कालीन मुष्मिन् हाती है । आत्मा ज्ञान और ज्ञान
 आत्मा है । अथवा आत्मा के जड़ता का प्रमण आ जाव और फिर आत्मा ज्ञाता न
 रहे । आत्मा जड़ मा है । एकान्त पद परकृता मिथ्यात्व है । एकान्त मिथ्यात्व
 सञ्चार वदक है । सञ्चार की अनन्त परतानी का कारण है । आत्मा के अनन्त गुण हैं

परमाणु रूप था और न आत्मा ही शुद्ध मन्त्र-रूप में। दोनों ही अपने-अपने स्वभाव से विचलित हुए मिथ्य भाव का प्राप्त कर अशुद्ध बने नाना रूप परिणमन कर रहे हैं। यही ममत्ता है। तभी तो दुनियाँ दुरगो बहो जाती है। दा भावों के सयोग से उत्पन्न है ममत्ता। हममें दो ही जड़ चेतन वस्तुओं के सयोग का समस्त धन हा रहा है। जा विवेकी पहिचान लेता है वह इस ध्यान की ऊँचरी तद्वत् भद्वत् से गाव धान हा बाह्य चमक-अमक से हटकर भीतर में अन्त प्रविष्ट हा अपन का गाव धान करन का प्रयत्न करता है। बस यहीं से बुद्धि विरास स्व स्वरूपाभास, निजा मुमुक्षु स्वतन्त्र परिज्ञान का अकुर प्रादुर्भूत होता है। अपनी सुध में आत्मा आता है। हम और आप या जो कोई भी प्रत्यक्ष प्राणी अह अह रूप से अपन में अनुमुनि करता है वही अन्तर्जन्म रूप स्वभावित अनुभय-आत्मानुभव है। हम पूरा सावधान हैं मुबुद्ध हैं अपने का निर्मेय निद्रा निर्विकार मान बैठ हैं अज्ञान शर की गजन मुनी या जोर से विद्यम की तडकन हूँ चौक पड़ यह क्या है? कहा आत्मा की विकारी शक्ति। आत्मा विकारी है। आज से नहा जब से उसका अस्तित्व है तब से। निर्विकार आज तक हुआ ही नहीं जा हा गया फिर विकारी हागा नहा। जोव और उसका फिर साथी बुद्ध्यन दाना ही सग में विकारा हो हैं। परमाणु हे नहीं हा जाना है गुहात्मा है नहीं हा जाना है। उनमें शुद्ध रूप परिणमन का शक्ति है साक्षता है उस प्रकार का गुण है। यह बाह्य निर्मलता पर हो आश्रित है। बाह्य निर्मल भा अपने स्वयं पर निर्भर है। हम उनका जसा जिनना जब उपयोग करण तब उनसे उनका उनना हो उपयोग कर लाभ उठा सकते हैं। अस्तु निर्मलता में सामाजिक हाता में होना यह स्वतः आवेक ऊपर निर्भर है। ह साधा। अपन आत्म स्वरूप के साधना का सम्बन्ध उपजिन सम बव सबद्धन और प्रयोग करो तथा काय सिद्धि सम्भव है।

वर्षा-काल और आत्मशोधना

वर्षा-काल मन्त्राणि का समय है। हम समय तबत्र उद्यम-मुद्यम इष्टिगोचर होती है। मनी-नम मनी माय कृप-प्रीति जीव जंतु मर-नारी सभी का जीवन एक विविध प्रकार की अनुमुनि करता है। जीवों में विपरिणमन सा हा जाना है। शरीर रिक्त रासो का प्राचये पाचन शक्ति की होना ममनाममन की अनुविधा एवं सामूहिक उत्सववादि की कभी स्वभाव में हा जानी है। सम्भव है इन सभी अनुविधाओं का दृष्टि में रखकर जनाचार्यों ने हम काल का आत्मशोधना का काल निर्धारित किया है। आत्मा और शरीर का मयोग सम्बन्ध है। दा विराधा अस्तुत्रा का मन एक दूधर का साधक न होकर ज्ञान बनना है यह प्रत्यक्ष है। साध और पोषण का सम्बन्ध हान पर बहु पोषण का आमुल मष्ट कर देनी है। शरीर का भी यही हान है यह स्वयं पुष्ट होना चाहेगा तो आत्म का महार करन में बाध नहा आवेगा। हा यह अवश्य है कि आत्म स्वरूप का नाम गहा कर सकना। पर उग विद्वत्ता अवश्य हो करना

है और माग चुन कर दुला का पात्र बना देता है। जसा कि प्रथमान स्वामी का निम्न वक्ताक प्रतिपन्नित करता है—

यज्जीवस्योपकाराय तद्दृष्ट्यापकारकम् ।
यदेहस्योपकाराय तज्जीवस्योपकारकम् ॥

अर्थात् जिससे आत्मा जीव का उपकार होता है उससे शरीर का अपकार होता है और शरीर का उपकारी आत्मा का अपकारी अहित करने वाला है यह सुनिश्चित है।

चातुर्माण वाला म शरीर पोषण सभी तरफ का सभी ध्यापारादि कामों का प्रभाव स्वभाव में ही मंद हो जाता है। पाचनशक्ति मन्द होने में विविध व्यञ्जना पक्काप्रा की आवश्यकता नहीं रहती आयाज निर्माण का साधना की अनुबिधा से व्यापारि मंद हो जाते हैं। जन धर्म दया भूलक है। अहिंसा इगका प्राण है। जीव मान का रक्षण करना इसका कर्तव्य है। प्राणी मान का उत्थान विकास करना इसका ध्येय है। इसीलिए ता जनम सार्थक्य धम का स्थान प्राप्त किया है। सर्वो दय की स्थापना जन सिद्धांत का नाव पर हा हा सबतो है। क्योंकि सबभूतहित भावना इनम निहित है। यथा—

सत्त्वेषु मत्री गुणेषु प्रमोद
चित्तेषु जीवेषु कृपा परस्व
माभ्यस्य भाव विपरीत कृत्सी
सदा ममात्मा विवधाति द्वेष

यस्य मत्री भाव जना में ममता तब ही म नित्य रह या दुखी जीवों पर मरे उन का रक्षा प्राप्त हो दुःख नूर बुझाया रता पर शांति नहीं मुक्तों आव साम्य भाव रह्यु। मैं उन पर एका परिचालि हा आव मणी जना का दया हृदय से मरे प्रम उमड़ आव बन नहीं तक उनकी मरा करव यह मन मुग पावे।

क्या समय में जाहालति प्रकुर मात्रा में हो जाती है। सूक्ष्म जीवों की अनन्त मन्त्रा शरीर में। सूक्ष्म मागारण ममता काय की उत्पत्ति हो जाने से मयमी ब्र॥ हा ममता ममन बड़ हो जाता है। यही नहा अविरतिवो का भी अनाशरक विरातात् नग करना शक्ति। विराति जाह रसावर हिमा का त्यागी नहीं होने पर वयातकि उनका रण हो जाता है किन्तु वे शरीरों का रणा पूष मावधानो म करता है। जिहा प्रकाश प्रमात्रक ज्ञान का रणा म विराधना हा भी गर्दता जाहालति मदनता का कारण भूत म आभावेता कर माग्य प्रायश्चित्त कर मुक्ति करने है। माय विराधनाय कर्त॥

सूक्ष्म मन्त्रा वास्तविक और अर्थ विवक्त कर अनेनी पञ्चांग्य ज्ञानि क जाहा का ना ममता ममता ममता व र हाता है। कक्षागारी परम दशानु नि र्देय। सूक्ष्मादिवा मुनि अविद्या मन्त्रा मन्त्रा इति जिहा म एक हा स्थान कर

निवास करत है। पुष्पा भवा निर्वाण भूमियो अभिज्ञत धरा तहाँ तपस की वृद्धि
होना है मन ही यों तहाँ हृष्टी है ध्याताध्याता विविध होना है वही। तपस
करने है अर्थात् चातुर्मास स्थापन करत है।

अध्यात्म आत्मक वन भी भूह वागों में निवृत्त हो वही वृद्ध करत में आकर
निवास करते हैं। यों आप परम्परा है।

धर्मोत्थेन यत्न कर आह्वारानि चातुर्मास दान दत्त पञ्च-गाठनादि कर
ज्ञान विषय समय धारण कर यथाशक्ति आत्मसाधना करत है। परन्तु यत्मा
पावका की यह आत्म साधना आत्मसाधना प्रायः शिथिल हो गई है और उत्तरोत्तर
हीनी पड़ती जा रही है। इसका कारण क्या हो सक्ता है ? साधन का चातुर्मास
तुल्या की वृद्धि प्रमाण का प्राप्ति और परिणत सत्य की साक्षात् अभिज्ञा। यह
शास्त्र मुक्ता के प्रति अत्यन्त परमात्मनः श्रद्धा का अभाव है।

वर्तमान युग माना का उत्कर्ष काव है। इसमें परिग्रहार्थक इतनी अभिज्ञ
हो गई है कि सत्ता दिखाइना का जीवन की विचार नहीं करता। अर्थात् भागाव
भोग विनाश पाप में ही आकाश मरत कबा हुआ है। पर क्या इसमें आत्मस्वरूप
का पाव नहीं होता ? अवश्य ही होता है। योग योग का योग बधना। साधन
तुल्या का बीज है बीज स अकुर और अकुर में पीया और फिर पुन पुन पुन
होना स्वाभाविक और अनिवार्य ही है। यही आनुमता है आनुमता के राज्य में
सत्य नहीं मिल सकता। युग का अभाव ही ऐसा है। यही कारण है कि वर्तमान
मानव जाति का हल-चल में अज्ञान मानव बूझा गिरा हुआ रहा है। मानवता उगरी
श्राव में गिरावट ली है। आत्मा लक्ष्य रही है अज्ञान रही है आधुन हो रही है।
उत्तरोत्तर नैतिक स्तर पतित होना जा रहा है। आध्यात्मिक धर्म उजड़ा जा रहा है।
आध्यात्मिक जीवन में वर्तमान के स्थापन में पतन हो रहा है। राजगी के स्थान में
मुन्वी छा रही है। श्याम दान पूजा पाठ ध्यान स्थापना सन्तकार शिष्टाचार
विनयाचार का स्थान भोग भोग विनयेमा रेडिया टेलीविजन पपर बनव
आनिशवासी स्वच्छन्दता और नैतिकता के लक्ष्य-मा विधा है। अनुशासन तो पीछे
कच्चे रंग की भाँति उड़ गया है। स्थानि पूजा प्रतिष्ठा का झूठा प्रतीक वर्पारानीन
सत्ता की भाँति चारा मार छा गया है जिनके बीच जीवन के सत्य सिद्धान्त छपे
वे उगरीन स मन्त्र-मन्त्र भुगि-से दुष्टिगत हो रहे हैं।

जो हा यदि हम आज की जाग्रत हो जायें। अपने प्राचीन सिद्धान्तों का
अपनार्ये। छाद्यु भोगम में आवे। चातुर्मास के न सुनहले निवा में धर्मोत्थेन पुष्पा
जन में सलग्न हो जायें भगवद्भक्ति में लीन हो जायें तो हमारा कल्याण दूर नहीं।
पाप का मूल लोभ है और लोभ का प्रतिफल है परिग्रह का सत्य। परिग्रह क्या है ?
मूर्च्छा बहाली स्व-स्वर्ग की अनभिज्ञता, विषय लक्ष्यता। मूर्च्छा माह कम का
प्रमाण है। माहनीय आत्मसाधन का योग्यता माधन है। विषय-व्याप्य का प्राण

बाई अन्य है मैं है मयया उसम भिन्न । मज्जन एक रूप रहने चाहा । अनन्त काल तक अपने में व्याप्त फिर निरागा मन्त्राबहार । बस जा शतना हो गया तो सब कुछ हुआ गया । यही है शुद्ध बुद्ध परमात्म दशा । हे भान साक्षा ! ममत्व और मा एव स्वभाव का बग ठहर जा उगी में अनादि भूत स्वयम्भव छूट जायेगी ।

आत्मा स्वय आत्मा की भूल से बचनबद्ध हुआ है । स्वय जब पुरुषाय करेगा तो स्वय ही बचनमुक्त होगा । आज तक यह बन्धन-मुक्त का रहस्य त्रिदिन ही नहीं था फिर भना पुरुषाय कस हुआ ? कहाँ होता ? कब हुआ ? भना अनात दशा म प्रयत्नशील नहीं हुआ तो नहीं नहीं विन्तु अब ता जाग्रत हुए हो । जगाया है जिन बाजो ने प्रेरणा दी है जिनेन्द्र प्रभु न और आन्ध्र उपस्थित किया है श्री बीनराम निग्रह गुह्यों ने । हे भन्ध साक्षा ! अब सावधान हो फकत छोड़ो । अनादि मिथ्यात्व का बमन करो अविरति के विरक्ति दृढ़ करो सवेग जगाया बराग्य बढ़ाया प्रमाणा का परिहार कटा साधना पथ जिनका बठार है उतना ही सुकुमार बोधन भी । जिनका बाह्य म दुःख है उससे अनन्तगुण अन्तरम म गुण भी । क्या श्री फल ऊपर से बठोर और अन्तर से फुल्ला मधुर बोधन नहीं होना ? होता ही है । जो बाध में सुखोपम मणिकरन हाता है वह अन्तर से बठार रहना है यथा वर-वन्दी पन । आरमान ऐसा ही है अनाद्या अनुपम और अग्नीय । आत्मा स्वय सिद्ध है अनादि है परन्तु आज तक अशुद्ध ही बना हुआ है । शुद्ध रूप कभी देखा नहीं असली स्वय साधने आरा नहीं फिर भना उतना रस कसे मिले ? वह रसास्वा बहु कब कम मिलना ? अब आश्रम में प्रथम उम ममप्रा दृष्टि में जगाया थड़ा म बठाया आपरध म उनारो दिया म माओ राग द्वेष विमोहा का हुआ स्व स्वभाव का अपनाया । बस फिर क्शा जाने गगना अमृत पान करन पर फिर भना बाई लारा जल पान करेगा ? क्या नहीं । जिस एक बार स्व स्वरूप का भान हुआ गया कि फिर वह अन्यत्र विमोह में क्या जावेगा ? स्वभाव अपनी वस्तु है निज पन्थ म राग पर परिणति का हाथ है । विमोह विचार है विचार पर निमित्त हाथ है जो पर जन्म है वे विनश्वर है वाग स्थायी हैं । अस्तु विमोहो के मिटान म बाई विलम्ब नहीं हाता । मात्र उपाय करने की आवश्यकता है उपाय प्रयत्न है यही पुरुषाय है । विचारणीय यह है कि उपाय कसा होया ? क्योंकि प्रपन्न सत् और अपत् सत् प्रकार क होठ हैं । एक बातर भी पुरुषाय करेगा है स्वय पन्थ साता है विन्तु उनमे कई गुन ताड कर कँच देता है वृत्तों को उपाय कर ऊपर बना देता है साव-सान पन पन दखते ही उगने मुह म पानी भर आता है फिर क्या ? भूल हो न हा साय-न साय विन्तु गब ही को तोड़-ताड कर अमीन म बिछा देता है । यह महा मज्झुर धातक प्रयत्न है मार्जारवृष्ट्यायी है । मार्जार का स्वभाव है साय न लारे विन्तु मुड़वाय तो जम्बर ही । बरा नद पुराण है ? नहीं । यह तो शक्ति का पुराणोप है आत्म स्वरूप का पान है । निज स्वभाव के विपरीत है । आत्म स्वरूप प्रथमम म जा ममध

है। प्रथम जटिल विचार का पुनश्चरण करना होगा। अर्थात् पाप रूप प्रगाढ़ कर्मों का उच्छेद करना होगा। याहूँ तां सब कर्मों में जटिल है शक्ति और स्वभाव दोनों से ही बनवान है यह शुभाशुभ में देखा जाय तो अशुभाश ही इगर्ज नजर आत है अस्तु प्रथम इसका उच्छेद आवश्यक है साथ ही अन्य कर्मों के पाप बितान का उद्धाना भी परमावश्यक है मत्सर में पाप का परित्याग अशुभाशयाय का उच्छेद सर्वोपरित्याग है। प्रयत्नपूर्वक इसका परिहार नवशक्ति से करना आवश्यक है। अतः इसका त्याग करने पर ग्रहण क्या करना ? यह स्वाभाविक प्रश्न उठ खड़ा होता है बग उत्तर में यही कि पुण्य संचय करना। सावधानी से उस सम्झाना प्रयत्न पूर्वक ग्रहण करना। विषय कथाओं को काम भोग वध की कथाओं को ठगन के लिए यह परमावश्यक है। न कि पुण्य से उपाजित कर्मों द्वारा विषय तृष्णा की वृद्धि करना। भोगों के साम्राज्य से ऊपर उठकर निज के साम्राज्य में पहुँचने के लिए यह करना है। पाप का छोड़ो सावधान होकर पुण्य प्रयत्न से पुण्य का संचय करो सत्परा स प्रमा और कपाय का परित्याग कर। उनसे उत्पन्न बलात् प्राप्त भोगों को निरस्तुव हाँकर और भोग के छोड़ दो जहाँ के तहाँ सचम को धारकर धानस तन मिला उबली रसा करा उससे तन करने के लिए ध्यान और स्वाध्याय करने के लिए। शरीर के सम्पर्क से शुद्ध भी अशुद्ध हो जाय है निरस्तुव शतनय द्वारा इनी अपवित्रता के मध्य छपा शुद्धात्म प्रकट आता है। यह अनौचित्य प्रक्रिया पुरुषार्थ साध्य है। तुम स्वयं करने में समर्थ हो। यथाय त्रिया-आचरण करने से ही उपलब्धि होती है। यही उत्तम सार है। सोना पाटा है अशुद्ध है बिजारी है जब से ? अनादि से। यही वसा है आत्मा का। क्या मुक्ति का शुद्ध नहीं बनाया जाता बनना ही है शुद्ध। किस प्रकार ? उचित प्रक्रिया करने पर। बस फिर क्या आत्मा का शासन नहीं हो सक्त। अवश्य ही सकता है तन्मूर्त उचित योग्य प्रक्रिया करने पर।

हम हर जगह मोड़ लगाते हैं। कपडा की तरह करना हूँ तो मोड़ लगाते हैं। गाय भस बाघें खीनें तो भी मोड़ों की भाँट कम नहीं हाना। आदमा स्त्री बाल बच्चों को भी मोड़त है। अपने अनुकूल या प्रतिकूल। मोड़ते तो अवश्य ॥ चाहें वे मुझे या न मुझे। अरे माई मोन्ता मरने नहा है। न जाने कब किस माँड में जीवन अपने सही रूप में आ जाय यह कौन समझ सकता है। अनेक बड़ माँड भरे पड़े हैं जीवन में। उदासी पीछा छूटना क्या कोई सरल है ? अरे भवा धारे धीरे अम्मास करते करते जीवन एक सभाग की सरत डगर पर आ सकता है। आत्मा धक्का चुका है बहुत कुछ। नवीन माग दम रहा है। जब बिघर में मौवा बस जाय और दम माइन पर आ जाय। यह है जीवन की कला। कलाकार बिना प्रकार अपने हाथ की सफाई में जीवन के सार क्लेशों में मुक्त अविन करता है। उनी तरह अपने आपको भी स्वच्छ शुद्ध और निर्मल बनाकर आत्म मोधना करता है। आत्मा ही आत्मा की शुद्धि करने में समर्थ है। आत्मा का ज्ञान आत्मा को ही होता समर्थ है अन्य को नहीं। आत्मा जानी है नहा ज्ञानमय ही है। ज्ञान में अनिरस्त कुछ नहीं है। जाना

1944

हं साधा । आपका स्वप्न अनुभव है । आपकी शक्ति अविनाश है । आपका धर्म निराश्रय है । आपका महिमा सर्वोपरि है । आपका प्रभुत्व आप ही के समान है । अरे आप तो आप ही हैं । आपका छोड़ अर्थ का कुछ है वह आपने भिन्न है । सबका निपटारा है । पूणत उन्मत्त है । आप अपने में आर प्रवेश करा बाधना भूमिका का टटोकर देता वहाँ सेजमाव भी पर का आवाग नहा है । आप अपने में आजा पर स्वयं छूट जायेगा । तौबिकव्यवहार को प्रथम साधना । पुन पारलौकिक जीवन में पहुँचकर स्थिर हो जाना । बिना बाह्य शुद्धि के अन्तरङ्ग शुद्धि नहीं हो सकती । बाह्य परिशासनाय जीवन में शुभाचरण और नमन बढ़ाकर शुद्धाचार में उतरे । सत्य अहिंसा मर्त्य ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह भावा को आश्रित बाह्य शुद्धि का उपाय है । बाह्य शुद्धि हान पर ही अन्तरङ्ग शुद्धि सम्भव है । कर्माय रहित दशा में भी हाने वाली शुद्धि आत्मा का स्वभाव नहीं क्योंकि वह तो पौष्टिक है । उन आत्मा का क्या सम्बन्ध ? वह तो मात्र निमित्त है । निमित्त कभी भी कार्य का परिणाम नहीं करता न कर ही सकता है । सत्ता ही उपासन कारण ही कार्य का स्वयं परिणाम होता है । यही है जीवन का या आवका निज स्वभाव कि वह स्वयं कार्य रूप परिणाम । किन्तु यहाँ तो कयायाध्यवसाय के अभाव होने पर याय प्रवृत्ति समन्वित जो कुछ शुद्धता है वह पुष्कल का है क्योंकि कम-नोकम रूप द्रव्य ही शुद्ध रूप ही आत्मा पर नाच्छादिन या उम हटाया या उमरा बोधन किया अशुभ स शुभ और शुभ स शुद्ध । य दशाएँ पुष्कल को है ता शुभ और शुद्ध पुष्कल हो पाएँ हैं । आत्मा का उन्नय क्या सम्बन्ध । आत्मा तो मूल में शुद्ध ही है । भला शुद्ध का शुद्ध किया जाय ? यह तो निष्पक्षण हो हुआ । फिर प्रश्न हो सनता है कि क्या एका ही है ता फिर आत्मा शरीर करी निरुद्ध में क्यों ताता बना बैठा है ? कल्प में वह ताता हा है ताता निरुद्ध में है । निरुद्ध ने ताता का बन्धन में शक्त रहता है यह भी गत्य है किन्तु निरुद्ध निरुद्ध है और तोता तोता है । ताता निरुद्ध में रहकर निरुद्ध का तनिक भा, कुछ भी विचार नही कर सनता न कर ही सकता है । उन्नी प्रचार निरुद्ध ने ताता का बन्धन किया किन्तु ता भी निरुद्ध ताता का स्वरूप द्रव्य शुभ कुछ भी नही बिगाड़ गया । यत्न एवं विनय का भा है । क्या रूप हाकर भी प्रलय में एक दुगर का कुछ भी बिगाड़ नही कर सनता ।

विनय मति विरक्त भीषण जगत्त मर्त्य का हाथवर में टाँपने में समर्थ है । जीवन में अनन्त अप्रतिन यत्नाएँ हो जाया करता है । उन्नय प्रभावित अनेक भाव बाध बना बुराई कर सनता है । उन्नय मयन शुभ जाते हैं । किन्तु और मर्त्य की परम प्रेरणाता जगत्तमा धमनिष्ठ उन्नय भुवाकर उन्नय का अति बढ़ा देन है क्योंकि उन्नय पार कर अनन । य भी निरुद्ध का मन है । इस बाध में वही मर्त्य हात है जो ब्रह्मचर्य में रहता है । विनय ब्रह्मचर्य का बन्धन है और यो ब्रह्मचर्य का प्रभाव में अनन शुद्ध स्वप्न का लोकी भाव करता है । भी विरक्त का

माहात्म्य भा ना १८ ० ओं तो और ८४ ०००० उत्तर गुणा का चरम सीमा व
 निष्ट पट्टेन में है। यहाँ है उनका मन्त्रिण्य आनन्द चन चनय स्वभाव की ज्ञान
 व्यक्ति। हे आनन्द और समस्त मित्रों का परिवारा कर पति एक माप्रगीत का
 ना अचन अन्न निमन बनान का प्रयास कर लिया तो सबकर्याण प्राप्त हो सकत
 है। मन्त्रिण्य निष्ठ हो जायेगी। सुम्हारा सर्वोपरि राम इसी ब्रह्मण का कमी व
 कारण है। त्रिनदी परिवारा शुद्ध होगा उनी ही राममुक्ति होनी जायगा। अन्तरग
 शुद्धि करा। परिवारा शुद्धि पर दृष्टि नयाओ। रजा विचार का मूल कारण मना
 विचार है। मना की शुद्धि से रजा शुद्धि होना है। आत्मा का मन्त्रय उसी में है
 आत्मा शरीर में है। कौनो जन्म में है जब कब का समान है क्या और कब
 एक कल्पाना और कब का पत्र सबका भिन्न भिन्न हाने हुए भी एक दूसरे का आश्रय
 है। कदा व बिना का विनया और कल्पाना क्या कहनायेगा उनका फल बीन
 भायेगा। अस्तु प्रमुख पत्र बिन्दु है कनी-आत्मा। यहाँ आता है शरीर बाह्यगार में
 पत्र आत्मतत्त्व का। आत्मा विनय रता है। स्वभाव से नही परभाव से। पर
 निमित्त से। पर सयोग से। एक विनयन शक्ति है जब की—आत्मव की। आत्मव
 आव निवद है। इनका स्वभावबद्ध धातव है जनुपादप क समान। य आत्मव अधूरा
 है। यथा मृगी रागा का वय। मृगा बाल का कभी अनिवद आता है और कभी
 अतिमन्त्र। तन्मूर्क आत्मव है। य अनित्य है शीत दाह उबर का समान। आत्मव
 अशरण भूत है काम वय उत्पन्न होत ही शीतकरण जिस प्रकार अशरण है उसी
 प्रकार उन्म प्राप्त आत्मव का शरण से बीन बचा सकता है? कोई नही। नित्य
 आनुगता का मूल है अन दुख स्वल्प हो है। इनका (आत्मव) परिणाम पत्र आनुना
 त्याग हाने से दुखरूप फल के दायक है। आत्मव का उत्पत्ति का हनु बृद्ध का कारण
 शिवान का निमित्त सभी आत्म स्वभाव से विपरीत है। आत्मा अधूरा है नित्य है
 सकारण है दुख है और सुख का कारण है क्वावि पत्र य चिमय निजान पत्र स्वल्प
 निराकुल है। अस्तु आत्मा और आत्मव का कोई सम्बन्ध नही जाना का स्वभाव
 शक्या भिन्न है। जाना ही विपरीत स्वभाव है फिर भला उनका सम्बन्ध हो क्या है?
 कुछ नही। ईश्वरमन्त्र तू जानी है जानागार है ज्ञान पत्र है—बारा भार ज्ञान रूप
 ही है। ज्ञान ही आत्मा का स्वभाव है यह एकात्म नही। आत्मा में अनन्त वय है
 बिन्दु ये समस्त गुण एक ज्ञान गुण का द्वारा हो उच्चातिन प्रकाशित होत है। ज्ञान
 बिना इहें बीन जानावे। अस्तु मही मध्य रखकर आधायो न ज्ञान गुण का प्राप्ताव
 दिया है। जानाजिन सभा क्रियाएँ कर्तव्य होना है। अस्तुतः सम्पन्नानुसार मन्त्र
 ज्ञान और सम्पकारित या जाना हो महत्वपूष है। जाना का एकीकरण ही तो
 आत्मा है आत्मा कोई अर्थ यन्तु नही है। एतन्वामक हू आत्मा है य गुण मानन
 हो रह है। चरणात्मक भाषि क्या जान रग दिखन से जान रूप होत है नही।
 उन रजा की कोई चाह कि प्रथम दपव करने से कभी नही हो सकते।

बाना शुभ का साने वाला निश्चिन्न रहने वाला। जिस क्षण हम आत्म तत्व का विचार
करते हैं तो आत्मा भी एक सर्वोत्तम मंगल द्रव्य समझ आता है। जो व्यक्ति आत्मा
पर चिपटी न्यत्र भाव ना कम पक्ष का प्रशानित कर लेता है वह उनका ही स्वच्छ
॥ जाना है और माणिक्य द्रव्य बन जाता ॥। तपस्वी की आत्मा तपकर निमल हो
जाती है वह मंगलमय समझी जाती है। प्रस्थान काल में स्वप्न काल में शुभ
कार्यारम्भ समय में जगत्का दर्शन पवित्र और विघ्न निवारक समझा जाता है। सफट
भावन उसका नाम मज्ञा गिनो जाता है। प्रत्येक शुभ कार्य में उसका स्मरण किया
जाता है। देखा जाता है अज्ञा पूर्वक स्मृत नाम गव्या सफट भावन में समर्थ होना
है। किन्तु धनित्य माय्य है हम मंगलवार का जीवन में वस्तुतः मानव जीवन की
प्रसन्नता का ध्यान है आनन्द का माना प्रतीक है। इसी कारण यह जिन मंगल
नाम से प्रसिद्ध हुआ हुआ। अतः। किन्तु वाही ही जाना है बुध। बुध ज्ञान अवस्था
का वाचक है। ज्ञान का प्रतीक है। यद्यपि जीव माय में ज्ञान रहता है। ज्ञान
रहित पदार्थ अज्ञ होना है। अज्ञ आत्मा से गव्या विघ्न है। ज्ञान आत्मा का गुण है।
बुध से बोधि या बोधि से बुध मान सकते हैं। जो कि ज्ञान रत्नत्रय का वाचक है
रत्नत्रय आत्मा है। अतः बुध ज्ञान सीधा आत्मा से टकराता है। अत्यन्त धनित्य
सम्बन्ध है हमका आत्मा से। विचाररूप आदि बुद्धि बद्ध कायों का प्रारम्भ हम
जिन करना अष्ट गिना जाता है। मानिक्य ज्ञान का यह ध्यान समझा जाता है।
हम जिन किया कार्य स्थिर माना जाता है। बुध यह जिनका बलवान होना है ज्ञान
सीध बुद्धि उच्च विचारक होना है। हम रत्न में भी बुद्धि का स्थान ऊँचा रहा ना
वह व्यक्ति प्रतिभा सम्पन्न होना है। सामुक्ति ज्ञान में बुध ज्ञान का विशेष बलवान
बतलाया गया है। ऐसा ज्ञान मानव जीवन से हा अनुप्राप्त है। अन्यथा में
हमका कोई महत्व नहीं। जीवन धन में हमका महत्व व्याप्त है। दशाभा में भी
अवलम्ब दशाष्ट होती है। जिन धन में ज्ञान बढ़कर निबुद्धि हो जाती है।
ज्ञान परवाना जाना है मुक्तार। यह भी यथा नाम तथा बुध है। बुध का अर्थ है
भावी और बुध ध्यान है दोष का पवान बाना का। बुध सामान्य में बने जन को
बहा जाता है। गिना बुध दी त बुध पास बुध जनक गद आता बुध भावि। य
सभी सम्बन्ध शरीर के हैं। शरीर का उपयोग आत्मा से है। आत्मा विरहित मरार
का कोई सम्बन्ध नहीं महत्व नहीं बुध धन नहीं। अतः बुध ज्ञान मानव जीवन का
उपहार है। यह बृहस्पति का धनक है। बृहस्पति है विद्या का अधिपति ज्ञान का
प्रतीक प्रतिभा का चिह्न। यही कारण है लोक में बृहस्पति की विशेष मान्यता पूजा
प्रतिष्ठा और उत्सव होता है। बुधवार को बरी पूजा पाठ पूजा अक्षरारम्भ पाठनाम
प्रारम्भ भावि दीर्घ विद्या के कार्यों का आरम्भ करते हैं। सामुक्ति ज्ञान बुध
स्था। क मन्त्र और पुण्ड्रिक धन के अर्थ का यथावत धारण करना है। प्रभा
का रिकाम ५६ दिन माना जाता है। आत्म विद्या का भी यह प्रतीक है। धर्म

कार कर देता है वर बुद्धि पराजय को दुख वह मानव का धर्म और धा विहीन कर देता है। इस समय जो अपने ज्ञान का अनुपयोग करने हैं व अग्राह्य धर्म का सहारा पकड़ने हैं और अज्ञानी भाने बेचारे जैसा वह मन मिलने हैं। जनिवार का विद्यालय भी अष्टकान ही सप्त है। इस दिन स्वभाव में मनहूँगी-गी छा जाती है। यह दिन स्थिर कायों का साधक शुभ समय माना जाता है जैसे नवीन गृह प्रवेश नूतन व्यापारारम्भ इत्यादि। कुछ कायों में अनुभूत माना जाता है। नूतन वस्त्रादि धारण और विप्रारम्भ चिकित्सा निरीक्षण आदि कार्य यत्रिय मान जात है। सामुद्रिक शास्त्र में हृन्मेरोरा प्रकरण में जनि रेखा की स्पष्टता दुःख चारित्र्य की दानक मानी गई है। अतः जनिवार का जीवन व विभिन्न क्षणों में विविध प्रकार का महत्त्व वर्णित है।

अब आता है रविवार। इस सुववार भी कहा जाता है। यह सुव नक्षत्र का भी प्रतीक है। रवि रश्मियाँ १२ हजार हैं जिनके सत्र में सम्पूर्ण भूमण्डल आकाशि होता है। इस दिन व महत्त्व और पापनश में जीवन का अज्ञान धुँवर धर्मोद्यान होता है। यह दिन धरणा पदमावली संहिता प्राञ्जनाथ भगवान का धन निवृत्त कहलाता है। यह गर्व भुज्ज का है। इस दिन मकर का स्थान करते हैं। जैनाचार्यों में इस मौखिक सत्यतियों का दाना ना करता हा है साथ ही आत्मबुद्धि का भी सत्य सत्य साधन कहा है। हिन्दू इस सुव महाराज का वर कहकर मान्यता दत्त है। इस दिन अधिकांश कायों में अवकाश रहता है। वार्तापत्र व प्राय छोटियाँ रहती हैं स्कूल विद्यालय भी प्राय बन्द रहते हैं। बयोंन सप्ताह में एक दिन निर्विकल्प होकर शास्त्र वित्त निज स्वरूप का विचार करें। अपने का गमानें। स्व स्वरूप का विचार करें। परन्तु वनमान में विपरीतता दुष्टिगत होती है। प्राय कायवर्त्ता जन निवृत्त हा इस स्वर्णिम दिवस का अपने का पान व स्थान में ज्ञान में व्यस्ता कर दत्त है। यथा—पाँच महकित साठ बीस मिनता चाय पाटियाँ टहनता विविध भाव शिष्य विषय मेवन आदि तसारयद्ध व कायों में मान्य कर जानत है। यह महा अज्ञानता का प्रतीक है। अपने का ठगन का प्रतीक है। ह आत्मन् । यू विचारण है।

आद्योपान्त सूत्रम इष्टि न निरीक्षण कर। विचार कर दत्त भला एवं भा समय बना तेर जीवन उत्थान से श्रुत है क्या? प्रतिलक्षण हम उत्थान का सदेश द रहा है। सत्य ता यह है कि प्रकृति का अनु-अनु स्व स्वरूप प्रकाशक है। चतुर्विध आत्मोत्थान की गहनार्थ कर रही है। पक्षीगण बसरा न तसार की असारता का पाठ पढ़ात है। एवम् भावना निश्चाले हैं। परिवार भुटम्ब की समता छटात है। दिन भर अथक परिश्रम कर चम्पा भुगकर अनुभू अन्तराय व बन्ध से सावधान करने हैं। मिथ्यारी हाथ पहार दान नहीं देने के फल का सूचन करता है। अहिराज धनताति व पत्र का प्रणित कर रण है। किन्तु अज्ञाना इन सब का देखकर भी उनकी विशेषता का नहीं समझ पाते। विध्यात्व

तो पुनः जायेगा अब नहीं तो वृक्ष मूल ही जायेगा फिर बननेगा ही क्या ? पुष्प तो पुष्प ही होगा—गर्भाशय पुष्प वह पुष्प जिनमें बहार ही पुष्प ही ३ र६ फिर क्या होगा वह बहना यही सीमा यही बर है, आ। आओ दूसरा दम मिलेगा पहुँच उग भजान प्रदेस में इस बन्ध बड़ेगा यथाशक्ति रथ तीव्र होगा मुझोंवांग पड़ावा उम पर पहुँचयेसी निश्चिन्त घुमरु बनेंवे जिन्ह स्वयं ही स्वयं म स्वयं स्व गुनगा-जानगा और भेगगा यही होगा गुनगा । बस फिर क्या मन्ते रहा देख रहा जानते रहा अभीय नाम तक अनन्त सीमा पवन्त ।

आत्मा जिसे विहीन है निराकार है अकाल और अमर है । पुद्गल भी स्वयं जड़ है अचरन मूर्तिव और काल है । यह भी कुछ बर रहता नहीं । फिर कौन बर्ता घर्ता है ? हा। स्पष्ट उत्तर है कि मयानी आत्मा हा बर्ता घर्ता है । जो हा मूल मरा स्वयं का स्व विद्ध रूप धारण करता है पाता है । उग पाने के लिए अपने निज स्वरूप का जानना परमावश्यक है । यह निज प्रचार भवगत है ? अज्ञात म जमाओ में निमग्न, शुद्ध एक का है । परन्तु यह ही प्रकार है बाह्य मूर्तिव स्थूल पदार्थ आरम्भ परिष्कृत और अन्तरङ्ग है गम-य माह बाध मान लाभ पञ्चवर्ण्य शिष्य व्यापार म अहं आत्मा । य भी पौरुषात्मा कर्तो है किन्तु मूल है । इन मूल स्थूल भावों-आत्मा व मध्य म ही आत्मा उन्नता हुआ है । इन उन्नत की धर्मियाँ मनीन नहीं हैं अनि प्राधान है दुरत है कल्पित है बुरह है । इनको समझना ही दुःख है । इनको जानना समझना अनि कल्पित है । आत्मन् तू जान का समान । गुलस्ता । क्या मुनमाना है ? उन्नत म उन्नत यही है स्वयं उम उन्नती रहने के भजन का निकाल ले पत्त पड़ा रह जायगा । कौन पूरगा उग ? आह ही मिट जायेगा । साराण यह है कि स्वयं का स्वयं ममान म । अपने स्वरूप का विचार कर अपने को देख जान और उगी म स्मरण कर । आह स्वयं अपने म रहोग पर आयेगा ही नहीं । बस ।

अन शासन की आधारशिला स्वाज्ञा है । अनेकान्त की नींव पर जिन शासन का महत्त्व बना है । उसही आधारशिला की नींव पर प्रमाण प्रणाली है । मया की गुतिधर्मों के मन्त्र मयान व मन्त्र व्यवहार-अवहूत हात है । इन व्यावहारिक नियमों म तत्त्व विवेचन म वस्तु स्वरूप प्रतिपादन म सर्वत्र अनेकान्त अपने बल पर इन विरोधों का मन्त्र एक मुख्यवर्ण्य व्यवस्था निर्धारित करता है । समस्त उल्लङ्घन मनायाय स्वयमेव गुलमती ही जानी है विद्या अस्त हो जाते हैं शयदा को अवकाश नहीं रहता । आत्म-परमात्मा जीव-वृत्तन और जड़ के सबन्ध पार्य अपने-अपने म समाहृत हो जाते हैं । कहा भी किसी व माघ विरोध नहीं होता । वस्तुतः एक ही वस्तु म रहने बाद अनेक विरोधों गुण व शक्तियों जिनके द्वारा निर्विघ्न स्थान पा सें उस ही अनेकान्त कहते हैं ।

परिचित वस्तु के प्रति विचारण होता है । अपरिचित के प्रति अनुराग । यह है स्वाभाविक प्रवृत्ति मनुष्य की । प्रायः यही व्यवहार म दखा जाता है । पर्याय म

विपत्ति अन्तर्गत मय हो जायगी। वही ! जो वागवत बनी सुता को जब गलपों
 का नाम तब का प्रयोग यन्त्रि तहो उता मता तो भावना का जन्म हो रहा होगा।
 सवार ल निस्वगत हूँ सीमा। ५ भा रत्ना रा तहो बा मता मो फिर कुछ नाम
 नहीं हूँ सता। आन और सब वह मो पुराना ही बरत रहा। बरा बरा विपत्ति कुछ
 नहीं। भक्त खोजन पता और पाकर मो विपत्ति फिर बरा विपत्ति है ? हे भक्तान् मायापान
 हो ! शाप माये पर आ चुका व्यापार वृद्धिगत बर। व्यापार बड़ेगा तो नाम होगा।
 पता टांग साकर कोई बराबरी नहीं हूँ मता ५ बरा ? मकर गीतमर बरो।
 नाम बटाया। यही जीवन है।

व्यावहारिक जीवन एक अपनी बरा है जो निश्चय के साथ-साथ अपनी है
 और वह एक बरा है जहाँ तक जीवितता परना ५। जिस क्षण भाग्य विपत्ति हो
 जाता है। निश्चित अवस्था का प्रालय होना है टांग जमी समय व्यावहारिक नय उगाता
 साथ छोड़ देता है। कुछ समय विपत्तिगत बरा बरत हाता है और जहाँ मित्र बरा
 हुई कि पर भी एक बरा हो जाता है। यह धूमिल ही गवाही बहनाही है।
 यहाँ नवीं का व्यापार एक जाता है। इस विपत्ति में मय प्रमाण निष्ठापति बनेई
 विपत्ति नहीं रहता। यह व्यावहारिक का जन्म है। आत्म स्वभाव की उदात्ति का प्रति
 पत्ति है। स्व स्वभाव की जायति है। इसी का पान का प्रयोग करना मायापान का
 शार है। पर्याप्त में धूमिल जीव अन्ति पान मे बटकर रहता है। तो भी शाप अन्त
 नहीं पाना। इस ऊपर उठ तो ही बस्याप का भागी बने। पर्याप्त बुद्धि पादो।
 श्रवण बरा। पर्याप्त उगाता है। जात है। बने है। रिटारटि है। भयकर भूत
 है। भयन है मुक्ति माय म वि पु ता। भी इनर बीच म मुखर बिना वह मुक्ति रपात
 मित्र भी तो नहीं मता। यहाँ तक पहुँचने का लिए इन्ही साठ अवस्था को बरत उगा
 बर माये बनाना हाता। अपनी पगडण्डी स्वयं अपने आप बराता होगा उस पर
 सावधानी से गमन करना हाता माय का रोड़-बाधाएँ हटाना होगा सभी गमना
 रपात पर जाया जा मता है। ररा की शक्ति भाति है। अपना बरा स्वयं अपने
 से अपने म आप बरा और स्वयं ही उगाता पता भागी। यही तो बरत निष्ठापति है।
 कम की शक्ति आत्मशक्ति का गमाव ही है बरतता है सभी शा पा। का संयोग
 मतापि से बरा भा जाता है। अन्तर विपत्ति उगाता ही है वि बरत जड़ है उगाती शक्ति
 भी जड़ है जड़ स्वयं का माय-व्यभिचार यहाँ रावता। आत्मता जातिमेता है। वह
 अपना इस पताय बर बरभाव शक्ति हाता र पर राभी का देन और जात रावता
 है। हे भक्तान् निज स्वभाव का नाम बर, जान बर, समस्त जान बरा तब बरत शाप
 निज बरत सुमे प्रालय हाता। एक मायाय मुट्टी में हीरा बरा म
 देर हाता म मुट्टी बराबरा और बरत और स्वयं भूत
 मायिक न आवाज लगाई जाय म। एकबका का
 है जी ? राता। मता मता मता उगा ५ ११

अहंकार क्या है ? यह मानसिक अस्तित्वमान का एक विपरिणामन है। वित्त व्ययता का विकार है। मन धाम की सनातन है। हम जब अपने को बड़ा विचारते हैं महान् बल्यना करते हैं उस समय यह भाव अस्ति हमारी अस्तिशक्ति की पावर से ऊपर उठ जाता है तो अहंकार का रूप धारण कर लेता है। उन्नति भाव प्रगतिशील है उत्थान की भावना सराहनीय है विकासामुक्त होना बल्यप्रद है आत्मविकास की भावना उत्तम व सती पुरुषार्थ की धारक है किन्तु इन विचारों का अतिरेक होने पर वे विपरीत रूप धारण कर लेते हैं और वे ही भाव अहंकार का रूप धारण कर लेते हैं वन यही से जीव का उत्थान के स्थान पर पतन प्रारम्भ हो जाता है। उगका यश विद्या बभूव प्रभुत्व बुद्धि आदि हागे मुख हो जाता है। नतिव स्तर निम्नता की ओर जाने लगता है। आध्यात्म्य जीवन का सौरभ है। पराग हीन-पुष्प का महत्व ही क्या ? गंधहीन कुसुम क्या शोभा पाता है ? जीवन का परम नम्रता विनय है। विनय हीन की विद्या निरर्थक है। अहंकारी के गुणों का विकास तो दूर रहा उनका अभाव हो जाता है। मित्र मनु बन जाते हैं हिज्जी पातक हो जाते हैं सहयोगी ही उनका विनाश चाहते मरते हैं। हे आत्मन् अहंकार जीवन का भयंकर घन है इससे बचा ।

करना निरापद पद प्राप्ति करना है। आपत्तियों से डरो मत ।
मयभीन होना

→ खरा है। आप ही स्वयं अपने को
महान् कर जाओ डरा पाप से। मत
। है तो उससे अपने पुरुषार्थ को
निलाना ही तो बीरता है। अतः भय
का नाम डबाना है। नौन ऐसा मौ
। लगावेगा। मोह वश यदि कोई
होता है। हतोत्साह नहीं होना
। अत्रय होना है। आत्म
। नाना विनय को नहीं
उत्थान का विचार करना।
→ रहना। जो धारणा की
महान् व सभी नाते रखते
। आत्मा स्वयं अपने में गुण है

हो है। मैं मेरे डारा है।
। हो मे मैं ही है। अब क्या
है वह स्वरूप यही है कि मैं मैं

सोचकर तब जाओ छात्रों वाली को । अपना सामान जाने ही - हाँ पर बाद में
और दूसरी बातें जिस स्थान में जाती हैं वे फिर दे फिर कर बना ? कुछ नहीं ।
बिना क्या ? बहुत ही कुछ नहीं बन फिर क्या ? आन ही आन । जाने ही में आन ।
सब निरन्तर निरन्तर रहना ही है नीतिबोधन हो गया अब बड़ा ही क्या था ?
कुछ नहीं ।

चरित्र की परिष्कारणा कही अर्थ और अन्तर मध्य भी है। साधारण
 साधारण का नाम चरित्र है। साधारणता का अर्थ है सुमाधुर्य सुमाधुर्य
 चरित्र है और सुमाधुर्य सुमाधुर्य चरित्र है। अन्तर चरित्र साधारण है
 और साधारण चरित्र अन्तर है। यही है विभिन्न विभिन्न मध्यम। हेतु में हेतुम
 की निहित होती है। अन्तर साधारणता में अन्तर विभिन्न मध्यम है। अन्तर
 चरित्र अन्तर साधारण का सुमाधुर्य विज्ञान ही मध्यमता है। सुमाधुर्य रूप आत्मा
 जाना है और अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर
 है अन्तर अन्तर अन्तर का मध्यम विज्ञान हुआ ही मध्यमता है। सुमाधुर्य अन्तर
 अन्तर अन्तर अन्तर विज्ञान—विभिन्न मध्यम चरित्र है। अन्तर विज्ञान साधारण, अन्तर
 और चरित्र आत्मा को छाड़कर और कुछ अन्तर नहीं है। न आत्मा का छाड़कर अन्तर
 अन्तर है। यह है मध्यम विज्ञान। हे आत्मान् विज्ञान अन्तर का अन्तर अन्तर
 अनुभव कर उगी में अन्तर करा। अन्तर यही आत्मा अन्तर का अन्तर है। साधारण है।
 अन्तरमाधुर्य अन्तर यह अन्तर नहीं हो अन्तर। अन्तर अन्तर का अन्तर अन्तर।
 अन्तर अन्तर ही अन्तरता है।

आत्मसाधना का मूल ध्यान ज्ञानोपयोग है। ज्ञानोपयोग की मिद्धि के निमित्त भूभोपयोग भी परम अपेक्षित है। निमित्त से नमित्तक फलित होता है। यह सत्य है। सत्य शास्त्रन होता है। यह नियम भी अकाम्य है। आगम ब्रह्म है क्याकि हमारा बुद्धि अत्यन्त है। मिद्धात्त अकाट्य है क्याकि सबज्ञ प्रमाण है। वक्ता की प्रमाणता से वचन की प्रमाणता मिद्ध होती है। सबज्ञ कीतरागी ही हागा क्योंकि धानिदा कर्मों का नाश निर्विकल दशा में ही हो सकता है। कर्मभाव हूय गिना समानता नहीं आ सकती है। सबज्ञ ही हितापदेशी हाते हैं हितापदेशी सबप्रिय हाते में समर्थ हो सकता है। इन सबका मूल ध्यान आगमज्ञान से उत्पन्न भेद विज्ञान है। इन पर का जाना जात्यत्य और परत्यत्व विचार ही भेद विज्ञान है। वचनात्मक भेद विज्ञान तो मरतता में सबको हाता समर्थ है परन्तु भावात्मक भेद विज्ञान होना जति दुर्लभ है। एक बार भेद विज्ञान हो आय तो आन ससार धर्म भर में बट जाय स्व स्वरूपानुभव तत्क्षण हो जाय। पर परिणति का अभाव हाता ही स्वानुभव है स्व स्वरूप स्थिति है। निर्विकल्प रतनयन ही मिद्धि है। यही एकाग्रता कर्म सहार करने में भासा हाती है। कर्मानाज ही मूढ जात्यापनधि है—जिव है—पाश है।

अहंकार क्या है ? यह मानसिक असंतुलन का एक विपरिणाम है । ब्रह्म अज्ञान का विकार है । मन धाम भी मना है । हम जब अज्ञान का दह विधारते हैं महान् ब्रह्म बना करते हैं उस समय यह भाव यत्न हमारी मर्यादित शक्ति की पावर से ऊपर उठ जाता है ता अहंकार का रूप धारण कर लेता है । उग्रानि भाव प्रगमनीय है उत्थान की भावना सराहनीय है विवासा-मुक्त होना ब्रह्मज्ञान है आत्मविकास की भावना उत्तम ब्रह्मी पुरुषार्थ की धोतक है किन्तु इन विकारों का अनिरेक हो पड़ने विपरीत रूप धारण कर लेते हैं और ये ही भाव अहंकार का रूप धारण कर लेते हैं वन महीं में जीव का उत्थान के स्थान पर पतन प्रारम्भ हो जाता है । उग्रता यज्ञ विद्या वैभव प्रभुत्व बुद्धि आदि हातो-मुक्त हो जाता है । ननिव स्तर निम्नता की ओर जाने लगता है । आध्यात्मिक जीवन का गौरव है । परम होत-पुत्र का महत्त्व ही क्या ? ब्रह्महीन कुसुम क्या ओमा पाता है ? जीवन का परम मन्त्र विनय है । विनय हीन की विद्या निरर्थक है । अहंकारी के गुणों का विकास ना दूर रहा उनका अभाव हो जाता है । मिन मन बन जाते हैं हिनयी धान्य हो जाते हैं सहयोगी ही उग्रता विनाश चाहते लगते हैं । हे आत्मन् अहंकार जीवन का भयंकर घन है इसमें निरन्तर सावधान रहा ।

सधर्मी स मधर्मी करना निगमन वन प्राप्त करना है । आपतियों से दूरी मन । सामना करो । उनमें भयभीत होना अपने का क्षान्त है । आप ही स्वयं अपने को मिटाना है । अपतियाँ आती हैं जाने ।। मौन सग्रहण कर जाया दूरी पाप से । वन धारण करने में यत्न किसी प्रकार का विघ्न आता है तो उससे अपने पुण्याप का प्रतिपत्ति नहीं बनाना चाहिए । समय पर माहस निगमन ही ता कीरता है । वन भग्न करना बायला है माँ का दूध लगाना है । गिना का नाम डबाना है । पौन एमा माँ बाप होना जो अपने दूध की लजायेगा वन को दाग लगायेगा । मोह वन यत्न कोई नाटक करना है तो उमने स्वयं का वरुण नहीं करना चाहिए । हनास्ताह नहीं होना है । आत्मवच धारणा करो । आत्म शक्ति आत्म विश्वास नय्य हाता है । आत्म शक्ति व समग्र शरीर वन कुछ नहीं कर सकता । कयाय ननी तामा विनय को नहीं खाना स-दन्ता भीर खरना नहीं छाटना । निरन्तर अपने उत्थान का विचार करना । अपने निज स्वरूप का विचार करना । अपने मकल्यो में रह रहना । जो धारणा की है प्राण वन से उग्रता पानन करना । आत्मा अमर है । ससार के सभी भाते रिक्ते शरीर में सम्बन्धित है । आत्मा स क्या सगकार । आत्मा स्वयं अपने म गुण है रक्षित है ।

मैं हूँ । मैं मरा हूँ । मैं ही हूँ । मैं मुझमें हूँ । मैं मरे जा रहा हूँ । मैं मुझका ही हूँ । मैं मरे ही भिन्न हूँ । जो हूँ वही हूँ । हाँ मैं मैं ही हूँ । क्या ? याही क्या है ? कुछ है क्या ? कुछ नहीं । जा है वह सत्त्व नहीं

हो है । पर मैं नहीं । पर मरा नहीं । मैं पर का नहीं । पर का मैं करता नहीं । पर मुझका कुछ करता नहीं । पर के लिए मैं नहीं और मेरे लिए पर नहीं । पर मैं म मुझसे पर होता नहीं और पर से मैं होता नहीं । पर मैं मैं तू ही और मुझ पर नहीं । फिर क्या है ? पर पर नहीं है पर पर का ही पर है पर सही पर है पर के लिए ही पर है पर का ही पर है पर में ही पर है । हे आत्मन् तू इस निश्चय समझ परम ध्यान कर । इसी प्रतीति से तेरा स्व स्वरूप प्रकट होगा । जाग्रत होगा । तू अपने में आदेगा । आया पर का भेज जान दिया निज वस्तु को नहीं या मरना । माह वही है राजा है सर्वोपरि गृहकार है ससार का । इसकी शान्त न मिल इस पर दृष्टि सही तो समझ लो तुम्हारी अपनी शान्त मिल कर रहेगी । इसकी शान्त मिटाने में वस्तुवत् हुए तो बस तुम्हारा नश्वर बचन कर ही रहेगा । जाग्रत हो जाग्रत आपका आत्म । आत्मा क्या परमात्मा । आत्मा ही तो परमात्मा है यदि वस त वस और भाव वस से शून्य हो जाय । यही कर ।

हे बाहू का व्यापार बड़ा ही अलवेना है क्योंकि मन का स्वरूप ही दिता है । देखा एक आर सुन्दर नव-यौवन परम गुणवान प्राणाधार पुत्र शिरछ है जाने में धरा पर फिर निज से रहा है । बीड़ा बड़ा है पुत्र शोक की राह से मन व्यथित है । प्रतिशोध की भावना से भरा है । प्रतिकार का प्रबल जोश बढ़ा है । शोषाग्नि धधक रही है । दूसरी ओर परम सौन्दर्य के घाम सन्ताप रूप राशि पुत्र घातक नश्वर दुष्प्रियता हाता है । बाहरी बाहू क्या ही विविध मोह परिणमन है पुत्र विषाग की दुःख धारा उनके (सहमण) के संयोग की बल-बल तिनानिनी सरिता के प्रवाह में परिणत हो जाती है । अप्रिय शव को त्याग राम की शरण में प्रणय भिन्ना का अनुरोध जा करती है । यह है ससार । ससार का व्यापार स्वाध का सपना । विषय क्याय का उद्धार । अन्ध क्या ? तनिक और बड़ा आगे प्रणय भीख की दुःखराह निराशा की भीख विस्तानापन की सुखसाहचर्य । बाहू भयानक प्रतिशोध असत्यापण युद्ध सपना । घोर रणभूमि का प्रसन्न और फिर अश्रिष्ठ छत्र बल दत्त । धर्म धर्म । अश्रम भवन । तात्त्विक मृत्यु । घोर अन्धकार । पतन । आत्म पतन । नरक गमा धर्म विजय शिर घमन । आकाश पाताल एक गाय दिन उठे । क्यों ? मात्र बाहू व अन्ध व कारण । एक बाहू आता और दूसरी जाना । मात्र इतना ही है मगर बल का घुमना । हे आत्मन् ! बाहू की राह रोकेन का उत्पन्न कर । मगराभाव स्वयम्भ हो जायगा ।

आत्मनिर्वास स्वात्मनिर्वास का सपन उपाय है । जिस अपने स्वरूप की प्राप्ति करना है वह आत्मनिर्वास बुद्धि का उपाय कर । आत्म ध्यान-निरा ध्यान है । आत्म ना तत्त्व ना है । आत्मानुचरण नत्वानुचरण है । अभिप्राय यह है कि जो आत्म द्रव्य का उद्धार में जाना है जानना और अनभन करना है वह मध्यम तरा का निरवगता ताता ताता व विकासवर्ती सत्य द्रव्य का गुण गर्वायो यु आदान

करता है जानना है और तदनुसूल जाचरण करता है। स्व म स्व का और पर म पर का अनुभव करना है। आत्मा अपनी वस्तु है। अपने विषय म यथार्थ अवगम करना कठिन नहीं है। निज घर में आना और रहना दुःख नहीं है। हे आत्मन् जाग जाना गुण-बुद्धि सम्हालना। जानने परम करो। अनुरात्मा की प्राप्ति तुम्हारा निज धन है। अपनी विभूति है। अज्ञानि म भ्रमण करते हुए अनन्त सुखों का शिखार बना आया है भला एक क्षण भी सुख प्राप्ति मिली ? मित्रों वहाँ से। अपने म अपना रात्र करे ता शांति मिले। स्वयं शांत है। शांतता ही जीवन है। जीवन की धड़ियाँ मुख की रदियाँ हैं मुख की धड़ियाँ जीवन का मणियाँ हैं।

सगार और सहार। जीवात्मा और उसकी पर्याय। पर्यायों का उत्पन्न और विनाश प्रनिक्षण होता रहना है। यही उत्पन्न विनाश सगर है। पयाय बुद्धि पयाया की उत्पन्न है। पर भाव ही विभाव हैं आत्म स्वस्व स भिन्न जा कुछ है तब विभाव ही है। यही विभाव का तात्पर्य अनादि स गता है। इन विकारी भावा म समाहित चित्त प्राणा स्वाभाविक भावा का भूल कर विभाव म हा अपन का अपना मान रहा है। यह अज्ञानि का भूल हा इतरा घातक है। तब क्यों बचना है ? अपनी ही भूल स। शर क्या चित्र म फना ? वह करने ही आराध स आप दुःखिन हुआ। अरे साधा आप क्या दुःखा है अपन हो विचार स करना ही कल्पना स। यथा मानना कृष्ण पक्ष का रात्रि है दोषक है नहीं महसा आप किनी अज्ञान घर में घस और उघर स आया सहसा घर का मार्मिक बन आप चिल्ला उठ चोर और वह भी चिल्लाया पकड़ा। दोना आहुल-आहुल पहराय। पर तना क्या ? अपने अपने म स्वयं का प्राप्ति। अपना अपने म विचार। नन्ही सी बच्चा न ताउटन का बत्ती ऊपर की खाना न एक दूसरे का बला और समझा। ममप कि आ म जा आया। यथाय म सत्य का विचार करा क्या आया क्या गया। न कुछ आया और न कुछ गया। सब कुछ अपने म ही अपना समायो है।

मनुष्य बुद्धिवादी है। बुद्धि का प्रयोग वा रूप म करता है (१) मनुबुद्धि और (२) बुद्धि। बुद्धि स्वभाव स प्रयुक्त होती है—विना किसी प्रयत्न क इसका व्यवहार होता है जबकि सद्बुद्धि प्रयत्न साध्य हमनी है बठार प्रयत्न करने पर भी समझ सही प्रयोग नहीं हो पाना। अनेक निमित्त साध्य है यह। मनुष्य इसके पान । मम-सत्य विचार जाता है-स्वमित्त हा जाता है। कारण अनभ्यस्त है। हे साधका। साधना का साधन सद्बुद्धि है। सम्यक परिणति है। अपना परिणमन सही बनान म दत्तचित्त हा जाया। एवाचचित्त हान स सफल वाप ॥ सज्जना है। मकला दत्त करा। अपने म अग्न रहा। स्व म स्व का रखने का अभ्यास करो। तथा तथा परिणमन रह सकना ॥ जन मम्यक यथायोग्य अग्नि मे अधिक बचने का प्रयोग करा। पर का मयाय जिनका कम हागा आम साधना भी उज्जनी मुरगिन रहेगी। अपना-अपना देखा अपना-अपना जाना और अपने

रमाभा । जग जगत् अगत् है । इसमें कोई सार नहीं । कभी सम्भव नहीं निर्मातृ है । निर्मातृ का सम्भव बनाना एक मात्र मानव जीव का उद्देश है इसी को मर्त्य करा । इसी में सार है । यही मानव जगत् का कर्तव्य है ।

सम्पूर्णतः चारों अनुयोगों से एक रूप ही है भाव साक्षिक भेद है । अर्थ भेद भी साक्षिक ही भवता है । किन्तु साक्षिक को कहीं स्थायी नहीं है । शुद्धात्मानुभव इष्टानुयोग से सम्पूर्ण है तो चरणानुयोग से इष्टानुभूति को ओर उन्मुख परिणाम शुद्धि का नाम ही सम्पूर्ण है । चरणानुयोग की भाषा में उसे चरण सन्धि के नाम में कहा जाता है । सब का सार पर द्रष्टा से हटकर स्व सन्ध्यो-मुक्ता ही ता है । प्रथमानुयोग सन्ध्यो-संज्ञा स्व की शब्दों को सम्पूर्णतः करता है । सन्ध्यो-संज्ञा स्व की सन्धिमान आत्मानुभूति के अभाव में क्या भला हो सकती है ? तब परिज्ञान होने पर ही सम्पूर्णतः होना यह आवश्यक नहीं । अथवा निर्व्यञ्जना अनादि मिथ्या दृष्टि पशु पक्षियों का सम्पूर्णतः होना सिद्ध नहीं हुआ । सम्पूर्णतः प्राप्त में मात्र कपायापसम ही कारण हो यह भी नहीं हो सकता । अन्यथा चोरोपम विजयी नवम प्रवेष्टक में जाने वाला मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है यह सिद्ध नहीं हो सकता । यह आत्म शब्द विशेष परिणाम है । इसका सम्पूर्ण करना बिना आत्मसाध्य के नहीं हो सकता । अब कहीं किस प्रकार इसकी उत्पत्ति होगी यह भी निर्णीत नहीं है । बाह्यात्म्य-तत्त्व-वर्तित्व में भी तो उनके अवयव का उपाय क्या है ? यह भी तो सुनिर्णीत नहीं है । हाँ यह अवश्यमात्र उपाय है कि तब परिज्ञान स्वाध्याय आग माध्यास अवश्य करते रहें । परिवर्तन तत्त्वज्ञान हमारे अन्तरङ्ग उपायान को आपन करने में सहकारी होगा । भव भव में किया गया आत्ममाध्यास भव भवान्तर में भी सहायक होता है । स्वानादि नियम पर्याय में तत्त्व ज्ञान नहीं होने पर भी सम्पूर्णतः का निषेध नहीं है । यह क्यों है ? इसका कारण पूर्व सस्वार है । पूर्व भव में तत्त्वज्ञान तो किया पर शब्दान नहीं हुआ । मिथ्यात्व वश ही रहा मरण कर तत्त्वज्ञानादि हो गया । यही वशना का निमित्त पाते ही अन्तरङ्ग सम्पूर्णतः भावना तरङ्ग जाग्रत हो उठती है । यह देशना कासनादि का उपाय में सहायगी बनकर उस भव्य का कथ सिद्ध कर देती है । सम्पूर्णतः आत्मानुभूति है किन्तु उसका व्यवहार परिणाम में शुद्धि है । परिणाम निमित्तता चारित्र्य है । सारा परिणाम में अनुकम्पा मभी प्रमोद काव्य भाव उन्नत दण्ड है । हम सम्पूर्णतः का हृदय का समझने का प्रयत्न करना चाहिए । किसी भी मण, पर्याय घम स्वभाव का अन्त का ज्ञान बिना उसका वास्तविक फल हमें उपलब्ध नहीं हो सकता । प्रत्येक पदार्थ का घनात्मक विश्लेषण करना अनिवार्य है ।

निज स्वभाव में अविचल रहने पर अन्य का प्रभाव नहीं पड़ सकता । कबली ज्ञान में समस्त ससार का सम्पूर्णतः अपनी-अपनी गुण पर्यायों से युक्त बनती है किन्तु ज्ञान में कोई विचार नहीं होता । क्या उससे कबली का भार लगता है ? नहीं दण्ड में प्रतिनिमित्त पदार्थों से दण्ड विवृत नहीं होता । आत्मा जान घन है । ज्ञान

जाना है पर ममा भेद है। उनसे हमारा कुछ महा विगडना और न बिगड ही होता है। आत्मा अपने में सदा आप ही रहता है। पर्याया में विचार है। व परिवर्तित होनी चाहती है उनका स्वभाव ही ऐसा है। परंतु यह नहीं भुजना कि स्वभाव पर्याया में विचार नहीं होना किन्तु विभाग पर्याया में ही विचार हुआ करता है। विभावा का अभाव विभावा के द्वारा हो जाता किन्तु विभाव हटते ही मात्र स्वभाव रह जायेगा। यही वस्तु स्वभाव है।

जीवा प्रवाह है। प्रवाह वैग है। वह बग जा चलन ही रहता है। सर्तिता का प्रवाह चलता है फिर चलना ही रहता है नचा ता नदी का नाव भिट गया। गही हात है जीवन का। वह भी परिवर्तित होता रहता है क्षणिक और स्थायी रूप में। स्थायी का अर्थ यहाँ एक भव सम्बन्धी पर्याय से है। उस बाई जीव मनुष्य हुआ क्षणिक बशी जाति यह जाति वर्तमान भुजमान आयु पर्यंत है किन्तु वही स्थायि दिन भर में प्रातः शोचानि कम करता हुआ भूत है पुनः स्नानादि क्रिया कर शुद्ध क्रियाओं से भगवन् भक्ति करता है ता ब्राह्मण बन गया क्योंकि यजन याजन यम ब्राह्मणा का निर्धारित है। पश्चात् वही व्यक्ति अपने आजीविता व कर्मों में रत होता है तब वयस हुआ जाता है। पुनः अपने स्वयत्तम्वन के अधिमान से भरा रात्रि का विधाम लता है ता स्व रक्षा तत्पर वह क्षत्रिय हो जाता है। यह हालत प्रत्येक मानव की है। दशा से विचारने पर जाति में बाह्य न होकर अन्तरात्मा जाता है परन्तु इस अधिमान से बाह्य जाति बंद का साथ करना अपने जीवन की निम्नता पर कासा घाला लगाना है। वयस व्यवस्था का उच्छेद कर तात्पर्य प्रभु का अवगणना करना है। अस्तु उस धार पापकृति से बचन के लिए चित्तवाणी का अनुसरण करते हुए उस भवानी जाति व्यवस्था को बनाय रखना हमारा परम वस्तव्य है जाति बंधन हमारा स्वभाव जीवन विकास का प्रमुख अंग है। बाहु का सीमा में ध्यान करना फूलता है। जिस है बेफिज नगर सुरक्षित रहता है। पति के शासन में सारी का नारीत्व समझा है। राजा व शासन में प्रजा पतनी फूलता है। फिर भला जातीयता का बंधन कह कर जगता करता निगलन भूत नहीं है। भवानी का उत्सव स्वयं अपना ही नाश करना है। भवानी जीवन निश्चित होता है। स्थाय की बाध में उगे तपस्वी स्थायिका में समय व मुमन स्थित हैं जो चारित्र्य के सूत्र में बंध कर मुनिवर हुआ का सेह्रा बनाता है जिसके धारण से और धारण से मुक्त बंधु का वयस होता है। भवानी शिव रमणी वरण करने में समय होता है। भला बंधन पातक कस हो सकता है (बंधन से ससार है और बंधन ही से मुक्ति)। जो बंधता है वही छूटना है। जिसका बंधन नहीं ता वह धोखा क्या? कुछ भी नही बंध और मोक्ष दाना में धनियत सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे में पूरक हैं। इ आत्मन समस्त बंध का। मन कर उषा उसने अपितु प्यार कर। बंधन के निवारणों की जलन ही तुम्हें मुक्ति की आर से जायेगी। बंधन का जानना ही छुटकार की मुहानी निग का परिधय देना है। आत्मा

ग्यात्रा । जग ज्ञान अगता है । इसमें कोई गार नहीं । कभी सम्भव ग निम्न है । निम्नार का गारम बनाना एव भाव भाव जीव का उद्ग है इति को गार कर । इसी में गार है । यही मानव जग का कव है ।

सम्पूर्ण चारों अनुयोगों में एव ही है भाव साक्षि भेद है । अर्थ भेद भी बर्णित हो गता है । किन्तु भावार्थ का वही स्थाव नहीं है । गुणरणाभ्रव र्णानुयोग में सम्पूर्ण है तो वर्णानुयोग से स्थानुभूति की ओर उगुन परिणाम शुद्धि का नाम हो गारम है । वर्णानुयोग की भाषा में उमे कण लक्षि के नाम हो कहा जाता है । गव का गार पर द्रव्य से हटकर स्व र्णानुभूति ही ता है । प्रयमानुदाय गव स्व साक्षि गुरु की श्रद्धा को सम्पूर्ण करना है । गव स्व साक्षि गव का पहिषान भावानुभूति व अभाव में क्या भला हो सक्ती है ? तत्व परिज्ञान होने पर ही सम्पूर्णन हुआ यह आवश्यक नहीं । अथवा निर्वञ्जा अनानि मिथ्या दृष्टि पशु पतिता का सम्पूर्णन हुना सिद्ध नहीं हुवा । सम्पूर्णन प्राप्ति में भाव कषापापशम ही कारण हो यह भी नहीं बन सक्ता । अन्यथा धोरापमग विजयी भवम प्रवेदक में जाने वारा मिथ्यादृष्टि भी हो सक्ता है यह सिद्ध नहीं हो सक्ता । यह आरम श्रद्धा विशेष परिणाम है । इसका समवय करना बिना आगमाभ्यस में नहीं हो सक्ता । कव वही बिम प्रकार इसरी उत्पत्ति होयी यह भी निर्णीत नहीं है । बाह्याभ्यन्तर कतिपय लक्षण हैं भी तो उनका अवयव का उपाय क्या है ? यह भी तो सुनिर्णीत नहीं है । हाँ यह अवश्यमारी उपाय है कि तत्व परिज्ञान स्वाध्याय आग माभ्यास अवश्य करन रहे । परिवक्क तत्त्वज्ञान हमारे अन्तरङ्ग उपानान को आपन करन में सहकारी हुआ । भव भव में किया गया आगमाभ्यास अथ भवान्तर में भी सहायक हाता है । स्वानानि नियम पयाय में तत्व ज्ञान नहीं हान पर भी सम्पूर्णन का निदध नहा है । यह क्या है ? इसका कारण पूव संस्कार हैं । पूव भव में तत्वज्ञान तो किया पर श्रद्धान नहा हुआ । मिथ्यात्व बश ही रहा मरण कर नियञ्चपादि हो गया । यही दशना का निमित्त पाने ही अन्तरङ्ग सम्पूर्ण भावना तरक्षण जाग्रत हो उठती है । यह दशना कालत्रिघि व उद्ग में सहायी बनकर उम भव्य का कय सिद्ध कर दती है । सम्पूर्णन आत्मानुभूति है किन्तु उसका व्यवहार परिणाम में शुद्धि है । परिणाम निमित्तता चारित्र है । सराग परिणति में अनुकम्पा मत्री प्रमोद काव्य भाव उसके दशक हैं । हम सम्पूर्ण के हृदय का समझन का प्रयत्न करना चाहिए । किसी भा गण, पर्याय घम स्वभाव व अत का ज्ञान बिना उसका वास्तविक पन हमें उपबन्ध नहीं हो सक्ता । प्रत्येक पदार्थ का घनात्मक विश्लेषण करना अनिवार्य है ।

निज स्वभाव में अविचल रहन पर अथ का प्रभाव नहा पड सकता । क्वली ज्ञान में समस्त गुसार व सम्पूर्णरूप अपनी-अपनी गुण पर्यायों से युक्त क्षानक्ती है किन्तु ज्ञान में कोई विचार नहीं हाता । क्या उसका कवला का भार गता है ? नहीं दशन में प्रतिनिमित्त पनाचों से दपण विवृत नहीं होता । आत्मा पाव घन है । ज्ञान

रहता है। जब वह जगत् जगत् है। इससे कोई मार नहीं। बल्कि हमारा यह निश्चय है। निश्चय का मारमार्ग बनाना एक मात्र मार्ग जीवन का उद्देश्य है इसी के लिये कहा। इसी में मार है। यही मार्ग जगत् का है।

असम्पूर्णता का जो गुणगुणों में एक रूप ही है भाव साधक भेद है। अर्थ भेद भी वह है जो भेद है। किन्तु भावार्थ को नहीं स्वीकार नहीं है। गुणगुणानुभव इसादुर्गम में सम्पूर्ण है जो गुणगुणों में इसादुर्गम को भेद उद्गम परिणाम गुण का नाम हो सम्पूर्ण है। करणगुणों को जगत् में उद्गम गुण के नाम में कहा जाता है। गुण का मार पर उद्गम में हृदय एक सम्पूर्णगुण ही ता है। इसादुर्गम गुण ११ साधक गुण की यज्ञ को सम्पूर्ण करना है। गुणों के साधक गुण की गृहस्था आत्मानुभूति के अभाव में क्या मया हो सकती है? तत्त्व परिज्ञान होने पर ही सम्पूर्ण होता यह आवश्यक नहीं। अथवा निर्विकल अर्थात् मिथ्या दृष्टि गुण विधाय का सम्पूर्ण होने जाना सिद्ध नहीं होता। सम्पूर्णजन प्राप्ति में मात्र कयायागम ही कारण है यह भी नहीं कहा सकता। अथवा चोरायाग विजयी नरम वैभव में जाने जाना मिथ्यादृष्टि भी हो सकती है यह सिद्ध नहीं होता। यह अर्थ यज्ञ विशेष परिणाम है। इसका सम्पूर्ण करना बिना आध्यात्मिक के नहीं हो सकता। यह नहीं किम प्रकार इसका उत्पत्ति होती यह भी निर्णीत नहीं है। आध्यात्मिक विनियम मन्त्र है भी तो उनके अवयव का उद्गम क्या है? यह भी तो निर्णीत नहीं है। इसी यह अवयवकारी उद्गम है कि तत्त्व परिज्ञान स्वाध्याय आग माध्याग अवयव करने रह। परिणाम तत्त्वज्ञान हमारे अन्तरङ्ग उपादान को जाग्रत करने में सहकारी होता है। भव भव में किया गया आध्यात्मिक अन्य भवार्थ में भी सहायक होता है। कानार्थ नियम पर्याय में तत्त्व ज्ञान नहीं होने पर भी सम्पूर्णज्ञान का निषेध नहीं है। यह क्या है? इसका कारण पूरा सत्कार है। पूरा भव में तत्त्वज्ञान तो किया पर भ्रम नहीं हुआ। मिथ्यात्व बस ही रहा भरण कर तियञ्चयादि हो गया। यही दशना का निमित्त पाते ही अन्तरङ्ग सम्पूर्णत्व भावना तत्क्षण जाग्रत हो उठती है। यह दशना बाललघि व उद्गम में सहायगी बनकर उद्गम भव्य का रूप सिद्ध कर देती है। सम्पूर्णजन आत्मानुभूति है किन्तु उसका व्यवहार परिणाम में शुद्धि है। परिणाम निमित्तता चारित्र्य है। सराग परिणाम में अनुकम्पा मन्त्री प्रमोद कारण भाव उत्तरे दशक है। हम सम्पूर्ण के हृदय का समझने का प्रयत्न करना चाहिए। किसी भी गुण, पर्याय धर्म स्वभाव व अन्त का ज्ञान बिना उसका वास्तविक फल हमें उपलब्ध नहीं हो सकता। प्रत्येक पदार्थ का धनात्मक विस्लेषण करना अनिवार्य है।

निज स्वभाव में अविचल रहने पर अर्थ का प्रभाव नहीं पड़ सकता। कबलो ज्ञान में समस्त ससार व सम्पूर्णद्रव्य अपनी-अपनी गण पर्यायों से युक्त चलती है किन्तु ज्ञान में कोई विचार नहीं होता। क्या उसका कला का भार लगता है? दण्ड में प्रतिनिमित्त पदार्थों से दण्ड विह्वल नहीं होता। आत्मा ज्ञान धन है।

रमाभा । जग जगत्त जगत्त है । इमम कोई सार नहीं । कन्ती सम्भवतः यह निम्मार है । निम्मार का सारमय बनाना एक मात्र मानव जीवन का उद्देश्य है इसी को सफल करा । इसी में सार है । यही मानव जन्म का फल है ।

सम्यग्दर्शन चारों तनुयोगों से एक रूप ही है भाव शक्ति भेद है । अथ भेद भी कविता ही बनता है । किन्तु भावार्थ को वहीं स्थान नहीं है । शुद्धात्मानुभव द्रव्यानुयोग से सम्पन्न है तो चरानुयोग से स्वानुभूति की ओर उन्मुख परिणाम शुद्धि का नाम ही सम्भवतः है । करणानुयोग की भाषा में उस करण तन्त्रि के नाम में कहा जाता है । सब का सार पर द्रव्य से हटकर स्व द्रव्योन्मुखता ही ता है । प्रयमानुयोग सबके स्व भाव्य गुण की अज्ञा को सम्पन्न कहता है । सच्चे देव भाव्य गुण की पहिचान आत्मानुभूति के अभाव में क्या प्रतीत हो सकती है ? तत्त्व परिज्ञान होने पर ही सम्यग्दर्शन होगा यह आवश्यक नहीं । अन्यथा तिर्यञ्जो अनादि मिथ्या दृष्टि पशु पक्षियों को सम्यग्दर्शन हाना सिद्ध नहीं होगा । सम्यग्दर्शन प्राप्ति में भाव कषायपक्ष ही कारण है यह भी नहीं बन सकता । अन्यथा घोरपक्ष विजयी नभय प्रवेयक में जाने वाला मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है यह सिद्ध नहीं हो सकता । यह आत्म अज्ञा विशेष परिणाम है । इसका समन्वय करना बिना आत्मसाध्य के नहीं हो सकता । कब वहाँ किस प्रकार इसकी उत्पत्ति होगी यह भी निर्णीत नहीं है । बाह्याभ्यन्तर कतिपय लक्षण हैं भी तो उनके अवगम का उपाय क्या है ? यह भी तो सुनिर्णीत नहीं है । हाँ यह अवश्यभावी उपाय है कि तत्त्व परिज्ञान स्वाध्याय आग माध्यात्म अवश्य करते रहें । परिणत तत्त्वज्ञान हमारे अन्तरङ्ग उपायान को आपन करने में सहकारी होगा । भव भव में किया गया आत्ममाध्यात्म अन्य स्वान्तर में भी सहायक होता है । स्वानादि नियम पर्याय में तत्त्व ज्ञान नहीं होने पर भी सम्यग्दर्शन का निषेध नहीं है । यह क्या है ? इसका कारण पूछ सकते हैं । पूछ भव में तत्त्वज्ञान तो किया पर ज्ञान नहीं हुआ । मिथ्यात्व बल ही रहा मरण के तिर्यञ्जपानि हो गया । यहाँ दशना का निमित्त पाने ही अन्तरङ्ग सम्पन्न भावना तत्त्वज्ञान आपन हो उठती है । यह दशना का लक्षण है कि उस में सहयोगी बनकर उस भव्य का कार्य सिद्ध कर देती है । सम्यग्दर्शन आत्मानुभूति है किन्तु उसका व्यवहार परिणाम में शुद्धि है । परिणाम निमित्त कारिण है । सरास परिणाम में अनुकम्पा दीवी प्रमोद कारण भाव उसका दग्व है । हम सम्पन्न के हृदय का समझने का प्रयत्न करना चाहिए । किसी भाग्य पर्याय अथ स्वभाव के अर्थ को जान बिना उपाय वाला विक पत्र हमें उतरा नहीं हो सकता । प्रत्येक पर्याय का बनावतक विवेचन करना अनिवार्य है ।

निज स्वभाव में अविचल रहने पर अन्य का प्रभाव नहीं पड़ सकता । कबकी ज्ञान में समस्त मसार के सम्पूर्ण अर्थ अपना-अपना गुण पर्यायों से गुण ज्ञानकी है किन्तु ज्ञान में कोई विकार नहीं होता । क्या उसका कब-का का बार अपना है ? ज्ञान में प्रतीतिमित्र वस्तुओं से लक्ष्य विमुक्त नहीं होता । आत्मा ज्ञान बन है ।

जाता है पर ममा जैव है। उनमें हमारा कुछ नहीं विभङ्गना और न रिगड़ ही गारा है। आरमा अपने में ममा आप ही रहता है। पर्याय में विचार है। व परिवर्तित होनी रहनी है उनका स्वभाव हा एसा है। परन्तु यह ममा भूतना नि स्वभाव गारा म विचार नहीं जाना किन्तु विभाव पर्याय में ही विचार हुआ करता है। विभाव का अभाव विभावो ने द्वारा हो जाना किन्तु विभाव हटते ही ममा स्वभाव रह जायेगा। यहा वस्तु स्वभाव है।

जीवा प्रवाह है। प्रवाह वैव है। वह वग आ चमन ही रहना है। भरिता का प्रवाह चलता ता फिर चलता ही रहता है गरा ता नने का नाग भिंट गया। गहो हाल है जीवन का। वह भी परिवर्तित होना रहता है दानिक और स्थायी रूप में। स्थायी का अर्थ यहाँ एक भव सम्बन्ध पर पर्याय स है। जब कोई जीव मनुष्य हुआ क्षणिक वशी जानि यह जाति वनमान पुत्र्यमान आयुष्य त है किन्तु वही व्यक्ति निमर में प्राण शीघ्रानि बस करला हुआ भू है, पुन स्नानानि त्रिया कर शुद्ध विषागों में भगवन् भक्ति वता है ता काष्ठान वन गया क्षणिक यजन दाजन वम काष्ठाना नि निर्धारित है। परन्तु वही व्यक्ति अपने आजीविता व कर्मों में रत हाता है तब वय हा जाता है। पुन अपने स्वावन्मन के अभिमान स भरा रात्रि का विभाव सता है ता स्व रक्षा उत्तर वह क्षणिक हा जाता है। यह हालत प्रत्येक मानव को है। दशा स विचारने पर जानि ममा बाह्य न हाकर अन्तर्य हा जाना है परन्तु इन अभिमान स बाह्य जानि वेद का ज्ञाप करला अपने जीवन का निमग्नता पर माना प्रभा लगता है। वग व्यवस्था का उच्छेद कर तीव्रतर प्रभु का अवगन्ता करना है। वस्तु इस पार पापवृत्ति से वचन के लिए जिनवाणी का अनुसरण करते हुए उस ज्ञानानि जानि व्यवस्था का बनाय रखना हमारा परम वस्तव्य है जाति बधन हमारे शत्रुत्व जीवन विकास का प्रमुख अंग है। बाढ़ की सीमा में धान कटना पूजता है। फिर १० बेठित नगर सुरा त रहता है। पति के शासन में नारी का नारीत्व चमकता है। राजा के शासन में प्रजा वसन्ती-कुसुमी है। फिर भला ज्ञानायता का बधन वह कर जगता करना निमान्त मूल नहीं है। मर्त्या का उत्सव स्वय अपना ही नाश करना है। मर्त्यानि जीवन विवक्षित हाता है। स्थाय की बाढ़ में नगी तप की फारियों में सयम के सुमन सिमल है जा चारित्र के मूल में बध कर मुनिवर दूहा का सेहरा बनना है जिनके धारण स जीर पालन स मुक्त बधू का वय हाता है। अर्थात् शिव रमणी वरण करने में समर्थ हाता है। भला बधन धारक कत हो सक्ता है (बधन त संसार है और बधन हा के मुक्ति)। जा बँधना वही छूटना है। किन्तु बेदी पड़ी नहीं ता वह आवेगा क्या ? कुछ भी नहीं बध और मोक्ष दानो में सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। हे आरमभयम बध का। मन कर प्यार कर। बधन के निजानों की जनन ही मुन्द मुक्ति की आर न मानव ही उत्पन्न की मुहानी निज का वरिष्ठ देता है। आत्मा

रमाभा । जग जगत अमृत है । इगम कोई सार नहीं । कभी स्मरण प
निर्गार है । निर्गार का सारमय बनाना एक मात्र मानव जीवन का उद्देश्य है इसी
को मन्त्रन करा । इसी में सार है । यही मानव जन्म का फल है ।

सम्यग्ज्ञान ' चारों तनुषोमो से एक रूप ही है भाव नास्तिक भेद है । अथ
भेद भी स्वयं हो सकता है । किंतु भावार्थ का नहीं स्थान नहीं है । शुद्धात्मानुभव
द्रव्यानुयोग से सम्यक्त्व है ना चरानुयोग से स्वानुभूति की ओर उभय परिणाम
शुद्धि का नाम ही सम्यक्त्व है । करणानुयोग की छाया में उभय करण उभय के नाम
में बहा जाता है । सब का सार पर द्रव्य से हटकर स्व द्रव्यानुभूति ही ता है ।
प्रथमानुयोग सत्त्वे स्व शास्त्र गुह की श्रद्धा को सम्यक्त्व करना है । सत्त्वे देव शास्त्र
गुह की पहिचान आत्मानुभूति का अभाव में क्या भला हो सकती है ? तब परिज्ञान
हाने पर ही सम्यग्ज्ञान हाथा यह आवश्यक नहीं । अथवा तिर्यग्ज्ञान अनादि मिथ्या
दृष्टि पशु पक्षियों को सम्यग्ज्ञान हाना सिद्ध नहीं होगा । सम्यग्ज्ञान प्राप्ति में मात्र
कपायापशम ही कारण हो यह भी नहीं बन सकता । अन्यथा घोरपक्षय विजयी नवन
प्रवेयक में जाने वाला मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है यह सिद्ध नहीं हो सकता । यह
आरंभ श्रद्धा विशेष परिणाम है इसका समर्थन करना बिना आत्मसाध्य के नहीं हो
सकता । अब कहीं किस प्रकार इसकी उत्पत्ति होगी यह भी निर्णीत नहीं है ।
आत्मसाध्यन्तर कतिपय लक्षण हैं भी ता उनके अवगम का उपाय क्या है ? यह भी ता
निर्णीत नहीं है । ही यह आवश्यकता ही उपाय है कि तब परिज्ञान स्वाध्याय आन
माध्यास अवश्य करते रहें । परिणत तत्त्वज्ञान हमारे अंतरङ्ग उपादान को प्राप्त
करने में सहकारी होगा । भव भव में किया गया आत्मसाध्यास अथ स्वान्तर में भी
सहायक होता है । स्वानादि तिर्यक् पमाय में तत्त्व ज्ञान नहीं होने पर भी सम्यग्ज्ञान
का निषेध नहीं है । यह क्या है ? इसका कारण पूर्व सत्कार है । पूर्व भव में तत्त्वज्ञान
तो किया पर भ्रमण नहीं हुआ । मिथ्यात्व बस ही रहा मरण कर निर्वञ्चयानि हा
गया । यही दशना का निमित्त पाने ही अंतरङ्ग सम्यक्त्व भावना तरक्षण प्राप्त हो
उठती है । यह देशना कालमध्य में उक्त में सहयोगी बनकर उभय भव्य का कथ
सिद्ध कर देती है । सम्यग्ज्ञान आत्मानुभूति है किंतु उसका व्यवहार परिणाम में
शुद्धि है । परिणाम निमित्तता चारित्र्य है । सराव परिणाम के अनुकूला मैत्री प्रमोद
काश्य भाव उगत गगन है । हम सम्यक्त्व का हृदय का समर्थन का प्रयत्न करना
आह्वान । किसी भी गुण पर्याय धर्म स्वभाव का अन्त का ज्ञान बिना उगत वास्तव
विक फल हमें उपलब्ध नहीं हो सकता । प्रत्येक पदार्थ का अनात्मक विनियोग करना
अनिवार्य है ।

निज स्वभाव में अविचल रहने पर अन्त का प्रभाव नहीं पड़ सकता । कभी
ज्ञान में समस्त सार के सधुनन्त अना-अना बस वर्णों से गुण ज्ञानका है
किंतु ज्ञान में कोई विचार नहीं होता । क्या उल्लेख करना का भार सारा है ?
दण्ड में प्रतिनिधित्व कभी से सत्त्व विह्वल नहीं होता । आत्मा ज्ञान का है ।

पाता है पर ममा ओज है । उनका ह्वासा कुछ नहीं बिखरता और न बिभर ही मरता है । आत्मा जलने में मग्न जल ही रहता है । पर्याप्त न बिखर है । न परावर्त्ति होती रहती है उनका रहसा ही ऐसा है । यन्मु वह महा भूतता कि प्रभाव पाली । न बिभर नहीं होता किन्तु विभान पर्याप्त में ही बिभर हुआ करता है । विभाव का अभाव विभावों के द्वारा ॥ हात्मा किन्तु विभाव होने ही मात्र रहसा रह जायेगा । यहा यन्मु रहसा है ।

[illegible]

रमाया । जग जगत अमर है । इसमें कोई सार नहीं । कभी सम्भव यह निम्नार है । निम्नार का मारमय बनाना एक मात्र मानव जीवन का उद्देश्य है इसी को सफल करा । इसी में सार है । यही मानव जन्म का फल है ।

सम्यग्गान्धर्व चारों तनुयोगों से एक रूप ही है साव शास्त्रिक भेद है । अथ भेद भी वर्तित हो सकता है । किंतु भावार्थ का वही स्थान नहीं है । गुणानुभव द्रव्यानुयोग से सम्यक्त्व है ना चरानुयोग से स्वानुभूति की ओर उभूत परिणाम शुद्धि का नाम ही सम्यक्त्व है । करानुयोग की भाषा में उसे करण तन्त्रि का नाम से कहा जाता है । सब का सार पर द्रव्य से हटकर स्व द्रव्योत्पत्ति ही ता है । प्रयत्नानुयाय सत्त्व त्व शास्त्र गुण की श्रद्धा को सम्यक्त्व कहता है । मन्वे देव शास्त्र गुण की पहिचान आत्मानुभूति का अभाव में क्या मला हो सकती है ? तत्त्व परिज्ञान होने पर ही सम्यग्दर्शन होगा यह आवश्यक नहीं । अथवा तिर्यञ्जा अनामि मिथ्या दृष्टि पशु पक्षियों को सम्यग्दर्शन होना सिद्ध नहीं हाया । सम्यग्दर्शन प्राप्ति में माव कपायापशम ही कारण हा यह भी नहीं बन सकता । अन्यथा क्षीरोपसग विन्नयो मय प्रवेयक में जाने वाला मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है यह सिद्ध नहीं हा सकता । यह आरम ध्येय विशेष परिणाम है । इसका समन्वय करना बिना आगमाभ्य के नहीं हो सकता । जब कहा कि प्रकार इसकी उत्पत्ति होगी यह भी निर्णीत नहीं है । बाह्याभ्यन्तर कतिपय लक्षण है भी तो उनके अवगम का उपाय क्या है ? यह भी तो सुनिर्णीत नहीं है । हाँ यह अवश्यभावी उपाय है कि तत्त्व परिज्ञान स्वाभ्यास आग माभ्यास अवश्य करते रहें । परिपक्व तत्त्वज्ञान हमारे अन्तरङ्ग उपादान को जाग्रत करने में सहकारी होगा । भव भव में किया गया आगमाभ्यास अन्य भवान्तर में भी सहायक होता है । श्वानादि तिर्यक् पश्याय में तत्त्व ज्ञान नहीं होने पर भी सम्यग्दर्शन का शोध नहीं है । यह क्यों है ? इसका कारण पूर्व सत्कार है । पूर्व भव में तत्त्वज्ञान तो किया पर भ्रम हो गया । मिथ्यात्व बल ही रहा मरण कर तिर्यक्पश्याय हा गया । यहाँ देशना का निमित्त पाते ही अन्तरङ्ग सम्यक्त्व भावना तरक्षण जाग्रत हा उठती है । यह देशना बालसन्धि का उ व म सहायी बनकर उत भव्य का कार्य सिद्ध कर देती है । सम्यग्दर्शन आत्मानुभूति है किंतु उसका व्यवहार परिणाम में शुद्धि है । परिणाम निमित्तता चारित्र्य है । सरास परिणाम में अनुकम्पा प्रेमी प्रमोद वादण्य भाव उता दण्डक है । हम सम्यक्त्व के हृदय का समझने का प्रयत्न करना चाहिए । किसी भी गुण पर्याय धम स्वभाव का अल को जान बिना उनका वास्तविक पक्ष हमें उपरब्ध नहीं हो सकता । प्रत्येक पदार्थ का बनावटक अविद्यार्थ है ।

निज स्वभाव में अविचल रहने पर अन्य का प्रभाव
ज्ञान में समस्त समार के सम्पूर्ण अथवा अपनी
किन्तु ज्ञान में कोई विचार नहीं होता । वरा
दण्ड में प्रतिनिधित्व वगैरह स दण्ड ।

जाना है पर अभी ये है। उनमें हमारा कुछ नहीं बिड़ना और न मिट ही सारा है। आत्मा अपने में मग्न आप ही रहता है। पर्याया में विचार है। व परिवर्तित होती रहती है उनका स्वभाव ही ऐसा है। परन्तु वह नहीं मूलना कि स्वभाव पर्याया में विकार नहीं होना किन्तु विभाव पर्याया में ही विचार हुआ करता है। विभावा का अमान विभावा के द्वारा हा हाया किन्तु विभाव हटते ही मात्र स्वभाव रह जायेगा। यही वस्तु स्वभाव है।

जीवन प्रवाह है। प्रवाह बग है। वह बग जा चले ही रहता है। सरिता का प्रवाह चला ता फिर चला ही रहता है रुका ता नौ का नाग मिट गया। गही हान है जीवन का। वह भी परिवर्तित होना रहता है दैनिक और स्थायी रूप में। स्थायी का अर्थ वही एवं भव सम्बन्ध पर्याय है। उस बाई जीव मनुष्य हुआ क्षत्रिय वशी जानि यह जाति वर्तमान पुण्यमान आयुपय है किन्तु वही ब्याप्ति निरभर म मान बोधानि कम करना हुआ मूल है पुन स्थायी विद्या कर कुछ विद्याओं में भयवद प्रति कृता है ता बाह्य वन गया क्वाचि यजन मात्रन कम बाह्यता का निर्मोक्ति है। परवान् वही व्यक्ति अपने आजीविता क वनों में रत हाता है तब वाय हा जाता है। पुन अपने स्वावन्मन के अभिमान से भरा रात्रि का विद्याम मना है ता स्व रक्षा तरवर वह क्षत्रिय जाता है। यह हासत प्रत्येक मानव को है। दया से विचारने पर जानि भे बाह्य न हाकर अन्तर्य हा जाना है परन्तु इस अभिमान से बाह्य जानि के का नाप करना अपने जीवन का निमलता पर बाला घमटा लगाना है। वन व्यवस्था का उच्छ कर तीव्रकर प्रभु का अवयवाव करना मानि जानि व्यवस्था का बनाव रखना हमारा परम कर्तव्य है जानि बचन हमारा स्वयं जीवन विकास का प्रमुख अंग है। बाड़ की सीमा में घान करना फूलना है। विम के बर्द्धन नगर सुरमित रहता है। पति न शासन में नारी का नारीत्व घमकना है। राजा का शासन में प्रजा पाननी-कृपनी है। फिर बला जानीयता का बचन वह कर उपमा करना नितान्त मूल नहीं है। मर्वाणि का उत्पन्न रूप अपना हा नाश करना है। मर्वाणि जीवन विकसित हाता है। त्याग की बाड़ में गमी तप की कारिणी में समय का गुमान विमन है जा कारिण के मूल में बघ कर मुनिवर हुआ का सेहा बनना है जिसने धारण से और पानन से मुक्त बघ का कप हाता है। अर्वाणुविश्व रमणी धरण करने में समय होना है। भना बचन बातव को ही मरना है (बचन में संतान है और बचन ही से मुक्ति)। जा बंधना बहा मूना है। जिगद बहा वरी नहीं ना वह धामेया वना ? कुछ भी नहीं बग और मोक्ष दाता में बाँट सम्बध है। दोनों एक दूसरे क पूरक हैं। है आवन समझ बग का। मन कर हुआ उमय अतिपु धार कर। बचन के निम्नों का बचन ही मुझे को जायेगी। बचन का मान्य ही लंकार को मुरानो निम का ता है।

यद्यपि ब्रह्म का परिज्ञान मुक्ति का द्वार है और उगसे छटकारा है परम मुक्ति।
देगो ज्ञान का दीपक लेकर जगती जलाती दीवानी मनाओ अपने को दशाओ अपने
म आओ आने म सुभाओ निज मे ही रम जाओ स्व म ही घुल जाओ। यही है ज्ञान
ज्ञान आना मान आना ही अनुराग।

आर्या आन्त गुण समूह का भण्डार है। परन्तु यदि स्वयं का स्वर आने
पूजी का भान न हो तो भला उसका फल उसे क्या मिलेगा? कुछ नहीं। भान
बाधा बना रहेगा। भार ढाना गंधे का काम है। मूल्यता है। फिर क्या करना?
प्रथम अपनी पूजी का श्रद्धा न कर उस ज्ञान करे और पुनः उसका उपजाग प्रयोग कर।
तत्पश्चात् फल का उपलब्धि होगी। आपका पास बीज हैं भूमि है परन्तु मरी है यह
विन्ति नहीं तो कुछ नहीं। प्रथम आपका विश्वास होना चाहिए कि मेरी जमीन और
भूमि है। पुनः कसा बीज है कसी जमीन है किस ऋतु म बोने योग्य है किस प्रकार
का भूमि क योग्य है किस काल म बोना चाहिए इत्यादि का परिज्ञान होना चाहिए
पुनः तदनुसार किया करना होगा। जमीन शुद्धिकर्षण करना पुनः वहीं पर बोना
जहाँ बोना चाहिए। पुनः उस खावना आदि किया करना चाहिए। सब करके भा
उसका पहरा देना होगा। यदि रक्षा बाध नहीं लगायी तो पकी पकायी सभी उबड़
जायगी खा जायगी। उसी प्रकार आर्य गुण विकास की भी प्रक्रिया है। प्रथम आत्मा
परमात्मा हो जाता है यह ध्यान हो पुनः उसका स्वरूप का परिज्ञान हो। वर्तमान
दशा और भावी परिणाम का ज्ञान हो तदनन्तर सम्यक् चरित्र किया हो तब ही
स्वरूप प्राप्त होगा।

निश्चय सम्यक्त्व का सिद्धि करना है तो व्यवहार सम्यक्ज्ञान का आश्रय लो।
सारागता क बिना वातरागता नहीं आ सकती। बीतरागता के ज्ञान पर वहाँ सारागता
निकल सकती यह नियम है। बिना पुण्य क फल नहीं आ सकता किन्तु फल के
आते ही पुण्य नहीं रहे सकता। प्रकृति का यह नियम है कारण के बिना कार्य नहीं
होता और कार्य के होने पर कारण नहीं रहे सकता। हे आर्यन् कार्य सिद्धि के हेतुओं
क पात ही कार्य सिद्धि करने का प्रयत्न करो कारणों की उत्पत्ति म पड़ने की आवश्यकता
नहीं। कारण तो स्वयं हटते ही जायेंगे। अपन अन्तरङ्ग माह रावन्धव पर
विजय कर। समाहित चित्त हात ही इष्टानिष्ट बुद्धि समाप्त हो जायेगी और तब
कोई भी ससार की वस्तु सुभाषुभ न रहेगी फलन बीतराग भाव जायग होगा।
एकाग्र ध्यान होगा। आत्मनिष्ठा आयेगा। पर पन्थों का समझार विकल्पा का
उत्पादन है। अपन का समझाने स सब समझ जायगा। स्वयं तू यथास्थान हो सारा
ससार व्यवस्थित हो जायगा। तू अव्यवस्थित है स्वयं इगोत्रिपुत्र तुम विरव अर। ध्यान
दृष्टिगत हो रहा है। पन्था उगरी उत्पन्न म स्वयं की उत्पन्न भूमि कर उपम ही
उत्पन्न रहा है। क्या पराई भूमि का बो रहा है। रे ज्ञानि समझ समझ आता रूप।
दण आता रचना। यहिचान अपना धाम। निवास कर वही स्वयं आने म। बाह्य जो

होना है हान दे। हर विचार हो या राम जीव। कुछ भी रहे तु जन गहन पर है
मिम है संस्था निराशा है। निराशन्द है फिर उनम बना आना बना जगना क्या
बसना बना रचना ? पर ता पर ही है पर ही रहने। आना ही अना है अपन ता
आना ही स्तर है अपनी भूम ता पने हा स्वयं अपने ही ज्ञान व निश्चय। यह मेरा
है वह तेरा है वही भूम है म कुछ मेरा है म सरा है मे मे है मू मू है वग गही ज्ञान
है भू विज्ञान मन्वी परता। इस ही पा। विमन इस पा निगन बहु भव पार हा
आपना। हा इमन निप धर्य की आवश्यकता है। साहज चाहि। स्वाधान बना।
सिद्ध कृति धारण करो। आत्माबलम्बी बन बिना स्वाधीन सुख ज्ञान नहीं हा गचना
है। आत्माधी ही माधारी बन गचना है और या तारी हा आत्माधी। ममुगु अरन
ही म अपने को आरुना है कयो जी पचर म होना है पर हीरा हीर हा म है पत्तर
म तो मात्र महालय स बहु निया आना है।

उसी प्रकार जरीर म आत्मा है यह भी उपचार कथन है। आत्मन मे आत्मा
म आत्मा है। जरीर म जरीर है दोनों ही सवसा मिम है। एक परमाणु मात्र भी
व्यव हा एक दूसरे का न मिला है न मिल सकता है। यह ध्रुव अटल निश्चय है।
धीर सदब जगना है स्वयं सिद्ध है साधन है जिन प्रती में हू अचरित है।
यह एक जीव का विषय गुण है मन्वी है। आत्मधून मन्वी है अत्यं ज्ञान पुन।
इमे कभी भी आत्मा स मिम बिना नहीं जा सकना। आत्मा अविनाशी है अनासि स
मुद्गन भी जह स्वभाव है स्वयं रूप है। सयोभी है। दोनों ही भव है तभी ता मिल
गये मिल नहीं गये किन्तु मिल ही है। यह भी एक स्वभाव का विपरिणमन है जा
अनासि है। वस यही है मन्वी हेतु तीतरा रूप जब अनन वा। ह आत्मन जब समझ
इमे बिना समझे यह धून बनी रहनी और तम स्व-स्वरूप छष्ट हो भटकत रत्ताग।
कयो कुछ के कारण जुगते हो। जिन निधि की सोकर पर पदावी म भटक रहे हो।
यह तेरा निज रूप नहीं—स्वभाव नहीं। क्यों भूला है र अनासी। आप म आ जा।
अपनी कुछ कुछ समान से अपने म लग जा। पर वा सयोग रहे ता तेरा स्व-स्वभाव
प्रकट हो अदया नहीं।

आत्मन म वर्णित है ज्ञानी क बग्य नहीं होता। ठीक भी है, तोना ता नहीं
चाहिए अदया ज्ञानी और अज्ञानी म फिर अंतर ही क्या हुआ ? किन्तु समयभार म
गाथा न १७१ १७८ म कु-कु-दावाय महाराज करते हैं इस कारण ज्ञानी क
आत्मन है—बग्य है। यह जिनात्मन मे विरोधाभास कता और कयो ? यह विरोधा
भास (कता) नहीं है अपितु पथाय व्यवस्था है। रत्त-वष के जप-व क परिणमन २

॥ इसम जय अत्यं ज्ञान रूप विपरिणमन करता है इसी के चारित्र
(१) गानि क सद्भाव म ज्ञानी का बन्ध व आत्मनक कहा जाता है। य
के अभाव के कारण सत्सारावक नहीं है इसी लिए ज्ञानी
है। परिणाम कुटि व उत्तरात्तर वद्विमत होने से गुण-स्वान परि

पायी मे ठार ठार कर्माग्र बीर, यद्य हीन-हीन हाता जात है ।
 रागांत हाता है स्वल्प आसक्त हाता है और जिनने अक्षर मं ज्ञान
 रहणी है उनमें अक्षर मं आसक्त-बंध का अधान रहना है यह प्रमानुगत पं
 पाव स्वामी ने लिखा है—इत्यादि मं वि माह समचित्त ज्ञान स्वा
 नहीं कर सकता । किम प्रकार माता मत्त व्यक्ति वस्तु स्वरूप निगम
 सम्बन्धन न होने पर भी स्वानुभूति की उसके साथ सम श्रुति नहीं
 श्रुति है । जब स्वानुभव हाता तो सम्बन्धन उपमाग रूप है किन्तु
 अक्षर घट पत्रादि की अनुभूति भी रहती है उसमें कोई विरोध नहीं
 अक्षर-उद्गार-सम्बन्धन न साथ है । मतिज्ञान प्रसज्ज्ञान
 मानिक ज्ञान अपूर्ण है पूर्णता की अपेक्षा य सब पूरा है मानी अपने
 नहीं है । अर्थात् यथा कथात चारित्र्य न नहीं हान पर ज्ञान
 ज्ञान का यह कर्मकारी ही आसक्त की रूप बनती है । क्या-क्या
 जाता है आसक्त का प्रभाव माता, व्यक्ति भी कम-कम हाती
 ज्ञान अथवा वेगपूर्वक पुण्यावाधुनार सब कर्माग्र द्वार अक्षर
 हा जाता है पूर्व साधन कम पुत्र एक साथ मिल जते है
 मध्य ज्ञानपन स्वभाव का प्राप्त हा जाता है । यही
 का जित स्वल्प है । ह साधो । अनादि अक्षर विषय
 शुद्धि ज्ञान शुद्धि और चारित्र्य सद्धि का प्रफल करो
 की सफलता है । ठात अक्षरांत और कुछ विषयांत होने
 कम जितरा होकर पूरा शुद्धि हाता समर्थ है । पुण्याग्र
 है । प्रव गुप्तिमा का होना परमावस्था पुण्याग्र है ।
 सिद्ध करन में समर्थ होता है । गुप्तिमा की पूर्णता
 जाता है । सत्त्वमं रहित दत्ता ही अपनी आत्मा का
 विद्यान करा । बाह्य विद्यान क्रिया-काण्ड में आत्म सद्धि
 बाह्य उपायसम्बन्ध की आवश्यकता नहीं हाती । जित
 जित गुहन विविधार मत्त की पूर्ण स्वरूप अवसर है मात
 और हृद सत्त्व । आत्मा स्वयं यज्ञ करता है । ज्ञान ज्ञानि
 अक्षर है, तब का हवन कुछ रत्न-यज्ञ रूप नील कुछ है
 है, कुछ कम निम्न-समिधा है । कम एकाधिकत स अपने
 का प्रारम्भ करा सभार से पर होने में दर न मगनी । का
 विद्वान्निराध ध्यान पवन से उड़ जायती फिर समता रम
 जायगा कम मान रह जायगा कुछ सैन्य विद्रुप
 करता है । जित ज्ञान का प्राप्त ज्ञान पुन कम
 मध्य मात का प्राप्त होकर मन का काय सत्त्व का काय न
 पार हाता है स इस यज्ञ का तीव्रता में न नष्ट हो जाय ।

होते-होते पूर्ण शुद्धता हो जायेगी और आत्मा परमात्मा बन जायेगा । बहिरात्मा बुद्धि छोड़ो अन्तरात्मा बनो यहाँ कुछ काल स्थिति करना होगा रतत्रय भावना को परिष्कृत बनाने के लिए । फिर आगे बढ़ जाओ बड़ों और बड़ों ही जाना यहाँ धारण पारु हो जायेगा बस स्वयं अन्तरात्मा परमात्मा रक्षा में परिचयित हो जायेगा । इसी लिए तो भ्रुमोपयोग दशा बुद्धि पञ्चक धारण करना पर्यावश्यक है । बिना शुभ के बुद्धि नहीं हो सकती और बिना शुभ के पूर्ण परिष्कार बिना बुद्ध की सीमा पर नहीं पहुँचा जा सकता तथा वहाँ पहुँचे बिना जड़ आत्मज्ञान-परमात्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकती । फिर भला किस प्रकार शिव लाभ हो सकता है ? अथ प्रकार नहीं हो सकता ।

सततीतिवत्ता जा बहुत ओर बाड़ लगावे यह धन है अर्थात् आत्मा का विभाव भावों से रक्षण करे उसे सत बहने हैं । इसीलिए समारम्भानि आचार्य परमेश्वरी ने कहा है तत्त्वार्थ सूत्र में निम्नोक्त्यो वृत्ती अर्थात् माया मिथ्यात्व और निदान रूप इन तीन तत्त्वों से जो रहित है वही ज्ञानी हो सकता है । पृथिवी के तीनों आरम शतक है आत्मा का विभाव रूप परिचयन कराने वाली है । इनके परे आत्मा का स्व स्वभाव है । इनका त्याग आरम स्वभाव का ग्रहण है । आत्मा की बुद्धि बिना इनके त्याग नहीं हो सकती । वृत्ती होने बिना संसार दुःखोच्छ्रय नहीं हो सकता । अभी यह पञ्चम काल दुःखी के संपिन्नी काल रहा है इसका १८६ हजार वर्ष बाकी है पुन २१ हजार वर्ष का छठवाँ अर्थात् सुखमा काल जा रहा है पुन २१ हजार का छठाँ और २१ हजार का सप्तमन्तर ३६० काल आयगा । मध्यस्थ छठवें कालीन म ४२ हजार वर्षों तक धर्म राजा और अग्नि का लोप रहगा । समस्त जीव धर्म कम विहीन-भापी मात्ताहरी दुःखचरिणी होगी । जो जीव मनुष्य स्त्री या पुरुष इस समय निर्णय निरनिवार अनुग्रह भी प्राप्त करेगा वह सागरों की स्थिति शुभ स्वर्ग प्राप्त कर इन दुःखों में बचि हो सकते हैं यह सकते हैं जयया नहीं । ह अक्षयारमन् निमन धन धारण कर निर्णय पालन कर नू साधु है साधना म रत हा स्व-स्वभाव का विचार कर सत्तम्य में मुग्ध हो । अपने को तपाये बिना तुम्हारे अन्दर छुपा आरम बुद्धि प्रकट नहीं हो सकती है । सविनोत्पन्न करो । बिना संगार धर्म क भव सागर निरा नहीं जा सकता । आत्मा का वराय्य और सवेय दोनों ही हुना चाहिए । इनका बिना शरीर मोह कम नहीं हो सकता । शरीर वराय्य सर्वोपरि है । भोयो ॥ वराय्य ही भी जाय किन्तु शरीर वराय्य और भी कठिन है । या ता तीनों ही प्रकार के वराय्य कठिन साध्य है किन्तु तो भी एक दूसरे की लोका कमी बेसी है । जा ॥ बिना वराय्य और सवेय के म तो अनुग्रह धारण हो सक्त है और न यद्वायव ही । यदि धारण कर भी लिए तो पालन करना अति कुल्लेय है पालन भी दिये और साधनधार हूँ ता वह निरा राध का बोझ होने के समान है । उससे आश्रय एक नहीं सक्त । साधन निजरा भी हुन ता वह कोई कार्यकारी नहीं है । ह साधना । मध्यपन क राध मनन कर । गढ़ना उसम है किन्तु गुनना सर्वोत्तम है । बिना सुविचार के पठन का फल

[illegible]

होने-होते पूज शुद्धता हा जायेगी और आत्मा परमात्मा बन जायेगा । बहिरात्मा बुद्धि छोड़ो अन्तरात्मा बनो यहाँ कुछ काम स्थिति करना होगा, रजःत्रय भावना को परिपक्व बनाने के लिए । फिर आये बड़ जाओ बड़ो और बढ़ते ही जाना जहाँ जरम पाव हो जायेगा बस स्वयं अन्तरात्मा परमात्मा दशा में परिणमित हो जायगा । इसी लिए तो मुणोपयोग दशा बुद्धि पूजक धारण करना परमावश्यक है । बिना साध के बुद्धि नहीं हो सकती और बिना शुभ के पूज परिपाक बिना शुद्ध की गीमा पर नहीं पहुँचा जा सकता तथा वहाँ पहुँचे बिना जड़ आत्मन्त्रा-परमात्मन्त्रा प्राप्त नहीं हो सकती । फिर भला किस प्रकार जिव साध हो सकता है ? अब प्रकार नहीं हो सकता ।

तृतीयावस्था जो बहुत और बड़ा सगावे बहुत बन है अर्थात् आत्मा का विभाव भावों से रक्षण करे उसे इस कहते हैं । इसीलिए उपासना आचार्य परमेश्वरी ने कहा है तत्त्वायं भूय मे नि ज्ञानो वती' अर्थात् माया मिथ्यात्व और निदान रूप इन तीन तत्त्वों से जो रहित है वही ज्ञानी हो सकता है । चूंकि ये तीनों आत्म सातक हैं आत्मा का विभाव रूप परिणाम बनाने वाली हैं । इनसे परे आत्मा का स्व स्वभाव है । इसका त्याग आत्म स्वभाव का ग्रहण है । आत्मा की शुद्धि बिना इनके त्याग न नहीं हो सकती । ज्ञानी बने बिना ससार दुखोच्छेद नहीं हो सकता । अभी यह पञ्चम काल हुआ है सपिनी बन रहा है इसका १८½ हजार वर्ष बाकी है पुन २१ हजार वर्ष का छठवाँ अति दुःख का काल आ रहा है पुन २१ हजार का छठा और २१ हजार का तत्काल १५ काय आयेगा । मध्यस्थ छठवें काली म ४२ हजार वर्षों तक धम राजा और अग्नि का सौध रहना । समस्त जीव धम कम विहीन-भापी मामाहरी दुःखचरिणी होंगे । जो जीव मनुष्य स्त्री या पुरुष इस समय निर्णय निरतिचार अणु बन भी पालन करना नह सागरों की स्थिति भुज स्वयं प्राप्त कर इन दुःखों में दबित हो सकते हैं बच सकते हैं अवश्य नहीं । ह जम्भारमन्त्र निमग्न जग धारण कर निर्दोष पालन कर नू साधु हैं साधना म रत हा स्व-स्वरूप का विचार कर कसब्य में सुदृढ़ हो । अपने को सगावे बिना मुंहारे अन्तर छपा आत्म कुपण प्रकट नहीं हों सकता है । संवेगोत्पन्न करो । बिना संगार बय व भव सागर तिरा नहीं जा सकता । आत्मा का बराध्य और सबेव दोनों ही होना चाहिए । इनक बिना शरीर मोह कम नहीं हो सकता । शरीर बराध्य सर्वोपरि है । मोमो स बराध्य हो भी जाय किन्तु शरीर बराध्य और भी कठिन है । यो तो सीना ही प्रकार क बराध्य कठिन साध्य है किन्तु तो भी एक दूसरे की अपेक्षा कमी बेसी है । जो हो बिना बराध्य और सबेव के तो अनुष्ठान धारण हो सकत हैं और न महाव्रत ही । यदि धारण कर भी लिए तो पालन करना अति दुर्लभ है पालन भी किये और सातिचार

अथ जगत्त्रयं त्रिधा भवति अथ जगत्त्रयं त्रिधा भवति अथ जगत्त्रयं त्रिधा भवति

श्री जिनैव ने रूप सावण्य का वजन आकाशों कृत
 व्यवहार मिथ्या है यह भी पाया जाता है । कोई व्यवहार को
 है । कही व्यवहार निश्चय का साधक उत्तिष्ठित है । इस प्रकार
 सामान्य जनों को भ्रांति पदाकर देती है । किंतु यदि सम्यक्
 विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो समस्त शास्त्रों का निरसन
 है । एकांतपथी व्यवहार मिथ्या व अमूल्य है । किंतु
 निश्चय का साधक होने में उपादेय भूतार्थ है । यथा पुण्य ही
 जातीय का उत्सर्जन व कर विचारने पर पाप समान है ।
 कोई भेद नहीं है किंतु विशेषापेक्षा विचार करने
 साधक है और निरनिशय सत्ता का कारण है ।

मुनातीति आत्मानमिति पुण्यां जो आत्मा को
 परिभाषा पुण्य को उपादेय सिद्ध करती है इससे
 नहीं । क्योंकि परम्परा से मोक्ष का हेतु है ।
 स्वल्प स्पष्ट हो जाना है । एक ही पक्ष को लेकर
 शंका रहता । अस्तु अपेक्षाकृत वस्तु स्वरूप ही
 वस्तु है । स्व की सम्पत्ति है । अतः का प्रकाश
 भावासाय सत्य वृत्ति है । मनोभिलाषा होना तो
 गिरा करता यह स्व-मुक्त्यार्थ है । अस्तु साधना है
 पीद्वानिह है कमजोर है । कम का सम्बन्ध क्या
 क्या है ? समीचीन है । दो पृथक् पक्षों में ही
 स्पष्ट कर देनी है कि आत्मा और कम दोनों
 सांस्कारित सम्बन्ध नहीं है । अस्तु नीर नीरवृत्ति
 हारी है । आत्मा को प्रभावित अवश्य विद्ये हुए
 कम भिन्न है । दाना का सत्त्व स्वभाव गुण
 छ माघो विचार कर लेनी सत्त्वा भिन्न
 है । यदि एक हो जाय तो अव्यक्तता ही न
 या ७ व इत्येव हा ज्ञेये । पर ऐसा युक्ति
 है । यही विशेष महत्त्व की चीज है । इसे
 जना होता ही चक्षुः । ही तत्त्व निर्भवानुसार
 नहीं तो तत्त्व निश्चय कुछ कर नहीं
 सम्बन्धन और ज्ञान अवस्थाभासी की है ।
 भवतीय है-हो भी और नहीं भी हो ।
 ने पुनरावृत्ति विदुषाव मे विद्या है कि विषय
 का भाव हा उनी समय तत्त्व कारण कर जना

बाद के बिना गठोवर नहीं रह सकता उसी व्रत धारण बिने बिना जीव नहीं पनप सकता । धात्र की रक्षा बाध से है । बाध नहीं तो मनु प्रवेश नहीं कर सकता उसी प्रकार व्रतों से बिना जीव मयम धारित ज्ञान दहन रूप रत्नो की रक्षा दुर्लभ है । हे भाई व्रत धारण करो और बलन भी करो । धारणा और बलना ही जीवन की साधना है । जीवन की महानता और साधनता है । यही मानव धर्म है ।

एक प्रश्न है आत्मा है क्या ? आत्मा एक इच्छा है । एक इच्छा है । क्या ५ इच्छा ? क्या तब ? पर इच्छा में एक निराशा और नश्वरत्वों में एक अन्तिम अनुपम इच्छा अस्तित्व ही अपने स्वयं का अनुठा है । जब जब है पर यह अवेला चतन्य स्वमान से कभी च्युत नहीं होता । अन्तर-अन्तर अविनश्य और चिरन्तन है । इसका अपना स्वयं रूप अपने में है । अन्तर इच्छा भी अपने-अपने में स्वतन्त्र है । सब भिन्न भिन्न है । सत्य स्वयं स्वतन्त्र है । सभी इच्छाओं में आत्मा जीव और भुक्तान से हो तत्त्व मा हम अपने-अपने स्वरूप से च्युत हो प्रयोगी दशा को प्राप्त हैं जब कि अन्य चारों इच्छा तिरस्तर शुद्ध स्वभाव में ही रहने हैं । कभी विकसित नहीं होते । जीव और भुक्तान भिन्न-भिन्न विकसित होते हैं । विकार युक्त होने से स्व-स्वरूप से विवर्तित हो जाते हैं विभाव रूप परिभाषन करते हैं । वभाविक परिधि ही ससार परिघमण का कारण है । यह विभाव जब तक है तभी तक ससार है दुःख और बन्धन है । जिस काल आत्मा और जब कम नाश का विभाजन होमा उस समय मटठा और मक्खन घृत की भाँति दोनों सबका अलग अलग हो जायेंगे । उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा न के मिल हो सकेंगे । एक बार शुद्धावस्था की प्राप्ति आत्मा पुनः अशुद्ध दशा प्राप्त नहीं कर सकता यह सब सत्य है । यही सचाय है ।

आत्मा का धर्म क्या है ? आत्मा स्वयं आत्मा में ही स्थित है । उसी के असंख्यता प्रवेश उस का धर्म है । अपनी इच्छा का यह कभी उत्सर्जन नहीं करता । और करेगा भी नहीं । आत्मा सत्त्वान अपने में ही स्वयं अवस्थित है । यह है निश्चय की अपेक्षा शुद्ध स्वभाववेष्टा । व्यवहार न्यायेष्टा आत्मा का धर्म को भी निश्चित नहीं है । कर्मावृत्त आत्मा परतन्त्र है पर प्रेरणा से उसे यत्न-सत्त्व निराम करता रहता है । नाम धर्म की बलवत्ता से वह जसा स्कूल गुरुम गरीर पाला है उनसे ही प्रमाण में सकोच या विस्तार रूप हाकर टहरता है । मतिनाम कम चारों गतिधो में विहार करता है जिस गति में जिस आकार से करीर धिला उसी हितान से आत्मा लघु लीच हलका भारी भोग-वनना आदि अनेक रूपों में विवर्तन हो जाता है । इस स्थिति में इसका कोई भी रूप या आकार निश्चित नहीं कहा जा सकता । यह है आत्मा के धर्म की सचाय सबका सार यही है कि अशुद्धावस्था का धर्म नाश और अनेक प्रकार है किन्तु शुद्धावस्था का एक निश्चित धर्म है । अन्तिम गरीर से कि चित्त-मन पुरुषाधार तिरसोक के आभास प्रदेशों में स्थित या एक असंख्यता प्रदेशों में स्थित । यह है सत्त्व सत्त्वसार का निर्मल अपना चिर धर्म निवास स्थान शुद्ध निरन्तर निश्चिकार ।

श्री जिनदेव के रूप सावध्य का वणन आचार्यों कृत उपलब्ध होता है। इधर व्यवहार मिथ्या है यह भी पाया जाता है। कोई व्यवहार को अभूताय कह देय कहते हैं। कही व्यवहार निश्चय का साधक उत्तिष्ठित है। इस प्रकार की कथन प्रणालिगी सामान्य जनो को भ्रान्ति पदाकर देती है। किन्तु यदि सम्यक प्रकार सूत्र दृष्टि से विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो समस्त शंकाओं का निरणन स्वयमेव हो जाता है। एवातपत्नी व्यवहार मिथ्या व अभूताय हेय है। किन्तु सादे। सत्य व्यवहार निश्चय का साधक होने में उपादेय भूतार्थ है। यथा पुण्य ही है। सामान्य स कर्म जातीय का उत्संघन न कर विचारने पर पाप समान है। दोनों में कम सामान्यावेना कोई भेद नहीं है किन्तु विशेषावेना विचार करने पर सातिशय पुण्य भुक्ति का साधक है और निरतिशय सत्ता का कारण है। पुण्यानुबन्धी पुण्य का लक्षण ही है पुनातीति आत्मानमिति पुण्यां जो आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं। यह परिभाषा पुण्य को उपादेय सिद्ध करती है। इससे आत्मबुद्धि में बड़ा साधक है बाधक नहीं। क्योंकि परम्परा से मोक्ष का हेतु है। इस प्रकार अपेक्षाकृत विचार करें तो यथार्थ स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। एक ही पक्ष को लेकर यदि बैठे रहें तो काय मित्र नहीं हो सकती। अस्तु अपेक्षाकृत वस्तु स्वरूप ही यथार्थ हो सकता है। ज्ञानाबोध निश्चय वस्तु है। स्व की सम्पत्ति है। अस्त का प्रकाश है। हृदय की प्रफुल्लता प्रमूत है। मनकासार सत्य वसि है। मनोभिन्नाया होना तो एक नैतिक है परन्तु उमका सत्य गित करना यह स्व गुरुपार्थ है। आत्म साधना है। आत्म तत्त्व का प्रार्थन है। मन पीदुयानिष्ठ है कमजोर है। कम का सम्बन्ध क्या आत्मा से है? हाँ जी है तो सही। क्या है? सयोगी है। जो पृथक् पृथक् में ही संयोग सम्बन्ध होगा है। यह प्रक्रिया स्पष्ट कर देती है कि आत्मा और कम दोनों भिन्न भिन्न हैं। इनका परस्पर कोई शरकारित सम्बन्ध नहीं है। अपितु गीर नीरवत् सयोग है। यही प्रक्रिया आत्मा पर हावी है। आत्मा को प्रभावित अवश्य विद्ये हुए हैं। आत्मा स्वयं स्वयं पुण्य है बर्म भिन्न है। दोना का लक्षण स्वभाव गुण बर्म भिन्न भिन्न है सवया भूना है। हे साधो विचार कर देखो सवया भिन्न पृथक् में शंकीकरण किस प्रकार हो सकता है। यदि एक हो जाय तो न्यस्तता तो न रहेगी। फिर तो ९ के स्पास पर ५४ या ७ ८ द्रव्य हो जायेंगे। पर ऐसा भुक्ति प्रमाण है न हुआ और न हो हो सकता है। यही विशेष मर्द की बीज है। इसे समझना ही तत्त्व का परिज्ञान है। तत्त्व विवेचना होना ही चाहिए। हाँ तत्त्व निर्णयानुसार क्रिया होना परमावश्यक है। क्रिया नहीं तो तत्त्व निर्णय कुछ कर नहीं सकता। जहाँ क्रिया चारित्र सम्बन्ध है वहाँ सम्बन्धन और ज्ञान अवलम्बनी की है। किन्तु सम्यक्त्व के रहने ज्ञान चारित्र भवतीय है-तो भी और नहीं भी हो। चारित्र परमावश्यक है। श्री भगवत्-शास्त्रार्थ में गुरुपार्थ मित्रवृत्त व विद्या है कि द्विष सपद जहाँ भी लक्ष्य चारण करने का भाव हो उसी समय तत्त्व चारण कर लेना चाहिए। वन सीमा है। परिधि है।

घाट के बिना सरोवर नहीं रह सकता उसी वत धारण किये बिना जीव नहीं पनप सकता। धात्र की रक्षा बाढ़ से है। बाढ़ नहीं तो पक्ष प्रवेश नहीं कर सकता उसी प्रकार वनो से बिना शीत मयम आरिष ज्ञान पचन रूप रत्नों की रक्षा दुःख है। हे भाई वत धारण करो और पावन भी करो। धारणा और वाचना ही जीवन की साधना है। जीवन की महानता और साधकता है। यही मानव धर्म है।

एक प्रश्न है आत्मा है क्या? आत्मा एक सत्व है। एक इच्छा है। क्या इच्छा? क्या तब? एत इच्छो म एक निराशा और नवतत्त्वों म एक अद्वितीय अनुपम इसका अस्तित्व ही अपने रूप में अनुठा है। सब अह है पर यह अहना पतन्य स्वभाव से कभी भ्रुन नहीं होता। अजर-अमर अविनश्य और अमर्यता है। इसका अपना स्वरूप स्वयं अपने म है। जय इच्छा भी अपने-अपने म स्वतन्त्र हैं। सब भिन्न भिन्न हैं। सत्य स्वयं स्वतन्त्र है। छ, इच्छो म आत्मा जीव और पुनर्जन य दो तत्व या इच्छा अपने-अपने स्वरूप से भ्रुन हुए प्रयोगी दशा को प्राप्त हैं जय कि अय चारों इच्छा निरंतर शुद्ध स्वभाव में ही प्रवृत्त हैं। कभी विकारी नहीं होते। जीव और पुनर्जन भिन्न-भेद विरक्त होते हैं। विचार युक्त होने से स्व-स्वरूप से विभक्तित हो जाते हैं विभाव रूप परिणामन करते हैं। अभाविक परिणाम ही सत्ता परिभ्रमण का कारण है। यह विभाव जब तक है तभी तब सत्ता है दुःख और क्लेश हैं। जिस काल आत्मा और जड़ वम नाकम का विभाजन होगा उस समय मटठा और मखन घृत की भांति दोनों मध्या अलग अलग हो जायेंगे। उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा न वे मिल ही सकेंगे। एक बार शुद्धावस्था को प्राप्त आत्मा पुनः अशुद्ध दशा प्राप्त नहीं कर सकता यह धर्म सत्य है। यही यथाथ है।

आत्मा का धर्म कौन है? आत्मा स्वयं आत्मा म ही स्थित है। उसी के असम्पान प्रवेश उस का धर्म है। अपनी इच्छा का वह कभी उत्पन्न नहीं करता। और करेगा भी नहीं। आत्मा सदाकाल अपने म ही स्वयं अवस्थित है। यह है निश्चय की अपेक्षा शुद्ध स्वभावोपेक्षा। व्यवहार मयवेक्षा आत्मा का धर्म कोई भी निश्चित नहीं है। कर्मवृत्त आत्मा परतन्त्र है पर प्ररणा से उसे यत्न-तन्त्र निवास करना पड़ता है। नाम वम की व्यवस्था से वह जमा स्थूल सूक्ष्म शरीर पाता है उतने ही प्रमाण म सकोच या विस्तार रूप होकर ठहरता है। गतिनाम वम चारों गतिमो में विहार करता है जिस गति म जिन आचर से शरीर मिला उसी द्विजाय से आत्मा लक्ष दीप्त हुनका भारी मोटा-पतना आत्मा अनेक रूपों म विभक्त हो जाता है। इस स्थिति में इसका कोई भी रूप या आकार निश्चित नहीं कहा जा सकता। यह है आत्मा की क्षेत्र की चर्चा सबका धार यही है कि अशुद्धात्मा का धर्म ज्ञान और अनेक प्रकार है किन्तु शुद्धात्मा का एक निश्चित धर्म है। अन्तिम शरीर में कि विज्ञान-यन पुरुषाकार सिद्ध लोक के आकाश प्रदेशों में स्थित या स्व अमर्याद प्रदेशों म स्थित। यह है निम्न समयवार का निर्मल अपना फिर धर्म निवास स्थान शुद्ध निरजन निर्विकार।

धी जिनमेव के रूप सावण्य का वगन आचार्यों कृत उपनयन होता है। इस प्रकार व्यवहार मिथ्या है यह भी पाया जाता है। कोई व्यवहार को अभूताय कह देय कहते हैं। कही व्यवहार निश्चय का साधक उल्लिखित है। इस प्रकार की कथन प्रणालि सामान्य जनो को भ्रांति पदाकर देती है। किन्तु यदि सम्यक प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो समस्त शंकाओं का निरसन स्वयमेव हो जाता है। एनातपक्षी व्यवहार मिथ्या व अभूताय हेय है। किन्तु साधेन सत्य व्यवहार निश्चय का साधक होने में उपादेय भूतार्थ है। यथा पुण्य ही है। सामान्य से कर्म जातीय का उत्पन्न न कर विचारने पर पाप समान है। दोनों में कम सामान्यपेक्षा कोई भेद नहीं है किन्तु विशेषापेक्षा विचार करने पर सातिभय पुण्य मुक्ति का साधक है और निरनिशय ससार का कारण है। पुण्यानुबन्धी पुण्य का लक्षण ही है 'पुनातीति आत्मानमिति पुण्यो' जो आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं। यह परिभाषा पुण्य को उपादेय सिद्ध करती है। इससे आत्ममुक्ति में वह साधक है वाचक नहीं। क्योंकि परम्परा से मोक्ष का हेतु है। इस प्रकार अपेक्षाकृत विचार करें तो यथार्थ स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। एक ही पक्ष को लेकर यदि बैठे रहें तो काय मिथ्य नहीं हो सकता। अस्तु अपेक्षाकृत वस्तु स्वरूप ही यथार्थ हो सकता है। ज्ञानाद्योपनिषद् वस्तु है। स्व की सम्पत्ति है। अतः का प्रकाश है। हृदय की प्रकृतलता प्रसून है। मनकासार सदा वृत्ति है। मनोभिरापा होना तो एक नैसर्गिक है परन्तु उनका तंत्र भिन्न करना यह स्व पुरुषार्थ है। आत्म साधना है। आत्म तत्त्व का प्रमाण है। मन पीदुमानिव है कमजब है। कम का सम्बन्ध क्या आत्मा से है? हाँ जी है तो सही। कता है? सयोगी है। दो पृथक् पक्षों में ही संयोग सम्बन्ध होता है। यह प्रक्रिया गणन कर देनी है कि आत्मा और कम दोनों भिन्न भिन्न हैं। इनका परस्पर कोई संस्कारित सम्बन्ध नहीं है। आपत्तु गिर नीरवत् संयोग है। यही प्रक्रिया आत्मा पर हावी है। आत्मा को प्रभावित अवश्य किये हुए है। आत्मा स्वयं स्वयम्पुष्प है कर्म भिन्न है। दोना का न तत्र स्वभाव गुण सर्व भिन्न भिन्न है सर्वदा भूत है। हे साधो विचार कर देखो सबका भिन्न पक्षों में शङ्कीकरण किस प्रकार हो सकता है। यदि एक हो जाय तो व्यवस्था ही न रहेगी। फिर तो ६ के स्थान पर २४ या ७८ इत्येव हो जायेंगे। पर ऐना मुक्ति प्रमाण से न हुआ और न ही हो सकता है। यही विशेष महत्त्व की चीज है। इसे समझना ही तत्त्व का परिज्ञान है। तत्र विवेचना होना ही चाहिए। ही तत्त्व नियमानुसार किया होना परमावश्यक है। जिना नहीं तो तत्त्व निर्णय कुछ कर नहीं सकता। जहाँ किया-चारित्र सम्बन्ध है वहाँ सम्बन्धन और ज्ञान अवश्यव्यवहारी की है। किन्तु सम्बन्धन के रहने ज्ञान चारित्र भवतीय है-ही भी और नहीं भी है। चारित्र परमावश्यक है। धी अवगन्तायार्थ ने पुरुषान विदुषाव ये जिना है कि विषय सब जहाँ भी सब वारण करने का भाव है। उसी समय तत्त्व चारित्र कर लेना पड़ता है। वही सीमा है। वही है। //

घाट के बिना सरोवर नहीं रह सकता उसी वत धारण किये बिना जीव नहीं पनप सकता । तब की रक्षा बाध से है । बाढ़ नहीं तो मनु प्रवेश नहीं कर सकता उसी प्रकार वनों से बिना जीव समय प्रारिण ज्ञान दखन रूप रलों की रक्षा दुर्लभ है । हे भाई वन धारण करो और पक्षन भी करो । धारणा और बालना ही जीवन की साधना है । जीवन की महानता और साधकता है । यही मानव धर्म है ।

एक प्रश्न है आत्मा है क्या ? आत्मा एक सत्व है । एक द्रव्य है । क्या द्रव्य ? क्या तत्त्व ? पट द्रव्यो म एक निराला और नवतुल्यो म एक अद्वितीय अनुगम द्रव्य का अस्तित्व ही अपन ॥ का मनुठा है । सब जग हैं पर यह अकेला चतुर्थ स्वभाव म कभी च्युत नहीं हाना । अजर-अमर अविमल और चिरन्तन है । इसका जगुना स्वरूप स्वयं अपने म है । अथ द्रव्य भी अपने-अपन ॥ स्वतन्त्र है । सब भिन्न भिन्न हैं । सत्य स्वयं स्वतन्त्र है । छठ द्रव्यो म आत्मा जीव और पुद्गल ये दो तत्व या द्रव्य अपन अपन स्वरूप म च्युत हो सयोगी दशा को प्राप्त हैं जब कि अथ चारों द्रव्य निरन्तर शुद्ध स्वभाव में ही रहते हैं । कभी विकृती नहीं होते । जीव और पुद्गल मिलकर विकृत होते हैं । विकार युक्त होने से स्व-स्वरूप से विभक्ति हो जाते हैं विभाव रूप परिणाम करते हैं । कर्माविक परिणाम ही ससार परिभ्रमण का कारण है । यह विभाव जब तक है तभी तक ससार है दुःख और क्लेश हैं । जिस काल आत्मा और जग कम लोकम का विभाजन होगा उस समय पट्टा और भस्मन भूत की भाँति दोनों सबका अलग अलग हो जायेंगे । उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा न वे मिल ही सकेंगे । एक बार शुद्धावस्था को प्राप्त आत्मा पुन अशुद्ध दशा प्राप्त नहीं कर सकता यह धर्म सत्य है । यही यथार्थ है ।

आत्मा का धर्म कही है ? आत्मा स्वयं आत्मा म ही स्थित है । उसी के असम्प्राप्त प्रवेश उस का धर्म है । अपनी इच्छा का वह कभी उत्सर्जन नहीं करता । और करेगा भी नहीं । आत्मा सगुणाल अपने म ही स्वयं अवस्थित है । यह है निश्चय की अपेक्षा शुद्ध स्वभावोपेक्षा । व्यवहार नयापेक्षा आत्मा का धर्म कोई भी निश्चित नहीं है । कर्मावृत्त आत्मा परतन्त्र है पर प्रेरणा म उसे यत्र-तत्र निवास करना पड़ता है । नाम कम की अपनता से यह जसा स्थान सूक्ष्म शरीर पाया है उतने ही प्रमाण से सकोच या विस्तार रूप होकर ठहरता है । यतिनाम वम चारों मनियो में विहार कराना है जिस गति म जिस आनन्द म शरीर मिला उसी हिमाव से आत्मा सब दीप हृदय भारी माग-मनना आदि अनेक रूपों म विभक्त हो जाता है । इस स्थिति में इसका कोई भी रूप या आकार निश्चित नहीं कहा जा सकता । यह है आत्मा के क्षेत्र की चर्चा सबका सार यही है कि अशुद्धात्मा का धर्म नाना और अनेक प्रकार है किन्तु शुद्धात्मा का एक निश्चित धर्म है । अन्तिम शरीर से कि पित-मृत्युन पुराणाकार सिद्ध लोक के आकाश प्रदेशों म स्थित या स्व अवस्थान प्रदेशों म स्थित । यह है निमित्त समपचार का निर्मल अपना बिरे धर्म निवास स्थान शुद्ध निरन्तर निर्विकार ।

श्री विनये के रूप साधन का वर्णन आचार्यों कृत उपाध्याय होना है। इधर
 आनन्दार मित्र है यह भी पाया जाता है। कोई व्यवहार को अभूताय कह देय कहते
 हैं। कहीं व्यवहार निश्चय का साधक उत्तिगति है। इस प्रकार की कथन प्रणालि
 सामान्य जाते को भ्रान्ति पैदाकर देती है। किन्तु यदि सम्यक प्रकार सूत्र दृष्टि से
 विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो समस्त शंकाओं का निरसन स्वयमेव हो जाता
 है। एकाग्र ही व्यवहार मिथ्या व अभूताय हेय है। किन्तु साधे साध व्यवहार
 विषय का साधक होने में उपादेय भूतार्थ है। यथा पुण्य ही है। सामान्य से कम
 आनीय का उत्सव न कर विचारने पर पाप समान है। दोनों में कम सामान्यतेया
 कोई भेद नहीं है। किन्तु विवेकापेक्ष विचार करने पर सातिशय पुण्य मुक्ति का
 साधक है और निरतिशय सगार का कारण है। पुण्यानुबन्धी पुण्य का लक्षण ही है
 'पुनानीति आत्मानमिति पुण्या' जो आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं। यह
 परिभाषा पुण्य की उपाधेय सिद्ध करती है। इससे आत्ममुक्ति में वह साधक है बाधक
 नहीं। क्योंकि परम्परा से मोक्ष का हेतु है। इस प्रकार अपेक्षाकृत विचार करें तो वयार्थ
 स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। एक ही पक्ष को लेकर यदि बैठे रहें तो काय सिद्ध नहीं
 हो सकता। अस्तु अपेक्षाकृत अस्तु स्वरूप ही वयार्थ हो सकता है। ज्ञानाबोध निज
 वस्तु है। स्व की सम्पत्ति है। ज्ञान का प्रकाश है। हृन्मय की प्रकृतता प्रमून है।
 भावासाय सदा वलि है। मनोमिलावा होना तो एक नैसर्गिक है परन्तु उसका सप
 भित्त वरना यह स्व-बुद्धयार्थ है। आत्म साधना है। आरम तत्त्व का प्रवर्ति है। मन
 मोक्षवर्ति है कमजोर है। कम का सम्बन्ध क्या आत्मा से है? हाँ जी है तो सही।
 क्या है? समोपी है। दो पृथक पदार्थों में ही संयोग सम्बन्ध होता है। यह प्रक्रिया
 स्पष्ट कर देती है कि आत्मा और कम दोनों भिन्न भिन्न हैं। इनका परस्पर कोई
 सार्वभारित सम्बन्ध नहीं है। आपतु गिर मोरवन् संयोग है। यही प्रक्रिया आत्मा पर
 जारी है। आत्मा को प्रभावित अवश्य किये हुए हैं। आत्मा स्वयं स्वतन्त्र पुण्य है
 कर्म भिन्न है। दोना का लक्षण स्वभाव गुण धर्म भिन्न भिन्न है सबका ज्ञा है।
 हे साधो विचार कर लेतो सबका भिन्न पदार्थों में शंकीकरण किस प्रकार हो सकता
 है। यदि एक ही जाय तो द्रव्यसत्ता ही न रहेगी। फिर तो ६ के स्थान पर ५४
 या ७८ द्रव्य हो जायेंगे। पर ऐसा मुक्ति प्रमाण से न हुआ और न हो ही सकता
 है। यही विशेष महत्त्व की चीज है। इसे समझना ही तत्त्व का परिज्ञान है। तत्त्व विवे
 चना होना ही चाहिए। हाँ तत्त्व निष्पत्तानुसार क्रिया होना परमावश्यक है। क्रिया
 नहीं तो तत्त्व निष्पत्त कुछ कर नहीं सकता। जहाँ क्रिया चारित्र सम्पन्न है वहाँ
 सम्पन्नजन और ज्ञान अवश्यम्भासी की है। किन्तु सम्पत्त के रहते ज्ञान चारित्र
 भजनीय है-हो भी और नहीं भी हो। चारित्र परमावश्यक है। श्री अमनचन्नाचार्य
 ने पुण्यादि सिद्धयुक्त में लिखा है कि विम समय जहाँ भी सदाय धारण करने
 का भाव हो उसी समय तत्त्व धारण कर लेना चाहिए। प्रत सीमा है। परिधि है।

घाट के बिना सरोवर नहीं रह सकता उसी वत घाटण दिने बिना जीव नहीं पनप सकता । पौध की रखा वाड़ से है । बाड़ नहीं तो पशु प्रवेश नहीं एक सकता उसी प्रकार वता से बिना मोन स्वयं चारित्र ज्ञान दखन हय रत्नों की रखा दुतम है । हे भाई वत घाटण करो और पम्पन भी करो । घाटणा और वासना ही जीवन की साधना है । जीवन की महानता और साधकता है । यही मानव धर्म है ।

एक प्रश्न है आत्मा है क्या ? आत्मा एक उत्त्व है । एक दृष्य है । क्या दृष्य ? कृता त व ? घट द्रव्यों म एक निरामा और नवतत्त्वों में एक अन्तिम अनुपम इसका अस्तित्व हो अपन डग का बनूठा है । सब जड़ हैं पर यह थकेला अतम स्वभाव से कभी च्युत नहीं होता । अजर-अमर अविनश्वर और चिरन्तन है । इसका अपना स्वरूप स्वयं अपन म है । नव दृष्य भी अपने-अपन म स्वतन्त्र है । सब भिन्न भिन्न हैं । सतुन स्वयं स्वतन्त्र हैं । छह द्रव्यों म आत्मा जीव और पुण्यल य दा तत्व या दृष्य अपने-अपन स्वरूप म च्युत हा सरोबो दशा को प्राप्त हैं जब कि अन्य चारा दृष्य निरन्तर शुद्ध स्वभाव में ही रहते हैं । कभी विचारी नहीं होते । जीव और पुण्यल दिनकर विकृत होते हैं । विचार चुन छाने से स्व-स्वरूप से विचरित हो जाते हैं विभाव रूप परिणामन करते हैं । कर्माधिक परिणाम ही समार परिभ्रमण का कारण है । यह विभाव जब तक है तभी तब समार है दुःख और श्तेम है । जिस कान आत्मा और जड़ कम मोकम का विभाजन होगा उस समय घटटा और धक्कन घुत की भांति दोनों मरवा अलग भलग हा जायेंगे । उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा न वे मिल हो सकेंगे । एक बार शुद्धावस्था को प्राप्त आत्मा पुन अशुद्ध दशा प्राप्त नहीं कर सकता यह ध्रुव सत्य है । यही यथाथ है ।

आत्मा का धन कहाँ है ? आत्मा स्वयं आत्मा म ही स्थित है । उसी के असम्प्रात प्रभेद उस का धन है । अपनी इच्छा का वह कभी उत्सर्जन नहीं करता । और बरेगा भी नहीं । आत्मा सगुणान अपने में ही स्वयं अवस्थित है । यह है निश्चय की अपेक्षा शुद्ध स्वभावोपेक्षा । व्यवहार मयापेक्षा आत्मा का धन कोई भी निश्चित नहीं है । कर्मद्वारा आत्मा परतन्त्र है पर प्रख्या म उसे यत्र-तत्र निवास करना पड़ता है । नाम रम की असक्तता से वह जसा स्थान भूमि शरीर पाना है उनसे ही प्रमाण में सकोच या विस्तार रूप होकर ठहरता है । गतिनाम रम चारों मतियों में विहार करता है त्रिष गति म त्रिष आनर से शरीर मिता उसी हिमाव से आत्मा सध दीध हुनका मारी भोग-भोगा आदि अनेक कथों म विभक्त हो जाता है । इस स्थिति में उनका कोई भी रूप या आकार निश्चित नहीं रहता या सकता । यह है आत्मा के धन की कथा सबसे सार यही है कि अशुद्धात्मा का धन नाना और अनेक प्रकार है किन्तु शुद्धात्मा का एक निश्चित क्षेत्र है । अन्तिम शरीर मे कि कितु-न्यून पुण्याकार सिद्ध भोक्त के आवाहक प्रभेदों म स्थित या स्व असम्प्रात प्रभेदों म स्थित । यह है निमित्त समयधार का निर्भर अपना विर धन विकास स्थान जड़ निरन्तर निर्विकार ।

श्री जिनदेव के रूप सावण्य का वषण आचार्यों कृत उपसम्य होता है। इस व्यवहार मिथ्या है यह भी पाया जाता है। नाई व्यवहार को अभूताप हेय कहते हैं। कही व्यवहार निश्चय का साधक उत्तिष्ठित है। इस प्रकार की वषण प्रचारियां सामान्य जनों को भ्रान्ति पदाकर देती हैं। किन्तु यदि मर्मक प्रकार सूत्र दृष्टि से विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो समस्त शंकाओं का निरस्तन स्वयमेव हो जाता है। एकांतपक्षी व्यवहार मिथ्या व अभूताप हेय है। किन्तु सापेक्ष सत्य व्यवहार निश्चय का साधक होने में उपादेय भूतार्थ है। यथा पुण्य ही है। सामान्य से कर्म जातीय का उत्सर्जन न कर विचारने पर पाप समान है। दोनों में कम सामान्यापेक्षा कोई भेद नहीं है किन्तु विशेषापेक्षा विचार करने पर सातत्य पुण्य मुक्ति का साधक है और निरतिशय सत्ता का कारण है। पुण्यानुबन्धी पुण्य का लक्षण ही पुनातीति आत्मानमिति पुण्यां" जो आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं। यह परिभाषा पुण्य को उपादेय सिद्ध करती है। इससे आत्ममुक्ति में बड़ा साधक है बाधक नहीं। क्योंकि परम्परा से मोक्ष का हेतु है। इस प्रकार अपेक्षाकृत विचार करें तो यथार्थ स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। एव ही पक्ष को लेकर यदि बैठे रहें तो बाध मिट नहीं जा सकता। अस्तु अपेक्षाकृत वस्तु स्वरूप ही यथार्थ हो सकता है। ज्ञानाबोध निश्चय वस्तु है। स्व की सम्पत्ति है। अन्त का प्रकाश है। ह्यय की प्रकृतलता प्रभूत है। मनकासार सत्य वृत्ति है। मनोभिलाषा होना तो एव नैसर्गिक है परन्तु उसका संतानित करना यह स्व-पुरुषार्थ है। आत्म साधना है। आत्म तत्त्व का प्रवर्णन है। मन पीड्यानिष्ठ है कमजब है। कम का सम्बन्ध क्या आत्मा से है? हाँ जी है तो नहीं। क्या है? सयोगी है। जो पृथक् पन्थाओं में ही संयोग सम्बन्ध होता है। यह प्रिया स्पष्ट कर देती है कि आत्मा और कम दोनों भिन्न भिन्न हैं। इनका परस्पर कोई संस्कारित सम्बन्ध नहीं है। आपनु नीर नीरवत् संयोग है। यही प्रिया आत्मा पर हावी है। आत्मा को प्रभावित अवश्य निम्ने हुए है। आत्मा स्वयं स्वयं व पृथक् है कम भिन्न है। जाना का लक्षण स्वभाव कुछ धर्म विम्व विम्व है मन्त्रा भूत है। हे साधो विचार कर देखो मन्त्रा विम्व पन्थाओं में जाड़ीकरण किस प्रकार हो सकता है। यदि एक हो जाय तो न्यसत्ता ही न रहेगी। फिर तो १ के स्थान पर १५ या ७८ प्रत्यक्ष हो जायेंगे। पर ऐसा मुक्ति प्रमाण से न हुआ और न हो ही सकता है। यही विशेष महारथ की बीज है। इसे समझना ही तत्त्व का परिज्ञान है। तत्त्व विवेचना होता ही चाहिए। हाँ तत्त्व निश्चयानुसार किया होना परमावश्यक है। किया नहीं तो तत्त्व निर्णय कुछ कर नहीं सकता। जहाँ किया चारित्र सम्बन्ध है वहाँ सम्पत्ति न और ज्ञान अवगम्यकारी की है। किन्तु सम्पत्ति के रखने ज्ञान चारित्र भवनीय है-तो भी और नहीं भी हो। चारित्र परमावश्यक है। श्री अमरनाथनाथ ने पुरुषार्थ मिट्टुता में किया है कि जिस समय जहाँ भी लक्ष्य कारण करो का भाव हो उसी समय तत्त्व कारण कर लेना चाहिए। इन तीनों है। १२६ है।

घाट के बिना सरोवर नहीं रह सकता उसी वस्तु कारण बिना भीष नहीं पना सकता । धन की रक्षा बाढ़ से है । बाढ़ नहीं तो पशु प्रवेश नहीं एक तबना उसी प्रकार जनों से बिना जीवन मरण आरिज ज्ञान टुकन कम दलों की रक्षा दुनम है । हे भाई धन कारण करो और वासन भी करो । धारणा और वासना ही जीवन की सधना है । जीवन की महानता और साधकता है । यही मानव धर्म है ।

एक प्रश्न है आत्मा है क्या ? आत्मा एक मूल है । एक इच्छा है । क्या ५ इच्छा ? क्या ११ व ? यह इच्छाओं में एक निराशा और मरणस्थों में एक अग्निमय अनुभूति इत्यादि अस्तित्व हो अपन स्वयं का अनुभूति है । सब जग है पर यह महता बनग्य स्वभाव से कभी च्युन नहीं होना । अजर-अमर अविनाश और चिरमन है । इनका ज्ञाना स्वल्प स्वयं अपन में है । अन्य इच्छा भी अपने-अपन में स्वयंमय है । सब भिन्न भिन्न हैं । सपन स्वयं स्वतन्त्र है । छः इच्छाओं में आत्मा जीव और पुरुषत ये दो मूल्य मा इच्छा अपन-अपन स्वयंमय में च्युन हैं । जगोनी दशा को प्राप्त है जब कि अन्य चारों इच्छा निरस्त हो शुद्ध स्वभाव में ही रहता है । कभी विचरती नहीं जाती । जीव और पुरुषत मितर विरक्त होते हैं । विचार युक्त होने से स्व-स्वयं से विचरित हो जाते हैं विभाव रूप परिणामन करते हैं । विभाविक परिणाम ही सगार परिणामन का कारण है । यह विभाव जब तक है तभी तक सगार है दुःख और क्लेश है । त्रिप्त काल आत्मा और जब कम नोकम का विभावजन होगा उस समय मटटा और मयचन घन की भाँति दोनों मयका अलग अलग हो जायेंगे । उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा न वे मिल ही सकेंगे । एक बार शुद्धावस्था को प्राप्त आत्मा पुन अशुद्ध वस्था प्राप्त नहीं कर सकता यह धर्म सत्य है । यही स्याय है ।

आत्मा का क्षेत्र कहाँ है ? आत्मा स्वयं आत्मा में ही स्थित है । उसी के अस्तित्वगत प्रत्येक उस का क्षेत्र है । अपनी इच्छा का बट कभी अस्तित्व नहीं करता । और कदगा भी नहीं । आत्मा सगाराल अपने में ही स्वयं अवस्थित है । यह है निश्चय की अपेक्षा शुद्ध स्वभावपेक्षा । व्यवहार मयापेक्षा आत्मा का क्षेत्र कोई भी निश्चित नहीं है । कमाचुन आत्मा परतन्त्र है पर प्ररणा से उस क्षेत्र-क्षेत्र निवास करना पड़ता है । नाम कम की बनवता से बट जसा स्वयं सूक्ष्म शरीर पाता है उनसे ही प्रमाण में सबोध या विस्तार रूप होकर टहरता है । गतिनाम कम चरों गतिमो में विहार करता है जिस गति में जिस आकार से शरीर मिला उसी हिसाब से आत्मा लघु दीप हनका भारी मोटा-पनला आदि अनेक रूपों में विभक्त हो जाता है । इस स्थिति में इनका कोई भी रूप या आकार निश्चित नहीं कहा जा सकता । यह है आत्मा के क्षेत्र की चर्चा सबका तार यही है कि अशुद्धात्मा का क्षेत्र जाना और अनेक प्रकार है किन्तु शुद्धात्मा का निश्चित क्षेत्र है । अन्तिम शरीर से कि चित्

सद लोक
गमन

में स्थित या स्व
म अपना चिर क्षेत्र निवास

तार
है
तार

श्री जिनमेव के रूप सावण्य का वशन आचार्यों इत उपलब्ध होता है। इस
 व्यवहार मिथ्या है यह भी पाया जाता है। कोई व्यवहार को अभूताय कह दिये रहते
 हैं। कहीं व्यवहार निश्चय का साधन उत्पत्ति है। इस प्रकार की वचन प्रणालियाँ
 सामान्य जनो को भ्रांति पगकर देती हैं। किन्तु यदि सम्यक् प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से
 विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो समस्त शंकाओं का निराशन स्वयमेव हो जाता
 है। एकांतपक्षी व्यवहार मिथ्या व अभूताय हेय है। किन्तु सापेक्ष सत्य व्यवहार
 निश्चय का साधन होने में उपादेय भूतार्थ है। यथा पुण्य ही है। सामान्य से कर्म
 जातीय का उत्पन्न न कर विचारन पर पाप समान है। दोनों में कम सामान्यपेक्षा
 कोई भेद नहीं है किन्तु विशेषापेक्षा विचार करने पर साक्षात् पुण्य मुक्ति का
 साधन है और निरनिशय ससार का कारण है। पुण्यानुबन्धी पुण्य का भजन ही है
 पुनातीति आत्मानमिति पुण्यां जो आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं। यह
 परिभाषा पुण्य को उपादेय सिद्ध करती है इससे आत्मशुद्धि में बड़ा साधक है बचक
 नहीं। मयोवि परम्परा से मोक्ष का हेतु है। इस प्रकार अपेक्षाकृत विचार करें तो वचार्थ
 स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। जब ही पक्ष को लेकर यदि बैठे रहें तो काय सिद्ध नहीं
 हो सकता। अस्तु अपेक्षाकृत वस्तु स्वरूप ही वचार्थ हो सकता है। ज्ञानाबोध निर
 वस्तु है। स्व की सम्पत्ति है। अन्त का प्रकाश है। इन्द्र की प्रकृति प्रमूत है।
 मनकासार सदा वसति है। मनोमिताया होना तो एक नैमित्तिक है परन्तु उमका तत्त्व
 भिन्न करना यह स्व पुष्पाय है। आत्म साधना है। आत्म तत्त्व का प्रमाण है। मा
 पीदुयातिव है कमजब है। कम का सम्बन्ध क्या आत्मा से है? हाँ जी है तो नहीं।
 कसा है? सयोगी है। दो पृथक् पृथक् में ही सयोग सम्बन्ध होता है। यह प्रक्रिया
 स्पष्ट कर देती है कि आत्मा और कर्म दोनों भिन्न भिन्न हैं। इनका परस्पर कोई
 संस्कारित सम्बन्ध नहीं है। अपितु भीर नीरक्त संयोग है। यही प्रक्रिया आत्मा पर
 हावी है। आत्मा को प्रभावित अवश्य किये हुए है। आत्मा स्वयं स्वयम् पुष्य है
 कर्म भिन्न है। दोनों का संगण स्वभाव गुण धर्म भिन्न भिन्न है सवय भूत है।
 हे साधो विचार कर देखो सवय भिन्न पृथक् में शरीररूप किम प्रकार हो सकता
 है। यदि एक ही जाय तो इन्द्रियता ही न रहेगी। फिर तो ६ के स्थान पर २।
 या ७ = इन्द्रिय हो जायेंगे। पर ऐम्ह मुक्ति प्रमाण से न हुआ और न ही भजना
 है। यही विशेष महत्त्व की चीज है। इसे समझना ही तत्त्व का परिज्ञान है। अन्य विवे
 चना होना ही चाहिये। हाँ तत्त्व निष्कानुसार किया होना परमावश्यक है। किया
 नहीं तो तत्त्व निर्णय कुछ कर नहीं सकता। जहाँ किया जातिव तत्त्व है वहाँ
 सम्यग्दर्शन और ज्ञान अवश्यभारी की है। किन्तु सम्यक्त्व के रहने ज्ञान परित
 भ्रमणीय है-तो भी और नहीं भी हो। पारिव परमावश्यक है। श्री भगवद्गीता
 में पुरुषाय मिदमुपाय मे विद्या है कि विन सदा जहाँ भी सवय करे क
 का भाव हो उसी समय तत्त्व धारण कर लेना चाहिये। हाँ सीधा है। परित

घाट के बिना सरोवर नहीं रह सकता उसी वत धारण किये बिना जीव नहीं पनप सकता। सोन की रक्षा बाढ़ से है। बाढ़ नहीं तो पशु प्रवेश नहीं कर सकता उसी प्रकार वनों से बिना जीवन मयम चारित्र्य ज्ञान दक्षन रूप रत्नों की रक्षा दुर्लभ है। हे भाई वत धारण करो और पालन भी करो। धारणा और पालन ही जीवन की साधना है। जीवन की महानता और साधकता है। यही मानव धर्म है।

एक प्रश्न है आत्मा है क्या? आत्मा एक सत्त्व है। एक द्रव्य है। कसा द्रव्य? कसा तत्त्व? पद द्रव्यों में एक विराता और मयतत्त्वों में एक अद्वितीय अनुपम द्रव्यका अस्तित्व ही अपने डग का अनुष्ठान है। सब जग हैं पर यह अकेला चतुर्व्य स्वभाव सु कभी च्युत नहीं होता। अजर-अमर अविनाशक और चिरन्तन है। इसका अपना स्वरूप स्वयं अपने में है। अय द्रव्य भी अपने-अपने में स्वतन्त्र हैं। सब भिन्न भिन्न हैं। सत्त्व स्वयं स्वतन्त्र हैं। छद्म द्रव्यों में आत्मा जीव और पुद्गल ये दो तत्त्व या द्रव्य अपने-अपने स्वरूप से च्युत हो मयागी दशा को प्राप्त हैं जब कि अय चारों द्रव्य निरन्तर कुछ स्वभाव में ही रहते हैं। कभी विकारी नहीं होते। जीव और पुद्गल भिन्न-भेद विभक्त होते हैं। विचार मुक्त होने से स्व-स्वरूप से विभक्त हो जाते हैं विभाव रूप परिणाम करते हैं। अभाविक परिणाम ही ससार परिणाम का कारण है। विभाव जब तक है तभी तब ससार है दुःख और क्लेश हैं। जिस काल आत्मा और जब कम नोकम का विभाजन होगा उस समय मट्टा और मच्छन घृत की भांति दोनों मयका अन्तः अन्त हो जायेंगे। उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा न के मिल हो सकेंगे। एक बार शुद्धावस्था को प्राप्त आत्मा पुनः अशुद्ध दशा प्राप्त नहीं कर सकता यह धर्म सत्य है। यही यथाथ है।

आत्मा का धर्म कदा है? आत्मा स्वयं आत्मा में ही स्थित है। उसी के असंख्य प्रणेत उस का धर्म है। अपनी इच्छा का यह कभी उत्तथन नहीं करता। और करेगा भी नहीं। आत्मा सत्त्वान्तर अपने में ही स्वयं अवस्थित है। यह है निश्चय की अपेक्षा शुद्ध स्वभावार्थ। अवहार न्यायता आत्मा का धर्म कोई भी निश्चित नहीं है। कर्मातु आत्मा परतन्त्र है पर प्रेरणा से उम यत्न-तन्त्र निवास करना पड़ता है। नाम धर्म की सम्यक्ता में यह जसा स्थान मूलम शरीर पात्रा है उतने ही प्रमाण में मकोच या विचार का होकर टहरता है। अनिनाम धर्म चारों गतियों में विहार करता है जिस गति में जिन आकार से शरीर मिला उसी हियाव से आत्मा लक्ष दीप हुएका भारी मोटा-मथमा आदि अनेक रूपों में विभक्त हो जाता है। इस स्थिति में हमका कोई भी रूप या आकार निश्चित नहीं कहा जा सकता। यह है वा मा के धर्म की कर्त्ता सबका मार रही है कि अजुडात्मा का धर्म नाम और अनेक प्रकार है विभु अजुडात्मा का एक निश्चित धर्म है। अनिम शरीर में कि विन्-मन पुण्याकार तित मोच के आवाज प्रणेतों में स्थित या स्व अग्रगण्य प्रणेतों में स्थित। यह है धर्म सम्यक्ता का निर्मल अपना चिर धर्म निवास स्थान शुद्ध निरन्तर निविकार।

उस हेतु का वृत्तान्त मुक्ति का द्वार है और उगने छ राग ? परम मुक्ति ।
हेतु ज्ञान का ईश्वर मेरा उगने ज्ञानो ही ज्ञानी ज्ञाना अपने को ज्ञानो जाने
॥ ज्ञाने अपने वृत्तान्त विज्ञान में ही ज्ञान जानो वृत्त ॥ ही वृत्त जानो । यही है ज्ञान
ज्ञान ज्ञान मान विज्ञान ही ज्ञाना ।

आत्मा आत्मा गुण समुद्र का सागर है । परन्तु यदि स्वयं का स्वयं अपनी
पूनी का भाव न हो तो भाव उगता वह उगे क्या मिलेगा ? कुछ नहीं । भाव
क्या बना रहेगा । भाव उगता वह का भाव है । भूताना है । फिर क्या करना ?
प्रथम आत्मा पूनी का ध्यान । कर उग जान करे और पुन उगता उगता प्रयोग कर ।
तदाभात वृत्त की उगता हाती । आत्मा पाग बीज है भूमि है परन्तु मेरी है यह
विज्ञान नहीं तो कुछ नहीं । प्रथम आत्मा विज्ञान होना चाहिए कि मेरी जमीन और
भूमि है । पुन बीज बीज है जमीन जमीन है विज्ञान ज्ञान जाने योग्य है किम प्रकार
का भूमि व भाव है विज्ञान का भाव होना चाहिए इत्यादि का परिज्ञान होना चाहिए
पुन तदनुसार किया करता होगा । जमीन शुद्धिकर्षण करता पुन वहीं पर जाना
जहाँ बाधा चाहिए । पुन उस भावना आत्मा किया करना चाहिए । सब करके भा
उगता पहला देना होगा । यदि ऐसा बाधा नहीं समायो तो वही समायो सनी उगता
जायगी सा जायगा । उभी प्रकार आत्म गुण विकास की भी प्रक्रिया है । प्रथम आत्मा
परमात्मा हो जाता है यह शब्दान हो पुन उनका स्वरूप का परिज्ञान हो । वरमान
वशा और भावो पारलमन का ज्ञान हो तदनन्तर सम्मक चरित्र किया हो तब वह
स्वरूप प्राप्त होगा ।

निश्चय सम्मकत्व की सिद्धि करना है तो व्यवहार सम्मकत्व का आशय तो ।
सारागता व बिना सारागता नहीं आ सकता । बीनरागता के ज्ञान पर वहाँ सारागता
निक नहीं सकती यह नियम है । बिना पुष्प व फल नहा आ सकता किन्तु फल के
आते ही पुष्प नहीं रह सकता । प्रकृति का यह नियम है कारण के बिना कार्य नहीं
होता और कार्य के हान पर कारण नहीं रह सकता । हे आत्मन् कार्य सिद्धि व हेतुओं
के पात ही कार्य सिद्धि करने का प्रयत्न कर कारणों की उन्नतन में पड़ने की आव
श्यकता नहीं । कारण तो स्वयं हटते ही जायेंगे । अपन अन्तरङ्ग माह रावन्द व पर
विजय कर । समाहित चित्त हाते ही इष्टानिष्ट बुद्धि समाप्त हो जायेगी और तब
कोई भी ससार की वस्तु शुभाशुभ न रहेगी फलन बीनराग भाव जाग्रत हागा ।
एकाग्र ध्यान हागा । आत्मनिष्ठता आयेगी । पर पापों का समकार विकल्पा का
उत्पादन है । अपन का सम्हालन से सब सम्हाल जायगा । स्वयं ही यथास्थान हो सारा
ससार व्यवस्थित हो जायगा । तू अव्यवस्थित है स्वयं इसीलिए तुम विश्व अव्यवस्थित
दृष्टिगत हो रहा है । फलत उगती उन्नतन में स्वयं की उन्नतन भूम कर उगता
उन्नत रहा है । वर पराई भूल का डो रहा है । वे जानिन् समस्त समस्त अपना
दम अपना स्वरूप । पहिचान अपना घाम । विज्ञान कर वहीं स्वयं अपने में ।

होता है जान दे। हर्ष विचार हुआ या राग भोग। कुछ भी रहे मू उन सबन पर है
 भिन्न है सबका निराशा है। निराशा है फिर उनम क्या जाना क्या फंगना क्या
 बमना क्यों रमना ? पर ता पर ही है पर ही रहने। भाग ही भाग है अपने म
 आना ही स्तर है अपनी भूम म फंगे ॥ स्वर्न अपने ही जान म निराशा। यह धरा
 है वह तेरा है यही भूम है न कुछ मरा है न तेरा है मे मे है मू मू है बग गही जान
 है भन विज्ञान सच्चा परत। इस ही वा। जिसने इन वा निरा वह भव पार ॥
 आवेगा। ही इगन निर धय की आवश्यकता है। माहम बाह्य। स्वाधीन बना।
 सिंह वृत्ति धारण करा। आत्माबन्धनी बन बिना स्वाधीन गुण प्राप्त नहीं हो सकता
 है। आत्माधी ही मागधी बन सकता है और मा गधी ही आत्माधी। मनुष्य अपने
 ही म अपने को साजना है क्या जो पत्थर म हांग है पर हीरा हीर ही म है पत्थर
 म तो भाग महापय स वह निया जाना है।

छनी प्रकार शरीर में आत्मा है यह भी उपचार कवन है। वास्तव में आत्मा
 म आत्मा है। शरीर म शरीर है दोनों ही सबका भिन्न है। एक परमाणु भाग भी
 अन्य का एक कुरारे का म मिला है म मिल सकता है। यह प्रब भटन निवध है।
 भीव सदाव अवेना है स्वय निष्ठ है जानपन है त्रिन प्रत्नों म ही अवस्थित है।
 यह एक जीव का विशेष गुण है लक्षण है। आत्मधुन सधाय है अत्यन्त जान पुत्र।
 इन कभी भी आत्मा स भिन्न बिदा नहीं जा सकता। आत्मा अविनाशी है अनादि स
 पुद्गल की जड़ स्वभाव है स्वय रूप है। सयोभी है। दानों ही भाव है सभी तो मिल
 गये मिल नहीं मये किन्तु मिले ही है। यह भी एक स्वभाव का विपरिणमन है जो
 अनादि है। वस यही है मसार हेतु तीसरा रूप जड़ बनन का। ह आत्मन् अब समस्त
 इस बिना समस्त यह धूम बनी रहणी और गुम स्व-स्वरूप भ्रष्ट हो भ्रष्ट रहनाय।
 क्यों कुछ के कारण जुटात हो। निज निधि का साकर पर पदाओं म भटक रहे हुए।
 यह तेरा निज रूप नहीं—स्वभाव नहीं। क्यों भूना है रे अनादी। आप म आ जा।
 अपनी शुध-बुध संभाल मे अपने म लग जा। पर का सयोव रहे तो तेरा स्व-स्वभाव
 प्रकट हो अवस्था नहीं।

आगम म वर्णित है जानी क बध नहीं जाना। ठीक भी है होना तो नहीं
 चाहिए अथवा जानी और अजानी म फिर अन्तर ही क्या हुआ ? किन्तु मयस्सर म
 गाथा म १७१ १७२ म क्रुन्द-क्रुदाभाव महाराज करते हैं इस कारण जानी क
 आत्मव है—बध है। यह जिनात्म म विरोधाभास कसा और क्या ? यह विरोधा
 भास (कसा) नहीं है अपितु यथाव अवस्था है। रत्न वम क जयय रूप परिणमन
 काल में जान-सायोवम अन्य आप जान रूप विपरिणमन करता है इसी के कारण
 यह अन्य राग-पाणि क सधुभाव म जानी का बन्ध क आत्मवक कहा जाता है। य
 अभाव के कारण ससारवक नहीं है, इसी लिए जानी
 १) कहा है। परिणाम सति क असारवक अविनाशिक म अमर-अमृत-अमि-

पाटी में ऊपर ऊपर कर्मात्मक और वध हीन-हीन हात जाते हैं । जितने अश्व म रागाश होता है स्वल्प आश्रय होना है और जितने अश्व में ज्ञान भाव जानानुभूति रहती है उतने अश्व में आश्रय-वध का अभाव रहता है यह क्रमानुगत परम्परा है पूज्य पाद स्वामी ने लिखा है—इष्टापदेश म कि मोह समन्वित ज्ञान स्वभाव को प्राप्त नहीं कर सकना । किस प्रकार मनो मत्त व्यक्ति वस्तु स्वरूप निषेध नहीं कर पाता । सम्पत्ति म होने पर भी स्वानुभूति की उससे साथ सम श्रोप्ति नहीं है किन्तु विषम श्रोप्ति है । जब स्वानुभव होगा तो सम्पत्ति उपयोग रूप है किन्तु स्वानुभव के साथ भाव घट पटादि की अनुभूति भी रहती है उसमें कोई विरोध नहीं है । यही बात जय-य छद्मस्थ सम्पत्तिज्ञान व साथ है । मतिज्ञान अतज्ञान अवधि ज्ञान आदि साधन शक्ति ज्ञान अपूर्ण है पूर्णता की अपेक्षा य सब भूत है पानी अपने शुद्ध स्वभावमय नहीं है । अर्थात् यथा क्वात चारित्र्य व नहीं हान पर ज्ञान अधूरा ही है और इस ज्ञान की यह कमजोरी ही आश्रय की हस्त बननी है । ज्यो-ज्यो ज्ञान स्वस्थ होता जाता है आश्रय का प्रभाव माना शक्ति भी कम-कम होती जाती है । तब ज्ञान ज्ञान अपना वेगपूर्वक पुष्पायानुसार सब कर्मात्मक द्वार क्रमशः अथवा एक साथ बंद हो जाते हैं पूर्व साधित कम पुत्र एक साथ सिर जाते हैं और आत्मा स्वयं अपने निज बभूव ज्ञानपत्र स्वभाव का प्राप्त हो जाता है । यही स्व स्वकरोपनस्थि है । आत्मा का निज स्वरूप है । हे साधो ! अनादि अशुद्ध विषयव परिचयि को माइता है तो भाव शुद्धि ज्ञान शुद्धि और चारित्र्य शुद्धि का प्रयत्न करो । अधिक विकास ही पूरा विकास की शक्तता है । ठास अभ्यास और दुःख विषयात् होने पर एक साथ लक्ष्य रूप से भी कम निर्वेरा होकर पूरा शुद्धि होना संभव है । पुष्पाय की प्रवृत्ति ही हममें प्रभुत्व है । जब गुणिया का होना परमात्मकता पुष्पाय है । गुणिय गुण साधु ही परमाय की गिद्ध करने में समर्थ होता है । गुणिया की पूर्णता होने-हान आत्म स्वरूप प्रकट होना जाता है । सबदमें रहित दशा ही अपनी आत्मा का आत्म है । हे आत्मन् आत्म यज्ञ विधान करो । बाह्य विधान क्रिया-काण्ड से आत्म शक्ति नहीं हो सकती । इन बात में बाह्य द्रव्यावलम्बन की आवश्यकता नहीं होती । किसी साधन समय की जरूरत है न बिना मुह्यन नियन्त्रण मान की पुन स्वतंत्र अवसर है भाव बाह्य मनोव्यव धर्मिक और इष्ट सफल । आत्मा स्वयं यज्ञ वर्ता है । ज्ञान अतोनि ही उपाय है शुभन-कथान बन्धि है तब का हवन पुष्ट रत्न-यज्ञ रूप तीन पुष्ट है चारों आराधनाएँ चार दोरक है, शुद्ध कम निज-नु समिधा है । कम एकाग्रचित्त से अपने य स्वयं अपने भाव यज्ञ का प्रारम्भ करा सत्कार से पर होना में दर न मरणा । कारिमा बाध हा बाधनी भयम विन्नातिराध ध्यान पवन से जब जाउगी फिर समता रम करी की माइनी में पुत्र जायेगा कम भाव रह जायेगा शुद्ध चैन य चित्ररूप जानाराम । यही मा ज्ञान धन रूपता है । एसा जड़ ज्ञा के प्राप्त न पा पुन कथ कायिया मुक्त नहीं होती । अन्य भाव के प्राप्त होकर और न काय तब उी रूप में रहेगा । बनार दुला ने पार होना है ता इस यज्ञ का तीनों में सन्त है बाध । धीर धीर परिणाम शुद्ध

होते-होते पूर्ण शुद्धता हा जायेगी और आत्मा परमात्मा बन जायेगा । वहिरात्मा बुद्धि छाडा अन्तरात्मा बनो यहाँ कुछ काल स्थिति करना होगा । रतत्रय भावना को परिपक्व बनाने के लिए । फिर आगे बढ़ जाओ बड़ो और बड़ते ही जानो जहाँ परम शक्त हो जायेगा वस स्वयं अन्तरात्मा परमात्मा दशा में परिणमित हो जायेगा । इसी लिए तो सुभोपयोग दशा बुद्धि पक्क धारण करना परमावश्यक है । बिना शुभ के बुद्धि नहीं हो सकती और बिना शुभ के पूरा परिपाक बिना बुद्ध की सीमा पर नहीं पहुँचा जा सकता तथा वहाँ पहुँचे बिना शुद्ध आत्मज्ञान-परमात्मदशा प्राप्त नहीं हो सकती । फिर प्रश्न जिस प्रकार शिव साध हो सकता है ? अब प्रकार नहीं हो सकता ।

‘व्रततोतिव्रतं औ चहुँ ओर बाढ़ लगावे बहु जन है अर्थात् आत्मा का विभाव भावों से दशाएँ करे उसे व्रत कहते हैं । इसीलिए समास्काति आकाश परमेष्ठी ने कहा है तत्सार्थं मूत्रं मे नि शस्यो व्रती’ अर्थात् माया मिथ्यात्व और निदान रूप इन तीन शक्त्या से जो रचित है वही व्रती हो सकता है । चूँकि ये तीनों आत्म शक्त हैं आत्मा का विभक्त रूप परिशोधन कराने वाली हैं । इनसे परे आत्मा का स्व स्वभाव है । इनका त्याग आत्म स्वभाव का ग्रहण है । आत्मा का बुद्धि बिना इनके त्याग व नहीं हो सकती । व्रती बन बिना सगार वृत्तोंच्छेद नहा हा सकता । यही यह पञ्चम काम हुआ जो अपिनी चल रहा है इसका १८३ हजार वर्ष बाकी हैं पुन २१ हजार वर्ष का छठवाँ अग्नि दुःसमा काल आ रहा है पुन २१ हजार का छठाँ और २१ हजार का सप्तमतर श्वी काल आयेगा । मध्यस्थ छठव काल म ४२ हजार वर्षों तक धर्म राजा और अग्नि का सोप रहना । समस्त जीव धर्म कम विहीन-पापी भाँसाहरी दुःखचरित्री होमे । जो जैसे मनुष्य स्त्री या पुत्र इस सपथ निर्णय निरतिधार अण जन भी पालन करेगा वह सावरी की स्थिति युन स्वयं प्राप्त कर इन दुःखों में वक्षित हा सबते हैं अब सकते हैं ब यथा नहीं । हे भक्त्यात्मनू निमल मन धारण कर निर्णय पालन कर नू साधु है साधना म रत हा स्व-स्वरूप का विचार कर कलम्य मं मुहक हो । अपने का तपावे बिना तुम्हारे अन्दर छुपा आत्म कुल्ल प्रकट नहीं ॥ सकता है । नवियोत्पन्न करो । बिना सगार मय व भव मानद निरा नहीं आ सकता । आत्मा का वराध्य और सवय दानो ही होना चाहिए । इनका बिना शरीर माह कम नहीं ॥ सकता । शरीर वराध्य सर्वोपरि है । लोगों का वैराध्य हो भी आय विष्णु शरीर वैराध्य और भी कठिन है । या हा तीनों ही प्रकार के वैराध्य कठिन साध्य है किन्तु तो भी एक हजार की अपेक्षा कमी बेगी है । जो ॥ बिना वैराध्य और सवय के न तो अनुग्रह प्राप्त हा सकते हैं और न महाप्रण हा । यदि धारण कर भी लिए तो पालन करना अग्नि दुःसम है पालन भी किय और साधिवार ता वह निरा वरी का बोझ डाने व समान है । उसका आखर एक नहीं सकता । अब निवरा या ॥ तो कल कोई, कामवादी नहीं है । हे प्राणा ! अभ्यसन के साथ मनन । पठना उत्तम है विष्णु बनना सर्वोत्तम है । बिना मुक्तिवार के पठन का फल

होने-होते पूष शुद्धता हो जायेगी और आत्मा परमात्मा बन जायेगा । बहिरात्मा बुद्धि छोड़ो अन्तरात्मा बनो यहाँ कुछ काल स्थिति करना होगा । रतत्रय भावना को परिष्कृत बनाने के लिए । फिर आगे बढ़ जाओ बड़ो और बढ़ते ही जाना जहाँ चरम पाव हो जायेगा तब स्वयं अन्तरात्मा परमात्मा दशा में परिणमित हो जायगा । इसी लिए तो भुभोपयोग दशा बुद्धि पूर्वक धारण करना परमावश्यक है । बिना शुभ के बुद्धि नहीं हो सकती और बिना शुभ के पूष परिष्कार बिना शुद्ध की सीमा पर नहीं पहुँचा जा सकता तथा वहाँ पहुँचे बिना शुद्ध आत्मज्ञान-परमात्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकती । फिर भला किस प्रकार शिव लाभ हो सकता है ? अब प्रकार नहीं हो सकता ।

वस्तुतः जो बहुत और बाढ़ लगावे वह वस्तु है अर्थात् आत्मा का विभाव भावों से रक्षण करे उसे वस्तु कहते हैं । इसीलिए उमास्वाति आचार्य परमेश्वरी ने कहा है तत्त्वार्थ भूष में नि ज्ञानो व्रती अर्थात् भाषा मिथ्यात्व और निदान रूप इन तीन शक्तियों से जो रहित है वही व्रती हो सकता है । यही कि ये तीनों आत्म वातक हैं आत्मा का विभाव रूप परिष्करण कराने वाली हैं । इनसे परे आत्मा का स्व स्वभाव है । इनका त्याग आत्म स्वभाव का ग्रहण है । आत्मा की शुद्धि बिना इनके त्याग व नहीं हो सकती । व्रती बने बिना ससार दुःखो-छा नहीं हो सकता । अभी यह पञ्चम काल हुआ है सपिनी चल रहा है इसका १८५ हजार वष बाकी हैं पुनः २१ हजार वष का छठवाँ अति दुःख का काल आ रहा है पुनः २१ हजार का छठा और २१ हजार का सप्तमतर श्राव काल आयेगा । मध्यस्थ छठवें काला में ४२ हजार वर्षों तक घम राजा और अग्नि का लोभ रहता । समस्त जीव घम कम विहीन-पापी भाराहरी दुःखारित्री होंगे । जो जीव मनुष्य स्त्री या पुरुष इन समय निर्दोष निरतिचार अणु घम भी पालन करेगा वह सागरों की स्थिति युग स्वयं प्राप्त कर इन दुःखों में बचित हो सकते हैं बच सकते हैं अथवा नहीं । ह भव्यात्मन निमग्न बन धारण कर निर्दोष पालन कर गू साधु है साधना में रत हो स्व-स्वरूप का विचार कर कृतार्थ में सुदृढ़ हो । अपने को तपावे बिना तुम्हारे अन्दर छरा आत्म कुम्भन प्रकट नहीं हो सकता है । सबयोत्पन्न करो । बिना ससार भय क भव सागर निरा नहीं जा सकता । आत्मा का बराध्य और सवग दोनों ही होना चाहिए । इनके बिना शरीर मोह कम नहीं हो सकता । शरीर बराध्य सर्वोपरि है । भोगों से बराध्य ही भी जाय किन्तु शरीर बराध्य और भी कठिन है । या तो तीनों ही प्रकार के बराध्य कठिन साध्य है किन्तु तो भी एक दूसरे की अपेक्षा कभी बेसी है । जा हो बिना बराध्य और सवग के न तो अनुग्रह धारण हो सकते हैं और न महाग्रह हो । यदि धारण कर भी लिए तो पालन करना अति दुःख है पालन भी चिद और साविचार हुए तो वह निरा गद्य बोने के समान है । उससे आसन्न एक नहीं सकता । साधक निजरा भी हृद साधकरी नहीं है । इ साधो ! अभ्यसन-क साधक वर । यदना उत्तम है

मयावन नहीं मिल सकता। दूध अच्छा है वही उत्तम है उसका मयना ओर श्रेष्ठ है किंतु पूरा मयन किये बिना मयन पाना बर्नि दुःख है। इससे भी अधिक उम मयन का रक्षण दुःखभर और फिर भोगना दुःखमय है। वस यही बात है आत्म तत्त्वोपनिषद् के विषय में वन धरो उगका स्वरूप समझो उसको यथा योग्य क्रिया दित करो उगके दोनों को समझा प्रतिनिधि उनका विचार विमर्श करो। प्रत्येक वन के बितने अनिवार है वहाँ वहाँ लग सकते हैं उनसे बचन का क्या उपाय है? किस प्रकार क्रिया करने से उनसे रक्षण हो सकता है। उनकी भावना कीन कीन है। प्रत्येक भावना का प्रतिनिधि बार बार विचार करो। हर क्षण उधर सत्य रहने का प्रयास करो। बार बार चिन्तन ही भावना है। अनादि के अविरत रूप परिणाम सरलता से नहीं छूट सकते हैं। ॥ आत्मन् स्वात्म भावना का विचार करो तो स्वात्म स्वरूप की प्राप्ति हो सकती है अथवा नहीं। आत्म स्वरूप जान बिना अन्य ज्ञान कुछ भी नहीं निस्सार है। आत्म ज्ञान होने पर भी अन्य ज्ञान कुछ नहीं है। ह भाई व्यो त्यों कर आत्मज्ञान भग्नविज्ञान जायत कर। लोभ का संवरण करो। लोभ कपाय बत चारित्र की घातक है। लोभाम् भिभूत जीव अयत्र स्थित नहीं ॥ सकता लोभाविष्ट प्राणी का विवेक नष्ट हो जाता है। मान मयाग का विवेक नहीं रहता। विषय-कषायों से दृष्टि नहीं हटता। भक्षाभय विवेक नहीं रहता हिताहित विवेक नष्ट हो जाता है। दाय और अयाय का भेद समाप्त प्राय हो जाता है। आज के संसार में लोभ का व्यापार बड़ी तेजी से बढ़ता जा रहा है। यह प्रया लोभ का प्रबल रूप है। इस दुष्णा के चपुल में कसा मानव दानव बनता जा रहा है। राक्षस रूप धारण करने में तनिक भी नहीं शर्माना भय और सज्जा से दूर हटता जा रहा है। हिसक बन क्रूर परिणामी होने से तनिक भी भय नहीं है। सुशील, शीलवती सुन्दर सुयाम्य कथाओं के जीवन से खिलवाड़ करने वाले सभी क्रूर मानव उनसे अछ विकसित जीवन का असाध्य में ही समाप्त करने में नही हिचकिचाते। यह है भयकर लोभ का प्रत्यक्ष साक्ष्य। परिवार के परिवार धराशायी हो रहे हैं। दुखी हैं सदास्त हैं अपमान तथा भी कर डालत हैं भला इससे बढ़कर लोभ का क्या प्रदर्शन हो सकता है?

मनोविकार आत्मविकार के प्रमुख कारण हैं। मानसिक संतुलन बिगड़ने ॥ आत्मा सदा नहीं रहे सज्जी। मन की दोड़ दड़ने पर ही आत्मस्थिति आ सकती है। यद्यपि आत्मा स्थितप्रज्ञ हो ॥ वह तो अचन अकल्प निमल और निर्विकार ही है परन्तु मन के निमित्त से उत्तम माना विकार का प्रादुर्भाव होता है। मन की चञ्चलता इन्द्रियों की चञ्चलता का कारण है और मन इन्द्रियों की दोड़ है आत्मा की स्थिति का दूत। यह क्रम अनानि से है। इतना गहरा है कि आत्मा के स्वभाव विभाव का पुष्कररण करना अगाध्य सा प्रयास हो रहा है। वास्तव में सूक्ष्म दृष्टि से विचार करो तो चिन्तित हुआ कि आत्मा निरनिराना जायक विज्ञानधन स्वरूप है। मात्र इनके मन कुछ भी नहीं है। सूक्ष्म दृष्टि में यह विपरीत सा मान्य पड़ता है।

क्योंकि राग द्वेष कृपादि ब्रह्माय आदि भी जीव से भिन्न निराश्रित नहीं होते । यह प्रत्यक्ष दृष्टव्य हो रहा है । फिर क्या जिस प्रकार माना जाय कि ये आत्मा के स्वभाव नहीं ॥ । तब है परन्तु शुद्ध निश्चय नब हो इसका निगम करता है कि ये सब नाटक अशुद्धात्मा के ही विचार हैं । मूल म ये भी जड़ ही है क्योंकि पौद्गलिक कम निमित्तक है । जड़ में जड़ भाव ही सम्भव ॥ स्वजाति परिणाम ही वास्तविक है । विज्ञानीय क्रियाएँ सब विभाव रूप ही होती हैं । यह है निमित्त निमित्तक भाव । असंख्य परिणाम हे आत्मन् शुद्ध निश्चय नब भी एक स्वयं अनिवर्तनीय-अवस्थायी क्रिया है । निश्चय म बचन है ही नहीं । वस्तु के अनेक धर्म हैं उन धर्मों का पुनः-पुनः बचन व्यवहार तब का विषय है । अभिहितक गुणों का निरूपण यद्यपि स्पष्ट दृष्टि से निश्चय नब का कहा जा सकता है किन्तु भ्रम दृष्टि से वह मात्र निवर्धमान ही है । यह भी नहीं ऐसा भी नहीं मू भी नहीं इत्यादि । आखिर फिर है क्या ? जो है वही है । वह शक्यताही है । मन्त्रों द्वारा नहीं कहा जा सकता । अत अवस्थायी ही है । हे साधो ! मन्त्र पुनः अनुभव का विषय है । अनुभूति मात्र ही उसका उद्देश्य है । अनुभव द्वारा ही वह पाया जा सकता है । उसका आनन्द लिया जा सकता है । स्वयं ही उसमें आनन्द है । बचन नहीं किया जा सकता है । कोई चाहे उसका वर्णन करे तो यह असम्भव है । वर्णनातीत है । तब काय इस एकाग्र हो जाओ । इन्द्रिया का समन करो मन का रोष करो । विषय मृत्वा को भस्म करो एकाग्र हो जाओ । अपने म अपने ही द्वारा अपने ही को देखो जाओ परस्पर और दृष्टो मो यही है स्व स्वक्यानुभव का अर्थ बिना इसके आत्मानन्द नहीं भा सकता ।

हे आत्मन् तू चिन्ताकार बन्य है । अपना तेरा स्वयं प्रकाश है फिर भला अपने ही प्रकाश में अपने को नहीं देख सका तो किसे देखेगा ? जो स्वयं का शाता बन्दा है वही पर का भी जाता दृष्टा हो सकता है । जो स्वयं को जानता देखता नहीं है वह पर को भी जान देख नहीं सकता । आत्मा दण्ड है निमल आरती है उसमें स्व और पर समस्त अनन्त पदार्थ उनकी अनन्तों पर्यायी सहित युग पल एक साथ झलकती हैं । फिर तुम क्यों दीवान बनो हो जी काठ के धर्मों की भाँति तुम में क्यों नहीं यह झनक आती ? ओ-बड़ा खेद है सबमुख यह शोचनीय है विचारणीय है कि यह अनौकिक शक्ति आखिर है कहीं कि घर चली चली गई क्यों चली गई । गई नहीं नहीं है जो मात्र आवृत्त हो गई है । उब गई है । अच्छान्त हो रही है । भैया शीशा के सामने कामज का झूट आटा कर दो और फिर देखो अपना चेहरा क्या श्लेष ? नहीं । क्यों ? क्योंकि भ्रम में आवरण आ गया इसलिए । शीशा ज्यो ॥ त्यों है उसका स्वभाव भी यथा स्यात् है । किन्तु उसमें कोई विकार नहीं है । यह आत्मा का भी यही स्वभाव है । आत्मा अपने ही स्वभाव म है । स्वयं निजको ही निज म ही देत रही है ।

श्री जिननेत्र के रूप सावण्य का वर्णन आचार्यों कृत उपमन्त्र होता है। इधर
 व्यवहार मिथ्या है यह भी पाया जाता है। कोई व्यवहार का अभूताप कह देय कहते
 हैं। कही व्यवहार निश्चय का साधक उल्लिखित है। इस प्रकार की कथन प्रणालियाँ
 सामान्य जनों को भ्रांति पदाकर देती हैं। किंतु यदि सम्यक् प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से
 विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो समस्त शांकाओं का निरसन स्वयमेव हो जाता
 है। एकांतपत्नी व्यवहार मिथ्या व अभूताप हेय है। किन्तु साधे १ सत्य व्यवहार
 निश्चय का साधक होने में उपादेय भूताप है। यथा पुण्य ही है। सामान्य स कर्म
 जातीय का उत्पन्न न कर विचारों पर पाप समान है। दोनों में कम सामान्यापेक्षा
 कोई भेद नहीं है किन्तु विशेषापेक्षा विचार करने पर सान्निध्य पुण्य मुक्ति का
 साधक है और निरनिश्चय सत्ता का कारण है पुण्यानुबन्धी पुण्य का लक्षण ही है
 गुणातीति आत्मानमिति पुण्या जो आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं। यह
 परिभाषा पुण्य को उपायेय मित्र करती है इससे आत्मसुखि व वह साधक है वाचक
 नहीं। क्योंकि परस्पर से भोजन का हेतु है। इस प्रकार अपेक्षावृत्त विचार करें तो अपाये
 स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। एक ही पक्ष को लेकर यदि बैठे रहें तो वाय मित्र नहीं
 हो सकता। जस्तु अपेक्षावृत्त वस्तु स्वरूप ही अपाये हो सकता है। जानाबोझ निश्च
 यानु है। स्व की सम्पत्ति है। अतः का प्रकाश है। हृण्य की प्रकुलता प्रमूढ है।
 मनवागाय मय वसति है। मनोभिन्नाया होना तो एक नैमित्तिक है परन्तु उनका संय
 मित करना यह स्व पुण्यार्थ है। आत्म साधना है। आत्म तत्त्व का प्रवर्णन है। मन
 पीद्वान्तरि है कमजोर है। कम का सम्बन्ध क्या आत्मा से है? हाँ जी है तो नहीं।
 क्या है? समायी है। दो पृथक् पृथक् ही संयोग सम्बन्ध होता है। यह प्रतिया
 गच्छ कर देती है कि आत्मा और कम दोनों भिन्न भिन्न हैं। स्वका परस्पर कोई
 सम्बन्धित सम्बन्ध नहीं है। अतः गीर नीरवन्त साधोय है। यही प्रतिया आत्मा पर
 हारी है। आत्मा का प्रभावित अवस्था विषये हुए है। आत्मा स्वयं स्वयं व पृथक् है
 कम भिन्न है। आत्मा का लक्षण स्वभाव गुण धर्म भिन्न भिन्न है स्वयं गुण है।
 ह साधो विचार कर लेनी सत्यता भिन्न पक्षों में शंकीकरण किम प्रकार हो सकता
 है। यदि एक ही वाय तो अभ्यस्त हो न रहेगी। फिर तो ६ के स्थान पर १४
 वा १५ इत्येव हो जायेगा। पर ऐसा मुक्ति प्रमाण से न हुआ और न हो ही सकता
 है। यही विचार मन्त्र की बीज है। इसे समझना ही तत्त्व का परिज्ञान है। नान दिने
 बना होता ही वाच्य है। तत्त्व विषयानुसार क्रिया होना परमावश्यक है। क्रिया
 नहीं तो तत्त्व निर्लेख कुछ कर नहीं सकता। यही क्रिया चार्ति सम्बन्ध है वही
 सम्बन्धन और ज्ञान अवस्थावस्था की है। किन्तु सम्बन्धन ३ करने ज्ञान चार्ति
 अवस्थीय है-हाँ भी और नहीं भी हाँ। चार्ति परम वाच्य है। श्रीअनन्य-अन्य
 ने पुण्य व विद्वान् व के विषय है कि विषय समस्त जहाँ भी लयन धारण करने
 का पक्ष ही मनो लयन लक्षण धारण कर लेना पड़ता है। मन तो वा है। चार्ति है।

घाट के बिना सरोवर नहीं रह सकता उसी वस्तु धारण किये बिना जीव नहीं पनप सकता। धोत्र की रक्षा बाढ़ से है। भाड़ नहीं तो पशु प्रवेश नहीं कर सकता उसी प्रकार प्रती से बिना जीवन सुखम धारित ज्ञान दखन रूप रत्नों की रक्षा दुलभ है। हे भाई वस्तु धारण करो और धामन भी करो। धारणा और वातना ही जीवन की साधना है। जीवन की महानता और साधकता है। यही मानव धर्म है।

एक प्रश्न है आत्मा है क्या? आत्मा एक सत्य है। एक द्रव्य है। क्या द्रव्य? कृपा तत्त्व? घट द्रव्यों में एक निरासा और नवतत्त्वों में एक अन्तिम अनुपम इमका अस्तित्व ही अपने कर्म का अनुठा है। सब जग है पर यह अकेला सत्य स्वभाव से कभी भ्रुण नष्ट होता। अजर-अमर अविनाश्वर और चिरन्तन है। इसका अपना स्वयं स्वयं अपने में है। अन्य द्रव्य भी अपने-अपने में स्वतन्त्र हैं। सब भिन्न भिन्न है। सत्य स्वयं स्वतन्त्र है। छह द्रव्यों में आत्मा जीव और पुद्गल ये दो तत्त्व या द्रव्य अपने-अपने स्वरूप से च्युत हो अयोध्या दशा को प्राप्त हैं जब कि अन्य चारों द्रव्य निरन्तर शुद्ध स्वभाव में ही रहते हैं। कभी विवर्ती नहीं होते। जीव और पुद्गल भिन्न-भिन्न चिह्न होते हैं। विचार युक्त होने से स्व-स्वरूप से विभक्त हो जाते हैं विभाव रूप परिणामन करते हैं। ब्रह्मादि परिणाम ही ससार परिभ्रमण का कारण है। यह विभाव जब तक है तभी तक ससार है दुःख और क्लेश है। जिस काल आत्मा और जब कब नोकम का विभाजन होगा उस समय घट्टा और मक्खन धूत की भाँति दोनों सबका अलग अलग हो जायेंगे। उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा न वे मिल हो सकेंगे। एक बार शुद्धावस्था की प्राप्ति आत्मा पुनः अशुद्ध दशा प्राप्त नहीं कर सकता यह शुद्ध सत्य है। यही यथार्थ है।

आत्मा का क्षेत्र कहाँ है? आत्मा स्वयं आत्मा में ही स्थित है। उसी के असम्प्राप्त प्रवेश उस का क्षेत्र है। अपनी इच्छा का वह कभी उत्सर्जन नहीं करता। और करेगा भी नहीं। आत्मा सगुण अपने में ही स्वयं अवस्थित है। यह है निश्चय की अपेक्षा शुद्ध स्वभाव। व्यवहार मयापथा आत्मा का क्षेत्र कोई भी निश्चित नहीं है। कर्मावृत्त आत्मा परतन्त्र है पर प्रेरणा में उसे यत्र-तत्र निवास करना पड़ता है। नाम रम की बलवत्ता से वह जसा स्थान मूल्य शरीर पाता है उतने ही प्रमाण में सकोच या विस्तार रूप होकर ठहरता है। गतिनाम रम चारों गतियों में विहार कराना है जिस गति में जिस आकार से शरीर मिला उसी हिसाब में आत्मा सष दीर्घ हलका भारी भोग-भोगता आदि अनेक रूपों में विभक्त हो जाता है। इस स्थिति में इमका कोई भी रूप या आकार निश्चित नहीं कहा जा सकता। यह है आत्मा के क्षेत्र की चर्चा सबका सार यही है कि अशुद्धात्मा का क्षेत्र नाना और अनेक प्रकार है किन्तु शुद्धात्मा का एक निश्चित क्षेत्र है। अन्तिम शरीर से कि वित् न्यून धुल्लका सिद्ध लोक के आवागमन-प्रदेशों में स्थित या स्व अवस्था में प्रदेशों में निगल समग्रार ता विरक्ष निवास स्थान

आत्मा का वह काम और स्व भाव भी स्व-हृदय और स्व भोग की १ स्वभाव और निराशा है । इन्हें ही स्व अनुष्ठान कहा जाता है । इसी प्रकार से प्र हृदय का अन्तः प्रवेश स्व अनुष्ठान है । भाव की अनेका द्वार का वही पर अनुष्ठान । इसी स्व पर की अनेका से प्रत्येक भाव के अन्तः अन्तः नास्तिक धर्म के माना है या विद्यमान रहता है । क्योंकि दोनों धर्मों का कथन साथ नहीं हो सकता इसलिए अनेकान्य धर्म भी हो जाता है । इनके संगोप से ४ के तीन धर्म कथित होने हैं और सब विचकर सम्पन्न हो जाते हैं । क्योंकि मरणा नहीं होने इसलिए कथविद् कहे जाते हैं । इसीलिए स्यान् गन् का प्रयोग हो अनिवाय है स्यान्ति २ स्यान् नास्ति ३ स्यान् अस्ति नास्ति ४ स्यान् अवस्त ५ स्यान्ति अवस्तव्य ६ स्यान् नास्ति अवस्तव्य और ७ स्यान् अस्ति नास्ति अवस्तव्य ये ही ७ भव वस्तु प्रविष्टान् से सम्भव है । क्योंकि प्रश्न भी ७ ही सम्भव है । इन्हीं धर्मों का नाम अनेकान्य है । अनेक विरोधी धर्म भी जन्म बिना वि विरोध के अवस्थिति पालें उन्हें ही अनेकान्त सिद्धान्त सम्पन्नता चाहिए । यही बल स्थिति है इसी पर समार की प्रक्रिया आधारित है और इसी से वस्तु तत्त्व निर्णय प्राप्त सिद्ध होता है ।

आत्मा का स्व काय और स्व भाव भी स्व-द्रव्य और स्व क्षेत्र की भाँति स्वतन्त्र और निराना है । इन्हें ही स्व चतुष्टय कहा जाता है । इसी प्रकार से प्रत्येक द्रव्य का अपना ज्ञान स्व चतुष्टय है । अथ की अनेका इतर का वही पर चतुष्टय कहनाना । इसी स्व पर की अनेका मे प्रत्येक द्रव्य ने अन्तर अस्तित्व और नास्तित्व धर्म क,साया ^१ या विद्यमान रहता है । यू कि दोनों धर्मों का कथन एक साथ नहीं हो सकता इसलिए अनेकाध्य धर्म भी हो जाता है । इनने सयोग से अने के तीन धर्म बयिन होने हैं और सब मिलकर सप्तमम हो जाने हैं । क्योंकि ये सवषा नहीं होते इसलिए बचंविद् कहे जाते हैं । इसीलिए स्यात् शब्द का प्रयोग होना अनिवाय है स्यान्ति २ स्यान् नास्ति ३ स्यान् अस्ति नास्ति ४ स्यात् अवस्तव्य ५ स्यान्ति अवस्तव्य ६ स्याद् नास्ति अवस्तव्य और ७ स्यान् अस्ति नास्ति अवस्तव्य ये ही ७ भग वस्तु प्रतिपान्न म सम्भव है । क्योंकि प्रश्न भी ७ ही सम्भव हैं । इन्ही क्रमों का नाम अनेकान है । अनेक विरोधी धर्म भी जन्म बिना किसी विरोध के अवस्थिति पायें उन्हें ही अनेका त सिद्धान्त समझना चाहिए । यही वस्तु स्थिति है इसी पर ससार की प्रजिया आधारित है और इसी से वस्तु तत्त्व निर्गति अवाध सिद्ध होता है ।

आत्मा का स्व काम और स्व भाव भी स्व-दृश्य और स्व श्रेय की भांति स्वयं-त और निरात्म है। इन्हें ही स्व चतुष्टय कहा जाता है। इसी प्रकार से प्रत्येक दृश्य का अगन्त अगन्ता स्व चतुष्टय है। अय की अपेक्षा इतर का वही पर चतुष्टय कहना। इसी स्व पर की अपेक्षा में प्रत्येक दृश्य ने अन्तर अस्तित्व और नास्तित्व धर्म का साना ^१ या विद्यमान रहता है। चू कि दोनों धर्मों का कथन एक साथ नहीं हो सकता इसलिए अवक्तव्य धर्म भी हो जाता है। इनके संयोग से भागे के तीन धर्म कथित होने हैं और सब भिन्न-भेद सम्पन्न हो जाते हैं। क्योंकि ये सद्यथा नहीं होते इसलिए कथञ्चिद् कहे जाते हैं। इसीलिए स्यान् गम् का प्रयोग होना अनिवार्य है स्यान् अस्ति २ स्यान् नास्ति ३ स्यान् अस्ति नास्ति ४ स्यान् अवक्तव्य ५ स्याद् अस्ति अवक्तव्य ६ स्याद् नास्ति अवक्तव्य और ७ स्यान् अस्ति नास्ति अवक्तव्य ये ही ७ भेद वस्तु प्रतिपादन में सम्भव हैं। क्योंकि प्रश्न भी ७ ही सम्भव हैं। इन्हीं क्रमों का नाम अनेकान्त है। अनेक विरोधी धर्म भी जन्म बिना द्विती विरोध के अवस्थिति पालें उन्हें ही अनेकान्त सिद्धान्त समझना चाहिए। यही वस्तु स्थिति है इसी पर ससार की प्रजिया आधारित है और इसी से वस्तु तत्त्व निर्गम अवधार मिट्ट होता है।

